Jīvarāja Jaina Granthamālā, No. 12

General Editors :

Dr. A. N. UPADHYE & Dr. H. L. Jain

Mahāvīrāchārya's

Gaṇitasāra-Saṁgraha

(An Ancient Treatise on Mathematics)

Authentically Edited with a Hindi Translation
and Introduction etc.

by

L. C. Jain

JABALPUR

Published by

Gulabchand Hirachand Doshi

Jaina Saṁskṛti Saṁrakshaka Saṁgha, Sholapur

1963

Price Rupees Twelve only

First Edition : 750 Copies

Copies of this book can be had direct from Jaina Saṁskṛti Saṁrakshaka Saṁgha, Santosha Bhavana, Phaltan Galli, Sholapur (India)

Price Rs. 12/- per copy, exclusive of postage

जीवराज जैन ग्रंथमाला का परिचय

सोलापुर निवासी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशी कई वर्षों से संसार से उदासीन होकर धर्मकार्य में अपनी वृत्ति लगा रहे थे। सन् १९४० में उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्ति का उपयोग विशेष रूप से धर्म और समाज की उन्नति के कार्य में करें। तदनुसार उन्होंने समस्त देश का परिभ्रमण कर जैन विद्वानों से साक्षात् और लिखित सम्मतियाँ इस बात की संग्रह कीं कि कौन से कार्य में संपत्ति का उपयोग किया जाय। स्फुट मत संचय कर लेने के पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्म काल में ब्रह्मचारीजी ने तीर्थक्षेत्र गजपंथा (नासिक) के शीतल वातावरण में विद्वानों की समाज एकत्र की और ऊहापोह पूर्वक निर्णय के लिए उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत्सम्मेलन के फलस्वरूप ब्रह्मचारीजी ने जैन संस्कृति तथा साहित्य के समस्त अंगों के संरक्षण, उद्धार और प्रचार के हेतु से 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' की स्थापना की और उसके लिए ३०,०००) तीस हजार के दान की घोषणा कर दी। उनकी परिग्रहनिवृत्ति बढ़ती गई, और सन् १९४४ में उन्होंने लगभग २,००,०००) दो लाख की अपनी संपूर्ण संपत्ति संघ को ट्रस्ट रूप से अर्पण कर दी। इस तरह आपने अपने सर्वस्व का त्याग कर दि. १६-१-'५७ को अत्यन्त सावधानी और समाधान से समाधिमरणकी आराधना की। इसी संघ के अन्तर्गत 'जीवराज जैन ग्रंथमाला' का संचालन हो रहा है। प्रस्तुत ग्रंथ इसी ग्रंथमाला का बारहवाँ पुष्प है।

प्रकाशक
गुलाबचंद हिराचंद दोशी,
जैन संस्कृति संरक्षक संघ,
सोलापुर

मुद्रक
बालकृष्ण शास्त्री
ज्योतिष प्रकाश प्रेस,
कालभैरव मार्ग, वाराणसी

6789
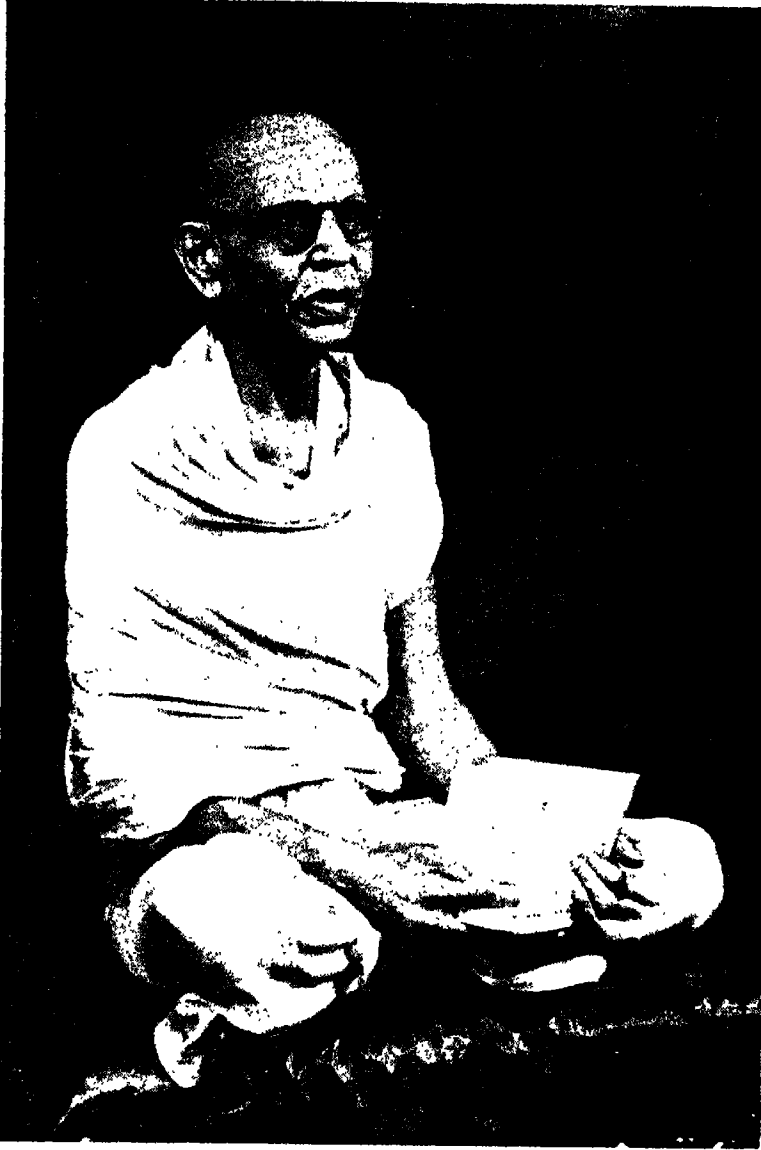
स्व. ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचंदजी दोशी,
संस्थापक जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापूर

जीवराज जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थ १२

ग्रन्थमाला-संपादक

डॉ० आ. ने. उपाध्ये व डॉ० हीरालाल जैन

महावीराचार्य-विरचित

गणितसार-संग्रह

(गणित शास्त्र विषयक प्राचीन ग्रन्थ)

संस्कृत मूल, हिन्दी अनुवाद व प्रस्तावना,

परिशिष्ट आदि सहित

प्रामाणिक रूप से संपादित

संपादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन

जबलपुर

प्रकाशक

श्री गुलाबचन्द हिराचन्द दोशी

जैन संस्कृति संरक्षक संघ

सोलापुर

वी. नि. संवत् २४९० सन् १९६३ विक्रम संवत् २०२०

मूल्य रु. १२ मात्र

FOREWORD

I have had the privilege of going through this edition of Mahāvīrāchārya's Gaṇitasāra-Saṁgraha, prepared with critical annotations and an introduction by Prof. L. C. Jain of the Department of Mathematics, Govt. Science College, Jabalpur, under the general editorship of the renowned orientalists, Dr. A. N. Upadhye and Dr. H. L. Jain.

Apart from the extreme care which the learned editor has exercised in the choice of technical expressions and terminology in Hindi throughout this edition, what struck me the most is his sympathetic and erudite understanding of the highly intricate inter-actions among various schools of mathematical thought that must have gone into the making of a background for a classic like the Gaṇitasāra-Saṁgraha. And this, I am sure, places the present edition on a distinctly higher-than-ever-attained plane of excellence.

I hail the appearance of this work of Prof. L. C. Jain in the world of learning.

T. PATI

Head of the Department of Mathematics

University of Jabalpur

JABALPUR

November 4, 1963

विषय-सूची

ग्रन्थमाला संपादकीय

पढ़ना, लिखना और गिनना ये मनुष्य की मौलिक विद्यायें मानी गई हैं। जैन-शास्त्रों में जिन बहत्तर कलाओं का उल्लेख मिलता है उनमें सर्वप्रथम स्थान लेख का और दूसरा गणित का है। तथापि आगमों में प्रायः इन कलाओं को 'लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ' अर्थात् लेखादिक, किन्तु गणित प्रधान कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि बालक की शिक्षा में एवं मानवीय व्यवहार में गणित का बड़ा महत्त्व था।

जैन-साहित्य यद्यपि धर्म व दर्शन प्रधान है, तथापि उसमें गणित-शास्त्र का उपयोग व व्याख्यान पद पद पर पाया जाता है। विशेषतः इस साहित्य के चार अनुयोग—प्रथम, करण, चरण और द्रव्य माने गये हैं। उनमें करणानुयोग में लोक का स्वरूप वर्णित पाया जाता है; और उस निमित्त से सूर्य, चन्द्र व नक्षत्र तथा द्वीप, समुद्र आदि के विवरणों में गणित की नाना प्रक्रियाओं का प्रचुरता से उपयोग किया गया है। सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति एवं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति नामक उपाङ्गों में तथा तिलोयपण्णत्ति, षट्खंडागम की धवल टीका एवं गोम्मटसार व त्रिलोकसार तथा उनकी टीकाओं में प्रचुरता से गणित का प्रयोग पाया जात है; और वह भारतीय प्राचीन गणित के विकास को समझने के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण है। सूर्यप्रज्ञप्ति को तो गणितानुयोग भी कहा गया है। वैदिक परम्परा में गणित का विषय वेदाङ्ग ज्योतिष आदि ज्योतिष के ग्रंथों में प्रयुक्त पाया जाता है। पाँचवीं शती में हुए आर्यभट ही एक सर्वप्रथम ज्योतिषी पाये जाते हैं जिन्होंने अपने आर्याष्टशत नामक कृति में ३३ श्लोकात्मक गणित का एक प्रकरण स्वतंत्र रूप से जोड़ा है। उनके पश्चात् हुए ब्रह्मगुप्त ने भी अपने ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त नामक ग्रंथ में गणित का एक अध्याय जोड़ा है।

इस समस्त परम्परा में एक भी ऐसा ग्रंथ नहीं दिखाई देता जो पूर्णतः गणित-विषयक कहा जा सके। ऐसा सर्वप्रथम ग्रंथ महावीराचार्य कृत गणितसार-संग्रह ही है जिसकी रचना राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के राज्यकाल में हुई थी जो सन् ८१३ से ८८० ईस्वी तक पाया जाता है। यह राजा जैनधर्म का बड़ा अनुरागी था और उसके संरक्षण में बहुत से जैन साहित्य की रचना हुई। राजा स्वयं एक कवि था और प्रश्नोत्तर-रत्न-मालिका नामक प्रख्यात सुभाषित कविता उसी की बनाई सिद्ध होती है। प्रस्तुत ग्रंथ की उत्थानिका में ही अमोघवर्ष की बड़ी प्रशंसा की गई है। यहाँ जो उन्हें महान् यथाख्यात-चारित्र-जलधि आदि विशेषण दिये गये हैं उनपर से ऐसा अनुमान होता है कि उन्होंने राज्यत्याग कर मुनिधर्म धारण किया था। रत्नमालिका के अन्त में जो उन्हें 'विवेकात् त्यक्तराज्येन' कहा है उससे भी इसी बात का समर्थन होता है। (देखिये डॉ० ही० ला० जैन, राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष की जैन-दीक्षा, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा, १९४३)। एक पूर्णतः गणित विषयक ग्रंथ ऐसा भी मिला है जो आश्चर्य नहीं महावीराचार्य से

पूर्वकालीन हो। पेशावर के समीप बक्षाली नामक ग्राम में भूमि के भीतर से एक भूर्ज पत्र पर लिखे हुए ग्रंथ के खंड सन् १८८१ में प्राप्त हुए। इनकी छानबीन से पता चला कि इनमें भिन्न, वर्गमूल, समान्तर और गुणोत्तर श्रेढ़ियां आदि गणित की प्रक्रियाओं का वर्णन है। कुछ विद्वान् इस ग्रंथ को तीसरी चौथी शती की रचना का अनुमान करते हैं और कुछ इसे बारहवीं शती के लगभग रखने के भी पक्ष में हैं। (देखिये Bibhutibhusan Datta, The Bakhshālī Mathematics, Bul. Cal. Math. Soc., XXI, 1 (1929), pp. 1-60).

प्रस्तुत सर्वांगपूर्ण गणित ग्रंथ के महत्त्व को समझ कर इसका सम्पादन प्रोफेसर रंगाचार्य ने अंग्रेजी अनुवाद सहित सन् १९१२ में किया था जिसका प्रकाशन मद्रास गवर्न्मेंट की ओर से हुआ था। इधर अनेक वर्षों से वह प्रकाशन अलभ्य है जिसके कारण प्राचीन गणित के विद्वानों व शोधकों को बड़ी असुविधा प्रतीत होती थी। इसी कारण यह आवश्यक समझा गया कि इस ग्रंथ का पुनः संशोधन, अनुवाद व प्रकाशन कराया जाय। यह कार्य गणित के प्राध्यापक श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ने अपने हाथ में लिया और उन्होंने अपने हिन्दी अनुवाद तथा प्रस्तावना में विषय को सुस्पष्ट करने में बड़ा परिश्रम किया है जिसके लिये हम उनके बहुत कृतज्ञ हैं। प्रस्तुत ग्रंथमाला के अधिकारियों ने इस ग्रंथ को प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार किया इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। इस ग्रंथ के लिए प्रो० भूपाल बाळप्पा बागी (धारवाड) ने महत्त्वपूर्ण प्रास्ताविक लिखा है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। अनेक सम्पादन व मुद्रण सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण ग्रंथ के प्रकाशन में बहुत विलम्ब हुआ इसका हमें दुख है। विद्वानों से हमारी प्रार्थना है कि वे इस महत्त्वपूर्ण शास्त्र के सम्बन्ध में अपने अभिमत व सुझाव निस्संकोच भेजने की कृपा करें, जिससे विषय का उत्तरोत्तर परिमार्जन होता रहे।

ही. ला. जैन
आ. ने. उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

INTRODUCTORY

Āryabhaṭa, the elder (c. 510 A. D.), Brahmagupta (c. 628 A. D.), Mahāvīrāchārya (c. 850 A. D.) and Bhāskarāchārya (c. 1150 A. D.) are the most eminent mathematicians of ancient India.

Mahāvīrāchārya, the author of the Gaṇitasāra Saṁgraha, lived in a period well-known, in the history of South India, for its prosperity, political stability and academic fertility. He was a contemporary and enjoyed the patronage of Nṛpatuṅga, or Amoghavarsha (815-877 A. D.) of the Rāshṭrakūṭa dynasty. Nṛpatuṅga was ruling at Mānyakheṭa, but his kingdom extended far northwards. His capital was a centre of learning. He was not only a mighty ruler, but also a patron of poets and himself a man of literary aptitude and attainments. A Kannaḍa work, Kavirājamārga, on poetics is attributed to him He was a great devotee of Jinasena (the author of Ādipurāṇa and Pārśvābhyudaya) whose ascetic practices and literary gifts must have captivated his mind. He soon became a pious Jaina and renounced the kingdom in preference to religious life as mentioned by him in his Sanskrit work, the Praśnottara–ratnamālā and as graphically described by his contemporary Mahāvīrāchārya in his Gaṇitasāra Saṁgraha.

Mahāvīrāchārya combines the discipline of seasoned mathematician with the warm and vivid imagination of a creative poet. He skilfully summarizes all the known mathematics of his time into a perfect textbook which was used for centuries in the whole of Southern India He states rules clearly and precisely. He simplifies and sharpens many processes. He generalises many a theorem shedding light on new aspects by apt illustrations. Gaṇitasāra-Saṁgraha is a veritable treasury of problems many of which are characterised by mathematical subtlety, poetic beauty and delicate hint of refind humour, qualities so rare in a mathematical text book. It is difficult to decide, in a textbook, what is old and what is the original contribution of the author.

Here is a brief survey of the contents of the book :

Chapter I opens with the salutation to Lord Mahāvīra, the twentyfourth Tīrthaṅkara of the Jainas, who by his knowledge of the science of the numbers illuminates the three worlds. This is follwed by a warm and handsome tribute of gratitude paid to his royal patron, Amoghavarsha. After this, comes the most enthusiastic and unique panegyric ever bestowed on the science of Mathematics. Then we have measures used, names of operations and numerals. Rules governing the use of negative numbers are correctly stated; those regarding the use of zero may be stated in modern notation thus :

$$a \pm 0 = a; \quad a \times 0 = 0; \quad a \div 0 = a.$$

The last part is obviously wrong. As regards the square root of a negative number, the author observes that since squares of positive and negative numbers are positive, square root of a negative number cannot exist. Considering the limitations of his time, Mahāvīrāchārya could not have reached a more sensible conclusion. We may note, in this context, that the necessary extension of the concept of number which assimilates square roots of negative numbers into the number system, was achieved as late as in 1797 by C. Wessel a Norwegian surveyor (Bell's 'The Development of Mathematics' page 177).

Chapter II deals, in respect of integers, with operations of multiplication, division, squaring and its inverse, cubing and its inverse, arithmetic and geometric series.

Problem II 17. In this problem, put down in order (from the unit's place upwards) 1, 1, 0, 1, 1, 0, 1 and 1, which (figures so placed) give the measure of a number and (then) if this number is multiplied by 91, there results that necklace which is worthy of a prince. The 'Necklace' referred to, may be displayed thus :

$$11011011 \times 91 - 1002002001.$$

Two more 'garlands worthy of a prince' are : (II 11, 15) :

$$333333666667 \times 33 = 11000011000011;$$

and $752207 \times 73 = 11,\ 111,\ 111.$

Chapters III and IV are devoted to elementary operations with fractions. Mahāvīrāchārya has paid considerable a tention to the problem of expression of a unit fraction as the sum of unit fraction. This problem has interested mathematicians from remote antiquity (Ahmes Papyrus 1650 B. C.). Here are three relevant problems (II 75, 77, 78) set in modern notation.

$$(1)\ 1 = \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{3^2} + \cdots\cdots + \frac{1}{3^{n-2}} + \frac{1}{2^{n-2}.3};$$

$$(2)\ 1 = \frac{1}{2\cdot 3\cdot \frac{1}{2}} + \frac{1}{3\cdot 4\cdot \frac{1}{2}} + \cdots + \frac{1}{(2n-1)\,2n\cdot\frac{1}{2}} + \frac{1}{2n\cdot\frac{1}{2}};$$

$$(3)\ \frac{1}{n} = \frac{a_1}{n\,(n+a_1)} + \frac{a_2}{(n+a_1)\,(n+a_1+a_2)} + \cdots\cdots$$

$$+ \frac{a_r}{(n+a_1+a_2+\cdots+a_{r-2})\,(n+a_1+a_2+\cdots+a_{r-1})}$$

$$+ \frac{a_r}{a_r\ (n+a_1+a_2+\cdots+a_r)}$$

Problem IV 4: One third of a herd of elephants and three times the square root of the remaining part (of the herd) were seen on the mountain slope; and in a lake was seen a male elephant along with three female elephants. How many were the elephants there ?

Here is a sample of monkish humour !

Chapter V treats 'Rule of Three' and its generalised forms.

Chapter VI. Having created the arithmetical apparatus in the earlier chapters, in this long chapter, Mahāvīrāchārya applies it to solving many problems which one encounters in life such as money-lending, number of combinations of given things, indeterminate equations of first degree, etc.

Problem (VI 128½) : In relation to twelve (numerically equal) heaps of pomegranates which having been put together and combined with five of those (same fruits) were distributed equally among 19 travellers. Give out the numerical measure of (any) one heap.

Problem (VI 218) : The number of combinations of n different things taken r at a time is

$$\frac{n\,(n-1)\,(n-2)\cdots(n-r+1)}{1\cdot 2\cdot 3\cdots\cdots r} \quad \text{or} \quad \frac{n!}{r!\,(n-r)!}$$

It is interesting to note that this general formula was discovered in Europe as late as in 1634 by Herigone (Smith's History of Mathematics Vol. II). We may also recall here that the number 7 which occurs in Saptabhaṅgī provides a simple example in the theory of Permutations and Combinations. A layman can verify that he can form seven and only seven different combinations of three distinct objects. Jainas have been using mathematics freely in their sacred literature from very remote antiquity. The above example supports this fact.

Problem (VI 220) : 0 friend, tell me quickly how many varieties there may be, owing to variation in combination of a single-string necklace made up of diamonds, supphires, emeralds, corals and pearls ?

Problem (VI 287) : What is that quantity which when divided by 7, (then) multiplied by 3, (then) squared, (then) increased by 5, (then) divided by 3/5, (then) halved and (then) reduced to its square root, happens to be 59.

Note the sheer devilry of it !

In chapters VII and VIII problems on mensuration are treated. Some of the formulas used are noted here :

(1) The Pythargorean formula for the sides of a right angled triangle is $a^2 = b^2 + c^2$ where a is the hypotenuse.

(2). Area of $\triangle$ ABC is

$\sqrt{s(s-a)(s-b)(s-c)}$ where $2s = a + b + c$.

(3). The area and the diagonals of a quadrilateral ABCD are :

$\sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$ where $2s = a + b + c + d$;

$\sqrt{\frac{(ac+bd)(ab+cd)}{ad+bc}}$; $\sqrt{\frac{(ac+bd)(ad+bc)}{ab+cd}}$.

It is unfortunate that both Mahāvīrāchārya and his predecessor Brahmagupta made the common mistake of not mentioning the fact that these formulas hold for cyclic quadrilaterals only.

(4). $\pi = 3$ or $\sqrt{10}$.

(5). The circumference of an ellipse whose major and minor axes are of lengths 2 a and 2 b is $\sqrt{24b^2 + 16a^2}$ which reduces to $2\pi a\sqrt{1 - \frac{3}{8}e^2}$ where e is the eccentricity. It is difficult to imagine.

how Mahāvīrācharya could attain such a close approximation without the help of the powerful tools available to us.

Chapter IX treats the so called "Shadow Problems."

Raobahadur Rangāchārya's edition of Gaṇitasāra-Saṃgraha with English translation has been out of print for over thirty five years. Thanks to the zeal and labours of Prof. L. C. Jain, the present edition with Hindī translation goes some way to meet a long felt need. It is, however, felt that a new edition with English translation by an experienced Mathematician who knows Sanskrit well is an urgent need.

The writer is thankful to his learned friends Dr. Hiralalji Jain and Dr. A. N. Upadhye for assigning to him the pleasant task of writing this foreword.

DHARWAR, October 1963 B. B. BAGI

EDITORIAL

The work of Hindi translation of Gaṇitasāra-Saṁgraha was entrusted to me by Dr. H. L. Jain in 1951, soon after I had joined the College of Science at Nagpur. It took nearly twelve years for its publication. During this period, while in his contact, I became interested in the study of mathematical contents of the old Prakrit texts (Dhavalā and Tiloyapaṇṇatti recently brought to light and edited with Hindi translation by him. It was easy to mark out the difference between the treatment in Gaṇitasāra Saṁgraha and the mathematical contents of the Prakrit texts. The former is a work on Indian logistics or Laukikī, a few portions of which could be useful for the study of the latter which we may call Indian arithmetica. Artha, in Prakrit texts, implies the measure of substance, field, time and beings' becomings in terms of monads. The Prakrit texts, made known to the Hindi world by Dr. H. L. Jain and others, form important sources of Indian arithmetica which throw light on the darkest period of Indian history of mathematics. It is regretted that certain articles of Dr. A. N. Singh on these topics are not known to historians of mathematics, for they were not published in recognized mathematical magazines. A reference to these was made by Sinvhal in an article on Dr. Singh in Gaṇita, Vol. 5, No. 2, (1954).

In the present work, I have based the translation mainly on the English translation of Professor Raṅgāchārya, taking liberty of Hindi expressions and keeping his notes intact. In the introduction I have tried to give a general observation on the history of mathematics upto the time of Mahāvīrāchārya. This is chiefly based on Bell's Development of Mathematics and History of Hindu Mathematics by Datta and Singh. Then I have given a specific observation on the history of mathematics of the Pythagorean era. In this I have given relevant references of the works which form important sources of Indian arithmetica, and have tried to correlate certain similarities in Greek, Egyptian, Babylonian, Indian and Chinese arithmetica etc. I have concluded therein that the mathematics developed in the school of Vardhamāna Mahāvira

is one of the connecting and missing links in the history of Mathematics.

I have traced these developments in a systematic form in the Jīva Tatva Pradīpikā commentary on Gommaṭasāra. It abounds in symbolism for place value, logarithms, transfinite and finite cardinals, sets and operators. One may be confused to see that a single symbol has been used in various texts to denote various measures or operations. For example, zero as a circle stands for a negative sign, for one-sensed soul, for the agṛhīta stage of soul (for a void), for filling up gaps, and for a place value. Sets are of varying, oscillating and constant types. A kind of well ordering concept seems to have been used in formation of sequences from the greatest transfinite set. Comparability also plays an important role in the treatment.

Thus Mahāvīrāchārya had before him, the works of his predecessors, both in logistics and in arithmetica. He made a clear remark in his connection, is verse 70, Chapter 1, for a study of Āgama for further details. His work contains other elementary descriptions on series etc., found in details in Prakrit texts, referred above. It seems that his acquaintance with proper infinities in which monads alone played the role of division etc., made him to think of division by zero as a distribution in a logical way. If a sum is to be distributed to none, the sum would remain unaffeced.

The first four appendices contain practically the same matter as appeared in Raṅgāchārya's translation. The fifth appendix contains new collation-material compiled at the instance of Dr H. L. Jain from certain manuscripts from Karanja. In the sixth appendix it has been thought useful to reproduce the preface of Professor Raṅgāchārya and introduction of Professor David Eugene Smith.

Thanks are due to Professor B. D. Dube for his kindness to give valuable suggestions. Thanks are also due to the proprietor of the Press for his kind co-operation.

I am grateful to my Principal, Shri G. R. Inamdar, and to my senior colleague, Prof. K. S. Rathore, for their affectionate patronage. My gratitude is also due to Prof. S. B Gour for his close assistance.

JABALPUR, NOVEMBER 1963 — L. C. JAIN

समर्पण

श्री १०५ पू० क्षु० मनोहर वर्णी 'सहजानन्द'

जिन्होंने

निरन्तर ज्ञान तप साधना रत हो

"स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्" उद्घोष गीत से

संतप्त जग जीवन में

चन्द्र सितारा मय

शीतल सम्यक्त्व-प्रभात

उतारा है

तथा

जीवन बन्धु विनोबा भावे

जिन्होंने

सर्वोदय और भूमिदानादि रत्न दीपों से

कृष्ण क्षुब्ध तम जलधि तटों पर

सुप्त प्राणों के प्राणों को

जागृत रखा है

को

सादर

सस्नेह

प्रस्तावना

भारतीय गणित इतिहास के जगत्प्रसिद्ध गणितज्ञ महावीराचार्य के गणितसार संग्रह ग्रन्थ का पुनरुद्धार प्रोफेसर रंगाचार्य द्वारा सन् १९१२ में हुआ। इस ग्रन्थ के तीन अपूर्ण हस्तलेख उन्होंने गव्हर्नमेंट ओरिएंटल मेनस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी, मद्रास में, उस समय के डी. पी. आई. श्री जी. एच. स्टुअर्ट की प्रेरणा से प्राप्त किये। उन तीन हस्तलिपियों में से एक तो[1] ग्रंथ की लिपि में कागज पर है, जिसमें संस्कृत टीका सहित प्रथम पांच अध्याय हैं। बाकी दो हस्तलिपियां[2] ताड़पत्रों पर कनड़ी लिपि में हैं। एक ताड़पत्र में प्रथम पांच अध्याय हैं, और दूसरे में सात अध्याय हैं, जिनमें क्षेत्रफलों का ज्यामितीय विधि से निरूपण है। इन दोनों हस्तलिपियों में संस्कृत में लिखा हुआ मूल ग्रंथ है, और कनड़ी भाषा में कुछ विविध उदाहरणार्थ प्रश्न तथा उन्हीं प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। इस ग्रंथ का पूर्णरूपेण अंग्रेजी में अनुवाद करने के लिये प्रोफेसर रंगाचार्य ने कई जगह खोज करवाई, जिसके फल स्वरूप उन्हें कुछ और हस्तलिपियां प्राप्त हुईं। चौथी हस्तलिपि गव्हर्नमेंट[3] ओरिएंटल लायब्रेरी, मैसूर में प्राप्त हुई। यह हस्तलिपि मूल रूप में ताड़ पत्र पर किसी जैन पंडित के पास थी, जिसे कागज पर कनड़ी में उतारा गया था। इस लिपि में पूरा ग्रन्थ है, साथ में, वल्लभ द्वारा कनड़ी भाषा में की गई टीका भी है। वल्लभ ने उसी में लिखा है कि इसी ग्रन्थ की टीका उन्होंने तेलगू में भी की। पांचवीं हस्तलिपि,[4] दक्षिण कनड़, मूडबिद्री में एक जैन मंदिर के भांडार में ताड़-पत्र पर कनड़ी में लिखित प्राप्त हुई। इसमें भी पूर्ण ग्रंथ है तथा कनड़ी में प्रश्न और उनके उत्तर दिये गये हैं। ग्यारहवीं सदी में राजमुंद्री के राजराजेन्द्र के शासन काल में इस ग्रंथ का अनुवाद पावलुरि मल्लण द्वारा तेलगू में हुआ, जिसकी कुछ हस्तलिपियां मद्रास की गव्हर्नमेंट ओरिएंटल मेनस्क्रिप्ट्स लायब्रेरी में हैं।

ग्रन्थ पढ़ने से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार सम्भवतः ईसा की नवीं सदी में मैसूर प्रांत के किसी कनड़ी भाग में हुए होंगे, जहां राष्ट्रकूट वंश के चक्रिका भंजन राजा अमोघवर्ष नृपतुंग[5] का शासन था। महावीराचार्य के कार्य का महत्व समझने के लिये गणित के विकास के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक प्रतीत होता है। गणित के विकास में भारतीयों का कितना अंशदान था यह भी इससे स्पष्ट हो जावेगा। इस विकास विवरण को हम केवल महावीर के काल तथा पश्चिम के देशों तक सीमित रखेंगे।

---

१. इस हस्तलिपि को प्रोफेसर रंगाचार्य ने "P" द्वारा अभिधानित किया है। हम भी इन्हीं संकेतों को उपयोग में लावेंगे।

२. दोनों हस्तलिपियों में साधारण लक्षण होने एवं विषय अतिव्यापी (overlapping) न होने के कारण इन्हें "K" द्वारा अभिधानित किया गया है।

३. इसका अभिधान "M" द्वारा किया गया है।

४. इस हस्तलिपि को "B" द्वारा अभिधानित किया गया है।

५. अमोघवर्ष नृपतुंग के विषय में इतिहासकारों का मत है कि वे ईसा की नवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजगद्दी पर बैठे। इनके विशेष परिचय के लिये नाथूराम प्रेमी का "जैन साहित्य और इतिहास" १९४२, पृ० ५१७ आदि देखिये।

गणित इतिहास का सामान्य अवलोकन

यह ज्ञात नहीं कि विश्व के किस प्रदेश में, कब और किसने यह सोचा कि संख्या और आकृति का ज्ञान सभ्य जीवन के लिये उतना उपयोगी सिद्ध होगा जितनी कि भाषा। संख्या और आकृति, इन दो मुख्य धाराओं द्वारा गणित वर्तमान रूप में आई। प्रथम धारा अंकगणित और बीजगणित को लाई, तथा दूसरी धारा ज्यामिति को। सत्रहवीं सदी में ये दोनों मिलकर गणितीय विश्लेषण (**mathematical analysis**) रूपी अगाम्य नदी के रूप में बदल गई।

ईसा मसीह से सैकड़ों सदियों पहिले विश्व के जो प्रदेश सभ्यता की चरम सीमा तक पहुँच सके उनमें प्रायः सबका इतिहास अज्ञात है, केवल वही देश इतिहास को बना सके जहां ऐतिहासिक सामग्रियां अभी तक हजारों वर्षों के विनाशकारी वातावरण से लोहा लेकर सुरक्षित चली आईं। इन देशों में बेबीलोनिया (बाबुल), मिस्र और भारत विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

दजला और फरात नदियों के कछार के पश्चिमी भाग में स्थित झूलने वाले बगीचों के देश बेबीलोन (**Babylon**) में लगभग ईसा से प्रायः ५७०० वर्ष पूर्व के अभिलेख वहां की सभ्यता का प्रदर्शन करते हैं। उस काल में इस देश के निवासी अपने ज्ञान को मिट्टी की चक्रिकाओं, रम्भों (बेलनों) और त्रिसमपार्श्वों में अंकित कर उन्हें पकाकर सुरक्षित रखते थे। उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनकी सभ्यता का आधार कृषि था, जिसके लिए उन्हें पंचांग (**calendar**) की आवश्यकता होती थी। उस सदी में उन्होंने अपने वर्ष का आरम्भ विषुवत बिन्दु (**vernal equinox**) से किया था। यह ज्ञान उन्होंने अपने पूर्व के देश सुमेर (**Sumer**) वासियों से सीखा होगा। ईसा से प्रायः २५०० वर्ष पूर्व सुमेर के व्यापारी वजन और मापों से परिचित थे। उन्हीं की गणना का मान बेबीलोन पहुँचा। वह मान षाष्ठिक (६० को आधार लेकर) था, जिसमें दशमलव (१० को आधार लेकर प्राप्त हुई) पद्धति का कुछ मिश्रण था। यह अनुमान लगाया जाता है कि १०, अंगुलियों को गिनने से और ६०, १० में ६ का गुणन करने से प्राप्त किया गया होगा। ६ इसलिए चुना गया कि उससे उपयोगी भिन्नों को सरलता पूर्वक व्यक्त किया जा सकता था।

ईसा से प्रायः २००० वर्ष पूर्व की अंकगणिति की सारिणियों में गुणन के सिवाय वर्गमूल तथा वर्ग और घन की सारिणियाँ भी थीं। $न^3 + न^2$ की सारिणी का भी वे उपयोग करते थे, जहाँ न का मान १ से लेकर ३० तक था। इस प्रकार उनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति फलनीयता (**functionality**) की ओर थी। उस समय यहाँ की बीजगणित में निरीक्षण और उपपत्ति दृष्टिगत नहीं है, पर समीकरणों का आंशिक हल दिया गया है। आजकल की पारिभाषिक शब्दावलि (**terminology**) में उन्होंने $क्ष^3 + अ\,क्ष^2 + ब = 0$ को $य^3 + य^2 = स$ के रूप में बदलकर हल किया, जिसमें उन्होंने $य = \frac{क्ष}{अ}$, तथा $स = -\frac{ब}{अ^3}$ रखकर $\frac{1}{अ^3}$ से पूर्व समीकरण को गुणित किया। यदि परिणामी स धनात्मक है तो य के और क्ष के मान (**values**) $न^3 + न^2$ की सारिणी से प्राप्त हो सकते हैं। उस समय के बाद इस क्रिया की पद्धति इटली की सोलहवीं सदी की बीजगणित में मिलती है। कुछ समीकरणों के सिवाय, उन्होंने दस अज्ञात वाले दस एकघातीय समीकरणों युक्त प्रश्नों के रूपों का हल भी किया है। उस काल की शांकव गणित में आयत, समकोण त्रिभुज, समद्विबाहु त्रिभुज आदि का क्षेत्रफल निकाला जा चुका था, और परिधि व्यास की निष्पत्ति ३ मानी जा चुकी थी। संभवतः यहाँ के निवासी सिंचाई और नहरों सम्बन्धी समस्याओं में आयतन, लम्ब वृत्तीय बेलन और लम्ब समपार्श्वों के ठीक तरह साधित किये गये उदाहरणों को उपयोग में

जाते थे। यहाँ की रेखा गणित की तीन बातें उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो यह कि अर्द्धवृत्त का कोण समकोण होता है। दूसरी यह कि वे साध्य (कर्ण)^{२} = (लम्ब)^{२} + (आधार)^{२}, का उपयोग २०, १६, १२ और १७, १५, ८ जैसी राशियों में कर चुके थे। तीसरी यह कि गणितीय विश्लेषणके उद्गमों के चिन्ह, जैसे, समकोणिक त्रिभुजों के बराबर कोणों की संवादी भुजाएँ समानुपाती होती हैं। यह हुई बेबीलोन की प्रगति जिसके पश्चात् वहाँ के प्रगति चिन्ह नहीं मिलते।

अब स्थल मार्ग से अरब देश को पारकर नील नदी के किनारे बसे मिस्र देश में चलिये। यह पिरेमिडों (स्तूपों) का विचित्र देश ईसा से प्रायः ४००० वर्ष पूर्व से लेकर २७८१ वर्ष पूर्व तक के पुरातत्व की सामग्री का भँडार है। बेबीलोन की तरह इस देश की सभ्यता का आधार कृषि था। इसका पता संभवतः ४२४१ वर्ष पूर्व के वहाँ के एक तिथिपत्र से चलता है जिसमें ३० दिन वाले १२ माह हैं, जिनमें ५ दिन जोड़ने से ३६५ दिन पूरे किये जाते हैं। इस ज्योतिर्विज्ञान हेतु वहाँ अंकगणित भी विकसित की गई। बेबीलोन की तरह इस देश के अभिलेख सुरक्षित रहे आये; क्योंकि एक तो यहाँ की जलवायु मरुस्थली थी, और दूसरे यहाँ मृतकों (बैल, मगर, बिल्ली और मानवों) के लिये बहुत मान्यता दी जाती थी। इसी कारण मिस्रियों ने आवश्यकतानुसार यह खोज निकाला कि निरर्थक "कलम के गूदे" (papyri) से पवित्र मगरों की लाशों को ठूँस-ठूँस कर भरने से उन्हें जीवित अवस्था का रूप देकर सुरक्षित रखा जा सकता है। इन्हीं पेपीरियों (papy ri) द्वारा ज्ञात होता है कि मिस्री ईसा से प्रायः ३५०० वर्ष पूर्व की अंकगणित में करोड़ों की संख्या का उल्लेख करते थे। इस तिथि की उनकी चित्रलिपि (hieroglyphics) में वर्णन है कि १,२०,००० मानव, ४००,००० बैल और १,४२२,००० बकरे कैदी बनाये गये। गणना के बाद उन्होंने दशमलवपद्धति का अनुसरण किया, पर वह स्थान-मान (place value) रहित थी। इसके पश्चात्, ईसा से १६५० वर्ष पूर्व की अंकगणित में गुणन भाग है। भिन्नों में $\frac{२}{३}$ को विशेष प्रतीक द्वारा प्ररूपित किया गया है, अन्य भिन्नों को $\frac{१}{न}$ सदृश रूप वाले भिन्नों के योग में ह्रासित किया गया है। प्रायः इसी समय की रिंड पेपिरस (Rhind papyrus) में $\frac{२}{९७} = \frac{१}{५६} + \frac{१}{६७९} + \frac{१}{७७६}$ अंकित है। आमिस (Ahmes) ने $\frac{२}{न}$ के सब भिन्नों को (जहाँ न का मान ५ से लेकर १०१ तक है) पूर्ववत् लिखा है। आगे (ईसा से सम्भवतः २००० वर्ष पूर्व के एक प्रश्न से) बीजगणित के उद्गम का आभास मिलता है, जो आजकल के प्रतीकों में $क^{२} + ख^{२} = १००$; $ख = \frac{३}{४}$ क को हल करने के समान है। मिस्री लोगों ने इसे हल करने के लिये कूट स्थिति की रीति (rule of false position) का उपयोग किया है, जो ईसा की प्रायः १५ वीं सदी तक उपयोग में आती रही है। उन्हें समानुपात (proportion) ज्ञान भी था, जो गणितीय विश्लेषण का एक मुख्य आधार है। प्रायः इसी समय उन्होंने परिधि और व्यास की सूक्ष्म निष्पत्ति को $\frac{२५६}{८१}$ और ३·१६ बतलाया है। यद्यपि इस देश में पैथेगोरस के साध्य ($५^{२} = ४^{२} + ३^{२}$) का कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता; तथापि उनके अवस्तरी रज्जुओं (rope stret chers) में ५, ४, ३ का अनुपात रहता था। व्यावहारिक मापों के विषय में कहा जाता है कि ईसा से प्रायः ३००० वर्ष पूर्व भी मिस्रवासी पर्याप्त उन्नति कर चुके थे। इसके कई उदाहरण हैं। एक तो यह कि नदी के चारों ओर की ७०० मील जगह में उनके जल प्रमापी (water gauges) एक सतह में थे। दूसरा यह कि उन्हें त्रिभुज का क्षेत्रफल तथा बेलन आदि के शुद्ध आयतन निकालना

ज्ञात था। इनके सिवाय एक और बात उल्लेखनीय है कि विश्व प्रसिद्ध ग्रेट पिरेमिड के अतिरिक्त एक और सबसे महान् पिरेमिड, मिस्र के किसी अज्ञात गणितज्ञ के मस्तिष्क में था, जिसकी खोज १९३० में मास्को पेपिरस (**Moscow papyrus**) के अनुवाद के पश्चात् हुई है। इस महान् गणितज्ञ ने उसमें एक सही सूत्र दिया है, जिसके द्वारा वर्ग आधार वाले स्तूप के छिन्नक का आयतन निकाला जा सकता है। सूत्र यह है : आयतन $= \frac{१}{३}$ उ (अ^{२} + अ ब + ब^{२}), जहाँ अ, ब, क्रमशः ऊर्ध्व तल तथा अधोतल के आधारों की भुजाओं के माप हैं, और उ उसकी ऊर्ध्वाधर ऊँचाई (**vertical height**) है। इसका समय लगभग ईसा से १८५० वर्ष पूर्व है। इस सूत्र में ग्रीक लोगों की निश्शेषण विधि' (**method of exhaustion**), और १७वीं सदी के केवेलियर (**Cavelieri**) की "अविभाज्यों की रीति" (**method of indivisibles**) निहित है। अपने लिये वह सीमा (**limit**) का सिद्धान्त है और बाद में अनुकल कलन (**integral calculus**)। इनका किंचित् और सामान्य रूप (**generalised form**) आर्किमिडीज़ ने ईसा से प्रायः ५०० वर्ष पूर्व बतलाया है। गणित को मिस्रवासी भी इस हद तक बढ़ाकर आगे न बढ़ सके।

मिस्र के इस गणितीय इतिहास के पश्चात् हम भारत न पहुँचकर पहिले भूमध्यसागर के रास्ते ग्रीस देश (यूनान) पहुँचते हैं, जो ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पूर्व के पश्चात् रेखा और शांकव गणित में अद्वितीय प्रगति करने के लिये प्रसिद्ध है। ग्रीस की गणित के इतिहास में ईसा से प्रायः ६५० वर्ष पूर्व हुए थेल्स तथा (ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पूर्व ? ५२७ वर्ष पूर्व ? उत्पन्न हुए) पैथेगोरस ने गणित को तर्क पर आधारित किया, और प्राकृतिक घटनाओं को अंक गणित द्वारा प्रदर्शित किया। पैथेगोरस के समय से प्रारम्भ हुई ग्रीस देश की प्रगति को देखकर यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि यह प्रगति पूर्वीय देशों के ज्ञान का आधार लेकर सम्भव हो सकी होगी। यह मान्यता है कि उसका सबसे महान् आविष्कार "समान आतति बल (**tension**) वाले धागों की लम्बाइयों के अंकगणितीय कुछ अनुपातों (**ratios**) पर संगीत-अंतरालों की निर्भरता" के विषय में था। उसके रैखिकीय साध्य से सभी परिचित हैं। इसी साध्य के द्वारा पैथेगोरस ने $\sqrt{२}$ की अपरिमेयता को बतलाया, और "भुजा" तथा "विकर्ण" संख्याओं की श्रेढि संरचना के विषय में नियम निकाला। इनके सिवाय पैथेगोरीय वर्गों ने वास्तविक मूल वाले वर्ग समीकारों का रैखिकीय हल निकाला, अनुपात का सिद्धान्त निकाला, पांच नियमित सांद्रों की रचना बतलाई, और दिये गये क्षेत्रफल की आकृति के तुल्य अन्य आकृतियाँ बनाकर बतलाईं। उनके द्वारा प्रणीत रूपक (**figurate**) संख्यायें आज की अंकगणित के लिए बड़ी सुझावपूर्ण सिद्ध हुईं। जैसे, त्रिभुजीय संख्याओं का प्रयोग एनपिडोक्लियन रसायनशास्त्र में करने पर यह सार निकलता है कि समस्त द्रव्य वास्तव में त्रिभुज हैं। पैथेगोरस के समय से अंक-ज्योतिष का आरम्भ होना भी माना जाता है। कालान्तर में इटली के एलिया नगर निवासी ज़ीनो (**Zeno**–४९५?–४३५? ईस्वी पूर्व) के चार असद्भासों (**paradoxes**) में गणितीय अनन्त की अवधारणा के परिष्कृत करने का प्रयास परिलक्षित होता है। इसके सिवाय यूडो (**Eudous**—ईसा से ४०८ पूर्व से ३५५ तक) ने अनुपात का सिद्धान्त निकालकर मिस्र के आयतन निकालने के सूत्रों को सिद्ध किया, तथा गणितीय विश्लेषण की वास्तविक संख्या पद्धति **system of real numbers**) की स्थापना की। सम्भवतः इसी सिद्धान्त के आधार पर निश्शेषण विधि और केवीकॅन्ड के बाद अनुकलकलन का उपयोग हुआ। कहा जाता है कि यूडोने भी पूर्व के देशों का भ्रमण किया था। यूक्लिड (ईसा से ३६५ वर्ष पूर्व से २७५ पूर्व) ने अंकगणितीय विभाजन पर आधारभूत साध्यों को सिद्ध किया। उसने रेखागणित को तर्क पद्धति पर बुना और अर्थमिति की

(arithmetica) को व्यवस्थित किया, तथा रैखिकीय काशिकी पर विवेचन दिया। इस तरह पैथेगोरस और यूक्लिड ने शांकव गणित को छोड़कर शेष प्राथमिक रेखागणित को ठोसरूप से सम्पूर्ण बना दिया। इनके पश्चात् आर्कमिडीज़ का नाम आता है, जो विश्व का दूसरा गणितीय भौतिकशास्त्री कहलाता है। यह गणितज्ञ ईसा से २८७ वर्ष पूर्व से २१२ वर्ष पूर्व तक रहा। इसने स्थैतिकी और उद्स्थैतिकी (hydrostatics) के गणितीयविज्ञानों की जड़ जमाई, अनुकल कलन का अनुमान लगाया और अपने नाम की समानकोणिक कुन्तल (equiangular spiral "$\rho = a\theta$") की स्पर्श रेखा-खींचकर चलन कलन (differential calculus) का स्थूल रूप में प्रयोग किया। इनके सिवाय, उसने विश्लेषण विधि का प्रयोग गोल, रम्भ, शंकु, गोलीय खंडों, परिभ्रमण से प्राप्त गोलज, अतिपरवलज (hyperboloid) आदि की शांकव गणना में किया। इनमें से कुछ को यदि आजकल के प्रतीकों में लिखा जाय तो अग्रलिखित को अनुकलित करना होगाः $\int_0^{\pi} \text{Sin}x\,dx$; $\int_0^{c} (ax + x^2)\,dx$.
इनके सिवाय इसने परवलयज (paraboloid) के खंड का क्षेत्रफल निकालते समय फल की रैखिकीय उपपत्ति दी, और उसी की अनन्त श्रेढि का योग, अभिलेख बद्ध इतिहास के अनुसार, सर्वप्रथम निकाला। वह श्रेढि है $\sum_0^{\infty} (४)^{-न}$

जिसमें इस तथ्य का उपयोग किया गया कि $\underset{न \to \infty}{\text{सीमा}} (४)^{-न} = ०$। इस प्रकार आज की गणित आर्कमिडीज़ के साथ उत्पन्न होकर उसी के साथ मृत होकर दो सहस्र वर्षों के पश्चात् देकार्ते (Descartes) और न्युटन द्वारा पुनर्जीवित की गई। इसके पश्चात्, (ईसा से १५० वर्ष पूर्व) हिपरकस (Hipparchus) ने ग्रहों की गतियों का रेखागणित द्वारा निरूपण किया। इसमें १५ वीं सदी में कापरनिकस और १६ वीं सदी में केपलर ने परिवर्धन किया। कहा जाता है कि हेरन (सन् २०० ईस्वी) ने त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने के लिये निम्नलिखित नियम दिया :

$$\triangle = [\,\text{शा}\,(\text{सा} - \text{का})\,(\text{सा} - \text{खा})\,(\text{सा} - \text{गा})\,]^{\frac{1}{2}}$$

पेप्पस (Pappus) ने २५० ईस्वी में तीन महत्वपूर्ण साध्य खोजे। उसने दीर्घवृत्तज (ellipsoid) आदि की नाभि (focus), नियता (directrix) के गुणों को सिद्ध किया और इस प्रकार विश्लेषणीय रेखागणित में शंकुच्छेदों के लिये साधारण द्विघात समीकार का आभास प्रकट किया। उसने प्रक्षेपी ज्यामिति का एक साध्य खोजा, और अनुकल कलन से (परिभ्रमण से प्राप्त न होनेवाले) सांद्रों की परिमा (आयतन) को निकालने के लिये साध्य खोजे। प्रायः इसी काल में डायोफेंटस (Diophantus) ने एकघातीय, दो और तीन अज्ञात वाले, समीकरणों को साधित किया।

ग्रीक गणित का तीव्र विकास प्रायः उस समय से देखा जाता है, जब कि ईसा से ४८० वर्ष पूर्व हुई मैरथान (Marathon) आदि की लड़ाइयों में इन लोगों ने फारस देश पर अधिकार जमाकर वहाँ की गणित सीखी। यह कहना कठिन है कि फारस को यह गणित ज्ञान भारत से प्राप्त हुआ या बेबीलोन, सुमेर और फैनीकिया (Phoenicia) से।

विश्व सभ्यता के प्राचीन केन्द्र भारत में (ईसा से प्रायः ३००० वर्ष पूर्व के) उच्च सभ्यता के चिह्न सिंधु नदी की घाटी में मिलते हैं। उस समय के भारतीय ईंट के मकान बनाते थे, शहर की बन्दिश करते थे और स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांस आदि धातुओं का उपयोग कर उच्च श्रेणी का जीवन व्यतीत करते थे।

मोहेनजो-दड़ो के लेखों तथा मुहरों को पूर्ण रूप से पढ़ा नहीं जा सका है। उनमें कई ऐसे चिह्न हैं, जो सम्भवतः बड़ी संख्याओं को दर्शाने के लिये अंकित किये गये होंगे, पर उनके वास्तविक मान का पता पाने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता। वेदों में भी सभ्यता की उच्चावस्था स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'ब्राह्मण साहित्य' (प्रायः २०००–१००० ई० पू०) में धार्मिक और दार्शनिक तत्व तो हैं ही, इनके अतिरिक्त उसमें अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित और ज्योतिर्विज्ञान की झलक भी दिखाई देती है।

व्याकरण तथा स्वर विद्या सम्बन्धी खोजों से प्रतीत होता है कि ब्राह्मी लिपि, ईसा से पूर्व परिपूर्ण की गई होगी, और सम्भवतः उसके पहिले ब्राह्मी संख्याओं का आविष्कार हुआ होगा। ब्राह्मण साहित्य काल में बीजगणित मुख्यतः रैखिकीय थी। किसी दिये गये वर्ग को दी गई भुजा वाले आयत में बदलने की रैखिकीय विधि जो शुल्ब (प्रायः ८००–५०० ई० पू०) में वर्णित की गई है, एक अज्ञात वाले एक घातीय समीकार को हल करने के समान है। यथा, $अय = स^{२}$, जहाँ य अज्ञात पद है। जब दिये गये क्षेत्र को किसी दूसरे अधिक या कम क्षेत्रफल वाले क्षेत्र में बदलना होता था, तब उस क्रिया में वर्ग समीकरण का उपयोग होता था। वैदिक आहुतियों की सबसे महत्वपूर्ण महावेदी, समद्विबाहु समलम्ब चतुर्भुज (trapezium) के आकार की थी, जिसका आधार ३०, सामने की भुजा २४ और ऊँचाई (लम्ब) ३६ एकक (units) थी। वेदी के क्षेत्र को म एकक से बढ़ाने के लिये अज्ञात भुजा क्ष मानने पर य का निम्नलिखित मान प्राप्त होता है :

$$३६ य \times \frac{(२४ य + ३० य)}{२} = ३६ \times \frac{२४ + ३०}{२} + म,$$

$$\text{या} \quad ९७२ य^{२} = ९७२ + म,$$

$$\text{या} \quad य = \pm\sqrt{१ + \frac{म}{९७२}}\ ।$$

यदि म को ९७२ (न – १) रखा जाय ताकि बढ़ी हुई वेदी का क्षेत्रफल, पूर्व क्षेत्र से 'न' गुना हो जाय, तो $क्ष = \sqrt{न}$ प्राप्त होता है। इस प्रकार के कुछ विशेष प्रकरण, शुल्ब में वर्णित हैं। न = १४ या $१४\frac{३}{७}$ वाले प्रकरण ब्राह्मण साहित्य में पाये जाते हैं। इसी में शिनेसित (बाज पक्षी के आकार की वेदी) का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिये [$क^{२} = १३\frac{८}{१२}$ = (सन्निकटतः) १४] वर्ग समीकरण का उपयोग किया गया है। इनके सिवाय, निम्नलिखित प्रकार के अनिर्धारित (undetermined) समीकरण भी वेदियों की रचना में उपयोग में लाये गये हैं :

$क^{२} + ख^{२} = ग^{२}$ (क, ख, ग तीनों अज्ञात हैं);

$क^{२} + अ^{२} = ग^{२}$ (क और ग अज्ञात हैं);

एवं, $\left.\begin{array}{l} अक + बख + सग + दघ = प \\ क + ख + ग + घ = फ \end{array}\right\}$, जहाँ क, ख, ग और घ अज्ञात हैं।

इसके बाद, एक ज्योतिष का छोटा सा ग्रंथ वेदांग ज्योतिष* महात्मा लगध द्वारा किसी स्वतंत्र ज्योतिष ग्रंथ के आधार पर यज्ञ की सुविधा के लिये संग्रहीत किया गया प्रतीत होता है। यह ग्रंथ सम्भवतः काश्मीर के श्रीनगर से भी उत्तर में, काबुल के अक्षांश के आसपास, कहीं रचित हुई ज्ञात होता है

* देखिये डा० गोरख प्रसाद द्वारा सम्पादित 'सरल विज्ञान सागर' पृष्ठ ४१०, (इलाहाबाद विज्ञान परिषद्), भाग १, अंक १–४, (१९३६)

वेदांग ज्योतिष का एक युग ५ सौर वर्ष का होता था, जिसमें ६० सौर मास, २ अधिमास, ६२ चांद्र मास और १८३० अहोरात्र या सावन दिन समझे जाते थे। एक युग में १२४ पक्ष और एक पक्ष में १५ तिथियाँ मानी गई थीं। इस ग्रंथ के अतिरिक्त त्रिलोक प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति और ज्योतिष करण्डक ग्रंथों में ग्रीकपूर्व जैन-ज्योतिष गणितीय विचार-धारा दृष्टिगत होती है।

प्रोफेसर वेबर (Weber) के कथनानुसार सूर्य प्रज्ञप्ति ग्रंथ, वेदांग ज्योतिष के समान केवल धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के लिये ही रचित नहीं हुआ, वरन् इसके द्वारा ज्योतिष की अनेक समस्याएँ सुलझाकर प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया गया।

ईसा से ४०० वर्ष पूर्व के पश्चात् हिन्दू गणित पुनरुद्धार हुआ। उस समय सूर्य सिद्धान्त और पैतामह सिद्धान्त लिखे गये। गणित दो भागों में विभक्त हुई, एक तो अंकगणित तथा बीजगणित और दूसरी ज्योतिष तथा क्षेत्रगणित। वैसे तो, बहुत पहिले से भारतीय गणना का आधार १० था। जब ग्रीक $१०^४$ तक और रोमन $१०^३$ तक के ऊपर की गणना जानते न थे, तब भारत में अनेक संकेतना स्थानों का ज्ञान था। ईसा से ५०० वर्ष पूर्व से ही शतकमान पर आधारित संख्याओं के नामों की श्रेणी को जारी रखने के प्रयत्न हो चुके थे। ईसा से १०० वर्ष पूर्व के ग्रंथ अनुयोग सूत्र में $(२)^{९६}$ तक की संख्या का उपयोग हो चुका था। इसमें स्पष्ट रूप से २ को आधार चुना गया था। जब स्थान-मान का विकास हुआ तब इकाई से लेकर दशमलव मान पर संख्या को लिखने के लिये संकेतना स्थान दिये गये।

शून्य प्रतीक❀ का उपयोग पिंगल ने (ईसा से २०० वर्ष पूर्व ?) अपने चौंदा सूत्र के छन्दों में किया है। ईसा के कुछ सदियों पश्चात् की (बक्षाली गाँव की खुदाई से प्राप्त) भोज पत्रों पर लिखित एक पोथी में भी अंक शैली का प्रयोग देखा गया है। इसमें गणना में शून्य का उपयोग हुआ है। शून्य प्रतीक सहित स्थान-मान संकेतना पद्धति, गणित के सभी आविष्कारकों द्वारा बुद्धि की प्रगति के लिये दिये गये अंशदान में उच्चतम कोटि की है। यह अभी तक अज्ञात है कि दशमलव स्थान-मान पद्धति का जन्मदाता कौन विद्वान्-विशेष अथवा ऋषि-मण्डल था। साहित्यक तथा पुरालेख-सम्बन्धी प्रमाणों से यह निश्चित किया गया है कि यह पद्धति २०० ई० पू० के लगभग भारतवर्ष में ज्ञात थी। इस नवीन पद्धति के प्रयोग का प्राचीनतम लिखित प्रलेख ५९४ ई० का गुर्जर का दान पत्र है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि सेन्ट्रल अमेरिका के माया लोगों की तिथिपत्री में भी शून्य आया है। ये २० को आधार लेकर कोई स्थान-मान पद्धति का उपयोग करते थे। यह माया गणना ईसा से २०० से लेकर ६०० वर्ष बाद की मानी गई है †

ईसा की पाँचवी सदी में जगत् प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्यभट पटना में हुए। इनके पहिले पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर और पैतामह नाम से ज्योतिष के पाँच सम्प्रदाय प्रचलित थे। रोमक सम्प्रदाय यूनानी

❀ भारतीय शून्य के आविष्कार के विस्तार के विषय में Encyclopaedia Britannica, vol. 23, p. 947, (1929) पर उल्लिखित लेख देखिये।

† स्थान-मान संकेतना के संबंध में न्युगेबाएर (Neugebauer) का अभिमत उल्लेखनीय है, "It seem to me rather plausible to explain the decimal place value notation as a modification of the sexagesimal place value notation with which the Hindus became familiar through Hellenistic astronomy."—The exact Sciences in Antiquity, Providence (1957), p. 189.

गणना शैली का द्योतक है। इनके ग्रंथ आर्यभटीय से ज्ञात होता है कि इन्होंने सब ग्रंथों का सार ग्रहणकर अपने समय के ज्योतिष ज्ञान को बढ़ाने में अभूतपूर्व कार्य किया। इन्होंने सूर्य तारों को स्थिर बतलाया, पृथ्वी की परिधि निश्चित की और सूर्य, चंद्र ग्रहण के कारणों का वैज्ञानिक ढंग से स्पष्टीकरण किया। इस ग्रंथ के गणित पाद अध्याय में अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित के बहुत से कठिन प्रश्नों को ३० श्लोकों में भर दिया गया है। उसमें उन्होंने क्षेत्रफल, घनफल, त्रिकोणमिति, छाया सम्बन्धी प्रश्न, वृत्त की जीवा और शरों का सम्बन्ध, दो राशियों का गुणनफल और अन्तर जान कर राशियों को अलग करने की रीति, वर्ग समीकरण का एक उदाहरण, त्रैराशिक, भिन्नों के गुणन भाग की रीति, कुछ कठिन समीकरणों को हल करने के नियम, दो ग्रहों का युतिकाल जानने का नियम, और कुट्टक नियमादि का कथन किया है। ज्या का वाचक शब्द साइन, ज्या की संस्कृत पर्याय 'शिंजनी' के रूपांतर का अपभ्रंश है।

सातवीं सदी* में गणित का प्रशंसनीय विकास ब्रह्मगुप्त द्वारा हुआ। २१ अध्याय के ग्रंथ ब्राह्मस्फुट के गणिताध्याय में इन्होंने विशेषतः व्यस्त त्रैराशिक, भाण्ड प्रतिभाण्ड, मिश्रक व्यवहार, ब्याज, श्रेणियाँ, छाया माप आदि में अंकगणित का प्रयोग किया, और कुट्टक गणित में ऋणात्मक संख्याओं के लिये नियम निकाले, अनिर्धृत (indeterminate) समीकरणों पर कार्य किया, और सूर्य घड़ी में त्रिकोणमिति का प्रयोग किया। अ क्ष^{२} + १ = य^{२}, (जिसमें क्ष और य अज्ञात है) जैसे अनिर्धृत समीकरणों का विवेचन भी ग्रंथकार ने किया। इस समीकरण का नाम भूल से पेलियन (Peleian) समीकरण पड़ गया है। यह द्विघातीय वर्ग रूपों और वर्ग क्षेत्रों के अंकगणितीय सिद्धान्तों का मूलभूत आधार है। इनके सिवाय क्षेत्र व्यवहार, वृत्तक्षेत्र गणित, खात व्यवहार, चिति व्यवहार, क्रकचिका व्यवहार, राशि, छाया व्यवहार आदि का विवेचन भी किया गया है।

---

* इस सदी में मुसलमानों की संस्कृति के सहसा उत्थान तथा १२ वीं सदी में उसके सहसा पतन के सम्बन्ध में इतिहास बड़ा रोचक है। सन् ६२२ में पैगम्बर मुहम्मद साहिब के अनुयायी अपनी यात्राओं पर हरे झंडे के नीचे संगठित होकर चल पड़े। सन् ६३५ में दमस्क (Damascus) पर विजय प्राप्त कर सन् ६३७ में जेरुसलम (यरूशलम) जीता गया। चार वर्ष पश्चात् सिकन्दरिया का पुस्तकालय नष्ट किया गया। मिस्र को अधिकार में लेकर ६४२ ईस्वी में फारस पर आधिपत्य जमाया गया। १०० वर्ष पश्चात् विजेतागण ७११ ईस्वी में स्पेन में पहुँचे, जहाँ उन्होंने सभ्यता को ८ शताब्दियों तक बढ़ाया। इसी काल में वे भारत की अंकगणित तथा ग्रीस की रेखागणित को यूरोप ले आये। पूर्व में अब्बासीद (Abbasid) खलीफाओं के आधिपत्य में बगदाद पूर्व की सभ्यता का केन्द्र ७५० से १२५८ ईस्वी तक रहा, और स्पेन में कारडोवा (Cordova) पश्चिम की बौद्धिक रानी (the intellectual queen of the west) बना। इस अन्तराल में विज्ञान के आदान-प्रदान के सम्बन्ध में Encyclopaedia Britannica में निम्नलिखित उल्लेख है—"The muslim civilization, particularly as represented at Baghdad, c 800. c 1000, developed a type of mathematics which combined the characteristic features of the Greek and Hindu treatment of the science. Eastern faith in astrology and skill in number met with Western faith in philosophy and skill in geometry, and the Baghdad scholars, absorbing each, produced text books in general algebra, elementary number, astronomy and trigonometry which, through the efforts of Latin translators, gave new life to mathematics in Europe"—vol. 15, p 84, (1929)

इसके पहिले कि हम दक्षिण में गणित की प्रगति महावीराचार्य के ग्रंथ से प्रदर्शित करें, एक और नवीन खोज हमें आकर्षित कर लेती है। महावीराचार्य के सम्भवतः पूर्वकालीन, सुप्रसिद्ध धवलाकार वीरसेनाचार्य ने ईसा की सम्भवतः द्वितीय सदी के उद्भट आचार्य श्री पुष्पदंत और भूतबलि द्वारा रचित षट्खंडागम ग्रंथों की धवला नामक टीका पूर्ण करने में अपना सारा जीवन अर्पित किया। यह ग्रंथमाला गत बीस वर्षों में ही डाक्टर हीरा लाल जैन प्रभृति विद्वानों द्वारा प्रकाश में लाई गई है। टीकाकार ने स्थान स्थान पर किन्हीं गणित ग्रंथों से, सूत्रों को उद्धृत किया है। डा० अवधेशनारायण सिंह द्वारा इस ग्रंथ के सांख्य गणित के अतिरिक्त गणित की नवीन निम्नलिखित खोजें प्रकाश में लाई गई हैं,† जिनका उपयोग जैन दर्शन के अध्ययन हेतु संभवतः ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में प्रचलित हो गया होगा। प्रथम तो बड़ी बड़ी संख्याओं का उपयोग जिनको व्यक्त करने के लिये प्रतीक संकेतना अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध है।‡ जैसे, २ की तीसरी वर्गित सम्वर्गित राशि वह है जो २५६ में उसीका २५६ बार गुणन करने पर प्राप्त होती है। दूसरे सलागागणन अथवा लघुगणक (logarithm) का बृहत् उपयोग, जिसके आविष्कारक १७ वीं सदी के 'जान नेपियर' एवं 'जुस्त बर्जी' माने जाते हैं। तीसरे, अनन्त राशियों का गणित, जिसके विकास के लिये १९ वीं सदी में हुए जार्ज कैंटर के प्रयत्न सुप्रसिद्ध हैं। जहाँ तक रेखागणित का सम्बन्ध है, यतिवृषभ (४०० ?, ६०० ? ईस्वी पश्चात्) की तिलोय पण्णत्ती में एवं वीरसेन की धवला टीका (डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित, पुस्तक ४) में सम्भवतः ईसा पूर्व के ग्रंथ अग्गायणिय, दिट्ठिवाद, परिकम्म, लोयविणिच्छय, लोय विभाग, लोगाइणि आदि में से उद्धृत गाथायें एवं उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। इन दो ग्रंथों के ऐतिहासिक महत्वपूर्ण प्रकरणों में से कुछ ये हैं : दृष्टिवाद से जम्बूद्वीप की परिधि का माप, उपमा प्रमाण, विविध क्षेत्रों का घनफल निकालने की विधियाँ; बाण, जीवा, धनुष पृष्ठ आदि में सम्बन्ध, धनुषक्षेत्र का क्षेत्रफल, सजातीय तथा समक्षेत्र घनफल वाली आकृतियों का रूपान्तर एवं उनकी भुजाओं के बीच सम्बन्ध आदि।

इस प्रकार धवलादि सिद्धान्त ग्रंथों में अलौकिक गणित का आधार लिया गया है, जिस पर अभी कोई ग्रंथ प्रकाश में नहीं आया है। लौकिक गणित के सम्बन्ध में सर्वप्रथम महावीराचार्य का यह गणित सारसंग्रह नामक ग्रंथ सन् १९१२ में सुप्रसिद्ध हुआ। महावीराचार्य का यह ९ अध्याय वाला ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसकी खोज ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत के सुदूर दक्षिण में भी उत्तर के विद्या केन्द्रों की तरह, विद्या के केन्द्र थे। इस सुदूर दक्षिण में, गणित के विज्ञान को बढ़ाने में उस समय प्रयत्न किया गया, जब कि उत्तरीय भारत में ब्रह्मगुप्त और भास्कर के समय के

---

† इनके विस्तृत विवरण के लिये निम्नलिखित लेख देखिये—

Singh, A. N., History of Mathematics in India from Jain Sources; The Jain Antiquary Vol. XV, No. II. (1949), pp. 46-53; Vol. XVI, No. II, (1950) pp. 54-69.

‡ देखिये—

(१) लक्ष्मीचंद्र जैन, तिलोयपण्णत्ती का गणित, प्रस्तावना लेख (जम्बूदीवपण्णत्तीसंगहो), शोलापुर (१९५८)।

(२) टोडरमल, अर्थ संदृष्टि (गोम्मटसार), गांधी हरि भाई देवकरण जैनग्रंथमाला, कलकत्ता (प्रकाशन वर्ष उल्लिखित नहीं)

बीच श्रीधराचार्य को छोड़कर कोई प्रकांड गणितज्ञ न हुआ। महावीराचार्य ने अपने समय के नृपतुंग अमोघवर्ष के आश्रय में रहकर, पूर्ववर्ती गणितज्ञों के कार्य में कुछ सुधार किया, नवीन प्रश्न दिये, दीर्घवृत्त (ellipse) का क्षेत्रफल निकाला तथा मूलबद्ध और द्विघातीय समीकरण आदि में सुंदर ढंग से पहुँच की। इनके ग्रन्थ में ब्रह्मदत्त के कुट्टक से एक और अध्याय अधिक है, पर इसके अध्यायों के विषय एकसे नहीं हैं। सबसे पहिले, इस ग्रंथ की ४९ वीं गाथा पढ़ने से मालूम होता है कि महावीराचार्य ने शून्य के विषय में सबसे पहिले भाग करने की क्रिया दर्शाने का साहसपूर्ण प्रयत्न किया। किसी संख्या में शून्य द्वारा विभाजन के लिए, उन्होंने लिखा कि संख्या शून्य द्वारा विभाजित होने पर बदलती नहीं है। जिस दृष्टिकोण को लेकर यह लिखा गया वह इसलिए ठीक है कि जब कुछ वस्तुओं को लेकर उन्हें कुछ व्यक्तियों में बाँटा जाय तो वे वस्तुएँ विभाजित हो जावेंगी। जब उन्हें शून्य व्यक्तियों में वितरित करना हो, अर्थात् बाँटना हो तो वस्तुएँ ज्यों की त्यों बच रहेंगी। पर, गणितीय विश्लेषण के दृष्टिकोण से

$$\text{सीमा}_{\text{न}\to 0} \frac{\text{क}}{\text{न}} = \infty$$

होती है जहां क एक परिमित (finite) संख्या है।

इसके पश्चात्, गाथा ६३ से लेकर ६८ तक संकेतनात्मक स्थानों के नाम दिये गये हैं। उनके पहिले १९ वें स्थान तक संख्या की गणना के नाम दिये जा चुके थे। उन्होंने २४ स्थान तक नाम दिये जिसमें २४ वें स्थान का नाम महाक्षोभ लिखा है। ये २४ स्थान, सम्भवतः २४ तीर्थकरों की संख्या के आधार पर दिये गये होंगे। इसी तरह रत्न शब्द को "तीन" दर्शाने के लिए उपयोग किया गया, जबकि गणितज्ञों ने उसका उपयोग "पांच" दर्शाने के लिये किया। जैन दर्शन में सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र को रत्नत्रय कहा गया है। इसी प्रकार तत्व, पन्नग, भय, कर्म आदि कई शब्दों का उपयोग जैन दर्शन के आधार पर संख्यायें दर्शाने के लिये किया गया है। बड़ी संख्या को दर्शाने के लिए ग्रन्थकार ने स्थानार्हों का उपयोग किया है। जैसे, ३०२१ लिखने के लिए चंद्र, अक्षि, आकाश, अग्नि लिखा है।

ग्रंथकार ने भाग देने की एक वर्तमान विधि का कथन किया है। इस सुविभाजनक विधि से उभयनिष्ठ गुणनखंडों को हटाकर विभाजन किया जाता है। किसी भी भिन्न को इकाई भिन्नों की किसी संख्या के योग द्वारा व्यक्त करने के लिए कुछ नियम भी दिये गये हैं। ये नियम सर्वथा मौलिक हैं। मिश्रक व्यवहार में भी दो नये प्रकार के प्रश्नों को हल करने के लिए नियम दिये गये हैं। ब्याज निकालने के प्रश्न में गाथा (३८) में दिये गये सूत्र से पता चलता है कि महावीराचार्य को निम्नलिखित सर्वसमिका (identity) ज्ञात थी :

$$\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \frac{\text{स}}{\text{द}} = \frac{\text{इ}}{\text{फ}} = \cdots\cdots = \frac{\text{अ}+\text{स}+\text{इ}+\ldots}{\text{ब}+\text{द}+\text{फ}+\ldots}$$ साथही, $(\text{अ}+\text{ब})^3 = \text{अ}^3 + ३\text{अ}^2\text{ब} + ३\text{ब}^2\text{अ} + \text{ब}^3$, द्वारा प्रदर्शित सूत्र उनके पूर्ववर्ती गणितज्ञों द्वारा दिया गया पर महावीर ने इस सूत्र का साधारण रूप बनाकर प्रस्तुत किया, जिसके लिए नियम भी बतलाये गये हैं—

$$(\text{अ}+\text{ब}+\text{स}+\text{द}+\ldots\ldots)^3 = \text{अ}^3 + ३\text{अ}^2(\text{ब}+\text{स}+\text{द}+\ldots\ldots$$
$$+ ३\text{अ}(\text{ब}+\text{स}+\text{द}+\ldots\ldots) + (\text{ब}+\text{स}+\text{द}+\ldots\ldots)^3,$$ इत्यादि।

ग्रंथकार ने कूट स्थिति द्वारा भी अध्याय ३ तथा ४ के कई प्रश्न हल किये हैं। कूट स्थिति के नियम का उपयोग बीजगणित के विकास की पूर्वावस्था को दर्शाता है, जबकि अज्ञात के लिये कोई प्रतीक न होता था। भारत में यह नियम केवल अंकगणित में उपयोग में लाया गया, क्योंकि बीजगणित पहिले से

ही पर्याप्त प्रगति कर चुकी थी। बख्शाली हस्तलिपि में इसे यदच्छ, यौंछा या कामिका के नाम से अभिधानित किया गया है।

महावीर के बीजगणित तथा काल्पनिक राशि * के विषयमें उनकी प्रतिभा का परिचय देने के सम्बन्ध में ई. टी. बेल की अभ्युक्ति है—

"The rule of signs became common in India after their restatement by Mahavira in the ninth century.... The early history of compplex numbers is much like that of negatives, a record of blind manipulations, unrelieved by any serious attempt at interpretation or understanding. The first clear recognition of imaginaries was Mahavira's extremely intelligent remark in the ninth century that, in the nature of things, a negative number has no square root. He had mathematical insight enough to leave the matter there, and not to proceed to meaningless manipulations of unintelligible symbols." †

इसके अतिरिक्त ग्रंथकार ने व्यापकीकृत (generallized) पद्धति वाले एकघातीय समीकरणों को हल करने के नियम दिये हैं, और अनेक अज्ञात वाले युगपत् द्विघात समीकरणों को हल किया है। उन्हें ज्ञात था कि वर्ग समीकरण के दो मूल होते हैं। ‡

जहाँ डाओफेन्टस ने म, न भुजाएँ लेकर समकोण त्रिभुज बनाया, वहाँ महावीर ने म, न भुजाएँ लेकर आयत की रचना की है। अध्याय ७ की ९५½, ९७½, ११२½ वीं गाथाओं में महावीर ने दिये गये कर्ण (अ) को लेकर सभी सम्भव समकोणों को प्राप्त करने के लिये, अर्थात् $क^{२} + ख^{२} = अ^{२}$ को लेकर हल करने के लिये तीन नियम दिये हैं। प्रथम दो नियम एक दृष्टि से ठीक नहीं हैं, क्योंकि $\sqrt{अ^{२} - प^{४}}$ या $\sqrt{अ^{२} - प^{२}}$ परिमेय (rational) तब तक नहीं हो सकते, जब तक कि प को ठीक तरह न चुना जाय। तीसरा नियम बड़े महत्व का है। यह रीति, बाद में यूरोप में, पीज़े (Pisa) के लेनर्डो फीबोनाट्चि (Leonardo Fibonacci) ने १२०२ ईस्वी में फिर से खोजी गई। इस विधि का उद्गम शुल्व सूत्रों में है।

ब्रह्मगुप्त और महावीर दोनों ने चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये निम्नलिखित सूत्र दिया है:— $\sqrt{(सा - का)(सा - खा)(सा - गा)(सा - घा)}$ जहां सा, अर्धपरिमाप है और का, खा, गा, घा भुजाओं के माप हैं। पर यह सूत्र केवल चक्रीय चतुर्भुजों के लिए ठीक उतरता है। इसी प्रकार, विषम त्रिभुज के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में नियम दिये गये हैं।

---

* देखिये, मूल गाथा ५२, प्रथम अध्याय।

† Development of Mathematics,pp. 173,175 (1945)

‡ उपर्युक्त वर्णन से कहा जा सकता है कि भारतीयों ने बीजगणित के विज्ञान को दो मुख्य भागों में विभक्त किया। एक भाग तो बीज (विश्लेषण analysis) का विवेचन करता है, और दूसरा भाग ऐसे विषयों का जो बीज के लिये आवश्यक हैं। वे विषय, चिह्नों के नियम, शून्य और अनन्त की अंकगणित, अज्ञातों के साथ क्रियाएँ, करणी, कुट्टक और पेलियन समीकरण (Pellian equation) हैं।

महावीराचार्य और ब्रह्मगुप्त आदि के प्रश्नों तथा अन्य प्रकरणों की भिन्नता के सम्बन्ध में डेविड यूजेन स्मिथ का निम्नलिखित वक्तव्य द्रष्टव्य है :

"......For example, all of these writers treat of the areas of polygons, but Mahāvirācārya is the only one to make any point of those that are reentrant. All of them touch upon area of a segment of a circle, but all give different rules. The so called janya operation is akin to work found in Brahmagupta and yet none of the problems is the same. The shadow problems, primitive cases of trigonometry and gnomonics, suggest a similarity among these three great writers, and yet those of Mahāvīrācārya are much better than the one to be found in either Brahmgupta or Bhasker, and no question is duplicated."*

महावीराचार्य द्वारा गणितग्रंथ के सिवाय 'ज्योतिष पटल' ग्रंथ भी रचित किए जाने की सम्भावना "भारतीय ज्योतिष"† के लेखक पं० नेमिचंद्र शास्त्री ने प्रकट की है। अभी तक इसके लिये पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं हो सके हैं।

गणित इतिहास का उपर्युक्त सामान्य अवलोकन हमने मुख्यतः ई. टी. बेल के "Development of Mathematics", और विभूतिभूषण दत्त तथा अवधेशनारायण सिंह के, "History of Hindu Mathematics" नामक ग्रंथों का आधार लेकर दिया है। चीन के सम्बन्ध में अभी हमें यथेष्ट सामग्री नहीं मिल सकी है।

गणित इतिहास का विशिष्ट अवलोकन

अब हम भारतीय गणित इतिहास के अंधतम काल में प्रवेश करने का प्रयत्न करेंगे। इस काल में, विशेषकर यूनान और भारत में सम्भवतः बेबिलन, मिस्र और भारत की प्राचीन मृतप्रायः गणित में अकस्मात् गति आई। गणित द्वारा अलौकिकीय विषयों को बांधने के अभूतपूर्व प्रयास होने लगे। इस प्रयास के चिह्न यूनान में मुख्यतः पिथेगोरस के वर्गों में और विशेष रूप से भारत में तीर्थंकर महावीर के तीर्थ में परिलक्षित किए गये हैं।‡ आत्मा को सत्य की ओर आकर्षित करने के लिए केवल इन्हीं वर्गों में दर्शन, धर्म की धाराओं में गणित का प्रयोग अद्वितीय है। यह निश्चित है कि इस काल में विश्व की प्राचीन गणित में इस प्रयोजन से बीज बोया गया, कि बीजगणित के द्वारा प्रस्फुटित पारमार्थिक बोध, उपादेय में एकाग्रता की सिद्धि दे सके। एक ओर यूनान में पिथेगोरस द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के साथ ही साथ संख्या सिद्धान्त से पुष्ट दर्शन जन्म मरण के चक्र

---

* Introduction to English Translation & Notes of गणितसारसंग्रह by M. Rangacharya, (1912).

† भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

‡ चीन में तत्सम्बन्धित प्रयासों की खोज के लिये अभी हमें उपयुक्त सामग्री प्राप्त नहीं हुई है। फिर भी, जो कुछ हमें मिल सका है उसे अंत में प्रस्तुत किया है।

से विमुक्त होने का साधन प्रतीत होता है, वहां भारत में "सुखी रहें सब जीव जगत के" जैसी भावनाओं से प्रेरित तत्वों के सामान्यकरण की सीमा

"खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मेत्ती मे सव्व भूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि॥"

में परिलक्षित होकर राशि सिद्धान्त की प्रयुक्ति से अनन्तत्व को प्राप्त हुई दिखाई देती है। हमारा यह संकेत है कि यूनान और भारत के गणित की तुलना का उक्त आधार सम्भवतः उपयोगी सिद्ध होगा। इस तुलना का अभिप्राय किसी देश की महानता आदि दिखाने का नहीं है, वरन् यह बतलाने का है कि सत्य और अहिंसा के तत्व विश्व के गुरुता केन्द्र को शांति के प्रांगण में खींचकर ले जाते हैं, और इस खिंचाव में जो आदान प्रदान होता है वहां सापेक्षता कृत परिवाद विश्वबंधुत्व के अंचल में विलीन हो जाते हैं। यही कारण है कि ऐसे समय में उक्त तत्वों से अभिप्रेरित खोजों के इतिहास को महत्व नहीं दिया जाता, जिससे इतिहास काल का मौन और अंध रहना स्वभाविक प्रतीत होता है।

पुनर्जागरण के इतिहास के तत्वों की खोज करने के लिए हम पिथेगोरस का भ्रमण पथ अपनावेंगे। इस भ्रमण पथ के विषय में अभ्युक्ति प्रसिद्ध है कि—

"Like many others of the sages in that Kingdom (Egypt), he was carried captive to Babylon, where he conversed with the Persian and Chaldean Magi; and travelled as far as India, and visited the Gymnosophists." *

तदनुसार हम सर्व प्रथम मिस्र देश के वर्द्धमान महावीर कालीन पुनर्जागरण के इतिहास पर प्रकाश डालेंगे। थेलीज़ (६४० ई. पू.) और पिथेगोरस, दोनों का भ्रमण मिस्र में सेइटिक युग (**Saitic Period**) ६६३–५२५ ईस्वी पूर्व में हुआ होगा। इस समय मिस्र में कूफू (**Khufu**) कालीन सिद्धान्तों की जो पुनर्जागृति हुई वह (क्षितिज में उदय होने वाले 'अज्ञान अंधकार विनाशक' सूर्य—**Horus em akhet** के परम्परागत प्रतीक) गीज़ा (**Giza**) के स्फिंक्स (**Sphinx**) से सहसम्बन्धित थी। कूफू के सम्बन्ध में नवीन मत यह है कि इस पराक्रमी नृप ने ई. पूर्व २६०० के लगभग बलि प्रथा का अंत कर जनता क हित में उन्हें विभिन्न कार्यों में संलग्न किया था। मध्यपूर्व की प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं वाले देशों में स्फिंक्स की विभिन्न मुद्राएं रूढ़ि रूप से पूजा की पात्र रही हैं। जिसके मुख को छोड़ कर शेष अंग सिंह का है ऐसे स्फिंक्स के मिस्री नाम क्रमशः समस्तावतारों में सूर्य (**Horem-akhet-Kheperi-Ra-Atum 1420–1441 B. C.**), जीवित मूर्ति (**Seshepankh**), सिंह (**Sinuhe**), आदि रहे हैं। इस स्फिंक्स मूर्ति में मानव वदन देकर, इतिहासकारों के मतानुसार, सिंह के आतङ्क में बुद्धि, शक्ति और दया का सम्मिश्रण किया गया है। टालेमीय (**Ptolemaic**) कालीन लेख में इस मूर्ति को तीन मुकुट युक्त बतलाकर मानों तीनों लोकों के नाथ की उपाधि से विभूषित किया है **"And Horus of Edfu transformed himself into lion which had the face of a man, and which was crowned with the Triple Crown (¹)."**† सम्भवतः २६ वे राजवंश काल (ईस्वी पूर्व ५८८–५६९ ?) की महत्वपूर्ण इन्वेन्टरी स्टीले (**Inventory Stela**) में अंकित लेख

* Encyclopedia Americana, vol. 23, p. 47, (1944)
† Salem Hossan : The sphinx, p, 80, Cairo (1949)

अहिंसा की प्रवर्तना के संवाद को प्रकाश में लाता हुआ स्फिंक्स की कहानी में वर्द्धमान महावीर की जीव दया की सदृशता प्रकट करता प्रतीत होता है :

"......The plans of the Image of Hor-em-akhet were brought in order to bring to revision the sayings of the disposition of the Image of the very Redoubtadle............He came to make a tour, in order to see the thunderbolt, which stands in the Place of the Sycamore, so named because of a great sycamore, whose branches were struck when the Lord of Heaven descended upon the place of Hor-em-akhet, and also this image retracing the erasure according to the above mentioned disposition, which is written......of all the animals killed at Rostaw. It is a table for the vases full of these animals which, except for the thighs, were eaten near these 7 gods, demanding......(The God gave) the thought in his heart, of a written decree on the side of this Sphinx, in an hour of the night (¹). The figure of this God, being cut in stone, is solid, and will exist to eternity, having always its face regarding the orient."*

उपर्युक्त लेख का मुख्य भाग पवित्र मूर्तियों एवं प्रतीकों के प्ररूपण से पूर्ण है जो कूफू द्वारा प्राप्त हुई मानी जाती हैं। निम्नतम कोटि के जीवों के प्रति मिस्र में प्रचलित दया का उल्लेख आर्चबिशप व्हेतली ने किया है, "In Egypt there are hospitals for superannuated cats, and the most loathsome insects are regarded with tenderness;...... ," तथा वहाँ मांसभक्षण निषेध एवं ब्रह्मचर्य पूजा के महत्वपूर्ण लक्षण माने जाते हैं, "Chastity, abstinence from animal food, ablutions, long and mysterious ceremonies of preparations of initiation, were the most prominent features of worship........."†

कूफू द्वारा निर्मित महास्तूप के स्फिंक्स का स्थल सेइटिक काल (Saitic Period) में जीव दया की प्रेरक पशु पूजा का केन्द्र रहा है। इसकी पुष्टि, सलीम हसन के शब्दों में यह है, "At the time when this stela was inscribed, there was a great revival of the worship of the Apis bull at Memphis, and that animal may also have been venerated in the Giza district at least during the Saitic Period and later............"

इसके प्रायः ३०० वर्ष उपरान्त का इतिहास अंधकारमय है। यहां "इतिहास पिता" हिरॉडोटस भी मौन है। २०० ई. पू. से लेकर २०० ई. प. तक का काल हेलेनीय (Hellenism) युग है। इस समय सिकंदरिया यूनानी कला और विज्ञान का केन्द्र रहता है। फलित ज्योतिष का उदय होता है।

---

* The Sphinx, pp. 222-224, (1949),

† W. E. H. Lecky, History of European Morals, Vol. I., pp 289, 325 (1899).

यूनानी विज्ञान का उच्चतम विकास होता है, पर अंकगणित और ज्योतिष (astronomy) वही आदिकालीन रहते हैं।

मिस्र में प्रचलित अंकगणित से यूनानियों ने क्या सीखा ? इस प्रश्न पर वाएर्डेन का मत है कि यूनानियों ने मिस्र की गुणन विधि तथा भिन्नों का कलन सीखा होगा। इस प्रकार के कलन को उच्च बीजगणित के विकसित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। यूनानियों ने ज्यामिति को भी स्वतंत्र रूप से विकसित किया। मिस्र की ज्यामिति के कुछ फल अवश्य ही प्रशंसनीय रहे हों, पर यूनानियों के लिए वह केवल प्रयुक्त अंकगणित ही थी। रोमन युग में भी, जब कि फलित ज्योतिष का विकास हुआ, मिस्र की गणित ज्योतिष यूनान और बेबिलन की गणित ज्योतिष से बहुत पीछे रही।

यहां मिस्र और भारत की अभिलेखबद्ध सामग्री पर दृष्टिपात करना कहां तक उपयोगी सिद्ध होगा, नहीं कहा जा सकता :

(१) न केवल मास्को पेपायरस में, वरन् रिंड पेपायरस (सम्भवतः ईसा से १७०० वर्ष पूर्व) में भी परिधि और व्यास के अनुपात (π) का मान $\left(\frac{१६}{९}\right)^{२}$ अथवा ३·१६०५......माना गया है।*

ठीक यही मान नेमिचंद्राचार्य† ने इस प्रकार उल्लिखित किया है,

"यदि किसी वृत्त की त्रिज्या त्र और उसके समाई किसी वर्ग की भुजा भ हो,

$$\text{तो } त्र = \frac{९}{१६} \text{ भ होता है}$$"‡

π का एक दूसरा मान $\sqrt{१०}$ है, जो दशमलव के दो अंकों तक इसी रूप में प्राप्त होता है। इसे यति वृषभ ने तिलोय पण्णत्ती में दृष्टिवाद से अवतरित उल्लिखित किया है। ✪

(२) समलम्ब चतुर्भुज के क्षेत्रफल निकालने के सूत्रों का उपयोग तिलोय पण्णत्ती की गाथाओं, १–१६५, १८१ आदि में हुआ है। उपरोक्त सूत्रों से अवतरित सूत्र का उपयोग मिस्र के यंत्रियों ने चतुर्भुज का स्थूल क्षेत्रफल निकालने के लिए किया। यह सूत्र एडफू के सूर्य मंदिर में (सम्भवतः ईसा से १०० वर्ष पूर्व का) प्राप्त हुआ है। ×

(३) मिस्र में π का एक दूसरा मान बीजों की राशियों अथवा उनसे भरी जाने वाली वरिमाओं के माप से परिगणित परिधि और व्यास का अनुपात (ratio) के रूप में ३·२ प्राप्त होता है। + व्यास को यदि इकाई लिया जाय तो वीरसेनाचार्य द्वारा उल्लिखित सूत्र "व्यासं षोडश गुणितं......" से π का मान $३\frac{१६}{११३}$ प्राप्त होता है। ÷

(४) रज्जु (Rope) जिनागम के विविध विषयों का निरूपण करता है। यह आयाम की एक विश्व इकाई है जिसका सम्बन्ध सूच्यंगुल, द्वीप समुद्रों की संख्या, आदि से स्थापित किया है। ‡ केन्टर के

---

* J.L. Coolidge : A History of Geometrical Methods, p. 11, (1940).

† त्रिलोक सार, गाथा १८।

‡ विभूति भूषण दत्त, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, किरण २, पृ० ३४।

✪ ति. प. ४-५०, ५७।

× षट्खंडागम, पुस्तक ४, गाथा १, ३ आदि।

+T. Health, Greek Mathematics, vol. I., p. 125, (1921).

÷ षट्खंडागम, पु. ४, पृ. ४०, गाथा १४।

‡ लक्ष्मीचंद्र जैन, तिलोय पण्णत्ती का गणित, सोलापुर, पृ० ९९-१०१, (१९५८)।

अनुसार, मिस्र के यंत्री, पिथेगोरस के साध्य का उपयोग रज्जु के द्वारा करते थे, और वे रज्जु बांधने या खींचने वाले कहलाते थे। वाण्डेन का मत है कि केन्टर का यह कथन कि ये लोग ३: ४: ५ वाले रज्जु का उपयोग करते थे, और उन्हें पिथेगोरस का साध्य ज्ञात था, सही नहीं है। इतना अवश्य है कि पिरेमिड आदि के निर्माण में मिस्री बहुत शुद्ध रूप से समकोण बनाते थे। *

(५) मिस्र में द्विगुणित करने का परिकलन (duplatio) और अर्द्धच्छेद प्रक्रिया (mediatio) प्राचीन काल से प्रचलित थी। † यही यूनान में नीओपिथेगोरियन वर्ग ने उपयोग में उतारा, और यही हम षट्खंडागम‡ जैसे ग्रंथों में बिखरे हुए पाते हैं। भिन्नों के परिगणन मिस्र के इन पेपायरसों में तथा धवला टीका में विस्तृत रूप में देखने मिलता है। इनके सिवाय 'ह' (aha) परिकलन राशि कलन की परम्परा को सूचित करते हैं। कूट (false) स्थिति के मिस्री प्रयोग महावीराचार्य के गणितसार संग्रह में देखने में आये हैं।

(६) वर्ग आधार वाले स्तूप (और सम्भवतः उसके समच्छिन्नकों) के घनफल निकालने में मिस्र में शुद्ध और प्रसिद्ध सूत्रों का उल्लेख मिलता है। ×

यहां भारत में वीरसेन द्वारा युक्ति बल से सिद्ध किया गया वर्ग आधार वाले लोकाकाश का चित्रण, उसके तथा वातवलय की परतों के घनफल का कलन, आदि हमें मिस्र के स्तूपों के वास्तविक भेद को जानने के लिए प्रेरित करते हैं। कूफू द्वारा निर्मित कराया गया महास्तूप मेधावी वैज्ञानिकों के अधीक्षण में धर्म, गणित, ज्योतिष तथा अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं के संयुक्त संस्कार के फल स्वरूप निर्मित किया गया होगा। हिरॉडोटस के अनुसार मिस्र वासी स्तूप आकार को जीवन का प्रकार रूप (emblem) मानते थे। स्तूप का विस्तृत आधार हमारी वर्तमान दशा के अस्तित्व का प्रारम्भ एवं उसका बिन्दु में अवसान, (सांसारिक) अस्तित्व का अन्त माना जाता था। हो सकता है कि इसी कारण उन्होंने अपनी समाधियों में इस आकृति का उपयोग किया हो। + ईसा से प्रायः ४८४ वर्ष पूर्व हुए हिरॉडोटस की उक्त अभ्युक्ति की पुष्टि मेम्फिस के प्रायः उत्तर में स्थित पिरेमिड युग से पूर्व के मंदिर की परम्परा द्वारा होती है। इस मंदिर में सबसे पवित्र 'पिरेमिड के आकार का' एक पत्थर था। यह विश्वास किया जाता था कि यह पत्थर सूर्य (अज्ञान अंधकार विनाशक) भगवान् को फीनिक्स (Gr. Phoinix) पक्षी के रूप में प्रकट होने में आधार रूप था। ※ प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार यह पक्षी ५०० या ६०० वर्ष जीवित रहने के पश्चात् अपनी चिता बनाकर स्वयं के पंखों से सुलगाता है, और अपनी ही भस्म में से निकल कर उड़ जाता है। इस प्रकार वह अमरता का प्रतीक, अथवा सर्वोत्कृष्ट, सम्पूर्ण रूप (paragon) भी माना जाता है। यह विवरण हमें कर्म सिद्धान्त की मान्यता का प्रारूप प्रतीत होता है, जहां कर्म ईंधन को तपकी ज्वालाओं में विदग्ध कर मुक्ति या कैवल्य प्राप्त किया जाता है।

हिरॉडोटस ने स्तूप के विस्तृत आधार को हमारी वर्तमानदशा के अस्तित्व का प्रारम्भ बतलाया है। चार महान भुजाएँ संसारी जीवन का प्ररूपण करती हैं जो सम्भवतः पिथेगोरस का Tetractys है और जैन मान्यता का चतुर्गति चक्र (चतुर्चंक्रमण) है। इस दशा का बिन्दु रूप में प्रकट होना (और सांसारिक)

---

* B. L. van der Waerden, Science Awakening, Holland, p. 6, Eng. trans. (1945).

† Ibid, p. 18,

‡ षट्खंडागम, पु० ५, गणित प्रस्तावना।

× B. L. Waerden, Science Awakening, pp. 34,35.

\+ The Encyclopedia Americana, p. 40, vol. 23, (1944).

※ I. E. S. Edwards, The Pyramids of Egypt, (Pelican), p. 21, (1947).

अस्तित्व का अंत माना जाना, जैन मान्यता की पंचम गति, मोक्ष से समन्वय स्थापित करना प्रतीत होता है। यह चतु चंक्रमण स्वस्तिक के अर्थ को भी स्तूप की भुजा प्ररूपणा में समन्वित करना दृष्टिगत होता है।

कर्म सिद्धान्त की मान्यता की सदृशता कुछ अंशों में हमें निम्नलिखित उद्धरणों में भी दृष्टिगत होती है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ॥*

पुनः यज्ञ के इस निर्वचन को लेकर यह कथन है—

गत सङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थित चेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥†

इसी अभिप्राय को निम्नलिखित श्लोक में निर्दर्शित किया है—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वं कर्माणि भस्म सात्कुरुते यथा ॥‡

पिरेमिड में स्थित अन्य वस्तुओं के नाम धार्मिक महत्ता से ओतप्रोत थे। समाधि का नाम "अनन्तत्व का दुर्ग" था, तथा साथ में रखी जानेवाली नाव सम्भवतः संसारसागर से पार ले जाने की प्रतीक रूप थी। जो कुछ हो, इतना अवश्य है, कि मृत्यु के उपरांत आनेवाली घटनाओं की आशंका में इसी जीवन के अंतराल में पूरी तैयारियाँ की जाती थीं, सम्भवतः न केवल राजा के लिए, वरन् राज्यसत्ताद्वारा इस स्तूप प्रतीक प्ररूपणा के सहारे समस्त बुद्धि जीवी वर्ग के लिये भी। सबसे प्राचीन हीलिओपोलिस के मंदिर के पिरेमिड प्रतीक को सबसे बृहत्‌रूप में स्थापित करने का श्रेय अहिंसाके प्रबल समर्थक कूफू को ही है।

इस प्रकार बने हुए स्तूपों को मिस्री में मेर m (e) r कहा जाता है, जिसका निर्वचन 'आरोहण स्थल' (place of ascension) किया जाता है। यह निर्वचन यद्यपि भाषा विज्ञान विषयक नियमों के विरुद्ध नहीं है, तथापि संशयात्मक है। फिर भी, पिरेमिड ग्रंथों (texts) में इस प्रकार का उल्लेख है कि "उस (राजा) के लिये स्वर्ग सोपान डाली गई है ताकि वह स्वर्गारोहण कर सके।"() यह विश्वास न केवल प्राचीन मिस्र में ही प्रचलित था, वरन् मेसोपोटेमिया, एसिरिया और बेबिलन में भी प्रचलित था जहाँ आठ मंजिलों की इमारतें सम्भवतः इसी हेतु निर्मित की गई थीं। इनका नाम ज़िगुरात था और सिपार (Sippar) के ऐसे भवन का नाम 'उज्ज्वल स्वर्ग का सोपान भवन' था। इन स्तूपों का अन्य प्रचलित पिरेमिड है, जो यूनानी भाषा के पिरेमिस शब्द से उत्पन्न हुआ है। मिस्री गणितीय ग्रन्थ के अनुसार सम्भवतः यह एक ज्यामितीय पद है, जिसका अर्थ, "वह जो अस (us) से (सीधा) ऊपर जाता है" बिलकुल अस्पष्ट, किन्तु पिरेमिड (स्तूप) के उत्सेध का द्योतक है। हम अभी नहीं कह सकते कि तिलोयपण्णत्ती में वर्णित समवशरण की विधियों में निर्मित थूह क्या इन्हीं से सह-सम्बन्धित हैं?

---

* श्रीमद्भगवद् गीता ४–२४

† वही, ४–२३

‡ वही, ४–३७

() The Pyramids of Egypt, pp. 236, 237.

यूनानी गणित के बीजीय तत्वों सम्बन्ध, आजकल बेबिलन की बीज गणित से जोड़ा जाता है। इस प्रकार ओ. न्युगेबाएर (Neugebauer), ओ. बेकेर (Becker), राइडेमाइस्टर (Reidemeister) प्रभृति विद्वानों ने यह देखकर कि बीजगणित डायोफेन्टस से प्रारम्भ न होकर प्रायः २००० वर्ष पूर्व मेसोपोटेमिया से प्रारम्भ होती है, यह भी संभावना व्यक्त की है कि पिथेगोरस के अर्थमितिकी सिद्धान्त को बेबिलन का अर्थमितिकी सिद्धांत कहना उचित होगा।

इसी प्रकार बी. एल. वाण्डेंन ने भी निम्नलिखित तथ्यों को प्रमाणित करने का प्रयास किया है*—

१—थेलीज़ और पिथेगोरस ने बेबिलन की गणित को लेकर प्रारम्भ किया परन्तु उसे बिलकुल भिन्न, विशिष्ट रूप से यूनानी, लक्षण दिया।

२—पिथेगोरीय वर्गों में और बाहर, गणित को उच्चतर और सतत उच्चतर रूप में विकसित किया गया। इस प्रकार गणित धीरे-धीरे दृढ़तर तर्क की जिज्ञासा का समाधान करने लगा।

इस सम्बन्ध में वाण्डेंन का मत है कि गणित इतिहास के अध्ययन में निम्नलिखित बातों को अनावश्यक न समझा जावे—

(१) संस्कृति का सामान्य इतिहास, जिसमें न केवल ज्योतिष और यांत्रिकी वरन् भवन निर्माण विद्या (architecture), शिल्प (technology), दर्शन और यहाँ तक कि धर्म (पिथेगोरस) के विषयों को समाविष्ट किया जावे।

(२) राजनैतिक और सामाजिक दशाएँ।

(३) व्यक्तिगत चरित्र और उसका जीवन कार्य।

गणित क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण आधारभूत चार क्रियाएँ होती हैं, जिनका उपयोग संकेतों द्वारा गणित के विकास को चरम सीमा तक पहुँचाया जा सकता है। संकेतों में स्थानार्ह पद्धति तथा दाशमिक पद्धति लाना बड़े महत्व की वस्तु है। इसके आधार पर बड़ी संख्याओं का लेखन तथा अन्य गणनाओं को सुगम बनाया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि ज्योतिष में आधुनिक षाष्ठिक पद्धति का इतिहास सम्भवतः ४९५९ वर्ष पुराना है। बेबिलन वासियों ने षाष्ठिक पद्धति सुमेरवासियों (स्युमिअरिएन) से ली और इस पद्धति को यूनानी ज्योतिषी टालेमी (१५० ई०) ने अपनाया तथा उसमें शून्य प्रतीक का उपयोग कर अपने काल की दाशमिक पद्धति के समार्ह बनाया।† षाण्ठिक पद्धति में स्थिति सम्बन्धी प्रतीकों का उपयोग तो होता था, परन्तु उसमें कई दोष भी थे। १ और ६० के प्रतीकों, तथा १,०,३०, और १,३०, के प्रतीकों में अंतर न था।‡

भारतीयों द्वारा यूनानी ज्योतिष के अंशदान लेने के आधार पर सम्भवतः वाण्डेंन ने फ्रायटेन्थेल (Freudenthal) के मत का समर्थन किया है :

"Freudenthal's hypothesis reduces therefore to the following : Before becoming subject to the Greek influence, the Hindus had a versified, positional system, arranged decimally and starting with

* Science Awakening, p. 5.

† Science Awakening, p. 39.

‡ चीन में भी पञ्चाङ्ग में षाष्ठिक दाशमिक पद्धति उपयोग में लाई गई थी, जिसमें ६० को उच्चतर इकाई अथवा 'चक्र' निरूपित किया गया था। Cf. Struik. D. J., A concise History of Mathematics, Dover, (1948).

the lowest units. They had the digits 1-9 and similar symbols for, 10, 20,.... Along with Greek astronomy, the Hindus became acquainted with the Sexagesimal system and the zero. They amalgamated this positional system with their own; to their own Brahmin digits 1-9, they adjoined the Greek O and they adopted the Greek-Babylonian order.

It is quite possible that things went in this way. This detracts in no way from the honour due to the Hindus; it is they who developed the most perfect notation for numbers, known to us."*

वाएर्डेन का उक्त समर्थन, उनकी निम्नलिखित अभ्युक्ति पर भी आधारित प्रतीत होता है :

"In this manner Buddha continues through 23 stages. According to an arithmetic book, *koṭi* is a hundred times one hundred thousand (sata sata sahassa), so that the largest number mentioned by Buddha is $10^7 . 10^{46} = 10^{53}$. But in most arithmetics, these same words ayuta and niyuta have other values, viz. 10^4 and 10^5.

But Buddha has not yet reached the end : This is only the first series, he says. Beyond this there are 8 other series.

It is clear that these numerals were never used for actual counting or for calculations. They are pure fantasies which, like Indian towers, were constructed in stages to dazzling heights"†

इस सम्बन्ध में हम इन विद्वानों का ध्यान तिलोयपण्णत्ती और द्रव्य प्रमाणनुगम, षट् खंडागम पुस्तक ३ की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। तिलोयपण्णत्ती के ज्योतिषीय प्रकरणों को देखने से पता चलता है कि जिन स्वतंत्र, मौलिक ग्रंथों से उसमें सामग्री ली गई है, उनमें कालगणना का प्रत्यक्ष आधार यूनानी षाष्ठिक पद्धति नहीं है। साथ ही, द्रव्य प्रमाणानुगम के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ईसा के अनेक वर्ष पूर्व, सम्भवतः वर्द्धमान महावीर काल में ही अथवा बाद में, जीवों के गुणस्थान, मार्गणास्थान आदि में संख्या प्ररूपण के लिए बड़ी-बड़ी संख्याओं के लेखन, गणन आदि की आवश्यकता पड़ी होगी। इस आवश्यकता के लिये उन्हें कोई क्रांतिकारी सरल पद्धति को ग्रहण करना आवश्यक हो गया होगा। उस समय विश्व के या तो किसी छोर से उन्हें शून्य के आधार पर स्थानार्हासहित दाशमिक पद्धति अपनाना पड़ी होगी, अथवा उन्हें ही शून्य को लेकर इस पद्धति का आविष्कार करना पड़ा होगा। जैसा कि हम आगे देखेंगे कि यूनान के पिथेगोरस के वर्ग और भारत के वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में ऐसी कई बातों में सदृशताएँ हैं कि हमें यह सम्भावना प्रतीत होती है कि ईसा से प्रायः ५०० या ६०० वर्ष पूर्व के बीच भी यूनानियों और भारतीयों में आदान प्रदान हुआ। न केवल स्थानार्हासहित दाशमिक पद्धति ही, वरन् जीव द्रव्य के प्रमाण की संख्या का बोध क्षेत्र, काल आदि का आधार लेते हुए अनेक मौलिक पद्धतियों के आधार पर कराया गया है, जो विश्व के प्राचीन गणित ग्रंथों में दिखाई नहीं देता है। कुछ ऐसे प्रकरण हैं, जैसे सलागा अर्थ

* Science Awakening, pp. 56, 57.

† Ibid. p. 52.

(लघुगणक प्रमाण, Logarithm),* राशि सिद्धान्त आदि जिनके आविष्कार यूरोप में सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में हुए हैं। इस प्रकार "आवश्यकता, आविष्कार की जननी है", के आधार पर हम यह सम्भावना भी व्यक्त करते हैं कि वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में उनके अनुयायियों द्वारा स्थानार्ह प्रतीक सहित दाशमिक पद्धति के अभाव की पूर्ति करने के प्रयास अवश्य ही किये गये होंगे।

यूनानियों द्वारा बेबिलनवासियों के अंशदान का उपयोग सम्भवतः थेलीज़ द्वारा ग्रहण काल का बतलाया जाना पुष्ट करता है। बेबिलन में ग्रहणों के अवलोकन की तिथियाँ सम्भवतः ७४७ ई० पू० में हुए नबोनसार नृपति के काल में निश्चित हुई प्रतीत होती हैं। इसके पश्चात् ई० पू० ५८० में नेब्युकडनेज़र †† (द्वितीय) (Nebuchadnezzar II 605-562 B. C.) के राज्यकाल तक कला और विज्ञान में उन्नति तथा चंद्रमा और ग्रहों के अवलोकन के प्रमाण मिलते हैं। इसके पश्चात् उत्तरोत्तर काल में ज्योतिष के विकास के प्रमाण मिलते हैं। नेब्युकडनेज़र के सम्बन्ध में एक दो ऐसे तथ्य हैं जो हमें डा० प्राणनाथ विद्यालंकार द्वारा प्राप्त प्रभास पाटण के ताम्रपत्र के लेख, "बेबीलोन के नृपति नेबुचंद्नेज़ार ने रैवतगिरि के साथ नेमि के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था[२]।"‡‡ की ओर आकर्षित करता है। ये तथ्य इस प्रकार हैं :

"From his inscriptions we gather that Nebuchadrezzar was a man of peculiarly religious character".†

"His peaceful energies were devoted to building magnificent palaces and temples and herein he excelled".‡

परन्तु उपर्युक्त कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर हम भारत और बेबिलन का वर्द्धमान महावीर के तीर्थ से सम्बन्धित पुनर्जागरण से सम्बन्ध बतला सकें। इसके सम्बन्ध में भारतीय शिल्प और न्याय प्रणालिका की बेबिलन के शिल्प और न्याय प्रणाली से तुलना सम्भवतः उपयोगी सिद्ध हो। अभी तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर गणित सम्बन्धी तुलना आदि हम अगले पृष्ठों में देंगे।

बेबिलन के उच्च रूप से विकसित बीजगणित की सम्भाव्यता के विषय में यह प्रमाण दिया जाता है कि उनके पास उत्कृष्ट षाष्ठिक प्रतीक प्ररूपणा थी, जिससे संख्या और भिन्नों को दर्शाया जा सकता था, और उनमें समानसरलतापूर्वक गणनाएँ की जा सकती थीं। इस प्रकार उन्हें एक तथा दो अज्ञात वाले रैखीय और वर्ग समीकरणों के हल करने की रीति ज्ञात थी। इनके सिवाय (अ + ब)[२] जैसे बीजीय सूत्रों का ज्यामितीय प्ररूपण, समान्तर रेखाओं से उद्‌भूत अनुपात के सम्बन्ध, पिथेगोरसका साध्य, त्रिभुज और समलम्ब चतुर्भुज का क्षेत्रफल आदि का ज्ञान सम्भवतः उन्हें पूर्व प्रचलित परम्परा से था। संख्यासिद्धान्त में श्रेढ़ियों का संकलन भी दृष्टिगत होता है। परन्तु यह सब ज्ञान पिथेगोरस को धर्म और दर्शन में गणित के

---

* टोडरमल ने अर्थसंदृष्टि में अर्थ को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का प्रमाण निरूपित किया है।

†† अथवा नेब्युकडरेज़र Cf. Encyclopaedia Britannica, vol. 16, p. 184 (1956).

‡‡ मु. कांतिसागर, श्रमण संस्कृति और कला, पृ. १७ (१९५२); खंडहरों का वैभव, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृ. ११ (१९५३); तथा Times of India, 19-3-1935.

† Encyclopaedia Britannica, Vol. 16, p. 185, (1956).

‡ J. B. Bury & others, The Cambridge Ancient History, P. 216, Vol. III, 1 (954).

प्रयुक्त करने, तथा गणित में गति लाने में कहां तक प्रेरक रहा होगा, इस पर हमें अभी विचार करना शेष है। उपर्युक्त गणित के प्रयोग हम प्राकृत ग्रंथों में देखते हैं, परन्तु विशेषरूप से दो तथ्य हमें आश्चर्य में डाल देते हैं:—

(१) तिलोय-पण्णत्ती के चतुर्थ अधिकार में गाथा १८० और १८१ में दिये गये सूत्र जीवा और धनुष का प्रमाण निकालने के लिए उद्धृत हुए हैं। गणना $\sqrt{१०}$ के आधार पर इन सूत्रों की संरचना का प्रमाण मिलता है। जीवा के विषय में बिलकुल ऐसा ही सूत्र,

$$\text{जीवा} = \sqrt{४\left[\left(\frac{\text{व्यास}}{२}\right)^{२} - \left(\frac{\text{व्यास}}{२} - \text{बाण}\right)^{२}\right]}$$ के रूप में, बेबिलन के अभिलेखों के आधार पर २६०० ई० पूर्व (?) उपस्थित होना आश्चर्य जनक है। जहाँ π का मान ३ होना स्वीकृत हो चुका था वहाँ पिथेगोरस के साध्य के आधार पर इस सूत्र का होना उपयुक्त प्रतीत होता है। धनुष के सम्बन्ध में दिया गया सूत्र, π का मान $\sqrt{१०}$ लेने के आधार पर है जो बेबिलन में अप्राप्य है।‡

(२) वीरसेन ने क्षेत्र प्रयोग विधिके आधार पर जो बीजीय समीकरणों का रैखिकीय निरूपण दिया है, वह भी क्या बेबिलन अथवा यूनान से लिया गया है, अथवा पारपरिमित गणात्मक संख्याओं के निरूपण के लिये प्रचलित अनेक विधियों में से एक यह विधि भी जैनाचार्यों की मौलिक रूप से आविष्कृत विधि है, यह भी विचारणीय है।*

(३) षाष्ठिका पद्धति का उद्गम स्थल बेबिलन माना जाता है। ६० को आधार लेने के कई कारण प्रस्तुत किए गये हैं। यह पद्धति ज्योतिष में विशेष रूप से स्थान पाये हुए है। तिलोय पण्णत्ती में सूर्य का एक पूर्ण परिभ्रमण ६० मुहूर्तों में माना है। ६०, माने हुए १०९८०० गगन खंडों का एक गुणनखंड भी है। यह गणना भी बेबिलन और चीन से सहसम्बन्ध खोजने में सम्भवतः सहायक सिद्ध हो सकती है।

अब हम यूनान में प्रवेश करते हैं। वहाँ, निस्संदेह, ज्योतिष गणना में राशि सिद्धान्त, १२ घंटे का दिन, छाया माप निरूपण (सूर्य घड़ी के रूप में Gnomon और Polos), चन्द्र और ग्रहों की गतियों का अवलोकन, बेबिलनीय प्रभावों से अछूता नहीं है। परन्तु यह सब प्रभाव क्या पिथेगोरस कालीन है, अथवा पिथेगोरस पर ज्योतिष का भी प्रभाव किसी दूसरे देश का था, इस पर विचार करना है। इस में सन्देह नहीं कि उक्त प्रभाव पिथेगोरस के बाद दृष्टिगत अवश्य होता है। परन्तु हमें पिथेगोरस के काल का अध्ययन बड़ी सावधानी से करने की आवश्यकता है। इसके विषय में हम सर्वप्रथम कुछ किंवदंतियाँ और तथ्य पाठकों के सम्मुख रखना चाहेंगे।

(१) यूनान के "सात ज्ञानियों" में से थेलीज़ प्रथम था, जिनके विषय में कहा जाता था,

"Sayings such as the celebrated Delphic "Know thyself" were ascribed to them"†

(२) सूर्य ग्रहण के विषय में जो फलित थेलीज़ ने घोषित किया था, उसके विषयमें वाण्डेंन का का यह कथन है—

"Herodotus reports (see p. 84) that, during the battle on the Halys, day was suddenly turned into night and that Thales had pre-

‡ J. L. Coolidge : A History of Geometrical Methods, pp. 6, 7 (1940).

* षट् खंडागम पु., ३, पृ. ४२-४३।

† Science Awakening, p. 85.

dicted this event to the Delians for that year. According to Diogenes Laertius, Xenophanes voiced his admiration of Thales for this prediction. Thus, besides Herodotus, we have the older witness Xenophanes for this accomplishment. At present it is generally agreed that this event refers to the solar eclipse of 585 B. C.

How was it possible for Thales, who according to all our sources, is the first Greek astronomer, to predict a solar eclipse? Such a feat requires the experience of more than forty years, no matter how one proceeds. It is not possible for one man alone to gather this experience. But Thales had no Greek predecessors. The conclusion is inescapable that he must have drawn upon the experience of Oriental astronomers."*

(३) थेलीज़ को सम्भवतः बेबिलन वासियों (!) से निम्नलिखित ज्यामितीय फल प्राप्त हुए थे, जिनके लिए उसने उपपत्ति आदि देने का प्रयत्न किया :

(अ) वृत्त का व्यास उसे समद्विभाजित करता है ।
(ब) सम द्विबाहु त्रिभुज के आधारीय कोण समरूप (similar) होते हैं ।
(स) युडीमस के अनुसार, उसने यह खोजा था कि दो सरल रेखाओं के प्रतिच्छेदन से प्राप्त कोण समान होते हैं । इत्यादि ।

(४) थेलीज़ के काल में मिस्र और बेबिलन का गणित मृतप्राय हो चुका था ।†

(५) नीओ-प्लेटोनिस्ट (Neo-Platonist) प्रोक्लस (Proclus, 412-485 A. D.) ने पियेगोरस की ज्यामिति के सम्बन्ध में यह उल्लेख किया है,

Pythagorus, who came after him, transformed this science into a free form of education; he examined this discipline from its first principles and he endeavoured to study the propositions, without concrete representation, by purely logical thinking. He also discovered the theory of irrationals (or of proportions) and the construction of the cosmic solids (i. e. of the regular polyhedra)‡

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि ज्यामितीय और ज्योतिषीय सामग्री, यूनान में इस काल में बाहरी देशों से लाकर, सूक्ष्मरूप से अवलोकित कर, तर्क पर आधारित गहन अध्ययन का विषय बनाई गई । इसमें सन्देह नहीं, कि उक्त सामग्री ने इन विद्वानों को प्रभावित किया होगा, क्योंकि बिना प्रभाव के, किसी विषय की ओर ध्यान आकृष्ट होना साधारणतः सम्भव प्रतीत नहीं होता । जो बात, बीजरूप से प्रभावक प्रतीत होती है, वह "गणित द्वारा प्रतिपादित धर्म से आत्मा का उत्थान करना" इङ्गित

* Ibid. p. 86.
† Ibid. p. 89.
‡ Ibid. p. 90.

होती है। देखें कि प्रभाव का यह माध्यम पिथेगोरस के वर्ग और वर्द्धमान महावीर के तीर्थ से कहाँ तक सहसाता रखता है ?

(१) ऐसा प्रतीत होता है, कि ईसा से प्रायः (५८२—५०० ?) वर्ष पूर्व मिस्र में प्रबल स्वेच्छा से रहते हुए पिथेगोरस ने जिनके संसर्ग में स्वतः को विभिन्न विज्ञानों से (a lot of knowledge without intellect)* परिचित किया था, उनके मिशन का प्रभाव उसके नैतिक जीवन में पशु के प्रति (मुक्ति हेतु), विशुद्ध दया की छाप छोड़ बैठा था,

"But this crazy crank Pythagorus had made quite a fuss when he saw one of the prominent citizens taking a stick to his dog. "Stop beating that dog !" he had shouted like a madman. "In his howls of pain I recognize the voice of a friend who died in Memphis twelve years ago. For a sin such as you are committing he is now the dog of a harsh master. By the next turn of the Wheel of Birth, he may be the master and you the dog. May he be more merciful to you than you are to him. Only thus can he escape the Wheel. In the name of Apollo my father, stop, or I shall be compelled to lay on you the tenfold curse of the tetractys."†

(२) इस चदुचंकमण (tetractys), चतुर्गति बंधन (स्वस्तिक प्ररूपणा ?) से विमुक्ति हेतु पिथेगोरस और आगे बढ़कर, हरे पौधों के प्रति भी, ममता प्रदर्शित करता है,

"Then, too, there was all this talk about what he ate, or rather about what he would not eat. What could the man possibly have against beans ? They were a staple of everyone's diet; and here was Pythagorus refusing to touch them because they might harbour the souls of his dead friends.........He had even deterred a cow from trampling a patch of beans by whispering some magic word in its ear"‡

इसी प्रकार, (एकेंद्रिय जीव, बालों, से निर्मित) ऊनी कपड़ों से सम्बन्धित अभ्युक्ति निम्न प्रकार है,

"He also tells that the Pythagoreans did not bury their dead in woollen clothing.[3] This looks more like religious ritual than like mathematics. The Pythagoreans, who were held up to ridicule on the stage, were presented as superstitious, as filthy vegetarians,[3] but not as mathematicians". []

* Ibid. p. 13.

† E. T. Bell, The Magic of Numbers, p. 87, (1946)

‡ The Magic of Numbers pp. 91, 92.

[] Science Awakening p. 92.

(३) पुनः, मांस भक्षण निषेध की शैली में आत्मा की नियत संख्या के रूप में गणित का प्रवेश है,

"The thought of all the souls they might have left shivering in the void by devouring their own goats and swine made the good Samians extremely unhappy. A few weeks more of these upsetting suggestions, and they would all be strict vegetarians—except for beans.

Equally upsetting was the ghastly thought that some of their own children might be malicious little monsters with no souls to restrain their bestial instincts. For Pythagorus had assured them that the total number of souls in the universe is constant".*

आत्माओं के पुनर्जन्म तथा आत्मा की अमरता का उपदेश देने वाले पिथेगोरस के वर्ग बन्धुत्व में, गणित की महत्ता दर्शाने वाला उल्लेख निम्नलिखित भी है :

"The Pythagoreans thus have purification and initiation in common with several other mystery-rites. Ascetic, monestic living, vegetarianism, and common ownership of goods occur also in other sects. But, what distinguishes the Pythagoreans from all others, is the road along which they believe the elevation of the soul and the union with God to take place, namely by means of mathematics. Mathematics formed a part of their religion. Their doctrine proclaims that God has ordered the universe by means of numbers. God is unity, the world is plurality and it consists of contrasting elements. It is harmony which restores unity to the contrasting parts and which moulds them into a cosmos. Harmony is divine, it consists of numerical ratios. Whosoever acquires full understanding of this number-harmony, he becomes himself divine and immortal."†

अभी यह कहना कठिन है कि पिथेगोरस ने वही प्रतिपादन किया जो वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में परम्परा के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। परन्तु, धवला ग्रंथों (विशेषकर, षट्खंडागम पु. ३) को देखने पर यह अवश्य प्रतीत होता है कि इन दोनों वर्गों के लक्ष्य प्रायः एक से रहे हैं। इसकी पुष्टि, पुनः, निम्नलिखित उद्धरण से होती है,

"According to Heraclides of Pontus, Pythagorus said that,

"Beatitude is the knowledge of the perfection of the numbers of the soul". Mathematics and number mysticism mingle fantastically in the Pythagorean doctrine. Nevertheless, it was from this mystical doctrine that the exact science of the later Pythagoreans developed."()

* The magic of Numbers, p. 92.

† Science Awakening p. 93.

() Ibid p. 94.

(४) पिथेगोरस के लिये "a lot of knowledge without intellect" से सम्बन्धित सम्स्तुति वाएर्डेन ने इस प्रकार दी है :

"This contemptuous remark cannot refer to a logically constructed theory of numbers and a geometry such as we find in the writings of the later Pythagoreans. But, if Pythagorus gathered into one lump, all kinds of half-assimilated learning about the gods and the stars, about musical scales, sacred numbers and geometrical calculations, and proclaimed such an omnium-gatherum to his followers as divine wisdom in a prophetic manner, then Heraclitus' ridicule, as well as the veneration of mystics, such as Empedocles, become entirely understandable".*

इसी प्रकार, एक और ऐसा उल्लेख है जो विचारणीय है :

"What inspiration laid forceful hold on Pythagorus when he discovered the subtle geometry of (the heavenly) spirals and compressed in a small sphere the whole of the circle which the aether embraces."†

पिथेगोरीय वर्ग ने ग्रहों को जीवित देवताओं की मान्यता दी है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य है, "चन्द्र सम्बन्धी गणना में ५९ का आधार", यथा,

"Firmly convinced of the mystic values of numbers, Pythagorus determined to a base a brand new cycle on a primary foundation of arithmetic. Fifty-nine was a "beautiful" number, since it was a prime. When to this was added the undoubted fact that, when we count the days *and* nights in every one of the moon's months, the total is always 59,......"‡

इस ५९ दिन और रात्रि प्रकरण से सम्बन्धित आधारभूत प्राकृत ग्रंथों में विशेष विस्तार से वर्णित चंद्र सम्बन्धी गणना है। यह ज्ञात है कि सूर्य की अपेक्षा से चंद्र एक मुहूर्त में ६२ गगनखंड पीछे रह जाता है, इसलिये १०९८०० गगनखंड अथवा एक परिभ्रमण पूर्ण करने में ५९ $\frac{३}{६२}$ दिन लगाते हैं,

इस आधार पर चंद्र अर्द्धचक्र का synodic मास २९.५१२······दिन निकलता है। यहाँ बतलाना आवश्यक है कि हिन्दू ज्योतिष ग्रंथों की अयन प्रवृत्ति प्राकृत ज्योतिष ग्रंथों से भिन्न है।()

(५) आगे, जहाँ परिमित, अपरिमित, एकत्व, अनेकत्व, सांत, अनन्त आदि के विषय में रुचि लेने वाले पिथेगोरस के वर्ग ने अपरिमेय राशियों को दृश्यरूप देकर परिमेय बनाया और इस प्रकार

---

* Ibid. p. 95.

† Heath, Greek History of Mathematics, Vol. 1, p. 163. (1921)

‡ A. T. Olmsteed, History of Persian Empire, Chicago, p. 209, (1948)

() जैन-सिद्धांत-भास्कर, भाग ८, किरण २, पृ. ७७, (१९४१)

ज्यामिति पर आधारित अद्वितीय साधन को प्रकाश में लाया, उसी प्रकार यहाँ भारत में षट्खंडागम जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों में न केवल दर्शन और धर्म को, वरन् द्रव्यों (जीव और पुद्गल) के प्रमाणों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, विकल्प, अल्प बहुत्व के साधनों से दृश्य रूप दिया। इसका वृहद् विवेचन यहाँ देना सम्भव नहीं है। इसके हेतु तिलोय पण्णत्ती के गणित के सिवाय धवल ग्रन्थों में मुख्यतः पुस्तक ३ और ४, केशव वर्णी अथवा टोडरमल की गोम्मटसार की टीका तथा गोपालदास बरैया कृत जैनसिद्धान्तदर्पण द्रष्टव्य हैं।

यहाँ यह बात बतलाना आवश्यक है कि पिथेगोरीय वर्ग ने जहाँ अपरिमेयको परिमेय बनाने के लिये ज्यामिति आकृतियों का आश्रय लिया है, वहाँ प्राकृत ग्रन्थों में परिमेय का बोध देने के पश्चात् उसे अपरिमेय रूप में भी प्रस्तुत किया है। यहीं सामान्यकरण का बीज छिपा है। इनके प्रदर्शन के लिये प्राकृत ग्रन्थों में जहाँ परमाणु द्वारा अवगाहित आकाश-प्रदेश (बिन्दु) को मूलभूत लिया है, वहाँ पिथेगोरस का बिन्दु भी उल्लेखनीय है,

"Points are the primary elements of space for Pythagorus, and a point is that which has position only. Unlike material things a point has neither parts nor magnitude. These defects are shared by 1 when the latter is regarded as the Monad or the generative element of number. If Pythagorus thought of space as being made up of points, then points generated his space. But whatever he imagined space to be, he identified a point with 1."*

(६) १ को संख्या राशि में समन्वित न करने वाले और सम्भवतः भारतीय पगड़ी† को धारण करने वाले पिथेगोरस का बिन्दु हमें एलिया निवासी ज़ीनो के चार असद्वादों (विरोधाभासों) की ओर भी आकृष्ट करता है। प्लेटो ने उल्लेख किया है कि वह समझ चुका था कि किसी वस्तु को समान और असमान, एक और अनेक, स्थिर और गतिवान् कैसे सिद्ध करना।‡

ज़ीनो के "सान्त की अनन्त विभाज्यता के खंडन" और अविभागी "समय" (now) अथवा "वर्तमान काल" जैसी अवधारणाओं (concepts) में हम जिनागम प्रणीत "प्रदेश" और "समय" सम्बन्धी मान्यताओं का स्पष्ट बिम्ब देखते हैं। इस सम्बन्ध में ऐसा प्रतीत होता है मानो स्याद्वाद पर आधारित अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप विषयक ज्ञान का ज़ीनो ने आधार लेकर सम्भवतः इन असद्वादों आदि का संकलन केवल अपने आराध्य पारमेनिडीज़ (Parmenides, fl. 5th century B. C.) के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए विवादोत्सुक विद्वानों को विडम्बना में डालने के हेतु किया हो। इसकी पुष्टि निम्नलिखित अवतरण से होती प्रतीत होती है :

"'Yes, Socrates', said Zeno; 'but though you are as keen as a Sparton hound, you do not quite catch the motive of the piece, which was only intended to protect Parmenides against ridicule..."[]

---

* The Magic of Numbers, p. 161.

† Science Awakening, Plate 13, p. 112.

‡ T. Heath : Greek History of Mathematics, vol. (i), p. 273.

[] The Dialogues of Plato by B. Jowett, vol. II, p 634, (1953) Oxford.

इसके साथ ही सत्य के पुजारी और विष प्याले के ग्राहक सॉक्रेटीज़ (Socrates, 469–399 B. C.) सम्बन्धी अभ्युक्ति भी विचारणीय है,

"Here we have, first of all, an unmistakable attack made by the youthful Socrates on the paradoxes of Zeno. He perfectly understands their drift, and Zeno himself is supposed of to admit this. But they appear to him, as he says in the *Philebus* also to be rather truisms than paradoxes."*

एरिस्टाटिल के शब्दों में प्रथम दो तर्क निम्नलिखित हैं :—

(१) डाइकॉटोमी (Dichotomy):—कोई भी गमन नहीं होता, क्योंकि जिसे गति क्रिया रूप में परिणत किया जाता है उसे अंत में पहुँचने के पूर्व (दूरी के) मध्य में पहुँचना पड़ेगा' (और उस अर्द्ध भाग को तय करने के पूर्व अर्द्ध का अर्द्ध भाग तय करना होगा और इस प्रकार अनन्त तक ।)†

(२) आकिलीज़ (The Achilles) 'कथन है कि मन्द गतिवान को तीव्र गतिवान् कभी न पकड़ सकेगा; क्योंकि जिस स्थान को मंद गतिवान् ने छोड़ा है वहाँ तक तीव्र गतिवान् को पहुँचना पड़ेगा और इसलिये मंद गतिवान् आवश्यकीय रूप से सदा कुछ दूर आगे ही रहेगा ।' ‡

स्पष्ट है कि ये दो तर्क परिमित अखंड महत्ताओं की अनन्त विभाज्यता का खंडन करते हैं। जिनागम के अनुसार अमूर्तिक आकाश द्रव्य को स्यात् अखंड और स्यात् अनन्त प्रदेशवान् माना गया है। प्रदेश (खंड) की अवधारणा पुद्गल परमाणु की अविभाज्यता या अंत्य महत्ता के आधार पर मुख्य रूप से की गई है। इस प्रकार अमूर्त द्रव्य में भेद (विभाजन) की कल्पना को स्थान न देकर केवल मूर्त द्रव्य पुद्गल में भेद की सम्भावना की पुष्टि कर, और प्रदेश की परिभाषा, "जितने आकाश को एक अविभागी पुद्गल परमाणु को व्याप्त करे" रूप में देकर, लोकाकाश में असंख्यात प्रदेशों की मुख्य रूप से कल्पना की गई है। यहाँ तक ही नहीं, वरन् एक सूच्यंगुल में प्रदेशों की संख्या का प्रमाण, संख्यामान और उपमामान में समीकरण स्थापित करते हुए, वह प्रमाण बतलाया गया है जो पल्योपम काल राशि में स्थापित समयों की संख्या के अर्द्धच्छेद प्रमाण का परस्पर गुणन करने पर प्राप्त हो। इस परम्परागत समीकरण के आधार पर प्रथम तर्क का समाधान होता प्रतीत होता है, क्योंकि सृष्टि में परमाणु को अंत्य महत्ता प्राप्त करा देने पर, किसी परिमित दूरी में अर्द्धच्छेदों की संख्या का प्रमाण अधिक से अधिक असंख्यात ही होने पर, अनन्त विभाज्यता का प्रश्न उठता प्रतीत नहीं होता। असंख्यात प्रमाण मुख्यरूप कल्पना के आधार पर, द्वितीय तर्क भी समाधानित होता प्रतीत होता है, क्योंकि परमाणु स्वरूप अंत्यमहत्ता वाली वस्तुओं के भी गमनसम्बन्धी सद्भाव में किसी दूरी के अर्द्धच्छेद, त्रयकच्छेद, चतुर्थच्छेद आदि सभी की संख्या, प्रदेश की कल्पना के आधार पर असंख्यात अथवा संख्यात ही होगी, अनन्त नहीं; और इस प्रकार "कभी नहीं" प्रश्न भी समाधानित होता प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो ज़ीनो ने भौतिक संसार में होने वाली घटनाओं को ही वास्तविक आधार मानकर अमूर्तिक आकाश की विभाज्यता की कल्पना का खंडन किया है। ऐसा कहा जाता है कि ये तर्क पिथेगोरीय सिद्धान्तों के खंडन के लिये नहीं थे,

---

* Ibid. p. 638.

† T. Heath, Greek History of Mathmetics vol. I, p. 275, (1921)

‡ Ibid. pp. 275 276.

क्योंकि पिथेगोरीय वर्ग ने बिन्दु अथवा प्रदेश की परिभाषा, "स्थिति वाला एकक" (unit having position) के रूप में स्थापित की थी ।*

इन दो तर्कों के आधार पर, वीरसेन की शैली में, "परन्तु ऐसा है नहीं" यह अन्यथा युक्ति खंडन (अनिष्ट प्रदर्शन) विधि, जिनागम प्रणीत उक्त तथ्यों की पुष्टि करने की विधियों के समान प्रतीत होती है। अथवा ऐसा मालूम पड़ता है मानो सीमित क्षेत्र में संख्यात या असंख्यात (परिमित) प्रदेश संख्या राशि की पुष्टि करने के लिये ही ये तर्क प्रस्तुत किये गये हैं।

आगे, एरिस्टाटिल के शब्दों में ज़ीनो के अंतिम दो तर्क ये हैं—

(३) बाण (The Arrow) :—"यदि, ज़ीनों का कथन है, प्रत्येक वस्तु या तो स्थिर है या गति क्रिया में परिणत है (गमन में है) जब कि वह (स्वतः) के समान आकाश को व्याप्त करती है, जब कि वह गतिवान् वस्तु उसी क्षण (in the now) में सदा है, तो गतिवान् बाण स्थिर है (गतिवान् नहीं है)"†

(४) क्रीड़ांगन (The Stadium) :—"चौथा तर्क समान वस्तुओं की समान संख्या वाली दो पंक्तियों के सम्बन्ध में है जो किसी दौड़क्षेत्र में समान प्रवेग से विरुद्ध दिशाओं में एक दूसरे का अतिक्रमण करती हैं, एक पंक्ति क्षेत्र के अंत से तथा दूसरी मध्य से प्रस्थान करती हैं। यह, वह सोचता है, इस उपसंहार पर पहुँचाती है कि दत्त समय का अर्द्ध भाग, द्विगुणित के तुल्य होता है......"‡

वीरसेनाचार्य ने व्यवहारकाल की अंत्य महत्ता को, अविभागी समय में परमाणु की गमनशीलता के आधार पर प्रस्तुत किया है,

"एक परमाणु का दूसरे परमाणु के व्यतिक्रम करने में जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं। चौदह राजु आकाश प्रदेशों के अतिक्रमण मात्र काल से जो अतिक्रमण करने में समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु अतिक्रमण करने के काल का नाम समय है।"()

इस प्रकार लोकान्त से लोकाग्र तक प्रत्येक बिन्दु पर से जाने वाले परमाणु के गुजरने की घटना, प्रत्येक प्रदेश पर स्थित घड़ी, तथा गमनशील परमाणु में स्थित ऐसी ही घड़ी (?), वही "एक अविभाज्य समय, तत्क्षण," बतलावेगी जिस 'एक समय' में वह पुद्गल परमाणु, गमनरूप क्रिया में परिणत हुआ, लोकाग्र पर आकर, स्थिर पर्याय को प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रदेश से गुजरने की एक समय कालीन घटना में युगपतत्व का समावेश है। व्यवहार से, काल के अनन्त समय, वर्तमान काल को एक समय मानकर बतलाए गये हैं। निश्चय नय से अमूर्त, अप्रदेशी काल द्रव्य वर्तना का कारण होने से, तथा प्रति समय अनन्त वर्तनाएँ होने से, मुख्य कालाणु अनन्त समय वाला भी माना गया है।[] काल की अंत्य प्रमाण छोटी पर्याय से घिरे हुए काल को समय बतलाया गया है।

ऐसे अविभागी [क्योंकि कोई पर्याय के बदलने में सृष्टि में होने वाली 'पर्यायांतरी क्रिया में',

---

* Ibid. p. 278.

† Ibid. p. 276.

‡ Ibid. p. 276.

() षट्खंडागम पु० ४, पृ० ३१८।

[] तत्त्वार्थराजवार्तिक, अध्याय ५, पृ० ४८४ (पन्नालाल, बाकलीवाल)

एक समय से कम काल नहीं लगता] समय में ऊर्ध्वगमनत्व स्वभाववाला सिद्धात्मा, मध्य लोक से लोकाग्र स्थित सिद्ध शिला पर पहुँच जाता है। इसी प्रकार एक ही समय में ईर्यापथ आस्रव में कर्मों का आना, आत्मा से स्पर्श करना और निर्जरित हो जाना; तथा चार समय से पहिले मरणांतिक समुद्घात में आत्मा के प्रदेशों का अनुश्रेणि विग्रह गति से लोक में स्थित किसी भी प्रदेश स्थित जन्म स्थान का स्पर्श करना और चार समय में दंड, कपाट, प्रतर एवं लोकपूरण क्रिया का होना, ये सब क्रियाएँ, अथवा पर्यायों में अंतर आदि का एक समयवर्ती होने का ज्ञान ज़ीनो के उक्त असद्भावों का विषय बन जाता है; कि क्या इन पर्यायों अथवा क्रियाओं से भी कोई सूक्ष्मतर पर्यायें नहीं होती हैं, जो ज्ञान में आ सकें, क्योंकि वे एक समय के अवक्तव्यम् भाग (?) में घटित होती हैं? क्रिया की परिभाषा श्री अकलंक देव द्वारा निम्न रूप में प्रस्तुत है, "उभय निमित्तापेक्षः पर्याय विशेषो द्रव्यस्य देशांतर प्राप्ति हेतुः क्रिया ॥"*

ऐसा समझा जाता है कि उपरोक्त तर्क संतत महत्ताओं की अविभाज्य तत्वों द्वारा संरचना की कल्पना के विरुद्ध हैं†, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है मानो तृतीय असद्भाव अविभागी समय के खंडन के लिए नहीं है, वरन् उस एक समय में "१४ राजु जो देशान्तर प्राप्ति है, वह केवल स्थिरता अथवा गतिवान् रूपादि अनेक अलग-अलग वर्तनाएँ रूप नहीं है, वरन् उन वर्तनाओं का एक समय में एक पर्याय परिवर्तन रूप होना है", इस प्रकार के होने वाले पर्याय परिवर्तन की सम्भाव्यता की पुष्टि के लिए है। कारण यह है कि गतिवान् बाण की एक समय में स्थिरता और गमन रूप होना स्वाभाविक प्रतीत होता है, और एक-एक प्रदेश पर गुजरते हुए उसका गमन रूप रहते हुए स्थिर कहना न्याय संगत नहीं है; वरन् उस एक समय में सहसा ७–१४ राजु प्रमाण प्रदेश राशि का‡ शीघ्र बाण के समान अतिक्रमण करते हुए लोकाग्र पर जाकर स्थिरता पर्याय का ग्रहण करना अस्वाभाविक इसलिये प्रतीत हो कि समय अविभाज्य है, पर इस वर्तमान काल रूप एक समय में ऐसा होता है—"नहीं तो वह बाण चलता ही नहीं", तर्क से अवस्थित (established) आभासित होता है।

चतुर्थ तर्क सम्भवतः उक्त समय (now) के आधार पर उपस्थित हुआ प्रतीत होता है। हमारी समझ में यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि एक परमाणु का दूसरे परमाणु का व्यतिक्रमण करते समय, अथवा १४ राजु में स्थित प्रदेशों का अतिक्रमण करते समय, उस एक समय में प्रदेश की सीमा का उल्लंघन करते समय, अथवा एक साथ असंख्यात प्रदेशों का उल्लंघन करते समय, उक्त समय के विभाजित हो जाने की कल्पना न्यायसंगत है, अथवा नहीं? ऐसा प्रतीत होता है, मानो ज़ीनो ने 'एक समय' की अविभाज्यता की कल्पना को न्यायसंगत बतलाने के लिए यह असद्भाव उल्लिखित किया हो कि क्या कोई समय का अर्द्धमान उसके द्विगुणित प्रमाण के तुल्य होता है?

जो कुछ हो, वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में परम्परागत अनुगमों में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त ये तथ्य हमें विश्वबंधुत्व के प्राङ्गण में हुए सम्भावित आदान-प्रदान की झलकें प्रस्तुत करते प्रतीत होते हैं। हम अभी यह भी नहीं कह सकते कि यूनानियों द्वारा शंकु के छेद (काट) से प्राप्त विभिन्न छेदों (sections) के गहन अध्ययन की प्रेरणा सूर्य, चंद्रादि के सुमेरु के परितः समापन, असमापन

---

* देखिये वही, पृ० ८४, अ० ५, सूत्र ७।१

† T. Heath Greek History of Mathematics, Vol. (I), p. 278 (1921)

‡ तत्त्वार्थ राजवार्तिक, अ० ५, सू० २५।२६

सर्पिलों (spirals) में परिभ्रमण को आँख पर आपतित तिर्यक् शंकु रूप में परिलक्षित (प्रेक्षित) करने के फलस्वरूप प्राप्त हुई हो। इतना अवश्य है तिलोय पण्णत्ती जैसे ग्रंथ में ग्रहों के गमन का विवरण कालवश विनष्ट होना ही बतलाया है, परन्तु अपोलोनियस (Apollonius, circa 262–190 B. C.) और टालेमी की कृतियों से संकलन का प्रयास नहीं किया गया है।

अब हम देखेंगे कि क्या गणित इतिहास की शृंखला की भग्न कड़ियों में से वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में प्रतिपादित अलौकिक गणित का विकास भी एक कड़ी है। भग्नकड़ियों के विषय में उल्लिखित वाएर्डेन की अभ्युक्ति यह है :

"We have no real proofs for the existence of such an uninterrupted tradition; too many connecting links are missing for this. It is rather a general impression of relatedness which makes itself felt when one knows the cuneiform texts and then looks through Heron or Diophantus, or the Chinese "classic of the maritime isle", or the Aryabhayṭa* of Aryabhaṭa or the Algebra of Alkhwarizmi. According to all Arabic sources, Alkhwarizmi was the first writer on algebra, but his algebra is so mature that we cannot assume that he discovered everything himself. The algebra of Alkhwarizmi can hardly be accounted for on the basis of the Greek and Indian sources which we know; one gets more and more the impression that he has drawn on older sources which in some way or other are connected with Babylonian algebra." †

बेबिलन से चीन तक अन्य सामग्री पहुँचने अथवा बेबिलन और चीन के प्रयुक्त अनुपात सिद्धान्त से सहसम्बन्धित भग्न कड़ी का अनुरेखण करने में भी इतिहासज्ञों ने अपनी असमर्थता प्रकट की है :

"The oldest Chinese collection of problems on applied proportions[1] looks like an ancient Babylonian text, but it is next to impossible to prove their dependence or to trace the road along which they were transmitted."‡

इसमें सन्देह नहीं है कि चीनियों ने हजारों वर्षों से ज्ञान का आदान प्रदान करते हुए भी अपने लक्षण (character) और मौलिकता (originality) को अक्षुण्ण रखा है। हम यहाँ केवल थोड़े से उद्धरणों द्वारा वर्द्धमान महावीर के तीर्थ से सहसम्बन्धित सत्य, अहिंसा और गणित के प्रांगण में चीन और भारत के समान्तर रूप से विकसित तथ्यों पर प्रकाश डालना चाहते हैं। ईस्वी पश्चात् ६५ के लगभग चीन में सर्वप्रथम बौद्ध धर्म प्रकट होता प्रतीत होता है। हम इसके कुछ शताब्दियों पूर्व उमड़ी विश्व-बन्धुत्व की लहरों से प्रभावित क्षेत्र, काल, भाव का अवलोकन करना उपयोगी समझते हैं :

---

* शुद्ध रूप "Arybhatiya" है।

† Science Awakening, p. 280.

‡ Ibid. p. 278.

(१) एक ओर जहाँ यूनान में पौधों में जीव का अस्तित्व माना गया है, वहाँ चीन में भी इससे सम्बन्धित सिद्धान्त पर जोजेफ नीडेम द्वारा प्रकाश डाला गया है :

"Another case which seems to me comparable is the Aristotelian doctrine of the 'ladder of souls' in which plants were regarded as possessing a vegetative soul, animals a vegetative and a sensitive soul, and man a vegetative, a sensitive and a rational soul[c]. I shall later show (sect. 9 e) that a very similar doctrine was taught by Hsun Tzu (Hsun Chhing).[a] Aristotle lived from —384 to —322, Hsün Chhing from —298 to —238."*

उपर्युक्त का सम्बन्ध प्राकृत ग्रंथों में वर्णित जीवों के गुणस्थान और मार्गणास्थानों से अनुरेखित करना उपयोगी प्रतीत होता है। इस ओर आकृष्ट करने वाले तथ्य निम्नलिखित हैं :—

"In the realm of philosophical theory and practice, determined efforts have been made to show that early Taoism owed much both to the Indian Upanishad literature for its theory[a], and to Indian yogism for some of its practices;[b] further, that Chinese Chhan Buddhism was an importation from India[c]. These views, however, as Creel says,[d] have never been really convincing. The Upanishads[e] are metaphysical commentaries on the Vedas, and date from the –8th to the –4th centuries,[f] so that they are little earlier than the first period of elaboration of Taoist doctrine. Their strongly marked metaphysical idealism, with its conception of the unity of the *brahman* and the *atman*, the absolute and the self, is not at all characteristic of the Taoists; though the latter, as we shall see, greatly emphasised the unity of nature, and the incorporation of the individual within it. For the influence of Yoga practices,[g] especially the breathing exercises, which are certainly very ancient in India, upon early Taoism, a better case can be made out (Filliozat, 3). Some Taoist schools, at any rate, practised self-hypnosis by concentration on the inhaling and exhaling processes (Waley[h]), butit was not universal as Chuang Tzu has a passage condemning it. In any case the aims of this *samādhi* or *dhyāna* among the Taoists were entirely different from those of the Indian *ṛishis*. Both wished to master organic life and to attain 'supernatural' powers, but while

---

* J. Needham, Science and Civilization in China, p. 155, vol. I, Cambridge (1954).

the Indians sought for an ascetic virtue which would enable them to dominate the gods themselves (cf. Wilkins[i]), the Taoists sought a material immortality in a universe in which there were no gods to overcome, and asceticism was only one of the methods which they were prepared to use to attain their end."*

उपर्युक्त तुलना में हम शुभचंद्राचार्य के 'ज्ञानार्णव' की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे, जहाँ आत्मा के व्यक्तित्व के चरम विकास के लिये (अंततः मुक्ति के लिए) प्राणायाम को विघ्न का कारण निरूपित किया है—

सम्यक् समाधि सिद्ध्यर्थं प्रत्याहारः प्रशस्यते ।
प्राणायामेन विक्षिप्तं मनः स्वास्थ्यं न विन्दति ॥ ४ ॥
वायोः संचार चातुर्यं मणि माद्यङ्ग साधनम् ।
प्रायः प्रत्यूह बीजं स्यान्मुनेर्मुक्तिमभीप्सतः ॥ ६ ॥
प्राणस्यायमने पीडा तस्यां स्यादार्त्त सम्भवः ।
तेन प्रच्याव्यते नूनं ज्ञात तत्वोऽपि लक्ष्यतः ॥ ९ ॥
नातिरिक्तं फलं सूत्रे प्राणायामात्प्रकीर्तितम् ।
अतस्तदर्थं मस्माभिर्नातिरिक्तः कृतः श्रमः ॥११॥

(प्रकरण संख्या ३०)

साथ ही वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में सिद्ध पद प्राप्त करने हेतु सम्यक् तप को जो प्रधानता दी गई थी वह परम्परा से प्रचलित प्रतिक्रमण में इस प्रकार दृष्टिगत होती है ।

"तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥"

(२) चीन और भारत के बीच सम्बन्ध जोड़ने वाला एक तथ्य और है, "परिमित क्षेत्र की अनन्त विभाज्यता का खंडन ।" इसके साथ ही सम्बन्धित युगपत्तत्व (simultaneity) और परमाणु सम्बन्धी तथ्य हैं जिनके लिये वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में संकलित सामग्री आदि का तुलनात्मक अध्ययन कितना उपयोगी होगा यह निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जावेगा,

"Finally, he discusses the relation between the paradoxes of Hui Shih[2] and the Eleatic paradoxes,[d] without attaining any definite conclusion – the correspondence is, indeed, another example of that extraordinary simultaneity between phenomena which we some-times find at the two ends of the Old World. For the date of Hui Shih[2] is late –5th century, and Eleatic Zeno's *floruit* is placed about –460.[e]"†

* Ibid. p. 153.

† Ibid. p. 154.

आगे,

"One might take the theories of atomism as an example. Its story in our own classical civilization, beginning with such men as Leucippus and Democritus of Abdera, of the −5th century, and culminating in Epicurus and Lucretius of the late −3rd and early −1st, is well known to us.[h] Indian atomism seems to be later in date, the Jaina System of Umāsvāti showing its greatest strength about +50, and the Vaiśeshika darśana (theory) of Kaṇāda flourishing in the second half of the +2nd Century[i]. But there are reasons, as Rey[j] urges, for believing that the roots of the theory of *paramānu* (atoms) go much further back in the history of Indian thought. Thirdly, in Chinese physics atomism never arose, as we shall see[a], but the geometry of the *Mo Ching*[1] (the Mohist Canon, which must have been put together somewhere in the neighbourhood of −370) seems to define a point as a line which has been cut so short that it cannot be cut any further[b]."*

(३) आगे यह जानते हुए कि चीन और भारत में बौद्ध धर्म सम्बन्धी आदान प्रदान का प्रारम्भ ईसा की चौथी सदी से हुआ, हम इससे पूर्व का एक ऐसा उल्लेख भी पाते हैं जो सम्भवतः भारत से सम्बन्धित हो,

"The *Huai Nan Tzu* book (c. −200) contains[c] a remark that Yü the Great 'when he went to the country of the Nacked People, left his clothes before entering it and put them on when he came out, thus showing that wisdom adapts itself to circumstances.'"‡

(४) इसमें सन्देह नहीं कि चीनी गणित का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भारतीय गणित के साथ दिखाई देता है, पर यह काल वर्द्धमान महावीर के शताब्दियों पश्चात् का है :

"The proof of the Pythagoras Theorem used by Chao Chün-Chhing[2] in his +2nd-century commentary on the *Chou Pei*[3] (the oldest mathematical classic) appears again in the work of Bhāskar (+1150). The rule for the area of the segment of a circle given in the *Chiu Chang Suan Shu*[4] (Nine Chapters on the Mathematical Art) of the +1st-century appears again in the +9th-century work of Mahāvīra. Indeterminate problems of the *Sun Tzu Suan Ching*[5] (Master Sun's Mathematical Manual) of the +3rd century are found in Brahmagupta (+7th century). Āryabhaṭa (+5th century) has

* Ibid. p. 155.

‡ Ibid. p. 206.

geometrical survey material very like that of Liu Hui of the + 3rd ."*

जहाँ तैत्तिरीय संहिता में केवल २७ नक्षत्रों को मान्यता दी है, वहाँ चीन में २८ नक्षत्र माने गये हैं। तिलोय पण्णत्ती में भी १ चंद्र के २८ नक्षत्र माने गये हैं (७–४६५), तथा चंद्र के कारणभूत शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष में पातालों के पवन का बढ़ना और घटना बतलाया गया है (४– २४०३) । यहाँ इस तथ्य से समानता रखता हुआ यूनान और चीन से सम्बन्धित उल्लेख ध्यान देने योग्य है । जहाँ ईसा पूर्व सातवीं सदी के चीनी ताओ सिद्धान्त के ग्रन्थ कुआन त्सु (Kuan Tzu) में चंद्रमा के शुक्ल और कृष्ण पक्ष में समुद्री जीवों का बढ़ना और घटना बतलाया है, वहाँ यूनान में एरिस्टाटिल (Aristotle) ने भी यही उल्लिखित किया है ।† गणित सम्बन्धी अन्य तुलनाएं तिलोय पण्णत्ती के गणित तथा टोडरमल की गोम्मटसार टीका आदि से की जा सकती हैं। इस सम्बन्ध में उल्लिखित ग्रन्थ के अन्य भाग (१-७) भी द्रष्टव्य हैं ।‡ यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में अनन्तात्मक राशियों का अल्पबहुत्व अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया है । दर्शन में गणित के प्रयुक्त करने की अनुपम प्रणाली "अल्प बहुत्व" में परिलक्षित होती है । केशववर्णी की गोम्मटसार टीका में इस तथा अन्य विषयक प्ररूपणा में प्रयुक्त प्रतीकों में शून्य, धन और ऋणादि के लिये एक से अधिक चिह्न उपयोग में लाये गये हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

उपर्युक्त अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पिथेगोरस कालीन अखिल विश्व में जो गणित युक्त दर्शन का पुनर्जागरण हुआ, उसके इतिहास की भग्न शृंखला की एक कड़ी वर्द्धमान महावीर का तीर्थ कालीन लोकोत्तर गणित (अर्थमितिकी) भी है ।

* Ibid. p. 213.

† Ibid. p. 150.

‡ चीनी π के मान ३, $\sqrt{१०}$, $\frac{३५५}{११३}$ तथा दाशमिक पद्धति सहित शलाका गणन द्रष्टव्य हैं ।

कृतज्ञता प्रकाशन

प्रस्तुत ग्रंथ के हिंदी अनुवाद की प्रेरणा मुझे डा० हीरालाल जैन ने प्रायः ग्यारह वर्ष पूर्व नागपुर में दी थी। इस सम्बन्ध में समय समय पर दिये गये उनके सुझावों के लिए मैं उनका आभारी हूँ। संस्कृत के विद्यार्थी होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये प्रस्तुत अनुवाद मुख्यतः प्रोफेसर एम. रंगाचार्य के सटीक आङ्ग्ल भाषानुवाद पर आधारित है। इस अनुवाद में शासन द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्दावलि का उपयोग किया गया है। संस्कृत के प्रूफ देखने का श्रेय डा. ए. एन. उपाध्ये को है।

इस कार्य में प्रयुक्त कतिपय ग्रंथों की पूर्ति पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहरलाल जी वर्णी "सहजानन्द" ने की, जिसके लिये मैं उनका चिर कृतज्ञ हूँ।

महाकौशल महाविद्यालय (रार्बटसन कालिज), जबलपुर के भूतपूर्व प्राचार्य स्वर्गीय श्री उमादास मुखर्जी का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपनी सहज दया का पात्र बनाकर प्रस्तुत अनुवाद के कार्य को भली भाँति सम्पन्न करने हेतु संरक्षण प्रदान किया। इसी महाविद्यालय के गणित विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर श्री सी. एस. राघवन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं के लिये भी मैं उनका आभारी हूँ।

मैं श्री वी. एस. पंडित, एडवोकेट, जबलपुर, तथा श्री प्रबोधचंद्र जैन, एडवोकेट, छिंदवाड़ा का आभारी हूँ जिनकी अप्रत्यक्ष सहायता के बिना यह कार्य न हो सका होता। अप्रकट रूप से सहायक विद्यार्थी वर्ग भी धन्यवाद का पात्र है।

अंत में, मैं उन ग्रंथकारों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके ग्रंथों की सहायता लेकर यह कार्य निष्पन्न हुआ है।

१० जनवरी, १९६२
गवर्नमेंट साइंस कालिज,
जबलपुर।

लक्ष्मीचंद्र जैन

महावीराचार्यप्रणीतः
गणितसारसंग्रहः

१. संज्ञाधिकारः

मङ्गलाचरणम्

अलङ्घ्यं त्रिजगत्सारं यस्यानन्तचतुष्टयम् । नमस्तस्मै जिनेन्द्राय महावीराय तायिने ॥ १ ॥
संख्याज्ञानप्रदीपेन जैनेन्द्रेण मह[1]त्विषा । प्रकाशितं जगत्सर्वं येन तं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥
[2]प्रीणितः प्राणिसस्यौघो[3] निरीतिर्निरवग्रहः । श्रीमताமोघवर्षेण येन स्वेष्टहितैषिणा ॥ ३ ॥
पापरूपाः परा यस्य चित्तवृत्तिहविर्भुजि । भस्मसा[4]द्भावमीयुस्तेऽवन्ध्यकोपोऽभ[5]वत्ततः ॥ ४ ॥
वशीकुर्वन् जगत्सर्वं स्व[6]यं नानुवशः परैः । नाभिभूतः प्रभुस्तस्मादपूर्वमकरध्वजः ॥ ५ ॥
यो विक्रमक्रमाक्रान्तच[7]क्रिचक्रकृतक्रियः । चक्रिकाभञ्जनो नाम्ना चक्रिकाभञ्जनोऽञ्जसा ॥ ६ ॥

१ MB मह० । २ M प्रणीतः । ३ M सर्गौ० । ४ MK सद्भां । ५ KPB भवेत् । ६ B योऽयं ।
७ M क्री० । ८ MB श०।

---

१. संज्ञा (पारिभाषिक शब्द) अधिकार

मङ्गलाचरण

जिन्होंने तीनों लोकों में सारभूत एवं मिथ्या दृष्टियों द्वारा अलंघ्य अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख नामक अनन्त चतुष्टय को प्राप्त किया, ऐसे रक्षक जिनेन्द्र भगवान् महावीर को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ मैं महान् विभूति को प्राप्त जिनेन्द्र को नमन करता हूँ जिन्होंने संख्या-ज्ञान के प्रदीप से समस्त विश्व को प्रकाशवान किया है ॥ २ ॥ धन्य हैं वे अमोघवर्ष (अर्थात् वे जो वास्तव में उपयोगी वृष्टि की वर्षा करते हैं,) जो हमेशा अपने प्रियपात्रों के हितचिन्तन में रहते हैं और जिनके द्वारा प्राणी तथा वनस्पति, महामारी और दुर्भिक्ष आदि से मुक्त होकर सुखी हुए हैं ॥ ३ ॥ जिन (अमोघवर्ष) के चित्त की क्रियायें अग्निपुंज सदृश होकर समस्त पापरूपी वैरियों को भस्म में परिणत करने में सफल हैं, और जिनका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता ॥ ४ ॥ जिन्होंने समस्त संसार को अपने वश में कर लिया है और जो किसी के वश में न रहकर शत्रुओं द्वारा पराजित नहीं हो सके हैं, अपूर्व मकरध्वज की तरह शोभायमान हैं ॥ ५ ॥ जिनका कार्य, अपने पराक्रम द्वारा पराभूत राजाओं के चक्र (समूह) द्वारा होता है, और जो न केवल नाम से चक्रिका भंजन हैं वरन् वास्तव में भी चक्रिका भंजन (अर्थात् जन्म और मरण के चक्र के नाशक[1]) हैं ॥ ६ ॥ जो अनेक ज्ञान सरिताओं के अधिष्ठाता

---

१ भविष्य की अपेक्षा से ।

यो विद्यानद्यधिष्ठानो मर्यादावज्रवेदिकः। रत्नगर्भो यथाख्यातचारित्रजलधिर्महान् ॥ ७ ॥
विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः[1]। देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्धतां तस्य शासनम् ॥ ८ ॥

गणितशास्त्रप्रशंसा

लौकिके वैदिके वापि[2] तथा सामायिकेऽपि[3] यः। व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ॥ ९ ॥
कामतन्त्रेऽर्थशास्त्रे च गान्धर्वे नाटकेऽपि वा। सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादिवस्तुषु ॥१०॥
छन्दोऽलङ्कारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु। कलागुणेषु सर्वेषु प्रस्तुतं गणितं परम्[4] ॥११॥
सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ। त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ[5] च सर्वत्राङ्गीकृतं हि तत् ॥१२॥
द्वीपसागरशैलानां[6] संख्याव्यासपरिक्षिपः[7]। भवनव्यन्तरज्योतिर्लोककल्पाधिवासिनाम् ॥१३॥

१ P वेदिनः। २ M स्यात्; B चापि। ३ B च। ४ KM महा⁰। ५ MB दण्डा⁰। ६ MB पुरा।
७ MM⁰ क्षिपाः।

होकर सच्चरित्रता की वज्रमयी मर्यादा वाले हैं और जो जैन-धर्म रूपी रत्न को हृदय में रखते हैं, इसलिये वे यथाख्यात चारित्र के महान् सागर के समान सुप्रसिद्ध हुए हैं ॥ ७ ॥ एकान्त पक्ष को नष्ट कर जो स्याद्वादरूपी न्यायशास्त्र के वादी हुए हैं ऐसे महाराज नृपतुंग का शासन फले-फूले ॥ ८ ॥

गणितशास्त्रप्रशंसा

सांसारिक, वैदिक तथा धार्मिक आदि सब कार्यों में गणित उपयोगी है ॥ ९ ॥ कामशास्त्र में, अर्थशास्त्र में, संगीत व नाट्यशास्त्र में, पाकशास्त्र (सूपशास्त्र) में और इसी तरह औषधि-शास्त्र में तथा वास्तु-विद्या (निर्माण-कला) में, छन्द, अलंकार, काव्य, तर्क, व्याकरण आदि इन सभी कलाओं में गणना का विज्ञान श्रेष्ठ माना जाता है ॥१०–११॥ सूर्य तथा अन्य ग्रह-नक्षत्रों की गति के संबंध में ग्रहण और ग्रह-संयुति (संयोग) के सम्बन्ध में, त्रिप्रश्न के विषय में और चन्द्रमा की गति के विषय में—सर्वत्र इसे उपयोग में लाते हैं ॥१२॥ द्वीपों, समुद्रों और पर्वतों की संख्या, व्यास और परिमिति; भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिर्लोकवासी, कल्पवासी देवों के तथा नारकी जीवों के श्रेणिबद्ध और इंद्रक

---

(८) 'स्यात' शब्द निपात है जो एकान्त का निराकरण करके अनेकान्त का प्रतिपादन करता है। यह शब्द 'कथंचित्' का पर्यायवाची है और एक निश्चित् अपेक्षा को निरूपित करता है। इस प्रकार, वैज्ञानिक एवं युक्तियुक्त स्याद्वाद जो जैन-दर्शन एवं तत्त्वज्ञान की नींव है, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने के हेतु उसके अनन्त धर्मों में से एक समय में एक धर्म का प्रतिपादन करता है। प्रत्येक धर्म का वर्णन उसके प्रतिपक्षी विरोधी धर्म की अपेक्षा से सप्तभंगी में किया जाता है। उदाहरणार्थ—अस्तित्व एक धर्म है, और नास्तित्व उसका प्रतिपक्षी धर्म है। अपने प्रतिपक्षी सापेक्ष अस्तित्व धर्म की अपेक्षा से सप्तभंगी इस प्रकार बनेगी—(१) घट कथंचित् है, (२) घट कथंचित् नहीं है, (३) घट कथंचित् है और नहीं है, (४) घट कथंचित् अवक्तव्य है, (५) घट कथंचित् है और अवक्तव्य है, (६) घट कथंचित् नहीं है और अवक्तव्य है, (७) घट कथंचित् है, नहीं है, और अवक्तव्य है।

(१२) त्रिप्रश्न संस्कृत के ज्योतिर्लोक विज्ञान विषयक ग्रन्थों में वर्णित एक अध्याय का नाम है जो तीन प्रश्नों के विषय में प्रतिपादन करने के कारण इस नाम से प्रसिद्ध है।

ये प्रश्न ग्रहादि ज्योतिष बिम्बों के सम्बन्ध में दिक् (दिशा), दशा (स्थिति) एवं काल (समय) विषयक होते हैं।

नारकाणां च सर्वेषां श्रेणीबन्धेन्द्रकोत्कराः । प्रकीर्णकप्रमाणाद्या बुध्यन्ते गणितेन ते ॥१४॥
प्राणिनां तत्र संस्थानमायुरष्टगुणादयः । यात्राद्याः संहिताद्याश्च सर्वे ते गणिताश्रयाः ॥१५॥
बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे । यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि ॥१६॥
तीर्थकृद्भ्यः कृतार्थेभ्यः पूज्येभ्यो जगदीश्वरैः । तेषां शिष्यप्रशिष्येभ्यः प्रसिद्धाद्गुरुपर्वतः ॥१७॥
जलधेरिव रत्नानि पाषाणादिव काञ्चनम् । शुक्तेर्मुक्ताफलानीव संख्याज्ञानमहोदधेः ॥१८॥
किंचिदुद्धृत्य तत्सारं वक्ष्येऽहं मतिशक्तितः । अल्पं ग्रन्थमनल्पार्थं गणितं सारसंग्रहम् ॥१९॥
संज्ञाम्भोभिरथो पूर्णे परिकर्मोरुवेदिके । कलासवर्णसंरूढलुटत्पाठीनसंकुले ॥२०॥
प्रकीर्णकमहाग्राहे त्रैराशिकतरङ्गिणि । मिश्रकव्यवहारोद्यत्सूक्तिरत्नांशुपिञ्जरे ॥२१॥
क्षेत्रविस्तीर्णपाताले खाताख्यसिकताकुले । करणस्कन्धसंबन्धच्छायावेलाविराजिते ॥२२॥
गुणकैर्गुणसंपूर्णैस्तदर्थमणयोऽमलाः । गृह्यन्तं करणोपायैः सारसंग्रहवारिधौ ॥२३॥

अथ संज्ञा

न शक्यतेऽर्थो बोद्धुं यत्सर्वस्मिन् संज्ञया विना । आदावतोऽस्य शास्त्रस्य परिभाषाभिधास्यते ॥२४॥

१ KMB बद्धे° । २ M वसु । ३ KP ज्ञान के स्थान में नव । ४ MB अल्प° । ५ K संज्ञातोयसमा° । ६ M द्ध (सम्भवतः त्थ को लिखने में भूल हुई है ।) ७ MB संकटे । ८ P त्र ।

(श्रेणिरहित) निवास-स्थानों के माप और अन्य सब प्रकार के विभिन्न माप—सभी गणित के द्वारा जाने जाते हैं ॥१३–१४॥ उन स्थानों में रहने वाले जीवों के संस्थान, आयु, उनके आठ गुण आदि, उनकी गति (यात्रा) आदि, उनका साथ रहना आदि, इन सबका आधार गणित है ॥१५॥ और व्यर्थ के प्रलापों से क्या लाभ है ? जो कुछ इन तीनों लोकों में चराचर (गतिशील और स्थिर) वस्तुएँ हैं उनका अस्तित्व गणित से विलग नहीं ॥१६॥ मैं, तीर्थ को उत्पन्न करने वाले, कृतार्थ और जगदीश्वरों से पूजित (तीर्थङ्करों) की शिष्य प्रशिष्यात्मक प्रसिद्ध गुरु परम्परा से आये हुए संख्याज्ञान महासागर से उसका कुछ सार एकत्रित कर, उसी तरह, जैसे कि समुद्र से रत्न, पाषाणमय चट्टान से स्वर्ण और शुक्त (oyster shell) से मुक्ताफल प्राप्त करते हैं, अल्प होते हुए भी अनल्प अर्थ को धारण करने वाले सारसंग्रह नामक गणित ग्रंथ को अपनी बुद्धि की शक्ति के अनुसार प्रकाशित करता हूँ ॥१७-१८-१९॥ तदनुसार, इस सारसंग्रह के सागर से, जो पारिभाषिक शब्दावलि रूपी जल से परिपूर्ण है और जिसकी आठ गणित की क्रियायें किनारे रूप हैं; पुनः जो भिन्न की क्रियाओं रूपी निर्भय गतिशील मछलियों से युक्त है और विविध प्रश्नों के अध्यायरूपी महाग्राह (मगर) से व्याप्त है; पुनः जो त्रैराशिक की अध्यायरूपी लहरों से आंदोलित है और मिश्र प्रश्नों के अध्याय-सम्बन्धी उत्कृष्ट भाषारूपी मोतियों की आभा से रंजित है, और पुनः जो क्षेत्रफल-सम्बन्धी प्रश्नों के अध्याय द्वारा पाताल तक विस्तृत है तथा घनफल के अध्याय रूपी रेत से पूर्ण है; और जो ज्योतिर्लोकीय व्यावहारिक गणना से सम्बन्धित छाया-सम्बन्धी अध्याय रूपी बढ़ते हुए ज्वार से चमकता है—(ऐसे ज्ञानसागर से) सम्पूर्ण गुण सम्पन्न गणितज्ञ गणित की सहायता से अपनी इच्छानुसार निर्मल मोती प्राप्त कर सकेंगे ॥२०–२३॥ इस विज्ञान के आरम्भ में आवश्यक पारिभाषिक शब्दावलि दी जाती है क्योंकि बिना शुद्ध परिभाषाओं के विषय तक पहुँच सम्भव नहीं है ॥२४॥

तत्र तावत् क्षेत्रपरिभाषा

जलानलादिभिर्नाशं यो न याति स पुद्गलः । परमाणुरनन्तैस्तैरणुः सोऽत्रादिरुच्यते ॥२५॥
त्रसरेणुरतस्तस्माद्रथरेणुः शिरोरुहः । परमध्यजघन्याख्यो भोगभूकर्मभूभुवाम् ॥२६॥
लीक्षा तिलस्स एवेह सर्षपोऽर्थे यवोऽङ्गुलम् । क्रमेणाष्टगुणान्येतद्व्यवहाराङ्गुलं मतम् ॥२७॥
तत्पञ्चशतं प्रोक्तं प्रमाणं मानवेदिभिः । वर्तमाननराणामङ्गुलमात्माङ्गुलं भवेत् ॥२८॥
व्यवहारप्रमाणे द्वे राद्धान्ते लौकिके विदुः । आत्माङ्गुलमिति त्रेधा तिर्यक्पादः षडङ्गुलैः ॥२९॥
पादद्वयं वितस्तिः स्यात्ततो हस्तो द्विसङ्गुणः । दण्डो हस्तचतुष्केण क्रोशस्तद्द्विसहस्रकम् ॥३०॥
योजनं चतुरः क्रोशान्प्राहुः क्षेत्रविचक्षणाः । वक्ष्यतेऽतः परं कालपरिभाषा यथाक्रमम् ॥३१॥

अथ कालपरिभाषा

अणुरण्वन्तरं काले व्यतिक्रामति यावति । स कालः समयोऽसंख्यैः समयैरावलिर्भवेत् ॥३२॥

१ KP णु । २ MB व॰ । ३ PB ख्य । ४ P थि । ५ M ऽन्ये ।

क्षेत्र परिभाषा [क्षेत्रमाप सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि]

पुद्गल का अनन्तवाँ सूक्ष्म वह भाग जो न तो पानी द्वारा, न अग्नि द्वारा और न अन्य किन्हीं ऐसी वस्तुओं द्वारा नाशको प्राप्त है, परमाणु कहलाता है। ऐसे अनन्त परमाणुओं द्वारा उत्पन्न एक-एक अणु क्षेत्रमाप में प्रथम माप है। इससे उत्पन्न क्रमशः आठ-आठ गुणे त्रसरेणु, रथरेणु, बालमाप, जूं माप, तिल या सरसों माप, यव माप तथा अंगुल माप हैं। अंगुल माप आदि उनके लिये हैं जो भोग-भूमि और कर्मभूमि में उत्पन्न होते हैं। ये उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य प्रकार के होते हैं। यह अंगुल व्यवहारांगुल भी कहलाता है ॥२५-२७॥ जो माप की विधियों से परिचित हैं, कथन करते हैं कि इस व्यवहार-अंगुल का ५०० गुणा प्रमाणांगुल होता है। वर्तमान काल के मनुष्यों की अंगुली का माप आत्मांगुल कहा जाता है ॥२८॥ वे कहते हैं कि संसार के स्थापित व्यवहारों में अंगुल तीन प्रकार का होता है, प्रथम व्यवहारांगुल, द्वितीय प्रमाणांगुल और तृतीय उनका आत्मांगुल। छः अंगुल मिलकर पाद-माप बनता है जो आरपार रूप से नापा जाता है ॥२९॥ दो ऐसे पाद मिलकर वितस्ति बनाते हैं और दो वितस्ति मिल कर एक हस्त बनता है। चार हस्त से एक दण्ड बनता है और दो हजार दंड मिलकर एक क्रोश बनता है ॥३०॥ जो क्षेत्रफल के मापज्ञान में सिद्धहस्त हैं, कहते हैं कि चार क्रोश मिलकर एक योजन होता है ॥३१॥ इसके पश्चात्, मैं समय के माप के सम्बन्ध में क्रमवार पारिभाषिक शब्दावलि का उल्लेख करता हूँ।

काल-परिभाषा [काल-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि]

वह काल जिसमें एक (गतिशील) अणु[1] किसी प्रदेशबिन्दु से दूसरे निकटतम प्रदेशबिन्दु तक जाता है समय कहलाता है। असंख्य समय मिलकर एक आवलि बनती है ॥३२॥

(२५-२७) क्षेत्रमाप-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि को स्पष्ट रूप से समझने के लिये परिशिष्ट ३ देखिये।

अणु से आठ गुना त्रसरेणु, त्रसरेणु से आठगुना रथरेणु, रथरेणु से आठगुना बालमाप इत्यादि जो माप वर्णित किये गये हैं। वे क्रमवार ऐसे हैं कि प्रत्येक पूर्वानुगामी माप से आठगुना है; तथा प्रत्येक उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य प्रकार का है।

१ यहाँ अणु का आशय परमाणु से है।

संख्या तावलिरुच्छ्वासः स्तोकस्तूच्छ्वाससप्तकः। स्तोकाः सप्त लवस्तेषां सार्धाष्टात्रिंशता घटी ॥३३॥
घटीद्वयं मुहूर्तोऽत्र मुहूर्तैस्त्रिंशता दिनम्। पञ्चदशैस्त्रिदिनैः पक्षः पक्षौ द्वौ मास इष्यते ॥३४॥
ऋतुर्मासद्वयेन स्यात्त्रिभिस्तैरयनं मतम्। तद्द्वयं वत्सरो वक्ष्ये धान्यमानमतः परम् ॥३५॥

अथ धान्यपरिभाषा

विद्धि षोडशिकास्तत्र चतस्रः कुडहो भवेत्। कुडहांश्चतुरः प्रस्थश्चतुः प्रस्थानथाढकम् ॥३६॥
चतुर्भिराढकैर्द्रोणो मानी द्रोणैश्चतुर्गुणैः। खारी मानी चतुष्केण खार्यः पञ्च प्रवर्तिकाः ॥३७॥
सेयं चतुर्गुणा वाहः कुम्भः पञ्च प्रवर्तिकाः। इतः परं सुवर्णस्य परिभाषा विभाष्यते ॥३८॥

अथ सुवर्णपरिभाषा

चतुर्भिर्गण्डकैर्गुञ्जा गुञ्जाः पञ्च पणोऽष्ट ते। धरणं धरणे कर्षः पलं कर्षचतुष्टयम् ॥३९॥

अथ रजतपरिभाषा

धान्यद्वयेन गुञ्जैका गुञ्जायुग्मेन माषकः। माषषोडशकेनात्र धरणं परिभाष्यते ॥४०॥

---

१ KB वो। २ K वां। ३ सम्पूर्ण धान्य परिभाषा के लिए, P और B में निम्नलिखित रूप में विशेष उल्लेख है। M का पाठान्तर, कोष्ठकों में अंकित किया गया है। आद्य षोडशिका तत्र कुड (डु) बः प्रस्थ आढकः। द्रोणो मानी ततः खारी क्रमेण (मताः) चतुराहताः॥ (सहस्रैश्च त्रिभिष्षड्-भिश्शतैश्च व्रीहिभिस्समम्। यस्सम्पूर्णोऽभवत्सोयं कुडुबः परिभाष्यते॥) प्रवर्तिकात्र ताः पञ्च वाहस्तस्या-श्चतुर्गुणः। कुम्भस्सपादवाहस्स्यात् (पञ्च प्रवर्तकाः कुम्भः) स्वर्णसंज्ञाथ वर्ण्यते॥

संख्यात आवलियों से उच्छ्वास बनता है, सात उच्छ्वासका एक स्तोक और सात स्तोक का एक लव होता है तथा साढ़े अड़तीस लव मिलकर एक घटी बनती है ॥३३॥ दो घटी का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्त का एक दिन, पंद्रह दिन का एक पक्ष और दो पक्ष का एक मास होता है ॥३४॥ दो मास मिलकर एक ऋतु, तीन ऋतुयें मिलकर एक अयन और दो अयन मिलकर एक वर्ष बनता है। इसके पश्चात् मैं धान्य के माप के विषय में उल्लेख करता हूँ ॥३५॥

धान्य-परिभाषा [धान्यमाप सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि]

चार षोडशिका मिलकर एक कुडहा बनता है, चार कुडहा मिलकर एक प्रस्थ बनता है और चार प्रस्थ का एक आढक होता है ॥३६॥ चार आढक का द्रोण, चार द्रोण की एक मानी, चार मानी की एक खारी और पाँच खारी की प्रवर्तिका होती है ॥३७॥ चार प्रवर्तिका का एक वाह और पाँच प्रवर्तिका का एक कुम्भ होता है। इसके पश्चात् स्वर्णमाप-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि दी जाती है ॥३८॥

सुवर्ण-परिभाषा [स्वर्णमाप सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि]

चार गंडक मिलकर एक गुंजा बनती है; पाँच गुंजा मिलकर एक पण बनता है और इसका आठगुणा एक धरण होता है। दो धरण मिलकर एक कर्ष बनता है और चार कर्ष मिलकर एक पल बनता है ॥३९॥

रजत-परिभाषा [रजतमाप सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि]

दो धान्य मिलकर एक गुंजा बनती है, दो गुंजा मिलकर एक माशा और सोलह माशा मिलकर एक धरण बनता है ॥४०॥ ढाई धरण का एक कर्ष एवं चार पुराण (या कर्ष) का एक पल होता है।

तद्द्वयं सार्धकं कर्षः पुराणांश्चतुरः पलम् । रूप्ये मागधमानेन प्राहुः संख्यानकोविदाः ॥४१॥

अथ लोहपरिभाषा

कला नाम चतुष्पादाः सपादाः षट्कला यवः । यवैश्चतुर्भिरंशः स्याद्भागोंऽशानां चतुष्टयम् ॥४२॥
द्रक्षूणो भागषट्केन दीनारोऽस्माद्द्विसङ्गुणः । द्वौ दीनारौ सतेरं स्यात्प्राहुर्लोहेऽत्र सूरयः ॥४३॥
पलैर्द्वादशभिः सार्धैः प्रस्थः फलशतद्वयम् । तुलादशतुलाभारैः संख्यादक्षाः प्रचक्षते ॥४४॥
वस्त्राभरणवेत्राणां युगलान्यत्र विंशतिः । कोटिकानन्तरं भाष्ये परिकर्माणि नामतः ॥४५॥

अथ परिकर्मनामानि

आदिमं गुणकारोऽत्र प्रत्युत्पन्नोऽपि तद्भवेत् । द्वितीयं भागहाराख्यं तृतीयं कृतिरुच्यते ॥४६॥
चतुर्थं वर्गमूलं हि भाष्यते पञ्चमं घनः । घनमूलं ततः षष्ठं सप्तमं च चितिः स्मृतम् ॥४७॥
तत्संकलितमप्युक्तं व्युत्कलितमतोऽष्टमम् । तच्च शेषमिति प्रोक्तं भिन्नान्यष्टावमून्यपि ॥४८॥

अथ धनर्णशून्यविषयकसामान्यनियमाः

ताडितः खेन राशिः खं सोऽविकारी हृतो युतः । हीनोऽपि खवधादिः खं योगे खं योज्यरूपकम् ॥४९॥

१ M सतेराख्यम् । २ M रं । ३ M डि । ४ M विद्यात्कला सवर्णस्य । यहाँ चौथी संयुक्ति और कर्तृवाच्य है ।

गणना में कुशल व्यक्ति कहते हैं कि मगध माप के अनुसार उपर्युक्त रजत-माप हैं ॥४१॥

लोह-परिभाषा [लोह धातुमाप-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि]

एक कला में चार पाद होते हैं; सवा छः कला का एक यव होता है; चार यव का एक अंश तथा चार अंश का एक भाग होता है ॥४२॥ छः भाग का एक द्रक्षूण, दो द्रक्षूण का एक दीनार और दो दीनार का एक सतेर होता है । लोह धातु के माप के सम्बन्ध में विद्वान् ऐसा कहते हैं ॥४३॥ साढ़े बारह पल मिलकर एक प्रस्थ होता है; दो सौ पल मिलकर एक तुला और दस तुला मिलकर एक भार होता है । ऐसा गणना में दक्ष विद्वान् कहते हैं ॥४४॥ इस माप में, बेत अथवा आभरण अथवा वस्त्रों के बीस युग्मों (जोड़ियों) की एक कोटिका होती है । इसके पश्चात् मैं गणित की मुख्य क्रियाओं के नाम देता हूँ ॥४५॥

परिकर्म नामावलि [गणित की मुख्य क्रियाओं के नाम]

इन क्रियाओं में प्रथम गुणकार (गुणा) है, और वह प्रत्युत्पन्न भी कहलाता है । दूसरी भागहार (भाग या भाजन) कहलाती है; और कृति (वर्ग करना) तीसरी क्रिया का नाम है ॥४६॥ चौथी, सामान्यतः वर्गमूल है और पाँचवी घन कहलाती है; छठवीं घनमूल और सातवीं चिति (योग) कहलाती है ॥४७॥ इसे संकलित भी कहते हैं । आठवीं व्युत्कलित (पूरी श्रेढि में से आरम्भ से ली गई उसी श्रेढि का कुछ भाग घटा देना) है जो शेष भी कहलाती है ॥४८॥

ये सब आठ क्रियायें भिन्न में भी प्रयुक्त होती हैं ।

शून्य तथा धनात्मक एवं ऋणात्मक राशियों सम्बन्धी सामान्य नियम

कोई भी संख्या शून्य से गुणित होने पर शून्य हो जाती है और वह चाहे शून्य के द्वारा विभाजित अथवा शून्य द्वारा घटाई जावे या शून्य में जोड़ी जावे, बदलती नहीं है ।

गुणा तथा अन्य क्रियाएँ शून्य के सम्बन्ध में शून्य की उत्पत्ति करती है और योग की क्रिया में शून्य वही संख्या हो जाता है जिसमें वह जोड़ा जाता है ॥४९॥

---

(४९) यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि कोई संख्या जब शून्य द्वारा भाजित की जाती है,

ऋणयोर्धनयोर्घाते भजने च फलं धनम्। ऋणं धनर्णयोस्तु स्यात्स्वर्णयोर्विवरं युतौ ॥५०॥
ऋणयोर्धनयोर्योगो यथासंख्यमृणं धनम्। शोध्यं धनमृणं राशेः ऋणं शोध्यं धनं भवेत् ॥५१॥
धनं धनर्णयोर्वर्गो मूले स्वर्णे तयोः क्रमात्। ऋणं स्वरूपतोऽवर्गो यतस्तस्मान्न तत्पदम् ॥५२॥

अथ संख्यासंज्ञा

शशी सोमश्च चन्द्रेन्दू प्रालेयांशू रजनीकरः। श्वेतं हिमगु रूपं च मृगाङ्कश्च कलाधरः ॥५३॥
द्वि द्वे द्वावुभौ युगलयुग्मं च लोचनं द्वयम्। दृष्टिर्नेत्राम्बकं द्वन्द्वमक्षि चक्षुर्नयं दृशौ ॥५४॥
हरनेत्रं पुरं लोकं त्रै (त्रि) रत्नं भुवनत्रयम्। गुणो वह्निः शिखी ज्वलनः पावकश्च हुताशनः ॥५५॥
अम्बुधिर्विषधिर्वार्धिः पयोधिः सागरो गतिः। जलधिर्बन्धश्चतुर्वेदः कषायः सलिलाकरः ॥५६॥
इषुर्बाणं शरं शस्त्रं भूतमिन्द्रियसायकम्। पञ्च व्रतानि विषयः करणीयस्कन्तुसायकः ॥५७॥
ऋतुजीवा रसो लेश्या द्रव्यं च षट्कं खरम्। कुमारवदनं वर्णं शिलीमुखपदानि च ॥५८॥
शैलमद्रिर्भयं भूध्रो नगाचलमुनिर्गिरिः। अश्वाश्विपन्नगा द्वीपं धातुर्व्यसनमातृका ॥५९॥
अष्टौ तनुर्गजः कर्म वसुवारणपुष्करम्। द्विरदं दन्ती दिग्धुरितं नागानीकं करी यथा ॥६०॥

१ केवल M में ५३ से ६८ तक गाथाएँ प्राप्त हुई हैं। ये मूल में यत्र तत्र अशुद्ध हैं।

दो ऋणात्मक या दो धनात्मक राशियाँ एक दूसरे से गुणित करने पर या भाजित होने पर धनात्मक राशि उत्पन्न करती हैं। परन्तु, दो राशियाँ जिनमें एक धनात्मक तथा दूसरी ऋणात्मक एक दूसरे से गुणित अथवा भाजित होने पर ऋणात्मक राशि उत्पन्न करती हैं। धनात्मक और ऋणात्मक राशि जोड़ने पर प्राप्त फल उनका अन्तर होता है ॥५०॥ दो ऋणात्मक राशियों या दो धनात्मक राशियों का योग क्रमशः ऋणात्मक और धनात्मक राशि होता है। किसी दी हुई संख्या में से धनात्मक राशि घटाने के लिये उसे ऋणात्मक कर देते हैं और ऋणात्मक राशि घटाने के लिये उसे धनात्मक कर देते हैं (ताकि दोनों क्रियाओं में केवल योग से इष्ट फल की प्राप्ति हो जावे।) ॥५१॥

धनात्मक तथा ऋणात्मक राशि का वर्ग धनात्मक होता है; और उस वर्ग राशि के वर्गमूल क्रमशः धनात्मक और ऋणात्मक होते हैं। चूँकि वस्तुओं के स्वभाव (प्रकृति) में ऋणात्मक राशि, वर्गराशि नहीं होती इसलिये उसका कोई वर्गमूल नहीं होता ॥५२॥ अगले दस सूत्रों में कुछ वस्तुओं के नाम दिये गये हैं जो बारंबार अंकों और संख्याओं को प्रदर्शित करने के लिये अंकगणित संकेतना में प्रयुक्त किये

तब वह वास्तव में अपरिवर्तित नहीं रहती है। भास्कर ने ऐसे शून्य भागों को खहर कहा है और उसका मान अयथार्थ अनन्त दिया है। महावीराचार्य स्पष्टतः सोचते हैं कि शून्य द्वारा भाजन, भाजन ही नहीं। डाक्टर हीरालाल जैन ने इस पर यह सुझाव दिया है कि सम्भवतः ग्रंथकार का ऐसे भाजन से निम्नलिखित अभिप्राय हो—

मानलो २० वस्तुएँ ५ व्यक्तियों में बाँटना है, तब प्रत्येक व्यक्ति को ४ वस्तुएँ उपलब्ध होंगी। यदि इन २० वस्तुओं का विभाजन ० (शून्य) व्यक्तियों में करना हो तब कोई व्यक्ति ही न रहने से वह संख्या अपरिवर्तित रहेगी।

(५२) यह सूत्र महावीराचार्य की सूक्ष्म अंतर्दृष्टि का प्ररूपक है। इसके विषय में हम प्रस्तावना में ही संकेत कर चुके हैं। साधारणतः किसी धनात्मक राशि का वर्गमूल निकालने पर (धनात्मक एवं ऋणात्मक) दो राशियाँ उत्पन्न होती हैं, उनमें से इष्ट फल प्राप्ति के लिये धनात्मक या ऋणात्मक वर्गमूल ग्रहण करना उपयुक्त होता है। इस प्रकार ग्रंथकार द्वारा निर्दिष्ट यह नियम भी उनकी प्रतिभा का निरूपक है।

नव नन्दं च रन्ध्रं च पदार्थं लब्धकेशवौ । निधिरत्नं ग्रहाणं च दुर्गानाम च संख्यया ॥६१॥
आकाशं गगनं शून्यमम्बरं खं नभो वियत् । अनन्तमन्तरिक्षं च विष्णुपादं दिवि स्मरेत् ॥६२॥

अथ स्थाननामानि

एकं तु प्रथमस्थानं द्वितीयं दशसंज्ञिकम् । तृतीयं शतमित्याहुः चतुर्थं तु सहस्रकम् ॥६३॥
पञ्चमं दशसाहस्रं षष्ठं स्याल्लक्षमेव च । सप्तमं दशलक्षं तु अष्टमं कोटिरुच्यते ॥६४॥
नवमं दशकोट्यस्तु दशमं शतकोटयः । अर्बुदं रुद्रसंयुक्तं न्यर्बुदं द्वादशं भवेत् ॥६५॥
खर्वं त्रयोदशस्थानं महाखर्वं चतुर्दशम् । पद्मं पञ्चदशं चैव महापद्मं तु षोडशम् ॥६६॥
क्षोणी सप्तदशं चैव महाक्षोणी दशाष्टकम् । शङ्खं नवदशं स्थानं महाशङ्खं तु विंशकम् ॥६७॥
क्षित्यैकविंशतिस्थानं महाक्षित्या द्विविंशकम् । त्रिविंशकमथ क्षोभं महाक्षोभं चतुर्नयम् ॥६८॥

अथ गणकगुणनिरूपणम्

लघुकरणोहापोहानालस्यग्रहणधारणोपायैः । व्यक्तिकराङ्कविशिष्टैर्गणकोऽष्टाभिर्गुणैर्ज्ञेयः ॥६९॥
इति संज्ञा समासेन भाषिता मुनिपुङ्गवैः । विस्तरेणागमाद्वेद्यं वक्तव्यं यदितः परम् ॥७०॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ संज्ञाधिकार समाप्तः ॥

गये हैं। वे यहाँ अनुवादित नहीं किये गये हैं ॥५३-६२॥

स्थान-नामावलि [संकेतनात्मक स्थानों के नाम]

प्रथम स्थान वह है जो एक (इकाई) कहलाता है, दूसरा स्थान दश (दहाई), तीसरा स्थान शत (सैकड़ा) और चौथा सहस्र (हजार) कहलाता है ॥६३॥ पाँचवा दस सहस्र (दस हजार), छटवाँ लक्ष (लाख), सातवाँ दशलक्ष (दस लाख) और आठवाँ कोटि (करोड़) कहलाता है ॥६४॥ नौवाँ दशकोटि (दस करोड़) और दसवाँ शतकोटि (सौ करोड़) कहलाता है। ग्यारहवाँ स्थान अरबुद (अरब) और बारहवाँ न्यर्बुद (दस अरब) कहलाता है ॥६५॥ तेरहवाँ स्थान खर्व (खरब) और चौदहवाँ महाखर्व (दस खरब) कहलाता है। इसी तरह, पंद्रहवाँ पद्म और सोलहवाँ महापद्म कहलाता है ॥६६॥ पुनः सत्रहवाँ क्षोणी, अठारहवाँ महाक्षोणी कहलाता है। उन्नीसवाँ स्थान शङ्ख और बीसवाँ महाशङ्ख कहलाता है ॥६७॥ इक्कीसवाँ स्थान क्षित्या, बाईसवाँ महाक्षित्या कहलाता है। तेईसवाँ क्षोभ और चौबीसवाँ महाक्षोभ कहलाता है ॥६८॥

गणकगुणनिरूपण

निम्नलिखित आठ गुणों से गणितज्ञ की पहिचान होती है—

(१) लघुकरण—हल करने में शीघ्र गति, (२) ऊह—अग्रविकल्प, कि इच्छित फल प्राप्त हो सकेगा, (३) अपोह—अग्रविकल्प, कि इच्छित फल प्राप्त नहीं होगा, (४) अनालस्य—प्रमाद न होना, (५) ग्रहण—समझने की शक्ति, (६) धारण—स्मरण रखने की शक्ति, (७) उपाय—साधन करने की नई रीतियाँ खोजना, एवं (८) व्यक्तिकराङ्क—उन संख्याओं तक पहुँचने का सामर्थ्य रखना जो अज्ञात राशियों को ज्ञात बना सकें ॥६९॥ इस प्रकार, मुनि पुङ्गवों ने संक्षेप में परिभाषाओं का कथन किया है। जो कुछ इसके विषय में आगे विस्तार रूप से कहा जाना चाहिए उसे आगम[1] के अध्ययन से ज्ञात करना चाहिये। इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणित-शास्त्र में, संज्ञा अधिकार समाप्त हुआ ॥७०॥

---

१ यहाँ आगम का आशय, सम्भवतः जिनागम प्रणीत अलौकिक गणित से हो जिसके विषय में ग्रंथकार द्वारा मात्र यहीं संकेत किया गया प्रतीत होता है।

२. परिकर्मव्यवहारः

इतः परं परिकर्माभिधानं प्रथमव्यवहारमुदाहरिष्यामः ।

प्रत्युत्पन्नः

तत्र प्रथमे प्रत्युत्पन्नपरिकर्मणि करणसूत्रं यथा—

गुणयेद्गुणेन गुण्यं कवाटसंधिक्रमेण संस्थाप्य । राश्यर्धखण्डतत्स्थैरनुलोमविलोममार्गाभ्याम् ॥१॥

१ K तत्र च । २ K और B विन्यस्योभौ राशी । ३ K और B सङ्गुणयेत् ।

---

२. परिकर्म व्यवहार [अङ्कगणित सम्बन्धी क्रियाएँ]

इसके पश्चात्, हम परिकर्म नामक प्रथम व्यवहार प्रकट करते हैं।

प्रत्युत्पन्न (गुणन)

परिकर्म क्रियाओं में प्रथम गुणन के क्रिया-सम्बन्धी नियम निम्नलिखित हैं—

जिस तरह दरवाजे की कोरें रहती हैं, उसी प्रकार गुण्य और गुणक को एक-दूसरे के नीचे रखकर, गुण्य को गुणक से दो रीतियों (अनुलोम अथवा विलोम क्रम से हल करने की विधियों) में से किसी एक द्वारा गुणित करना चाहिये। प्रथम विधि में गुण्य के खंड द्वारा गुण्य को विभाजित और गुणक को गुणित करते हैं। द्वितीय विधि में, गुणक के खंड द्वारा गुणक को विभाजित तथा गुण्य को गुणित करते हैं। तृतीय विधि में उन्हें उसी रूप में लेकर गुणन करते हैं॥ १ ॥

(१) प्रतीक रूप से यह नियम इस प्रकार है—

'अब' को 'सद' से गुणा करने पर गुणनफल (i) $\frac{\text{अब}}{\text{अ}}$ × (अ × सद); या (ii) (अब × स) × $\frac{\text{सद}}{\text{स}}$ या (iii) अब × सद होता है। यह स्पष्ट है कि प्रथम दो विधियों को उपर्युक्त गुणनखण्डों के चुनाव द्वारा क्रिया को सरल करने के उपयोग में लाते हैं।

अनुलोम, अथवा हल करने की सामान्य विधि वह है जो व्यापक रूपसे उपयोग में लाई जाती है। विलोम विधि निम्नलिखित है—

१९९८ में २७ का गुणा करने के लिये—

प्रत्येक स्तंभ का योग करने पर उत्तर ५३९४६ प्राप्त होता है

१९९८
२७

२×१	२				
२×९	१	८			
२×९		१	८		
२×८			१	६	
७×१		७			
७×९		६	३		
७×९			६	३	
७×८				५	६
	५	३	९	४	६

अत्रोद्देशकः

दत्तान्येकैकस्मै[1] जिनभवनायाम्बुजानि तान्यष्टौ । वसतीनां चतुरुत्तरचत्वारिंशच्छतायै[2] कति[3] ॥२॥
नव पद्मरागमणयः समर्चिता एकजिनगृहे दृष्टाः । साष्टाशीतिद्विशतीमितवसतिषु ते कियन्तः स्युः ॥३॥
[4]चत्वारिंशच्चैकोनशताधिकपुष्यरागमणयोऽ[5]र्च्याः ।
एकस्मिन् जिनभवने सनवशते ब्रूहि क[6]ति मणयः ॥ ४ ॥
पद्मानि सप्तविंशतिरेकस्मिन्[7] जिनगृहे प्रदत्तानि ।
साष्टानवतिसहस्रे[8] सनवशते तानि कति कथय ॥ ५ ॥
[9]एकैकस्यां वसतावष्टोत्तरशतसुवर्णपद्मानि । एकाष्टचतुः सप्तकनवषट्पञ्चाष्टकानां किम् ॥ ६ ॥
शशिवसुखरजलनिधिनवपदार्थभयनयसमूहमास्थाप्य ।
हिमकरविषनिधिगतिभिर्गुणिते किं [10]राशिपरिमाणम् ॥ ७ ॥
हिमगुपयोनिधिगतिशशिवह्निव्रतनिचयमत्र संस्थाप्य[11] ।
सैकाशीत्या त्वं[12] मे गुणयित्वाचक्ष्व[13] तत्संख्याम् ॥ ८ ॥
अग्निवसुखरभयेन्द्रियशशलाञ्छनराशिमत्र संस्थाप्य[14] ।
रन्ध्रैर्गुणयित्वा मे कथय सखे राशिपरिमाणम् ॥ ९ ॥

---

१ B स्य हि । २ B नरया । ३ B शतस्य कति भवनानाम् । ४ M B चत्वारिंशद्व्यका शताधिका । ५ M ऽच्छाः । ६ M ते कियन्तस्स्युः । ७ M एकैकजिनालयाय दत्तानि । ८ M प्रयुक्त-नवशतगृहाणां किम् । ९ (यह श्लोक केवल M और B में प्राप्य है) । १० M और B किरतस्य । ११ M प्यम् । १२ M अहो । १३ M मे शीघ्रम् । १४ B विन्यस्य ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रत्येक जिनमन्दिर में आठ-आठ कमल पुष्प चढ़ाये गये । बतलाओ कि १४४ मंदिरों को कितने दिये गये ? ॥ २ ॥ नौ पद्मराग मणि केवल एक जिनमन्दिर में पूजन में अर्पित किये हुए देखे जाते हैं । २८८ मंदिरों में (उसी दर से) कितने अर्पित किये गये ? ॥ ३ ॥ एक जिनमंदिर में १३९ पुष्यरागमणि पूजन में भेंट किये जाते हैं । बतलाओ, १०९ मंदिरों में कितने मणि भेंट किये गये ? [मूल गाथा में १३९ को १०० + ४० − १ रूप में लिखा हुआ है] ॥ ४ ॥ २७ कमल के फूल एक जिनमंदिर में भेंट किये गये । बतलाओ कि इस दर से १९९८ मंदिरों में कितने कमल भेंट किये गये ? [मूल गाथा में १९९८ को १०९८ + ९०० लिखा है] ॥ ५ ॥ प्रत्येक मंदिर को १०८ स्वर्ण कमल भेंट की दर से, ८५६९७४८१ मंदिरों में कितने दिये जायेंगे ? ॥ ६ ॥ १, ८, ६, ४, ९, ९, ७ और २ अंकों को इकाई के स्थान से लेकर ऊपर के स्थानों तक रखने से बनाई गई संख्या को ४४१ से गुणित करने पर क्या फल प्राप्त होगा ? ॥ ७ ॥ इस प्रश्न में, १, ४, ४, १, ३ और ५ अंकों को इकाई के स्थान से लेकर ऊपर के स्थानों तक रखकर, प्राप्त की हुई संख्या को ८१ से गुणित करो और बतलाओ कि कौन सी संख्या प्राप्त होगी ? ॥ ८ ॥ इस प्रश्न में १५७६८३ संख्या लिखकर उसे ९ से गुणित करो और तब, हे मित्र ! मुझे बतलाओ कि गुणनफल राशि क्या होगी ? ॥ ९ ॥ इस प्रश्न में १२३४५६७९ संख्या को ९ से गुणित करते हैं । यह गुणनफल राशि आचार्य महावीर के कथनानुसार, नरपाल के कण्ठ आभरण

नेन्द्वाग्न्यृतुशरचतुस्त्रिद्वन्द्वैकं स्थाप्यमत्र नवगुणितम् ।
आचार्यमहावीरैः कथितं नरपालकण्ठिकाभरणम् ॥१०॥
षट्त्रिकं पञ्चषट्कं च सप्त चादौ प्रतिष्ठितम् । त्रयस्त्रिंशत्संगुणितं कण्ठाभरणमादिशेत् ॥११॥
हुतवहगतिशशिमुनिभिर्वसुनयगतिचन्द्रमत्र संस्थाप्य ।
शैलेन तु गुणयित्वा कथयेदं रत्नकण्ठिकाभरणम् ॥१२॥
अनलाब्धिहिमगुमुनिशरदुरिताक्षिपयोधिसोममास्थाप्य ।
शैलेन तु गुणयित्वा कथय त्वं राजकण्ठिकाभरणम् ॥१३॥
गिरिगुणदिविगिरिगुणदिविगिरिगुणनिकरं तथैव गुणगुणितम् ।
पुनरेवं गुणगुणितम् एकादिनवोत्तरं विद्धि ॥१४॥
सप्त शून्यं द्वयं द्वन्द्वं पञ्चैकं च प्रतिष्ठितम् । त्रयः सप्ततिसंगुण्यं कण्ठाभरणमादिशेत् ॥१५॥
जलनिधिपयोधिशशधरनयनद्रव्याक्षिनिकरमास्थाप्य ।
गुणिते तु चतुःषष्ट्या का संख्या गणितविद्ब्रूहि ॥१६॥
शशाङ्केन्दुखैकेन्दुशून्यैकरूपं निधाय क्रमेणात्र राशिप्रमाणम् ।
हिमांशुप्ररन्ध्रैः प्रसंताडितेऽस्मिन् भवेत्कण्ठिका राजपुत्रस्य योग्या ॥१७॥

इति परिकर्मविधौ प्रथमः प्रत्युत्पन्नः समाप्तः ।

१ श्लोक १० से १५ तक केवल M और B में प्राप्य हैं । २ सभी हस्तलिपियों में 'स्थाप्य तत्र' पाठ है । ३ B शे । ४ B नयं १० सभी हस्तलिपियों में छंद रूपेण अशुद्ध पाठ "कण्ठाभरणं विनिर्दिशेत्" है ।

की रचना करती है ॥१०॥ ३ को छः बार, ६ को पाँच बार, और ७ को एक बार अवरोही क्रम से (इकाई के स्थान की ओर) लिखकर, इस संख्या का ३३ से गुणन करने पर एक प्रकार के हार की संख्या प्राप्त होती है ॥११॥ इस प्रश्न में, ३, ४, १, ७, ८, २, ४ और १ अंकों को इकाई के स्थान से ऊपर की ओर के क्रम में लिखने पर संख्या का ७ से गुणन करो; और तब कहो कि वह रत्न कंठिका नामक आभरण है ॥ १२ ॥ १४२८५७१४३ संख्या को लिखकर उसे ७ से गुणित करो; और तब कहो कि वह राजकण्ठिका आभरण है ॥१३॥ इसी तरह, ३७०३७०३७ को ३ से गुणित करो । इस गुणनफल को फिर गुणित करो ताकि गुणक क्रमशः एक से लेकर ९ तक हों ॥१४॥ ७, ०, २, २, ५ और १ अंकों को (इकाई के स्थान से ऊपर की ओर के क्रम में) रखते हैं । और इस संख्या को ७३ से गुणित करते हैं । प्राप्त संख्या को कण्ठ आभरण कहते हैं ॥१५॥ इकाई के स्थान से ऊपर की ओर अंक ४, ४, १, २, ६ और २ क्रमानुसार लिखकर, प्रकल्पित संख्या को ६४ से गुणित करने पर हे गणित विद्ब्रूहि, बतलाओ कि कौन सी संख्या प्राप्त होगी ? ॥१६॥ इस प्रश्न में, इकाई के स्थान से ऊपर की ओर १, १, ०, १, १, ०, १ और १ अंकों को क्रमानुसार रखने से एक विशेष संख्या का मान होता है; और तब इस संख्या में ९१ का गुणा करने पर राजपुत्र के योग्य कण्ठहार प्राप्त होता है ॥१७॥

इस प्रकार, परिकर्म व्यवहार में, प्रत्युत्पन्न नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

(१०) इसमें तथा अन्य गाथाओं में कुछ संख्याएँ विभिन्न प्रकार के हारों की रचना करती हुई मानी गई हैं; क्योंकि उनमें एक से अंकों का शीघ्र ही दृष्टिगोचर होनेवाला सम्मितीय विन्यास रहता है ।

(११) यहाँ गुण्य ३३३३३३६६६६६७ है ।

(१४) यह प्रश्न, स्वतः, इस रूपमें अवतरित हो जाता है : ३७०३७०३७ × ३ को १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ और ९ द्वारा क्रमानुसार गुणित करो ।

भागहारः

द्वितीये भागहारकर्मणि करणसूत्रं यथा—

[1]विन्यस्य भाज्यमानं तस्याधःस्थेन भागहारेण। सदृशापवर्तविधिना भागं कृत्वा फलं प्रवदेत् ॥१८॥

अथवा—

प्रतिलोमपथेन भजेद्भाज्यमधःस्थेन भागहारेण। सदृशापवर्तनविधिर्यद्यस्ति विधाय तमपि तयोः॥१९॥

अत्रोद्देशकः

दीनाराष्टसहस्रं द्वानवतियुतं शतेन संयुक्तम्। चतुरुत्तरषष्टिनरैर्भक्तं कोंऽशो नुरेकस्य ॥२०॥

रूपाग्रसप्तविंशतिशतानि कनकानि यत्र भाज्यन्ते। सप्तत्रिंशत्पुरुषैरेकस्यांशं[2] ममाचक्ष्व ॥२१॥

दीनारदशसहस्रं त्रिशतयुतं सप्तवर्गसंमिश्रम्। नवसप्तत्या पुरुषैर्भक्तं[3] किं लब्धमेकस्य ॥२२॥

[4]अयुतं चत्वारिंशच्चतुस्सहस्रैकशतयुतं हेम्नाम्[5]। नवसप्ततिवसतीनां दत्तं वित्तं किमेकस्याः ॥२३॥

[6]सप्तदशत्रिशतयुतान्येकत्रिंशत्सहस्रजम्बूनि। भक्तानि नवत्रिंशन्नरैर्वदैकस्य भागं त्वम् ॥२४॥

१ यह श्लोक P में प्राप्य नहीं है। २ K स। ३ M कोंऽशो नुरेकस्य। ४ यह श्लोक P में प्राप्य नहीं है। ५ B और K हेमम्। ६ इस श्लोक में दिये गये प्रश्न का पाठ M में निम्न प्रकार है—

त्रिशतयुतैकत्रिंशत्सहस्रयुक्ता दशाधिकाः सप्त।
भक्ताश्चत्वारिंशत्पुरुषैरेकोनैरत्र दीनारम् ॥

भागहार [भाग]

परिकर्म क्रियाओं में द्वितीय, भागहार क्रिया का नियम निम्नलिखित है—

भाज्य को लिखकर उसे उभयनिष्ठ (साधारण) गुणनखंडों को अलग करने के रीति के अनुसार भाजक द्वारा भाजित करो। भाजक को भाज्य के नीचे रखो और तब, परिणामी भजनफल को प्राप्त करो ॥१८॥ अथवा—यदि सम्भव हो, तो उभयनिष्ठ गुणनखंड को निरसित करने की विधि से, भाज्य के नीचे भाजक को रखकर, भाज्य को प्रतिलोम विधि से अर्थात् बायें से दायें भाजित करना चाहिये ॥१९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

६४ व्यक्तियों में ८१९२ दीनार बाँटे गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में कितने आये हैं? ॥२०॥ मुझे एक व्यक्ति का हिस्सा बतलाओ जब कि २७०१ स्वर्ण के टुकड़े ३७ व्यक्तियों में बाँटे जाते हैं। ॥२१॥ १०३४९ दीनार ७९ व्यक्तियों में बाँटे जाते हैं। बतलाओ एक व्यक्ति को क्या प्राप्त होगा? ॥२२॥ १४१४१ स्वर्ण के टुकड़े ७९ मंदिरों में दिये जाते हैं। बतलाओ प्रत्येक मंदिर में कितना धन दिया जाता है? ॥२३॥ ३१३१७ जम्बू फल (गुलाबी सेव) ३९ व्यक्तियों में बाँटे गये हैं। प्रत्येक का अंश (हिस्सा) बतलाओ? ॥२४॥ ३१३१३ जम्बू फल १८१ व्यक्तियों में बाँटे गये हैं। प्रत्येक का अंश

(२०) मूल गाथा में ८१९२ को ८००० + ९२ + १०० द्वारा लिखित किया गया है।
(२२) मूल गाथा में १०३४९ को १०००० + ३०० + (७)² द्वारा निदर्शित किया गया है।
(२३) यहाँ १४१४१ को १०००० + (४० + ४००० + १ + १००) द्वारा कथित किया गया है।
(२४) यहाँ ३१३१७ को १७ + ३०० + ३१००० द्वारा दर्शाया गया है।

त्र्यधिकदशत्रिशतयुतान्येकत्रिंशत्सहस्रजम्बूनि । सैकाशीतिशतेन प्रहृतानि नरैर्वदैकांशम् ॥२५॥
त्रिदशसहस्री सैकाषष्टिद्विशतीसहस्रषट्कयुता । रत्नानां नवपुंसां दत्तैकनरोऽत्र किं लभते ॥२६॥
एकादिषडन्तानि क्रमेण हीनानि हाटकानि सखे । विधुजलधिबन्धसंख्यैर्नरैर्हृतान्येकभागः कः॥२७॥
त्र्यशीतिमिश्राणि चतुःशतानि चतुस्सहस्रघ्ननगान्वितानि ।
रत्नानि दत्तानि जिनालयानां त्रयोदशानां कथयैकभागम् ॥२८॥

इति परिकर्मविधौ द्वितीयो भागहारः समाप्तः ॥

वर्गः

तृतीये वर्गपरिकर्मणि करणसूत्रं यथा—

द्विसमवधो घातो वा स्वेष्टोनयुतद्वयस्य सेष्टकृतिः । एकादिद्विचयेच्छागच्छयुतिर्वा भवेद्वर्गः ॥२९॥

१ यह श्लोक केवल M में प्राप्य है ।

२ M एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्कैर्हीनाः क्रमेण संभक्ताः ।
नैकचतुःशतसंयुतचत्वारिंशज्जिनालयानां किम् ॥

बतलाओ ? ॥२५॥ ३६२६१ मणि ९ व्यक्तियों को बराबर-बराबर दिये जाते हैं । एक व्यक्ति कितने मणि प्राप्त करता है ? ॥२६॥ हे मित्र, एक से आरम्भ कर ६ तक के अंकों को इकाई के स्थान से ऊपर की ओर के क्रम में रखकर और फिर क्रमानुसार ह्रासित अंकों द्वारा संरचित संख्या की सुवर्ण-मुद्राएँ ४४१ व्यक्तियों में वितरित की जाती हैं । प्रत्येक को कितनी मिलती हैं ? ॥२७॥ २८४८३ मणि १३ जिन मंदिरों में भेंट स्वरूप दिये जाते हैं । प्रत्येक मंदिर को कितना अंश प्राप्त होता है ? ॥२८॥

इस प्रकार, परिकर्म व्यवहार में, भागहार [भाग] नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

वर्ग

परिकर्म क्रियाओं में तृतीय [वर्ग करने की क्रिया] के नियम निम्नलिखित हैं—

दो सम राशियों का गुणनफल; अथवा दो सम राशियों में से किसी एक चुनी संख्या को प्रथम राशि में से घटाकर प्राप्त फल तथा दूसरी राशि में उस चुनी हुई संख्या को जोड़ने से प्राप्त फल, इन दोनों फलों के गुणनफल में उस चुनी हुई संख्या का वर्गफल जोड़ने पर प्राप्तफल, अथवा, गुणोत्तर श्रेढि (जिसमें प्रथमपद १ है और प्रचय २ है) का अ पदों तक का योगफल, उस इच्छित राशि का वर्ग होता है ॥२९॥ दो या तीन या इससे अधिक संख्याओं का वर्ग, उन सब संख्याओं के वर्ग के योग

---

(२५) यहाँ ३१३१३ को १३ + ३०० + ३१००० द्वारा दर्शाया गया है ।

(२६) यहाँ ३६२६१ को ३०००० + १ + (६० + २०० + ६०००) द्वारा दर्शाया गया है ।

(२७) यहाँ दिया गया भाज्य, स्पष्ट रूप से, १२३४५६५४३२१ है ।

(२८) यहाँ २८४८३ को ८३ + ४०० + (४००० × ७) द्वारा निरूपित किया गया है ।

(२९) बीजगणित द्वारा बतलाये जाने पर यह नियम इस तरह का रूप लेता है—

(i) $अ \times अ = अ^२$ (iii) $(अ + क)(अ - क) + क^२ = अ^२$ (iii) $१ + ३ + ५ + ७ + \ldots$ अ पदों तक $= अ^२$

द्विस्थानप्रभृतीनां राशीनां सर्ववर्गसंयोगः। तेषां क्रमघातेन द्विगुणेन विमिश्रितो वर्गः ॥३०॥
कृत्वान्त्यकृतिं हन्याच्छेषपदैर्द्विगुणमन्त्यमुत्सार्य। शेषानुत्सार्यैवं करणीयो विधिरयं वर्गे ॥३१॥

अत्रोद्देशकः

एकादिनवान्तानां पञ्चदशानां द्विसंगुणाष्टानाम्। कृतयुगयोश्च रसाग्न्योः शरनगयोर्वर्गमाचक्ष्व ॥३२॥
साष्टात्रिंशत्त्रिशती चतुःसहस्रैकषष्टिषट्छतिका। द्विशती षट्पञ्चाशन्मिश्रा वर्गीकृता किं स्यात् ॥३३॥
लेख्यागुणेषुबाणद्रव्याणां शरगतित्रिसूर्याणाम्। गुणरत्नाग्निपुराणां वर्गं भण गणक यदि वेत्सि ॥३४॥

तथा इन संख्याओं को एक बार में दो लेकर उनके दुगुने गुणनफल के योग को मिलाने के बराबर होता है ॥३०॥ दाहिनी ओर से बाईं ओर को अङ्क गिनने के क्रम में संख्या के अन्तिम अङ्क का वर्ग प्राप्त करो, और तब इस अङ्क को द्विगुणित कर तथा एक संकेतना के स्थान तक दाहिनी ओर हटा देने के पश्चात्, इस अन्तिम अङ्क को शेष स्थानों के अङ्कों द्वारा गुणित करो। इस तरह संख्या के शेष अङ्कों में प्रत्येक को एक-एक स्थान तक इसी विधि से हटाते जाओ। यह वर्ग करने की विधि है ॥३१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१ से लेकर ९ तक तथा १५, १६, २५, ३६ और ७५—इन संख्याओं के वर्ग का मान निकालो ॥३२॥ ३३८, ४६६१ और २५६ का वर्ग करने पर क्या-क्या प्राप्त होगा? ॥३३॥ हे गणितज्ञ! यदि तुम जानते हो तो बतलाओ कि ६५५३६, १२३४५ और ३३३३ के वर्ग क्या होंगे? ॥३४॥

---

(३०) यहाँ स्थान शब्द का स्पष्ट अर्थ संकेतना स्थान होता है। यहाँ एक टीका के निर्वचन के अनुसार वह योग के विघटकों का भी द्योतक है, क्योंकि योग में प्रत्येक ऐसे भाग का स्थान होता है। इन दोनों निर्वचनों के अनुसार नियम ठीक उतरता है।

जैसे : $(१२३४)^2 = (१०००^2 + २००^2 + ३०^2 + ४^2) + २ \times \overline{१००० \times २००} + २ \times \overline{१००० \times ३०} + २ \times \overline{१००० \times ४} + २ \times \overline{२०० \times ३०} + २ \times \overline{२०० \times ४} + २ \times \overline{३० \times ४}$

इसी तरह, $(१ + २ + ३ + ४)^2 = (१^2 + २^2 + ३^2 + ४^2) + २(१ \times २ + १ \times ३ + १ \times ४ + २ \times ३ + २ \times ४ + ३ \times ४)$

(३१) निम्नलिखित साधित उदाहरणों द्वारा दाहिने ओर हटाने का उल्लिखित नियम स्पष्ट हो जावेगा। यह महावीर की मौलिक विधि है। इन गणनाओं में स्तम्भों का योग इस प्रकार किया जावे कि किसी भी स्तम्भ के दहाई के अंक बांई ओर के स्तम्भ में जोड़े जावें।

१३१ का वर्ग निकालना

$१^2 =$	१				
$२ \times १ \times ३ =$		६			
$२ \times १ \times १ =$			२		
$३^2 =$			९		
$२ \times ३ \times १ =$				६	
$१^2 =$					१
	१	७	१	६	१

१३२ का वर्ग करना

$१^2 =$	१				
$२ \times १ \times ३ =$		६			
$२ \times १ \times २ =$			४		
$३^2 =$			९		
$२ \times ३ \times २ =$				१२	
$२^2 =$					४
	१	७	४	२	४

५५५ का वर्ग करना।

$५^2 =$	२५				
$२ \times ५ \times ५ =$		५०			
$२ \times ५ \times ५ =$			५०		
$५^2 =$			२५		
$२ \times ५ \times ५ =$				५०	
$५^2 =$					२५
	३०	८	०	२	५

(३३) मूल गाथा में ४६६१ को ४००० + ६१ + ६०० द्वारा निरूपित किया गया है।

सप्ताशीतित्रिशतसहितं षट्सहस्रं पुनश्च पञ्चत्रिंशच्छतसमधिकं सप्तनिघ्नं सहस्रम् ।
द्वाविंशत्या युतदशशतं[1] वर्गितं तत्त्रयाणां ब्रूहि त्वं मे गणकगुणवन्संगुणय्य प्रमाणम् ॥३५॥

इति परिकर्मविधौ तृतीयो वर्गः समाप्तः ।

वर्गमूलम्

चतुर्थे वर्गमूलपरिकर्मणि करणसूत्रं यथा—

अन्त्यौजादपहृतकृतिमूलेन द्विगुणितेन युग्महृतौ । लब्धकृतिस्त्याज्यौजे द्विगुणदलं वर्गमूलफलम् ॥३६॥

१ P, K और B राशिरेतत्कृतीनाम् ।

६३८७ और तब ७१३५ और तब १०२२, इनमें से प्रत्येक संख्या का वर्ग किया जाता है । हे कुशल गणितज्ञ ! अच्छी तरह गणना करने के पश्चात् मुझे बतलाओ कि इन तीनों के वर्ग क्या होंगे ? ॥३५॥

इस तरह, परिकर्म व्यवहार में, वर्ग नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

वर्गमूल

परिकर्म क्रियाओं में वर्गमूल नामक चतुर्थ क्रिया के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं—

अंकों द्वारा प्रदर्शित संख्या की इकाई के स्थान से बाईं ओर के अन्तिम अयुग्म (विषम) अंक में से बड़ी से बड़ी वर्ग संख्या (अंक) घटाई जाती है; तब इस वर्ग की हुई संख्या को द्विगुणित कर प्राप्त फल द्वारा, शेष संख्या के साथ दाहिने युग्मस्थान की संख्या उतार कर रखने के पश्चात् प्राप्त हुई संख्या में भाग देते हैं । और तब, इस तरह प्राप्त भजनफल का वर्ग, शेष संख्या के साथ दाहिने अयुग्म स्थान की संख्या उतार कर रखने के पश्चात् प्राप्त हुई संख्या में से घटा देते हैं । तब, प्रथम वर्गसंख्या का वर्गमूल और द्वितीय वर्गसंख्या का वर्गमूल, (एक के बाद दूसरी) दाहिनी ओर रखने से प्राप्त संख्या को द्विगुणित कर शेष संख्या के नीचे उतारी हुई संख्या रखकर प्राप्त संख्या में भाग देते हैं; और फिर शेष संख्या के साथ उतारी हुई संख्या रखकर प्राप्त संख्या में से सबसे बड़ी वर्गसंख्या घटाते हैं । इस प्रकार, यह क्रिया अंत तक की जाती है और अंतिम द्विगुणित भाजक संख्या की अर्द्ध संख्या, परिणामी वर्गमूल होता है ॥३६॥

(३५) यहाँ ७१३५ को १३५ + (१००० × ७) द्वारा दर्शाया गया है ।

(३६) इस नियम को स्पष्ट करने हेतु निम्नलिखित उदाहरण नीचे साधित किया जाता है ।

६५५३६ का वर्गमूल निकालना—६।५५।३६

२² = ४

२ × २ = ४) २५ (५
२०
५५

५² = २५

२५ × २ = ५०) ३०३ (६
३००
३६

६² = ३६

२५६ × २ = ५१२) ० (०
०
×

∴ वर्गमूल = ५१२/२ = २५६ ।

अत्रोद्देशकः

एकादिनवान्तानां वर्गगतानां वदाशु मे मूलम् । ऋतुविषयलोचनानां द्रव्यमहीध्रेन्द्रियाणां च ॥३७॥
एकाग्रषष्टिसमधिकपञ्चशतोपेतषट्सहस्राणाम् । षड्वर्गपञ्चपञ्चकषण्णामपि मूलमाकलय ॥३८॥
द्रव्यपदार्थनयाचललेश्यालब्ध्यब्धिनिधिनयाब्धीनाम् ।
शशिनेत्रेन्द्रिययुगनयजीवानां चापि किं मूलम् ॥३९॥
चन्द्राब्धिगतिकषायद्रव्यर्तुहुताशनर्तुराशीनाम् ।
विधुलेश्येन्द्रियहिमकरमुनिगिरिशशिनां च मूलं किम् ॥४०॥
द्वादशशतस्य मूलं षण्णवतियुतस्य कथय संचिन्त्य । शतषट्कस्यापि सखे पञ्चकवर्गेण युक्तस्य ॥४१॥
अङ्केभकर्माम्बरशंकराणां सोमाक्षिवैश्वानरभास्कराणाम् ।
चन्द्रर्तुबाणाब्धिगतिद्विपानामाचक्ष्व मूलं गणकाग्रणीस्त्वम् ॥४२॥

इति परिकर्मविधौ चतुर्थं वर्गमूलं समाप्तम् ॥

घनः

पञ्चमे घनपरिकर्मणि करणसूत्रं यथा—
त्रिसमाहतिर्घनः स्यादिष्टोनयुतान्यराशिघातो वा । अल्पगुणितेष्टकृत्या कलितो वृन्देन चेष्टस्य ॥४३॥
इष्टादिद्विगुणेष्टप्रचयेष्टपदान्वयोऽथ वेष्टकृतिः । व्येकेष्टहतैकादिद्विचयेष्टपदैक्ययुक्ता वा ॥४४॥

१ P और M वर्गगतानां शीघ्रं रूपादिनवावसानराशिनाम् । मूलं कथय सखे त्वं० । २ M नव ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे मित्र ! मुझे शीघ्र बतलाओ कि १ से लेकर ९ तक की वर्गसंख्याओं, तथा २५६ और ५७६ के वर्गमूल क्या हैं ? ॥३७॥ ६५६१ और ६५५३६ के वर्गमूल निकालो ॥३८॥ ४२९४९६७२९६ और ६२२५२१ के वर्गमूल क्या हैं ? ॥३९॥ ६३६६४४४१ और १७७१५६१ के वर्गमूल क्या हैं ? ॥४०॥ हे मित्र ! भलीभाँति सोचकर मुझे बतलाओ कि १२९६ और ६२५ के वर्गमूल क्या हैं ? ॥४१॥ हे गणितज्ञों में अग्रणी ! ११०८८९, १२३२१ और ८४४५६१ के वर्गमूल बताओ ? ॥४२॥

इस प्रकार, परिकर्म व्यवहार में, वर्गमूल नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

घन

परिकर्म क्रियाओं में, पञ्चम घन नामक क्रिया का नियम निम्नलिखित है—

कोई तीन बराबर राशियों का गुणनफल उस दत्त राशि का घन होता है । अथवा, कोई दी हुई राशि का, किसी चुनी हुई राशि को दत्त राशि में जोड़ने से प्राप्त फल का तथा चुनी हुई राशि को दत्त राशि में से घटाने से प्राप्त फल का गुणनफल प्राप्त करते हैं । इसमें, चुनी हुई राशि के वर्ग को दत्त राशि में से चुनी हुई राशि को घटाने से प्राप्त फल से गुणित करने पर प्राप्त गुणनफल और चुनी हुई राशि का घन जोड़ने पर भी दत्त राशि का घन प्राप्त होता है ॥४३॥

अथवा, जिसका प्रथम पद दी गई राशि है तथा प्रचय दी गई राशिका दुगुना है और जिसके पदों की संख्या दी हुई राशि के बराबर है, ऐसी समान्तर श्रेढि का योग दी हुई राशि के घन को उत्पन्न करता है । अथवा, जिस राशि का घन प्राप्त करना है उसके वर्ग में, दी गई राशि में से एक घटाकर प्राप्त राशि तथा दी गई राशि के बराबर जिसके पदों की संख्या है (और जिसका प्रथम पद एक है और प्रचय दो है) ऐसी समान्तर श्रेढि के योग का गुणनफल मिलाकर उस दी हुई राशि का घन प्राप्त करते हैं ॥४४॥

(४३) प्रतीक रूप से यह नियम (निरूपित करने पर) इस तरह साधित होता है:—
(i) $अ \times अ \times अ \times = अ^3$ (ii) $अ (अ+ब)(अ-ब) + ब^2(अ-ब) + ब^3 = अ^3$
(४४) बीजगणित से नियम का अर्थ : (i) $अ^3 = अ + ३अ + ५अ + ७अ + \cdots$ अ पदों तक ।
(ii) $अ^3 = अ^2 + (अ-१)(१+३+५+७+\cdots$ अ पदों तक)

एकादिचयेष्टपदे पूर्वं राशिं परेण संगुणयेत्। गुणितसमासस्त्रिगुणश्चरमेण युतो घनो भवति ॥४५॥
अन्त्यान्यस्थानकृतिः परस्परस्थानसंगुणा त्रिहता। पुनरेवं[२] तद्योगः[३] सर्वपदघनान्वितो वृन्दम् ॥४६॥
अन्त्यस्य घनः कृतिरपि सा त्रिहतोत्सार्य शेषगुणिता वा।
शेषकृतिस्त्र्यन्त्यहता स्थाप्योत्सार्यैवमत्र विधिः ॥४७॥

१ P में यह श्लोक प्राप्य नहीं है। २ M°रपि। ३ M°गो वा। ४ यह श्लोक M में छूट गया है। P K B में निम्नलिखित श्लोक पाठान्तर रूप में प्राप्य है। उपर्युक्त दो विधियों का उल्लेख इसमें भी है।

त्रिसमगुणोऽन्त्यस्य घनस्तद्वर्गस्त्रिगुणितो हतः शेषैः।
उत्सार्य शेषकृतिरथ निष्ठा त्रिगुणा घनस्तथाग्रे वा ॥

समान्तर रूप से बढ़ती हुई श्रेढि में (जिसका प्रथम पद एक है तथा प्रचय भी एक है और पदों की संख्या कोई दी गई राशि के बराबर है), प्रत्येक पिछले पद को अगले पद से गुणा कर प्राप्त गुणनफलों का योग प्राप्त कर प्राप्त योगफल को तीन से गुणित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त गुणनफल में श्रेढि का अंतिम पद जोड़ने पर, दी हुई राशि का घन प्राप्त होता है ॥४५॥ (जिन दो अथवा अधिक राशियों के योग का घन निकालना है, उन्हें अलग-अलग स्थानों में स्थापित करते हैं।) प्रथम तथा अन्य स्थानों के वर्ग निकालकर उनमें प्रत्येक को अन्य स्थानों की राशियों से गुणित कर तिगुणा करते हैं और जोड़ देते हैं। इस प्रकार प्राप्त योगफल में सब स्थानों की राशियों में से प्रत्येक के घन को मिलाते हैं तो दत्त राशियों के योग का घनफल प्राप्त होता है। (इस सूत्र द्वारा ग्रंथकार का अभिप्राय २३६ जैसी संख्या का घनफल, उसे (२०० + ३० + ६) रूप में परिवर्तित कर इन तीन राशियों के योग का घनफल निकालकर प्राप्त करना है।) ॥४६॥ अथवा; दी गई संख्या में दाहिनी ओर से बाईं ओर की गिनती में अन्तिम अंक का घन; और अन्तिम अंक के वर्ग की तिगुनी राशि को केवल एक संकेतना स्थान द्वारा दाहिनी ओर हटाया जाता है और शेष स्थानों में पाये जाने वाले अंकों द्वारा गुणित किया जाता है; तब ऊपर की भाँति शेष स्थानों में पाये जाने वाले अंकों का वर्ग केवल एक संकेतना दाहिनी ओर हटाया जाता है और ऊपर कथित अन्तिम अंक की तिगुनी राशि द्वारा उसे गुणित कर एक स्थान हटा कर रखा जाता है। ये राशियाँ इसी स्थिति में जोड़ दी जाती हैं। यह नियम यहाँ प्रयोज्य होता है ॥४७॥

(४५) $३ [\{ १ \times २ + २ \times ३ + ३ \times ४ + ४ \times ५ + \cdots + \overline{अ - १} \times अ \} + अ = अ^३]$

(४६) $३ अ^२ब + ३ अब^२ + अ^३ + ब^३ = (अ + ब)^३$। इस नियम को दो से अधिक स्थान वाली संख्याओं के लिये प्रयोज्य बनाने के हेतु यहाँ स्पष्टतः अर्थ निकलता है कि $३ अ^२ (ब + स) + ३ अ (ब + स)^२ + अ^३ + (ब + स)^३ = (अ + ब + स)^३$; और यह स्पष्ट है कि कोई भी संख्या दो अन्य उपयुक्त रूप से चुनी हुई संख्याओं के योग द्वारा प्ररूपित की जा सकती है।

(४७) ग्रन्थकारद्वारा दिये गये सूत्र का अभिप्राय प्रदर्शित विधि से स्पष्ट हो जावेगा—

मान लो १५ घन का प्राप्त करना है। इसे दो स्थानों से स्थापित करके, निरूपित रीति से घनफल निकालते हैं। सूत्र में ग्रन्थकार ने अन्तिम अंक ५ के घन के योग का कथन नहीं किया है।

	१	५		
$१^३ =$	१			
$१^२ \times ३ \times ५ =$	१	५		
$५^२ \times ३ \times १ =$		७	५	
$५^३ =$		१	२	५
	३	३	७	५

अत्रोद्देशकः

एकादिनवान्तानां पञ्चदशानां शरेक्षणस्यापि । रसवह्न्योर्गिरिनगयोः कथय घनं द्व्यग्न्यब्धयोश्च ॥४८॥
हिमकरगगनेन्दूनां नयगिरिशशिनां खरेन्दुबाणानाम् ।
वद मुनिचन्द्रयतीनां वृन्दं चतुरुदधिगुणशशिनाम् ॥४९॥
राशिर्घनीकृतोऽयं शतद्वयं मिश्रितं त्रयोदशभिः । तद्द्विगुणोऽस्मात्त्रिगुणश्चतुर्गुणः पञ्चगुणितश्च ॥५०॥
शतमष्टषष्टियुक्तं दृष्टमभीष्टे घने विशिष्टतमैः । एकादिभिरष्टान्त्यैर्गुणितं वद तद्घनं शीघ्रम् ॥५१॥
बन्धाम्बरर्तुगगनेन्द्रियकेशवानां संख्याः क्रमेण विनिधाय घनं गृहीत्वा ।
आचक्ष्व लब्धमधुना करणानुयोगगम्भीरसारतरसागरपारदृश्वन् ॥५२॥

इति परिकर्मविधौ पञ्चमो घनः समाप्तः ॥

घनमूलम्

षष्ठे घनमूलपरिकर्मणि करणसूत्रं यथा—
अन्त्यघनादपहृतघनमूलकृतित्रिहृतिभाजिते भाज्ये ।
प्राक्त्रिहतास्य कृतिः शोध्या शोध्ये घनेऽथ घनम् ॥५३॥

---

१. ४८ और ४९ वें श्लोकों के स्थान में, M में निम्न पाठ है—
एकादिनवान्तानां रुद्राणां हिमकरेन्दूनाम् ।
वद मुनिचन्द्रयतीनां वृन्दं चतुरुदधिगुणशशिनाम् ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक से लेकर ९ तक संख्याओं और १५, २५, ३६, ७७ और ९६ के घन क्या होंगे ? ॥४८॥ १०१, १७२, ५१६, ७१७ और १३४४ के घन क्या होंगे ? ॥४९॥ संख्या २१३ का घन किया जाता है। इस संख्या की दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी और पाँचगुनी राशियों के भी घन करने पर प्राप्त होने वाली राशियाँ प्राप्त करो ॥५०॥ यह देखा जाता है कि १६८ में एक से लेकर आठ तक की समस्त संख्याओं का गुणन करने पर प्राप्त राशियाँ घन राशियों से सम्बन्धित हैं। उन घन राशियों को शीघ्र बतलाओ ॥५१॥ हे करणानुयोग गणित की क्रियाओं के अभ्यासरूपी गहरे तथा उत्कृष्ट समुद्र के पारदृष्टा ! दाहिनी ओर से बाईं ओर ४, ०, ६, ०, ५ और ९ क्रमानुसार लिख कर प्राप्त संख्या का घनफल शीघ्र बतलाओ ॥५२॥ इस प्रकार, परिकर्म व्यवहार में, घन नामक परिच्छेद समाप्त हुआ।

घनमूल

परिकर्म-क्रियाओं में षष्ठम घनमूल क्रिया सम्बन्धी निम्नलिखित नियम है—

अन्तिम घन स्थान तक के अंकों द्वारा निरूपित संख्या में से सबसे अधिक सम्भव घन संख्या घटाओ। तब, (अग्रिम) भाज्य स्थान द्वारा निरूपित अंक को स्थिति में रखने के पश्चात् उसे उस घन के घनमूल के वर्ग की तिगुनी राशि द्वारा भाजित करो। तब (अग्रिम) शोध्य स्थान द्वारा निरूपित अंक को स्थिति में रखने के पश्चात् उसमें से उपर्युक्त भजनफल के वर्ग की त्रिगुणित राशि को उपर्युक्त (सबसे अधिक सम्भव घन के) मूल द्वारा गुणित करने से प्राप्त राशि को घटाओ। और तब (अग्रिम) घन स्थान द्वारा निरूपित अंक को स्थिति में रखने के पश्चात् उसमें से ऊपर प्राप्त हुए भजनफल के घन को घटाओ ॥५३॥

घनमेकं द्वे अघने घनपदकृत्या भजेत्रिगुणयाघनतः ।
पूर्वत्रिगुणाप्तकृतिस्त्याज्याप्तघनश्च पूर्ववल्लब्धपदैः ॥५४॥

अत्रोद्देशकः

एकादिनवान्तानां घनात्मनां रत्नशशिनवाब्धीनाम् । नगरसवसुखर्तुगजक्षपाकराणां च मूलं किम् ॥५५॥
गतिनयमदृशिखिशशिनां मुनिगुणखर्त्वक्षिनवखराग्नीनाम् ।
वसुखयुगखाद्रिगतिकरिचन्द्रर्तूनां गृहाण पदम् ॥५६॥

१ यह श्लोक M में प्राप्य नहीं है । २ M गिरि । ३ M रसा । ४ M विधुपुरखरस्वरर्तुज्वलनधराणां ।

तीन अंकों के विभिन्न समूह में से एक अंक घन (cubic) और दो अघन (non-cubic) होते हैं । अघन अंक में घनमूल के वर्ग की तिगुनी राशि का भाग दो । अग्रिम अघन अंक में से, ऊपर प्राप्त हुए भजनफल को वर्गित करने से प्राप्त हुई राशि तथा पिछले घन अंक में से (घटाई गई अधिक से अधिक घनसंख्या के) घनमूल की तिगुनी राशि का गुणनफल घटाओ । और तब अग्रिम घन अंक को स्थिति में लाकर, उसमें से ऊपर प्राप्त हुए भजनफल का घन घटाओ । इस तरह स्थिति में लाकर प्राप्त हुए घनमूल अंकों की सहायता से पूर्व विधि उपयोग में लाओ ॥५४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१ से लेकर ९ तक की घन संख्याओं के घनमूल क्या होंगे ? ४९१३ और १८६०८६७ के घनमूल बतलाओ ? ॥५५॥ १३८२४, ३६९२६०३७ और ६१८४७०२०८ के घनमूल निकालो ॥५६॥

(५३–५४) जिसका घनमूल निकालना होता है ऐसी दी गई संख्या में अंक नियमानुसार समूहों में विभक्त कर दिये जाते हैं । प्रत्येक समूह में अधिक से अधिक ३ अंक होते हैं; उनके नाम क्रमशः दाहिनी ओर से बाँई ओर : घन (अथवा वह जो घनात्मक होता है अर्थात् जिसमें से घन राशि घटाना होती है), शोध्य (अथवा वह जो घटाया जाता है) और भाज्य हैं । बाँई ओर का अंतिम समूह हमेशा तीन अंकमय नहीं होता । उसमें एक, दो, या तीन अंक तक रहते हैं । निम्नलिखित साधित उदाहरण से नियम स्पष्ट हो जावेगा ।

७७३०८७७६ का घनमूल निकालना—

शो. घ. भा. शो. घ. भा. शो. घ.
७ ७ ३ ० ८ ७ ७ ६

घ........$४^३$ = ६४
भा......$४^२ \times ३$ = ४८) १३३ (२
९६
३७०
शो...$२^२ \times ३ \times ४$... = ४८
३२२८
घ......$२^३$......... = ८
भा......$४२^२ \times ३$... = ५२९२) ३२२०७ (६
३१७५२
४५५७
शो...$६^२ \times ३ \times ४२$.............. = ४५३६
२१६
घ....$६^३$.................. = २१६
×
∴ घनमूल = ४२६ ।

यह नियम उल्लेख नहीं करता कि कौन से अंक घनमूल की संरचना करते हैं । पर यह अर्थ किया जाता है कि क्रिया में घन किये गये अंकों को क्रम से बाँई ओर से दाहिनी ओर रखने संख्या (घनमूल) प्राप्त होती है ।

चतु:पयोध्यग्निशराक्षिदृष्टिहयेभखव्योमभयेक्षणस्य ।
वदाष्टकर्माऽधिखघातिभावद्विवह्निरन्ध्रर्तुनगस्य मूलम् ॥५७॥
द्रव्याश्वशैलदुरितखवह्निपद्रिभयस्य वदत घनमूलम् ।
नवचन्द्रहिमगुमुनिशशिलब्ध्यम्बरखरयुगस्यापि ॥५८॥
गतिगजविषयेषुविधुस्वराद्रिकरगतियुगस्य भण मूलम् ।
लेश्याभ्रनगनवाचलपुरखरनयजीवचन्द्रमसाम् ॥५९॥
गतिखरदुरितेभाम्भोधिताक्ष्र्यध्वजाक्षद्विकृतिनवपदार्थद्रव्यवह्नीन्दुचन्द्र–
जलधरपथरन्ध्रेष्वष्टकानां घनानां गणक गणितदक्षाचक्ष्व मूलं परीक्ष्य ॥६०॥

इति परिकर्मविधौ षष्ठं घनमूलं समाप्तम् ।

संकलितम्

सप्तमे संकलितपरिकर्मणि करणसूत्रं यथा—

रूपेणोनो गच्छो दलीकृतः प्रचयताडितो मिश्रः । प्रभवेण पदाभ्यस्तः संकलितं भवति सर्वेषाम् ॥६१॥

प्रकारान्तरेण धनानयनसूत्रम्—

एकविहीनो गच्छः प्रचयगुणो द्विगुणितादिसंयुक्तः । गच्छाभ्यस्तो द्विहृतः प्रभवेत्सर्वत्र संकलितम् ॥६२॥

१ यह श्लोक M में अप्राप्य है ।

२७००८७२२५३४४ और ७६३२९४०४८८ के घनमूल प्राप्त करो ॥५७॥ ७७३०८७७६ और २६०९१७११९ के भी घनमूल निकालो ॥५८॥ २४२७७१५५८४ और १६२६३७९७७६ के घनमूल निकालो ॥५९॥ हे गणक ! यदि तुम गणित में कुशल हो तो ८५९०११३६९९४५९४८८६४ घनराशि का घनमूल परीक्षा से निकालकर बतलाओ ॥६०॥

इस प्रकार, परिकर्म व्यवहार में घनमूल नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

संकलित [श्रेढियों का संकलन]

परिकर्म क्रियाओं में सप्तम संकलित क्रिया सम्बन्धी नियम निम्नलिखित हैं—

पहिले श्रेढि के पदों की संख्या को एक द्वारा घटाया जाता है और तब प्राप्त फल को आधा कर प्रचय द्वारा गुणित किया जाता है । इसे, जब श्रेढि के प्रथम पद के साथ मिलाकर पदों की संख्या से गुणित करते हैं तो समान्तर श्रेढि के समस्त पदों का योग प्राप्त होता है ॥६१॥

दूसरी तरह से श्रेढि का योग प्राप्त करने का नियम—

श्रेढि के पदों की संख्या को एक द्वारा ह्रासित कर प्रचय द्वारा गुणित करते हैं । प्राप्त फल में श्रेढि के प्रथम पद की दुगुनी राशि मिलाते हैं; और जब इस योग को श्रेढि के पदों की संख्या से गुणित कर दो से भाजित करते हैं, तो सर्वत्र श्रेढि का योग उत्पन्न होता है ॥६२॥

(६१) यह नियम बीजीयरूप से निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है—

$\left(\frac{न-१}{२}ब+अ\right)न=य$, जहाँ अ प्रथम पद है; ब प्रचय है, न पदों की संख्या है और य समस्त श्रेढि का योग है ।

(६२) इसी तरह, $\left\{\frac{(न-१)ब+२अ}{२}\right\}न=य$ होता है ।

आद्युत्तरसर्वधनानयनसूत्रम्—
पदहतमुखमादिधनं व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छः।
उत्तरधनं तयोर्योगो धनमूनोत्तरं मुखेऽन्त्यधने॥६३॥
अन्त्यधनमध्यधनसर्वधनानयनसूत्रम्—
चयगुणितैकोनपदं साद्यन्त्यधनं तदादियोगार्धम्। मध्यधनं तत्पदवधमुद्दिष्टं सर्वसंकलितम्॥६४॥

१ M तदूना सैक (व ?) पदाप्ता युतिः प्रभावः। २ यह श्लोक M में छूट गया है।

आदिधन, उत्तरधन और सर्वधन निकालने का नियम —

प्रथम पद में श्रेढि के पदों की संख्या का गुणन करने से प्राप्त राशि आदिधन कहलाती है। प्रचय द्वारा गुणित श्रेढि के पदों की संख्या तथा एक कम पदों की संख्या की आधी राशि का गुणनफल उत्तर धन कहलाता है। इन दोनों का योग सर्वधन अर्थात् समस्त श्रेढि के पदों का योग होता है। वही ऐसी श्रेढि के योग के तुल्य भी होता है जो श्रेढि के पदों का क्रम उलट दिया जाने से प्राप्त होती है, जहां अंतिम पद प्रथम पद हो जाता है तथा प्रचय ऋणात्मक हो जाता है॥६३॥

अन्त्यधन, मध्यधन तथा सर्वधन निकालने की विधि—

श्रेढि के पदों की संख्या एक द्वारा ह्रासित की जाती है और प्राप्त संख्या प्रचय द्वारा गुणित की जाती है। तब इसे प्रथम पद में जोड़ने पर अन्त्यधन प्राप्त होता है। अन्त्यधन और प्रथम पद के योग की आधी राशि मध्यधन कहलाती है। इस मध्यधन और श्रेढि के पदों की संख्या का गुणनफल, श्रेढि के समस्त पदों का योग होता है॥६४॥

(६३–६४) इन नियमों में समान्तर श्रेढि का प्रत्येक पद, प्रथम पद में प्रचय का गुणक जोड़ने पर प्राप्त हुआ माना जाता है। इस गुणक का मान श्रेढि में पद विशेष की स्थिति पर निर्भर रहता है। इस अवधारणा के अनुसार हमें श्रेढि के प्रत्येक पद में प्रथम पद के साथ-साथ प्रचय का गुणक भी निकालना पड़ता है। इस तरह प्राप्त प्रथम पदों के योग को आदिधन कहते हैं। प्रचय के ऐसे गुणकों के योग को उत्तरधन कहते हैं। सर्वधन जो कि इन दोनों का योग होता है, श्रेढि का भी योग होता है। अन्त्यधन, समान्तर श्रेढि का अंतिम पद होता है। मध्यधन का अर्थ मध्यपद होता है जो इस श्रेढि के प्रथम पद और अंतिम पद का समान्तर-मध्यक (arithmetical mean) होता है। इस तरह, जब श्रेढि में (२ न + १) पद होते हैं तब (न + १) वाँ पद मध्यधन कहलाता है। परंतु, जब २न पद होते हैं, तो (न) वें और (न + १) वें पद के समान्तर-मध्यक के तुल्य मध्यधन होता है। इस तरह, (१) आदिधन $=$ न $\times$ अ; (२) उत्तरधन $= \frac{\text{न} - १}{२} \times$ न $\times$ ब; (३) अन्त्यधन $=$ (न $-$ १) $\times$ ब $+$ अ;

(४) मध्यधन $= \frac{\{(\text{न} - १)\text{ब} + \text{अ}\} + \text{अ}}{२}$; (५) सर्वधन $= (१) + (२) = (\text{न}+\text{अ}) + \left(\frac{\text{न} - १}{२} \times \text{न} \times \text{ब}\right)$;

अथवा, सर्वधन $= (४) \times \text{न} = \text{न} \times \frac{\{(\text{न} - १)\ \text{ब} + \text{अ}\} + \text{अ}}{२}$ होता है।

आगे यह बिलकुल स्पष्ट है कि ऋणात्मक प्रचय वाली समान्तर श्रेढि धनात्मक प्रचय वाली समान्तर श्रेढि में बदल जाती है जब कि पदों का क्रम पूरी तरह उलटाया जाता है जिससे प्रथम पद अंतिम पद हो जाता है।

अत्रोद्देशकः

एकादिदशान्ताद्यास्तावत्प्रचयास्समर्चयन्ति धनम् ।
वणिजो दश दश गच्छास्तेषां संकलितमाकलय ॥६५॥
द्विमुखत्रिचयैर्मणिभिः प्रानर्च श्रावकोत्तमः कश्चित् । पञ्चवसतीरमीषां का संख्या ब्रूहि गणितज्ञ ॥६६॥
आदित्रयश्चयोऽष्टौ द्वादश गच्छस्त्रयोऽपि रूपेण । आ सप्तकात्प्रवृद्धाः सर्वेषां गणक भण गणितम् ॥६७॥
द्विकृतिमुखं चयोऽष्टौ नगरसहस्रे समर्चितं गणितम् ।
गणिताब्धिसमुत्तरणे बाहुबलिन्[1] त्वं समाचक्ष्व ॥६८॥

गच्छानयनसूत्रम्—

अष्टोत्तरगुणराशेर्द्विगुणाद्युत्तरविशेषकृतिसहितात् । मूलं चययुतमर्धितमाद्यूनं चयहृतं गच्छः ॥६९॥

प्रकारान्तरेण गच्छानयनसूत्रम्—

अष्टोत्तरगुणराशेर्द्विगुणाद्युत्तरविशेषकृतिसहितात् । मूलं क्षेपपदोनं दलितं चयभाजितं गच्छः ॥७०॥

१ M बली ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दस व्यापारियों में से प्रत्येक समान्तर श्रेढि में संकलित धन दान करता है । दस श्रेढियों के प्रथम पद एक से लेकर दस तक हैं, और प्रत्येक श्रेढि में प्रचय उतना ही है जितनी कि उनकी प्रथम पद राशि । प्रत्येक श्रेढि के पदों की संख्या दस है । उन श्रेढियों के योगों की गणना करो ॥६५॥ एक श्रेष्ठ श्रावक एक-एक कर पाँच मन्दिरों में २ मणियों से आरम्भ कर उत्तरोत्तर ३ मणि बढ़ाता हुआ भेंट चढ़ाता है । हे गणितज्ञ ! कहो कि उनकी कुल संख्या क्या है ? ॥६६॥ प्रथम पद ३ है; प्रचय ८ है; और पदों की संख्या १२ है । ये तीनों राशियाँ क्रम से एक द्वारा बढ़ाई जाती हैं जब तक कि ७ श्रेढियाँ प्राप्त नहीं होतीं । हे गणितज्ञ ! इन सब श्रेढियों के योगों को प्राप्त करो ॥६७॥ हे गणितरूपी समुद्र को भुजाओं द्वारा तरने में समर्थ ! बतलाओ कि १००० नगरों में की जाने वाली समस्त भेंटों का मान क्या होगा, जब कि भेंट ४ से आरम्भ की जाती है और उत्तरोत्तर ८ से वृद्धि को प्राप्त होती है ॥६८॥

समान्तर श्रेढि के पदों की संख्या (गच्छ) निकालने का नियम—

(प्रथम पद की दुगुनी) राशि और प्रचय के अन्तर के वर्ग में श्रेढि के योग द्वारा गुणित प्रचय की आठगुनी राशि जोड़ते हैं । प्राप्त योगफल के वर्गमूल में प्रचय जोड़ते हैं और परिणामी राशि आधी करते हैं । इसे प्रथम पद द्वारा ह्रासित कर प्रचय द्वारा विभाजित करते हैं तो श्रेढि के पदों की संख्या प्राप्त होती है ॥६९॥

दूसरी रीति द्वारा पदों की संख्या निकालने का नियम—

(प्रथम पद की दुगुनी) राशि और प्रचय के अन्तर के वर्ग में, श्रेढि के योग द्वारा गुणित प्रचय की अठगुनी राशि जोड़कर प्राप्त योगफल के वर्गमूल में से क्षेपपद को घटाते हैं । परिणामी राशि को आधा करते हैं । इसे प्रचय द्वारा विभाजित करने पर श्रेढि के पदों की संख्या प्राप्त होती है ॥७०॥

(६६) श्रावक जैनधर्म के गृहस्थ धर्म के गृहस्थ धर्म का पालन करने वाला होता है, जो केवल श्रवण करता है अर्थात् धर्म या कर्तव्य के विषय में सुनता और सीखता है । सामान्यतः पाक्षिक श्रावक को मिथ्यात्व, अन्याय एवं अभक्ष्य का त्याग होता है ।

(६९) बीजगणित से यह नियम इस भाँति प्ररूपित होगा—

$$\frac{\dfrac{\sqrt{(२अ-ब)^{२}+८बयप}+ब}{२}-अ}{ब}=न$$

(७०) (प्रथम पद की दुगुनी) राशि और प्रचय के अंतर की आधी राशि क्षेपपद कहलाती है । अर्थात्, $\frac{२अ-ब}{२}$. यह स्पष्ट है कि इस सूत्र में क्षेपपद का उल्लेख होने से पिछले सूत्र से मात्र उल्लेख में भिन्नता है ।

अत्रोद्देशकः

आदिद्वौ प्रचयोऽष्टौ द्वौरूपेणा त्रयात्क्रमाद्वृद्धौ ।
खाङ्कौ रसाद्रिनेत्रं खेन्दुहरा वित्तमत्र को गच्छः ॥७१॥
आदिः पञ्च चयोऽष्टौ गुणरत्नाग्निधनमत्र को गच्छः ।
षट् प्रभवश्च चयोऽष्टौ खद्विचतुः स्वं पदं किं स्यात् ॥७२॥

उत्तराद्यानयनसूत्रम्—

आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभजितम् । प्रचयस्तद्धनहीनं गणितं पदभाजितं प्रभवः ॥७३॥

आद्युत्तरानयनसूत्रम्—

प्रभवो गच्छाप्तधनं विगतैकपदार्धगुणितचयहीनम् । पदहृतधनमाद्यूनं निरेकपददलहृतं प्रचयः ॥७४॥

प्रकारान्तरेणोत्तराद्यानयनसूत्रम्—

द्विहृतं संकलितधनं गच्छहृतं द्विगुणितादिना रहितम् ।
विगतैकपदविभक्तं प्रचयः स्यादिति विजानीहि ॥७५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथम पद २ है, प्रचय ८ है; इन दोनों को उत्तरोत्तर एक द्वारा बढ़ाते जाते हैं जिससे ३ श्रेढ़ियाँ बन जाती हैं । इन तीन श्रेढ़ियों के योग क्रमशः ९०, २७६ और ११९० हैं । प्रत्येक श्रेढ़ि के पदों की संख्या क्या है ? ॥७१॥ प्रथम पद ५ है; प्रचय ८ है; श्रेढ़ि का योग ३३३ है । पदों की संख्या क्या है ? अन्य श्रेढ़ि का प्रथमपद ६ है, प्रचय ८ है और योग ४२० है । पदों की संख्या क्या है ? ॥७२॥

प्रचय और प्रथम पद को निकालने का नियम—

श्रेढ़ि का योग आदिधन द्वारा ह्रासित किया जाता है, और इसे, पदों की संख्या द्वारा ह्रासित पदों की संख्या के वर्ग द्वारा निरूपित राशि की आधी राशि द्वारा विभाजित करने पर प्रचय प्राप्त होता है ।

श्रेढ़ि के योग को उत्तरधन द्वारा ह्रासित करने पर प्राप्त फल को पदों की संख्या द्वारा विभाजित करने पर श्रेढ़ि का प्रथम पद प्राप्त होता है ॥७३॥

प्रथम पद और प्रचय प्राप्त करने का नियम—

श्रेढ़ि में पदों की संख्या द्वारा भाजित श्रेढ़ि का योग, जब प्रचय और एक कम पदों की संख्या की आधी राशि के गुणन फल द्वारा ह्रासित कर दिया जाता है तो श्रेढ़ि का प्रथम पद प्राप्त होता है । योग को, पदों की संख्या से भाजित कर प्रथम पद द्वारा ह्रासित करते हैं । प्राप्तफल को एक कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा विभाजित करने पर प्रचय प्राप्त होता है ॥७४॥

प्रचय और प्रथम राशि को अन्य विधि द्वारा निकालने के दो नियमः—

श्रेढ़ि के योग को २ से गुणित कर और पदों की संख्या से विभाजित कर प्रथम पद की दुगुनी राशि से ह्रासित करते हैं । प्राप्तफल को एक कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा विभाजित करने पर प्रचय प्राप्त होता है ॥७५॥ श्रेढ़ि के योग की दुगुनी राशि को पदों की संख्या से विभाजित कर

---

(७३) आदि-धन और उत्तरधन के लिये इस अध्याय के ६३ और ६४ वें सूत्र की पाद टिप्पणी देखिये । इस सूत्र को प्रतीक रूपसे प्रदर्शित करने पर वह निम्नरूप में साधित होता है—

$$ब = \frac{य - न अ}{(न^2 - न)/२} \quad और \quad अ = \frac{य - \frac{न(न-१)}{२}ब}{न}$$

(७४) बीजीय रूप से : $अ = \frac{य}{न} - \frac{न-१}{२} ब$; और $ब = \frac{(य/न) - अ}{(न-१)/२}$

(७५) प्रतीक रूप से : $ब = \frac{(२ य/न) - २ अ}{न - १}$

द्विगुणितसंकलितधनं गच्छहृतं रूपरहितगच्छेन । ताडितचयेन रहितं द्वयेन संभाजितं प्रभवः ॥७६॥

अत्रोद्देशकः

नववदनं तत्त्वपदं भावाधिकशतधनं कियान्प्रचयः ।
पञ्च चयोऽष्ट पदं षट्पञ्चाशच्छतधनं मुखं कथय ॥७७॥

स्वेष्टाद्युत्तरगच्छानयनसूत्रम्—

संकलिते स्वेष्टहृते हारो गच्छोऽत्र लब्ध इष्टोने । ऊनितमादिः शेषे व्येकपदार्धोद्धृते प्रचयः ॥७८॥

अत्रोद्देशकः

चत्वारिंशत्सहिता पञ्चशती गणितमत्र संदृष्टम् । गच्छप्रचयप्रभवान्[1] गणितज्ञशिरोमणे कथय ॥७९॥

आद्युत्तरगच्छ सर्वमिश्रधनविश्लेषणे सूत्रत्रयम्—

उत्तरधनेन रहितं गच्छेनैकेन संयुतेन हृतम् । मिश्रधनं प्रभवः स्यादिति गणकशिरोमणे विद्धि ॥८०॥

१ M विगणय्य सखे ममाचक्ष्व ।

एक कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा ह्रासित करते हैं । प्राप्तफल को प्रचय द्वारा गुणित कर, जब दो के द्वारा विभाजित करते हैं तो श्रेढि का प्रथम पद प्राप्त होता है ॥७६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथम पद ९ है; पदों की संख्या ७ है; और श्रेढि का योग १०५ है । प्रचय का मान क्या है ? अन्य श्रेढि का प्रचय ५ है, पदों की संख्या ८ है और योग १५६ है । बतलाओ प्रथम पद क्या है ?॥७७॥

जब योग दिया गया हो तो इच्छानुसार प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या निकालने का नियम—

जब योग को किसी चुनी हुई संख्या द्वारा विभाजित करते हैं तो भाजक श्रेढि के पदों की संख्या बन जाता है । जब इस भजनफल को किसी फिर से चुनी हुई संख्या द्वारा ह्रासित करते हैं तो यह घटाई गई संख्या श्रेढि का प्रथम पद बन जाती है । घटाने के बाद प्राप्त शेष जब एक कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा विभाजित किया जाता है तो प्रचय उत्पन्न होता है ॥७८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस प्रश्न में योग ५४० है । हे गणितज्ञों के शिरोमणि ! बतलाओ कि पदों की संख्या, प्रचय और प्रथम पद क्या होंगे ? ॥७९॥

प्रथम पद से संयुक्त अथवा प्रचय अथवा पदों की संख्या से अथवा इन सभी से संयुक्त समान्तर श्रेढि के योग को विश्लेषित करने के लिये तीन नियम—

हे गणक शिरोमणि ! मिश्रधन को उत्तर धन से ह्रासित कर, एक अधिक पदों की संख्या द्वारा विभाजित किया जाता है तो प्रथम पद प्राप्त होता है—ऐसा समझो ॥८०॥ मिश्रधन को

(७६) बीजीय रूप से : $अ = \frac{(२ य/न) - (न - १) ब}{२}$

(७८) प्रतीक रूप से, इस प्रश्न में, जब य दिया गया होता है और अ तथा न को किसी भी तरह चुनना होता है, तब ब का मान निकालना पड़ता है । इसलिये, दिये गये य के लिये, ब के कितने ही मान हो सकते हैं जो अ और न के चुने जाने पर निर्भर हों । जब अ और न चुन लिये जाते हैं तो ब को निकालने के लिये यहाँ दिया गया नियम सूत्र ७४ से मिलता है ।

आदिधनोनं मिश्रं[1] रूपोनपदार्धगुणितगच्छेन। सैकेन हृतं प्रचयो गच्छविधानात्पदं मुखे सैके ॥८१॥
मिश्रादपनीतेष्टौ मुखगच्छौ प्रचयमिश्रविधिलब्धः। यो राशिः स चयः स्यात्करणमिदं सर्वसंयोगे ॥८२॥

अत्रोद्देशकः

द्वित्रिकपञ्चदशाग्रा चत्वारिंशन्मुखादिमिश्रधनम्। तत्र प्रभवं प्रचयं गच्छं सर्वं च मे ब्रूहि ॥८३॥

१ M पदोनपदकृतिदलेन सैकेन। भक्तं प्रचयोऽत्र पदं गच्छविधानान्मुखे सैके ॥

आदिधन से ह्रासित कर और तब पदों की संख्या तथा एक कम पदों की संख्या की आधी राशि के गुणनफल में एक जोड़कर प्राप्त हुई राशि द्वारा विभाजित करते हैं तो प्रचय प्राप्त होता है। मिश्रधन में से पदों की संख्या विपाटित (भङ्ग) करने में पदों की संख्या को प्राप्त करने का नियम ही प्रयुक्त करते हैं, जब कि सब पदों को संवादरूप से (correspondingly) बढ़ाने के लिये प्रथम पद को एक द्वारा बढ़ा हुआ मान लिया जाय ॥८१॥ मिश्रधन को विश्लेषित करने की विधि इस प्रकार है— मिश्रधन को मन से चुने हुए प्रथम पद और पदों की संख्या द्वारा ह्रासित करते हैं और तब उत्तर-मिश्रधन को भङ्ग करने वाले नियम को इस अंतर में प्रयुक्त करने पर प्रचय प्राप्त होता है ॥८२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

४० में क्रमशः २, ३, ५ और १० जोड़कर आदि मिश्रधन और अन्य मिश्रधन बनाते हैं। मुझे बतलाओ कि इन दशाओं में प्रथम पद, प्रचय, पदों की संख्या और कुल तीनों, क्रमशः क्या-क्या होंगे? ॥८३॥

(इष्ट) ज्ञात योग से दी हुई समान्तर श्रेढि का प्रथम पद और प्रचय, द्वितीय श्रेढि के प्रथम पद और प्रचय; जहाँ मन से चुना हुआ योग दी हुई श्रेढि के ज्ञात योग का दुगुना, तिगुना, आधा, तिहाई अथवा इसी तरह का गुणक अथवा भिन्नीय रूप है, निम्नलिखित नियम से प्राप्त करते हैं—

(८०–८२) मिश्रधन का अर्थ मिला हुआ योग होता है। जब प्रथम पद अथवा प्रचय अथवा पदों की संख्या अथवा इन सब तीनों को समान्तर श्रेढि के योग में जोड़ते हैं तब मिश्रधन प्राप्त होता है। इस तरह, यहाँ चार प्रकार के मिश्रधन का कथन किया है और वे क्रमशः आदि मिश्रधन, उत्तर मिश्रधन, गच्छ मिश्रधन और सर्व मिश्रधन हैं। आदिधन और उत्तरधन के लिये सूत्र ६३ और ६४ की पाद टिप्पणी देखिये। बीजीय रूप से सूत्र ८० इस तरह साधित होता है— $अ = \frac{य' - \frac{(न)(न-१)}{२}ब}{न + १}$ जहाँ 'य'' आदि मिश्रधन है, अर्थात् य + अ है। सूत्र ८१ में $ब = \frac{य'' - नअ}{\{न(न-१)/२\} + १}$ है जहाँ य'' उत्तर मिश्रधन है अर्थात् य + ब है। आगे, जब गच्छ मिश्रधन य''' अर्थात् य + न होता है तो न का मान निकाला जा सकता है; क्योंकि; य = अ + (अ + ब) + (अ + २ ब) + ...न पदों तक;

और $य''' = (अ + १) + (\overline{अ + १} + ब) + (\overline{अ + १} + २ ब) + ...$ न पदों तक; होता है।

चूँकि सूत्र ८२ में, अ और न का मान किसी भी तरह चुन सकते हैं; अ, न और ब का मान अथवा सर्व मिश्रधन य'''' (जो य + अ + न + ब के तुल्य होता है) निकालने का प्रश्न य'' के किसी दिये गये मान से ब का मान निकालने के समान हो जाता है।]

(८३) प्रतीक रूप से प्रश्न यह है : (१) अ का मान निकालो जब य' = ४२, ब = ३, न = ५ हो। (२) ब का मान निकालो जब कि य'' = ४३; अ = २ और न ५ हो। (३) न का मान बतलाओ जब कि य + न = ४५ अ = २ और ब = ३ हो। (४) अ, ब और न का मान निकालो जब कि य + अ + ब + न = ५० हो।

इष्टधनाद्युत्तरतो द्विगुणत्रिगुणद्विभागत्रिभागादीष्टधनाद्युत्तरानयनसूत्रम्—
इष्टविभक्तेष्टधनं द्विष्ठं तत्प्रचयताडितं प्रचयः । तत्प्रभवगुणं प्रभवो गुणभागस्येष्टवित्तस्य ॥८४॥

अत्रोद्देशकः

समगच्छाश्चत्वारः षष्टिर्मुखमुत्तरं ततो द्विगुणम् । तद्द्व्यादि[1] हतविभक्तस्वेष्टस्याद्युत्तरे ब्रूहि ॥८५॥

इष्टगच्छयोर्व्यस्ताद्युत्तरसमधनद्विगुणत्रिगुणद्विभागत्रिभागादिधनानयनसूत्रम्—
व्येकात्महतो गच्छः स्वेष्टघ्नो द्विगुणितान्यपदहीनः ।
मुखमात्मोनान्यकृतिर्द्विकेष्टपदघातवर्जिता प्रचयः ॥८६॥

१ M गुणभागाद्युत्तरेच्छायाः । २ M गुण° ।

सरलता के लिये, चुने हुए योग को ज्ञात योग द्वारा विभाजित कर दो स्थानों में रखते हैं । इस भजनफल को जब ज्ञात प्रचय द्वारा गुणित करते हैं तो इष्ट प्रचय प्राप्त होता है । वही भजनफल जब ज्ञात प्रथम पद से गुणित किया जाता है तो चाहा हुआ प्रथम पद उस श्रेढि का प्राप्त होता है जिसका कि योग ज्ञात श्रेढि के योग का या तो अपवर्त्य अथवा भिन्नात्मक अंश (भाग) होता है ॥८४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

६०, ज्ञात प्रथम पद है, ज्ञात प्रचय उससे दुगुना है, और पदों की संख्या (ज्ञात दी हुई श्रेढि में तथा इष्ट समस्त श्रेढियों में) ४ है । ज्ञात योग को २ से आरम्भ होने वाली संख्यओं द्वारा गुणित अथवा भाजित करने पर प्राप्त हुए योगों वाली श्रेढियों के प्रथम पद और प्रचय निकालो ॥८५॥

जिनके पदों की संख्या मन से चुनी जाती है ऐसी दो श्रेढियों के पारस्परिक विनिमित प्रथम पद और प्रचय तथा उन श्रेढियों के योगों (जो बराबर हों, अथवा जिनमें से एक दूसरे का दुगुना, तिगुना, आधा, तिहाई अथवा ऐसा ही कोई अपवर्त्य या भाग रूप हो,) को निकालने का नियम—

किसी एक श्रेढि के पदों की संख्या स्वतः से गुणित होकर तथा एक द्वारा ह्रासित होकर और फिर चुने हुए (दो श्रेढियों के योग के) अनुपात द्वारा गुणित होकर, और तब दूसरी श्रेढि के पदों की संख्या की दुगुनी राशि द्वारा ह्रासित होकर कोई एक श्रेढि के (परस्पर बदलने योग्य) प्रथम पद को प्राप्त होती है । दूसरी श्रेढि के पदों की संख्या की वर्गराशि पदों की संख्या द्वारा ही स्वतः ह्रासित होकर और तब चुनी हुई निष्पत्ति द्वारा तथा प्रथम श्रेढि के पदों की संख्या के गुणनफल की दुगुनी राशि द्वारा ह्रासित होकर, उस श्रेढि के परस्पर बदलने योग्य प्रचय को उत्पन्न करती है ॥८६॥

(८४) प्रतीक रूप से, $अ_1 = \frac{य_1}{य} अ$; $ब_1 = \frac{य_1}{य} ब$; जहाँ $य_1$, $अ_1$, $ब_1$ ऐसी श्रेढि के क्रमशः योग, प्रथम पद और प्रचय हैं जिसका योग चुन लिया जाता है । यदि दो श्रेढियों का योग दिया गया हो, तो दो प्रथम पदों की निष्पत्ति (ratio) और दो प्रचयों का अनुपात $\frac{य_1}{य}$ ही सर्वदा नहीं रहता । यहाँ जो हल दिये गये हैं वे कुछ विशिष्ट दशाओं में प्रयुक्त होते हैं ।

(८६) बीजीय रूप से, $अ = न\,(न - १) \times प - २\,न_1$ और $ब = (न_1)^२ - न_1 - २\,प\,न$; जहाँ, अ, ब और न क्रमशः प्रथमपद, प्रचय और श्रेढि के पदों की संख्या हैं; $न_1$ द्वितीय श्रेढि के पदों की संख्या है, और प दो योगों की निष्पत्ति है । अ और ब इस तरह निकालने के बाद दूसरी श्रेढि के प्रथमपद और प्रचय क्रमशः ब और अ होंगे ।

अत्रोद्देशकः

पञ्चाष्टगच्छपुंसोर्व्यस्तप्रभवोत्तरे समानधनम् ।
द्वित्रिगुणादिधनं वा ब्रूहि त्वं गणक विगणय्य ॥८७॥
द्वादशषोडशपदयोर्व्यस्तप्रभवोत्तरे समानधनम् ।
त्र्यादिगुणभागधनमपि कथय त्वं[1] गणितशास्त्रज्ञ ॥८८॥

असमानोत्तरसमगच्छसमधनस्याद्युत्तरानयनसूत्रम्—
अधिकचयस्यैकादिश्चाधिकचयशेषचयविशेषो गुणितः ।
विगतैकपदार्धेन सरूपश्च मुखानि मित्र शेषचयानाम् ॥८९॥

अत्रोद्देशकः

एकादिषडन्तचयानामेकत्रितयपञ्चसप्तचयानाम् ।
नवनवगच्छानां समवित्तानां चाशु वद मुखानि सखे ॥९०॥

१ M गणकमुखतिलक ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो मनुष्यों के धन क्रमशः दो समान्तर श्रेढियों के योग से ज्ञात होते हैं । श्रेढियों-सम्बन्धी पदों की संख्या ५ और ८ है । दोनों श्रेढियों के प्रथम पद और प्रचय परस्पर बदलने योग्य हैं । श्रेढियों के योग बराबर हैं अथवा उनमें से एक का योग दूसरे का दुगुना, तिगुना, आधा अथवा ऐसा ही कोई अपवर्त्य है । हे गणितवेत्ता, शुद्ध गणना के पश्चात् बतलाओ कि इन योगों के तथा परस्पर बदलने योग्य प्रथमपद और प्रचय के मान क्या हैं ? ॥८७॥ दो समान्तर श्रेढियों के सम्बन्ध में, जिनके पदों की संख्या १२ और १६ है, प्रथमपद और प्रचय परस्पर बदलने योग्य हैं । श्रेढियों के योग बराबर हैं अथवा उनमें से एक का योग दुगुना अथवा कोई ऐसा ही अपवर्त्य अथवा भाग है । हे गणितशास्त्रज्ञ बतलाओ कि इन योगों के तथा परस्पर बदलने योग्य प्रथमपद और प्रचय के मान क्या होंगे ? ॥८८॥

असमान प्रचयों, समगच्छ और समयोग धनवाली समान्तर श्रेढियों के प्रथम पद प्राप्त करने का नियम—

जिसका प्रचय सबसे बड़ा है ऐसी श्रेढि का प्रथमपद एक ले लिया जाता है । इस सबसे बड़े प्रचय और शेष प्रचय के अन्तर को एक से ह्रासित गच्छ की आधी राशि द्वारा गुणित करते हैं । जब इस गुणनफल में एक मिलाते हैं तो हे मित्र हमें शेष प्रचय वाली श्रेढियों के प्रथमपद प्राप्त होते हैं ॥८९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे सखे ! बराबर योग वाली दो श्रेढियों के प्रथमपदों को बतलाओ जब कि उनमें से प्रत्येक में ९ गच्छ है तथा प्रचय क्रमशः १ से आरम्भ होकर ६ तक एक दशा में और १, ३, ५ और ७ दूसरी दशा में हो ॥९०॥

---

(८९) यहाँ दिया गया हल साधारण नियम की विशेष दशा है । $अ_१ = \frac{न - १}{२} (ब_१ - ब) + अ$, जहाँ अ और $अ_१$ दो श्रेढियों प्रथमपद हैं; ब और $ब_१$ उनके संवादी प्रचय हैं । इस सूत्र (formula) में, जहाँ ब, $ब_१$ और न दिये गये हैं; $अ_१$ का मान अ के किसी मान को चुन लेने पर निकाला जा सकता है । इस नियम में अ का मान १ लिया गया है ।

विसदृशादिसदृशगच्छसमधनानामुत्तरानयनसूत्रम्—
अधिकमुखस्यैकचयश्चाधिकमुखशेषमुखविशेषो भक्तः।
विगतैकपदार्धेन सरूपश्च चया भवन्ति शेषमुखानाम् ॥९१॥

अत्रोद्देशकः

एकत्रिपञ्चसप्तनवैकादशवदनपञ्चपञ्चपदानाम्।
समवित्तानां कथयोत्तराणि गणिताब्धिपारदृश्वन् गणक ॥९२॥

अथ गुणधनगुणसंकलितधनयोः सूत्रम्—
पदमितगुणहतिगुणितप्रभवः स्याद्गुणधनं तदाद्यूनम्।
एकोनगुणविभक्तं गुणसंकलितं विजानीयात् ॥९३॥

ऐसी समान्तर श्रेढ़ियों के प्रचयों को निकालने का नियम जिनमें प्रथम पद विसदृश, पदों की संख्या सदृश और योग बराबर हों—

जिसका प्रथमपद सबसे बड़ा हो उस श्रेढि का प्रचय एक लेते हैं। इस सबसे बड़े प्रथम-पद और शेष श्रेढ़ियों में से प्रत्येक के प्रथमपद के अन्तर को एक कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा विभाजित करते हैं और इस प्रकार प्रत्येक दशा में प्राप्त भजनफल में एक मिलाते हैं। इस तरह, भिन्न-भिन्न शेष श्रेढ़ियों के प्रचयों को प्राप्त करते हैं ॥९१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणितरूपी समुद्र के दूसरे किनारे का दर्शन करने वाले गणक! उन सब बराबर योगवाली श्रेढ़ियों के प्रचयों को निकालो जिनके प्रथमपद १,३,५,७,९ और ११ हों तथा पदों की संख्या (प्रत्येक में) ५ हो ॥९२॥

गुणधन और गुणोत्तर श्रेढि का योग निकालने की विधि—

गुणोत्तर श्रेढि के प्रथमपद को जब ऐसी बारंबार स्वतः से गुणित साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित करते हैं, जहाँ इस गुणनफल में श्रेढि के पदों की संख्या द्वारा साधारण निष्पत्ति की बारंबारता (frequency) को मापा जाता है; तब गुणधन प्राप्त होता है। यह गुणधन जब प्रथमपद द्वारा ह्रासित किया जाता है तथा एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा विभाजित किया जाता है तब गुणोत्तर श्रेढि का योग प्राप्त होता है ॥९३॥

---

(९१) इस दशा में साधारण सूत्र (formula) यह है: $ब_१ = \frac{अ - अ_१}{(न - १)/२} + ब$, जहाँ कि ब का मान इस नियम में १ लिया गया है।

(९३) न पदों की गुणोत्तर श्रेढि का गुणधन (न + १) वें पद के तुल्य होता है, जब कि श्रेढि संतत रहती है। बीजीय रूप से, इस गुणधन की अर्हा (र × र × र.. ...न गुणन खंडों तक × अ) अर्थात् ($अ र^न$) होती है, जहाँ कि "र" साधारण निष्पत्ति है। इसकी तुलना उत्तरधन से कर सकते हैं।

योग निकालने का नियम बीजीय रूप से यह है—

$य = \frac{अर^न - अ}{र - १}$, जहाँ अ प्रथम पद है, र साधारण निष्पत्ति है और न पदों की संख्या है।

गुणसंकलिते अन्यदपि सूत्रम्—

समदलविषमखरूपो गुणगुणितो वर्गताडितो गच्छः ।
रूपोनः प्रभवघ्नो व्येकोत्तरभाजितः सारम् ।।९४।।

गुणोत्तर श्रेढि का योग निकालने का अन्य नियम—

एक अलग स्तम्भ में श्रेढि के पदों की संख्या को शून्य और एक द्वारा क्रमशः दर्शाया जाता है। जब संख्या का मान युग्म (even) हो तो उसे आधा किया जाता है और मान अयुग्म (odd) हो तो उसमें से एक घटा कर प्राप्त फल को आधा किया जाता है—यह तब तक किया जाता है जब तक कि शून्य प्राप्त नहीं होता। तब यह निरूपित श्रेढि जो शून्य और एक द्वारा बनी हुई होती है, क्रम से अंतिम 'एक' से प्रयोग में लायी जाती है। वहाँ जहाँ एक प्ररूपक होता है साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित वह एक पुनः साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित किया जाता है; और जहाँ शून्य प्ररूपक होता है वहाँ भी गुणित किया जाता है ताकि वर्ग प्राप्त हो। जब यह फल एक द्वारा ह्रासित होकर, प्रथम-पद द्वारा पुनः गुणित किया जाता है और एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा विभाजित किया जाता है तब वह श्रेढि के योग को उत्पन्न करता है ॥९४॥

(९४) यह नियम पिछले नियम से केवल इसलिये भिन्न है कि इसमें वर्ग और सरल गुणन की विधियों को उपयोग में लाकर ($र^{न}$) को नई रीति से निकाला गया है। निम्नलिखित उदाहरण द्वारा रीति स्पष्ट हो जावेगी—

मान लो $र^{न}$ में न का मान १२ है। (न = १२)

१२ युग्म राशि है, इसलिये इसे २ के द्वारा विभाजित करते हैं और ० द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

$\frac{१२}{२}$ = ६ भी युग्म राशि है, " २ के " " " " " ० " " " "।

$\frac{६}{२}$ = ३ अयुग्म राशि है, इसलिये इसमें से १ घटाते हैं और १ " " " "।

३–१ = २ युग्म राशि है, इसलिये इसे २ द्वारा विभाजित करते हैं और ० " " " "।

$\frac{२}{२}$ = १ अयुग्म राशि है, इसलिये इसमें से एक घटाते हैं और १ " " " "।

१–१ = ०, जो क्रिया के इस भाग को समाप्त करती है।

०
०
१
०
१

अब, निरूपक स्तम्भ में (जिसमें अङ्क उपर्युक्त विधि द्वारा निकालते हैं) अंतिम एक को र द्वारा गुणित करते हैं, जिससे र प्राप्त होता है; क्योंकि इस अंतिम एक में ० उसके ऊपर है, र को ऊपर की तरह प्राप्त कर वर्गित करते हैं जिससे $र^{२}$ प्राप्त होता है; क्योंकि इस ० के ऊपर १ है, $र^{२}$ जो प्राप्त होता है अब र के द्वारा गुणित करने पर $र^{३}$ देता है; चूँकि इस १ के ऊपर ० है, इस $र^{३}$ को वर्गित करते हैं जो $र^{६}$ देता है; और चूँकि फिर से इस ० के ऊपर दूसरा शून्य है, इस $र^{६}$ को वर्गित करते हैं जो $र^{१२}$ देता है। इस तरह र का मान सरल वर्ग करने और गुणन करने की क्रियाओं द्वारा प्राप्त होता है। इस विधि का उपयोग केवल $र^{न}$ के मान को सरलता से प्राप्त करने हेतु होता है। और, यह सरलतापूर्वक देखा जाता है कि यह रीति न की समस्त धनात्मक और अभिन्नात्मक (integral) अर्हाओं (values) के लिये प्रयुक्त की जा सकती है।

गुणसंकलितान्त्यधनानयने तत्संकलितधनानयने च सूत्रम्—

गुणसंकलितान्त्यधनं विगतैकपदस्य गुणधनं भवति। तद्गुणगुणं मुखोनं व्येकोत्तरभाजितं सारम् ।९५।

गुणधनस्योदाहरणम्—

स्वर्णद्वयं गृहीत्वा त्रिगुणधनं प्रतिपुरं समार्जयति[1]। यः पुरुषोऽष्टनगर्यां तस्य कियद्वित्तमाचक्ष्व ।९६।

गुणधनस्याद्युत्तरानयनसूत्रम्—

गुणधनमादिविभक्तं यत्पदमितवधसमं स एव चयः। गच्छप्रमगुणघातप्रहृतं गुणितं भवेत्प्रभवः।९७।

गुणधनस्य गच्छानयन सूत्रम्—

मुखभक्ते गुणवित्ते यथा निरग्रं तथा गुणेन हृते। यावत्योऽत्र शलाकास्तावान् गच्छो गुणधनस्य।।९८।।

१ M समर्चयति।

गुणोत्तर श्रेढि के अंतिम पद तथा योग को निकालने का नियम—

गुणोत्तर श्रेढि का अंतिम पद अथवा अन्त्यधन, (जिसमें पदों की संख्या एक कम होती है ऐसी) दूसरी श्रेढि, का गुणधन होता है। यह अन्त्यधन, साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित किया जाने पर प्रथमपद द्वारा ह्रासित किया जाता है, तथा एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा विभाजित किया जाता है तो श्रेढि का योग प्राप्त होता है ॥९५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी नगर में २ स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त कर एक मनुष्य एक नगर से दूसरे नगर को जाता है; और प्रत्येक स्थान में पिछले स्थानों से प्राप्त मुद्राओं से तिगुनी मुद्राएँ प्राप्त करता है। बतलाओ कि आठवें नगर में उसे कितनी मुद्राएँ मिलेंगी ? ।।९६।।

किसी दिये गये गुणधन सम्बन्धी प्रथमपद और साधारण निष्पत्ति निकालने का नियम—

गुणधन जब प्रथमपद द्वारा विभाजित होता है तब वह ऐसी स्वगुणित राशि के गुणनफल के तुल्य हो जाता है जिस गुणन में कि वह राशि, पदों की संख्या की राशि बार (वारंवार) प्रकट होती है; और यह राशि चाही हुई साधारण निष्पत्ति है। गुणधन जब साधारण निष्पत्ति के वारंवार गुणन से प्राप्त गुणनफल द्वारा विभाजित किया जाता है—(साधारण निष्पत्ति के वारंवार स्वगुणन से प्राप्त ऐसा गुणनफल जिसमें इस साधारण निष्पत्ति का वारंवार प्रकटपना, पदों की संख्या द्वारा मापा जाता है) तब प्रथमपद प्राप्त होता है ।।९७।।

किसी गुणोत्तर श्रेढि में दिये गये गुणधन सम्बन्धी पदों की संख्या निकालने का नियम—

श्रेढि के गुणधन को प्रथमपद द्वारा विभाजित करो। तब इस भजनफल को साधारण निष्पत्ति द्वारा वारंवार तब तक विभाजित करो जब तक कि भाजनयोग्य कुछ न बच रहे। ऐसे वारंवार दिये गये भाग की संख्या का निरूपण करनेवाली शलाकाओं की संख्या जो भी हो वही दिये हुए गुणधन के सम्बन्ध में पदों की संख्या का मान होता है ।।९८।।

---

(९५) बीजीय रूप से, $य = \frac{अर^{न-१} \times र - अ}{र - १}$. अन्त्यधन, गुणोत्तर श्रेढि के अंतिम पद के मान के तुल्य होता है; गुणधन के अर्थ और मान के लिये सूत्र ९३ देखिये। न पदों वाली गुणोत्तर श्रेढि का अन्त्यधन $अर^{न-१}$ के तुल्य होता है, जब कि इसी श्रेढि का गुणधन $अर^{न}$ होता है। इसी तरह न − १ पदों वाली गुणोत्तर श्रेढि का अन्त्य धन $अर^{न-२}$ के तुल्य होता है, जब कि गुणधन $अर^{न-१}$ होता है। यहाँ स्पष्ट है कि न पदों की श्रेढि का अन्त्यधन उतना ही होगा जितना की न − १ पदों वाली श्रेढि का गुणधन।

(९७, ९८) स्पष्ट है कि $अर^{न}$ में अ का भाग देने पर $र^{न}$ प्राप्त होता है, और यह र द्वारा

गुणसंकलितोदाहरणम्—

दीनारपञ्चकादिद्विगुणं धनमर्जयन्नरः कश्चित् । प्राविक्षदष्टनगरीः कति जातास्तस्य दीनाराः ॥९९॥
सप्तमुखत्रिगुणचयत्रिवर्गगच्छस्य किं धनं वणिजः । त्रिकपञ्चकपञ्चदशप्रभवगुणोत्तरपदस्यापि ॥१००॥

गुणसंकलितोत्तराद्यानयनसूत्रम्—

असकृद्व्येकं मुखहृतवित्तं येनोद्धृतं भवेत्स चयः ।
व्येकगुणगुणितगणितं निरेकपदमात्रगुणवधाप्तं प्रभवः ॥१०१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य नगर से नगर भ्रमण करते हुए गुणोत्तर श्रेढि में धन कमाता है जिसका प्रथमपद ५ दीनार और साधारण निष्पत्ति २ है । इस तरह उसने आठ नगरों में प्रवेश किया । बतलाओ उसके पास कितने दीनार हैं ? ॥९९॥ गुणोत्तर श्रेढि के योग द्वारा धन का माप किया जाता है । एक मनुष्य के पास गुणोत्तर श्रेढि वाला कितना धन होगा जब कि श्रेढि का प्रथमपद ७ है, साधारण निष्पत्ति ३ है और पदों की संख्या ९ है । पुनः, जिसके प्रथमपद, साधारण निष्पत्ति और पदों की संख्या क्रमशः ३, ५, १५ हैं ऐसी गुणोत्तर श्रेढि वाला धन बतलाओ ॥१००॥

गुणोत्तर श्रेढि के दिये गये योग सम्बन्धी प्रथमपद और साधारण निष्पत्ति निकालने का नियम—

वह राशि जिसके द्वारा, श्रेढि के योग को प्रथम पद द्वारा विभाजित करने से प्राप्त हुई राशि को १ द्वारा ह्रासित कर उत्पन्न हुई राशि में कथित भाजन सम्भव हो (जब कि समय समय पर सब उत्तरोत्तर भजनफलों में से एक घटाने के पश्चात् भाग देने की यह विधि की जाती हो) तो वह राशि साधारण निष्पत्ति है । वह योग, जो एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित होकर, और तब स्वतः में वारंवार गुणित साधारण निष्पत्ति के (स्वगुणित साधारण निष्पत्ति का ऐसा गुणनफल जिसमें साधारण निष्पत्ति उतने बार प्रकट होती है जितनी कि पदों की संख्या रहती है) गुणनफल द्वारा विभाजित होकर और तब इस स्वतः में वारंवार गुणित साधारण निष्पत्ति के गुणनफल को एक द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि द्वारा विभाजित होकर प्रथमपद उत्पन्न करता है ॥१०१॥

न बार भाग देने योग्य है और 'न' ही श्रेढि के पदों की संख्या है । इसी तरह र×र×र×......न पदों तक, $र^{न}$ होता है; और गुणधन अर्थात् $अर^{न}$, इस $र^{न}$ द्वारा विभाजित होकर अ देता है जो कि श्रेढि का चाहा हुआ प्रथमपद है ।

(१०१) निम्नलिखित उदाहरण से नियम का प्रथमभाग स्पष्ट हो जावेगा—

श्रेढि का योग ४०९५ है, प्रथमपद ३ है, पदों की संख्या ६ है । यहाँ ४०९५ को ३ द्वारा भाजित करने पर हमें १३६५ प्राप्त होता है । अब, १३६५ − १ = १३६४ है । तब अन्वीक्षा द्वारा ४ चुनकर, $\frac{१३६४}{४}$ = ३४१; ३४१ − १ = ३४०; $\frac{३४०}{४}$ = ८५; ८५ − १ = ८४; $\frac{८४}{४}$ = २१; २१ − १ = २०; $\frac{२०}{४}$ = ५; ५ − १ = ४; $\frac{४}{४}$ = १ है । इसलिये ४ यहाँ साधारण निष्पत्ति है । निम्नलिखित से इस विधि-का आधारभूत सिद्धान्त स्पष्ट हो जावेगा—

$$\frac{अ(र^{न}-१)}{र-१} \div अ = \frac{र^{न}-१}{र-१}\ ;\ \text{और}\ \frac{र^{न}-१}{र-१} - १ = \frac{र^{न}-र}{र-१}$$ जो कि स्पष्टतः र के द्वारा भाज्य है । दूसरा भाग बीजीय रूप से इस तरह है—

$$अ = \frac{अ(र^{न}-१)}{र-१} \times \frac{र-१}{र^{न}-१}$$

अत्रोद्देशकः

त्रिमुखर्तुगच्छबाणाङ्काम्बरजलनिधिधने कियान्प्रचयः।
षड्गुणचयपञ्चपदाम्बरशशिहिमगुत्रिवित्तमत्र मुखं किम् ॥१०२॥

गुणसंकलितगच्छानयनसूत्रम्—

एकोनगुणाभ्यस्तं प्रभवहृतं रूपसंयुतं वित्तम्। यावत्कृत्वो भक्तं गुणेन तद्वारसंमितिर्गच्छः ॥१०३॥

अत्रोद्देशकः

त्रिप्रभवं षट्कगुणं सारं सप्तत्युपेतसप्तशती। सप्तामा ब्रूहि सखे कियत्पदं गणक गुणनिपुण ॥१०४॥
पञ्चादिद्विगुणोत्तरे शरगिरिद्व्येकप्रमाणे धने सप्तादि[1] त्रिगुणे नगेभदुरितस्तम्बेरमर्तुप्रमे।
त्र्यास्ये पञ्चगुणाधिके हुतवहोपेन्द्राक्षवह्निद्विपश्वेतांशुद्विरदेभकर्मकरदङ्काग्नेऽपि गच्छः कियान् ॥१०५॥
इति परिकर्मविधौ सप्तमं संकलितं समाप्तम् ॥

व्युत्कलितम्

अष्टमे व्युत्कलितपरिकर्मणि करणसूत्रं यथा—

सपदेष्टं स्वेष्टमपि व्येकं दलितं चयाहतं समुखम्। शेषेष्टगच्छगुणितं व्युत्कलितं स्वेष्टवित्तं च ॥१०६॥

१ M द्य।

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि गुणोत्तर श्रेढि में प्रथम पद ३ है, पदों की संख्या ६ है, और योग ४०९५ है तो उसकी साधारण निष्पत्ति बतलाओ। यदि साधारण निष्पत्ति ६ हो, पदों की संख्या ५ हो, और योग ३११० हो तो ऐसी गुणोत्तर श्रेढि का प्रथमपद क्या है? ॥१०२॥

गुणोत्तर श्रेढि के पदों की संख्या निकालने का नियम—

गुणोत्तर श्रेढि के योग को एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित करो; तब इस गुणनफल को प्रथमपद द्वारा भाजित करो और तब इस भजनफल में एक जोड़ो। यह परिणामी राशि साधारण निष्पत्ति द्वारा जितनी बार उत्तरोत्तर भाजित होगी, वह संख्या श्रेढि के पदों की संख्या होगी ॥१०३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गुणनिपुण गणक मित्र! मुझे बतलाओ कि जिस श्रेढि में प्रथमपद ३ है; साधारण निष्पत्ति ६ है, और योग ७७७ है, उसके पदों की संख्या कितनी होगी? ॥१०४॥ जिस श्रेढि में ५ प्रथमपद है, २ साधारण निष्पत्ति है, १२७५ योग है; और उस श्रेढि में जिसका प्रथमपद ७ है; योग ६८८८७ है और साधारण निष्पत्ति ३ है तथा उस श्रेढि में जिसका प्रथमपद ३ है, साधारण निष्पत्ति ५ है और योग २२८८८१८३५९३ है—पदों की संख्या अलग-अलग निकालो ॥१०५॥

इस प्रकार परिकर्म व्यवहार में, संकलित नामक परिच्छेद समाप्त हुआ।

व्युत्कलित

परिकर्म क्रियाओं में आठवीं क्रिया व्युत्कलित[1] सम्बन्धी नियम—

श्रेढि के कुल पदों की संख्या को चुने हुए पदों की संख्या से मिला लो, और अपनी चुनी हुई पदों की संख्या अलग से लो; इन राशियों में से प्रत्येक को एक द्वारा ह्रासित कर आधी करो और तब प्रचय द्वारा गुणित करो; और तब इन प्रत्येक परिणामी गुणनफलों में प्रथमपद को जोड़ दो। प्राप्त परिणामी राशियों को जब क्रमशः शेष पदों की संख्या तथा चुने हुए पदों की संख्या द्वारा गुणित करते हैं तो क्रमशः शेष श्रेढि का योग और श्रेढि के चुने हुए भाग का योग प्राप्त होता है ॥१०६॥

---

१ किसी दी हुई श्रेढि में आरम्भ से चुना हुआ कोई भाग इष्ट भाग कहलाता है और शेष श्रेढि में शेष पद रहने के कारण वह शेष श्रेढि कहलाती है। इन शेष पदों का योग ही व्युत्कलित कहलाता है।

(१०६) बीजीय रूप से व्युत्कलित $= य_{1} = \left\{ \frac{न + द - १}{२} \cdot ब + अ \right\} (न - द)$, और

चुने हुए भाग (इष्ट) का योग $= य_{2} \left(\frac{द - १}{२} \cdot ब + अ \right) द$; जहाँ द श्रेढि का चुने हुए भाग के पदों की संख्या है।

प्रकारान्तरेण व्युत्कलितधनस्वेष्टधनानयनसूत्रम्—

गच्छसहितेष्टमिष्टं चैकोनं चयहतं द्विहादियुतम् । शेषेष्टपदार्धगुणं व्युत्कलितं स्वेष्टवित्तमपि ॥१०७॥

चयगुणभवव्युत्कलितधनानयने व्युत्कलितधनस्य शेषेष्टगच्छानयने च सूत्रम्—

इष्टधनोनं गणितं[1] व्यवकलितं चयभवं गुणोत्थं च । सर्वेष्टगच्छशेषे शेषपदं जायते तस्य ॥१०८॥

शेषगच्छस्याद्यानयनसूत्रम्—

प्रचयगुणितेष्टगच्छः सादिः प्रभवः पदस्य शेषस्य । प्राक्तन एव चयः स्याद्गच्छस्येष्टस्य तावेव ॥१०९॥

१ M गणितं ।

दूसरी रीति द्वारा शेष श्रेढि (व्युत्कलित) तथा दी गई श्रेढि के चुने हुए इष्ट भाग के योगफलों को प्राप्त करने का नियम—

श्रेढि के कुल पदों की संख्या को चुने हुए पदों की संख्या में मिला लो और अपनी चुनी हुई पदों की संख्या अलग से लो; इन राशियों में से प्रत्येक को एक द्वारा ह्रासित करो और तब प्रचय द्वारा गुणित करो । इन परिणामी गुणनफलों में प्रथमपद की दुगुनी राशि जोड़ो । प्राप्त परिणामी राशियों को जब क्रमशः शेष पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा और चुनी हुई पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा गुणित करते हैं तब शेष श्रेढि का योग और श्रेढि के चुने हुए भाग का योग प्राप्त होता है ॥१०७॥

समान्तर और गुणोत्तर श्रेढि के शेष श्रेढि की योग तथा उसके शेष पदों की संख्या निकालने का नियम—

दी हुई श्रेढि का योग, श्रेढि के चुने हुए भाग द्वारा ह्रासित होकर समान्तर तथा गुणोत्तर श्रेढि के शेष भाग के योग को उत्पन्न करता है । श्रेढि के कुल पदों की संख्या और चुनी हुई श्रेढि के पदों की संख्या का अन्तर शेष श्रेढि के पदों की संख्या होता है ॥१०८॥

शेष श्रेढि के पदों सम्बन्धी प्रथमपद निकालने का नियम—

चुनी हुई पदों की संख्या को प्रचय द्वारा गुणित करने और श्रेढि के प्रथमपद में मिलाने पर शेष श्रेढि के (शेष) पदों का प्रथमपद उत्पन्न होता है । उपर्युक्त प्रचय, शेष पदों का भी प्रचय होता है । चुने हुए भाग के पदों की संख्या सम्बन्धी प्रथमपद और प्रचय, दी हुई श्रेढि के प्रथमपद और प्रचय के तुल्य होते हैं ॥१०९॥

---

(१०७) फिर से, व्युत्कलित $= य_{व} = \{ (न + द - १) ब + २ अ \} \frac{न - द}{२}$

और इष्ट का योग $= य_{इ} = \{ (द - १) ब + २ अ \} \frac{द}{२}$

(१०९) शेष श्रेढि का प्रथमपद $= द \times ब + अ$ है यह श्रेढि स्पष्टतः समान्तर श्रेढि है ।

गुणव्युत्कलितशेषगच्छस्याद्यानयनसूत्रम्—

गुणगुणितेऽपि चयादी तथैव भेदोऽयमत्रशेषपदे ।
इष्टपदमितिगुणाहतिगुणितप्रभवो भवेद्वक्कम् ॥११०॥

अत्रोद्देशकः

द्विमुखस्त्रिचयो गच्छश्चतुर्दश स्वेप्सितं पदं सप्त । अष्टनवषट्कपञ्च च किं व्युत्कलितं समाकलय ॥१११॥
षडादिरष्टौ प्रचयोऽत्र षट्कृतिः पदं दश द्वादश षोडशेप्सितम् ।
मुखादिरन्यस्य तु पञ्चपञ्चकं शतद्वयं ब्रूहि शतं व्ययः कियान् ॥११२॥
षड्घनमानो गच्छः प्रचयोऽष्टौ द्विगुणसप्तकं वक्कम् ।
सप्तत्रिंशत्स्वेष्टं पदं समाचक्ष्व फलमुभयम् ॥११३॥
अष्टकृतिरादिरुत्तरमूनं चत्वारि षोडशात्र पदम् । इष्टानि तत्त्वकेशवरुद्रार्कपदानि किं शेषम् ॥११४॥

गुणोत्तर श्रेढि की शेष श्रेढि के (शेष) पदों की संख्या सम्बन्धी प्रथमपद निकालने का नियम—

गुणोत्तर श्रेढि के विषय में भी दी गई श्रेढि में तथा इष्ट भाग में साधारण निष्पत्ति तथा प्रथम पद समान होते हैं । परन्तु, शेष श्रेढि के पदों का प्रथमपद भिन्न होता है । दी हुई श्रेढि का प्रथमपद ऐसे गुणनफल द्वारा गुणित होकर, जो साधारण निष्पत्ति के स्वतः उतनी बार गुणित होने से उत्पन्न होता है जितनी बार कि चुने हुए पदों की संख्या होती है, शेष श्रेढि के प्रथमपद को उत्पन्न करता है ॥११०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समान्तर श्रेढि की शेष श्रेढि के योग की गणना करो जब कि प्रथम पद २ हो, प्रचय ३ हो और पदों की संख्या १४ हो तथा चुनी हुई पदों की संख्या क्रमशः ७, ८, ९, ६ और ५ हो ॥१११॥ समान्तर श्रेढि के सम्बन्ध में यहाँ प्रथमपद ६ है, प्रचय ८ है, पदों की संख्या ३६ है और चुनी हुई पदों की संख्या क्रमशः १०, १२ और १६ है । इसी तरह की दूसरी श्रेढि के प्रथमपद और प्रचय आदि क्रमशः ५, ५, २०० और १०० है । बतलाओ कि संवादी शेष श्रेढियों के योग क्या-क्या हैं? ॥११२॥ समान्तर श्रेढि के पदों की संख्या २१६ हैं; प्रचय ८ है; प्रथमपद १४ है; इष्ट भाग के पदों की संख्या ३७ है । शेष श्रेढि और इष्ट श्रेढि (चुने हुए भाग) के योग क्या-क्या होंगे? ॥११३॥ समान्तर श्रेढि का प्रथमपद ६४ है, प्रचय—४ (ऋण चार) है तथा पदों की संख्या १६ है । बतलाओ कि शेष श्रेढि के योग क्या-क्या होंगे जब कि इष्ट भाग के पदों की संख्या क्रमशः ७, ९, ११ और १२ हो ॥११४॥

---

(११०) शेष गुणोत्तर श्रेढि का प्रथमपद ar^{d} है ।

गुणव्युत्कलितस्योदाहरणम्—

चतुरादिद्विगुणात्मकोत्तरयुतो गच्छश्चतुर्णां कृतिर्
दश वाञ्छापदमङ्कसिन्धुरगिरिद्रव्येन्द्रियाम्भोधयः।
कथय व्युत्कलितं फलं सकलसद्रूजाग्रिमं व्योत्तवान्
करणस्कन्धवनान्वरं गणितविन्मत्तेभविक्रीडितम् ॥११५॥

इति परिकर्मविधावष्टमं व्युत्कलितं समाप्तम् ॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ परिकर्मनामा प्रथमो व्यवहारः समाप्तः ॥

---

१ M प्रा. ।

गुणोत्तर श्रेढि सम्बन्धी व्युत्कलित पर प्रश्न

क्रमबद्ध गुच्छेवाले वृक्षों के फलों की संकलन क्रिया में ४ प्रथमपद है, २ प्रचय है, पदों की संख्या १६ है जब कि इष्ट भाग में पदों की संख्या क्रमशः १०, ९, ८, ७, ६, ५ और ४ है। हे जंगली हस्तियों द्वारा क्रीड़ित वन के अंतस्थल रूपी व्यावहारिक गणित की क्रियाओं के वेधक ! बतलाओ कि कथित विभिन्न उत्तम वृक्षों के शेष फलों की कुल संख्या क्या है ? ॥११५॥

इस प्रकार, परिकर्म व्यवहार में व्युत्कलित नामक परिच्छेद समाप्त हुआ।

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणित शास्त्र में परिकर्म नामक प्रथम व्यवहार समाप्त हुआ।

---

(११५) इस प्रश्न में भिन्न-भिन्न ७ फलों के वृक्ष हैं जिनमें से प्रत्येक में फलों के १६ गुच्छे हैं। प्रत्येक वृक्ष में सबसे छोटा गुच्छा ४ फलों वाला है; बड़े-बड़े गुच्छों में गुणोत्तर श्रेढि में बढ़ते हुए फलों की संख्याएँ हैं, जिसकी साधारण निष्पत्ति २ है। ७ वृक्षों में से हटाये हुए गुच्छों की संख्या नीचे से क्रमशः १०, ९, ८, ७, ६, ५ और ४ है। यहाँ विभिन्न उत्तम वृक्षों पर शेष फलों की कुल संख्या निकालना है। 'मत्तेभवि क्रीडितं' जो इस सूत्र में आया है, उसी सूत्र का छन्द (metre) है जिसमें कि वह संरचित किया गया है। इसका अर्थ वन्यहस्तियों की क्रीड़ा भी होता है।

३. कलासवर्णव्यवहारः

[1]त्रिलोकराजेन्द्रकिरीटकोटिप्रभाभिरालीढपदारविन्दम् ।
निर्मूलमुन्मूलितकर्मवृक्षं जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ॥ १ ॥

इतः परं कलासवर्णं द्वितीयव्यवहारमुदाहरिष्यामः ।

भिन्नप्रत्युत्पन्नः

तत्र भिन्नप्रत्युत्पन्ने करणसूत्रं यथा—
गुणयेदंशानंशैर्हारान् हारैर्घटेत यदि तेषाम् । वज्रापवर्तनविधिर्विधाय तं भिन्नगुणकारे ॥ २ ॥

अत्रोद्देशकः

शुण्ठ्याः पलेन लभते चतुर्नवांशं पणस्य यः पुरुषः ।
किमसौ ब्रूहि सखे त्वं त्रिगुणेन पलाष्टभागेन ॥ ३ ॥
मरिचस्य पलस्यार्घः पणस्य सप्ताष्टमांशको यत्र । तत्र भवेत्किं[2] मूल्यं पलषट्पञ्चांशकस्य वद ॥ ४ ॥

१ यह श्लोक P में छूट गया है । २ M मौ. ।

३. कलासवर्ण व्यवहार[1]

(भिन्न)

जिन्होंने कर्मरूपी वृक्ष को पूर्णतः निर्मूल कर दिया है और जिनके चरण कमल तीनों लोकों के राजेन्द्रों के झुके हुए मस्तक पर लगे हुए मुकुटों द्वारा उत्पन्न प्रभामंडल द्वारा वेष्टित हैं, ऐसे जिनेन्द्र चन्द्रनाथ भगवान् को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥१॥

इसके पश्चात् हम कलासवर्ण (भिन्न) नामक द्वितीय व्यवहार को प्रकट करेंगे ।

भिन्न प्रत्युत्पन्न (भिन्नों का गुणन)

भिन्नों के गुणन के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है—

भिन्नों के गुणन में अंशों को अंशों से गुणित किया जाता है और हरों को हरों से गुणित किया जाता है जब कि उनके सम्बन्ध में (सम्भव) तिर्यक् प्रह्रासन (वज्र अपवर्तन) की क्रिया की जा चुकी हो ॥२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे मित्र, मुझे बतलाओ यदि अदरख (ginger) का एक पल $\frac{4}{9}$ पण में मिलता हो तो किसी व्यक्ति को $\frac{3}{8}$ पल के लिये क्या मिलेगा ? ॥३॥ $\frac{7}{8}$ पण में १ पल मिर्च मिलती हो तो बतलाओ कि $\frac{5}{6}$ पल मिर्च की क्या कीमत होगी ? ॥४॥ एक व्यक्ति को लम्बी मिर्च एक पण में $\frac{1}{2}$ पल मिलती

१ कलासवर्ण का शाब्दिक अर्थ $\frac{1}{16}$ भाग होता है, क्योंकि कला का अर्थ सोलहवाँ भाग होता है । इसलिये, कलासवर्ण का उपयोग भिन्न को साधारण रूप से दर्शाने के लिये किया गया है ।

(२) जब $\frac{4}{9} \times \frac{3}{8}$ प्रह्रासित किये जाते हैं तो तिर्यक् प्रह्रासन द्वारा $\frac{1}{2} \times \frac{1}{3}$ प्राप्त होता है ।

कश्चित्पणेन लभते त्रिपञ्चभागं पलस्य पिप्पल्याः ।
नवभिः पणैर्द्विभक्तैः किं गणकाचक्ष्व गुणयित्वा ॥ ५ ॥
क्रीणाति पणेन वणिग्जीरकपलनवदशांशकं यत्र । तत्र पणैः पञ्चार्धैः कथय त्वं किं समप्रमते ॥ ६ ॥
द्व्यादयो द्वितयवृद्धयोऽशकास्त्र्यादयो द्वयचया हराः पुनः ।
ते द्वये दशपदाः कियत्फलं ब्रूहि तत्र गुणने द्वयोर्द्वयोः ॥ ७ ॥

इति भिन्नगुणाकारः ।

भिन्नभागहारः

भिन्नभागहारे करणसूत्रं यथा—
अंशीकृत्यच्छेदं प्रमाणराशेस्ततः क्रिया गुणवत् ।
प्रमितफलेऽन्यहरघ्ने विच्छिदि वा सकलवच्च भागहृतौ ॥ ८ ॥

अत्रोद्देशकः

हिङ्गोः पलार्धमौल्यं पणत्रिपादांशको भवेद्यत्र । तत्रार्धे विक्रीणन् पलमेकं किं नरो लभते ॥ ९ ॥
अगरोः पलाष्टमेन त्रिगुणेन पणस्य विंशतित्र्यंशान् । उपलभते यत्र पुमानेकेन पलेन किं तत्र ॥१०॥
पणपञ्चमैश्चतुर्भिर्नखस्य पलसप्तमो द्व्यशीतिगुणः । संप्राप्यो यत्र स्यादेकेन पणेन किं तत्र ॥११॥

हो तो हे गणितज्ञ ! गुणन के पश्चात् कहो कि उसे $\frac{९}{२}$ पण में कितनी मिर्च मिलेगी ? ॥५॥ एक वणिक एक पण में $\frac{९}{१०}$ पल जीरा (cumin seeds) खरीदता है । हे समप्रमते ! बतलाओ कि वह $\frac{५}{२}$ पण में कितना खरीदेगा ? ॥६॥ दिये गये भिन्नों में अंश २ से आरम्भ होकर २ से बढ़ते चले जाते हैं; उनके हर ३ से आरम्भ होकर २ से बढ़ते चले जाते हैं; वे अंश और हर दोनों दशाओं में संख्या में दस रहते हैं । बतलाओ कि दो भिन्नों को एक बार में लेने पर उनके गुणनफल अलग-अलग क्या होंगे ? ॥७॥

इस प्रकार, कलासवर्ण व्यवहार में भिन्न गुणकार नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

भिन्न भागहार (भिन्नों का भाग)

भिन्नों के भाग के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है—

भाजक के हर को अंश तथा अंश को हर बनाने के पश्चात् केवल गुणन की क्रिया करना पड़ती है । अथवा, भाजक और भाज्य को एक दूसरे के हरों द्वारा गुणित कर प्राप्त हर रहित गुणनफलों का भाग केवल पूर्ण संख्याओं के भाग की भाँति किया जाता है ॥८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

जब $\frac{३}{४}$ पण में $\frac{१}{२}$ पल हींग मिलती है तो एक व्यक्ति को एक पल हींग उसी भाव से बेचने पर क्या मिलेगा ? ॥९॥ $\frac{३}{८}$ पल (लाल चंदन की लकड़ी) का मूल्य $\frac{२०}{३}$ पण है तो एक पल अगरु का क्या मूल्य होगा ? ॥१०॥ नख द्रव्य के $\frac{८२}{७}$ पल का मूल्य $\frac{४}{५}$ पण है तो एक पण में (उसी अर्घ से) कितने पल द्रव्य मिलेगा ? ॥११॥ दिये गये भिन्नों के अंश ३ से आरम्भ होकर क्रमशः १ द्वारा

---

(७) यहाँ कथित भिन्न $\frac{२}{३}$, $\frac{४}{५}$, $\frac{६}{७}$ इत्यादि हैं ।

(८) (i) $\frac{अ}{ब} \div \frac{स}{द} = \frac{अ}{ब} \times \frac{द}{स}$; (ii) $\frac{अ}{ब} \div \frac{स}{द} = अद \div बस$

त्र्यादिरूपपरिवृद्धियुजोंऽशा यावदष्टपदमेकविहीनाः ।
हारकास्तत इह द्वितयाद्यैः किं फलं वद परेषु हृतेषु ॥१२॥

इति भिन्नभागहारः ।

भिन्नवर्गवर्गमूलघनघनमूलानि

[1]भिन्नवर्गवर्गमूलघनघनमूलेषु करणसूत्रं यथा—
कृत्वाच्छेदांशकयोः कृतिकृतिमूले घनं च घनमूलम् । तच्छेदैरंशहृतौ वर्गादिफलं भवेद्भिन्ने ॥१३॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चकसप्तनवानां दलितानां कथय गणक वर्गं त्वम् । षोडशविंशतिशतकद्विशतानां च त्रिभक्तानाम् ॥१४॥
त्रिकादिरूपद्वयवृद्धयोंऽशा द्विकादिरूपोत्तरका हराश्च ।
पदं मतं द्वादशवर्गमेषां वदाशु मे त्वं गणकाग्रगण्य ॥१५॥
पादनवांशकषोडशभागानां पञ्चविंशतितमस्य । षट्त्रिंशद्भागस्य च कृतिमूलं गणक भण शीघ्रम् ॥१६॥
भिन्ने वर्गे राशयो वर्गिता ये तेषां मूलं सप्तशत्याश्च किं स्यात् ।
त्र्यष्टोनायाः पञ्चवर्गोद्धृताया ब्रूहि त्वं मे वर्गमूलं प्रवीण ॥१७॥

---

१ M भिन्नवर्गभिन्नवर्गमूलभिन्नघनतन्मूलेषु ।

बढ़ते चले जाते हैं जब तक कि उनकी संख्या ८ नहीं हो जाती । हर भी दो से आरम्भ होकर संवादी अंशों से क्रमशः एक कम हैं । मुझे बतलाओ कि यदि प्रत्येक अग्रिम भिन्न को पूर्ववर्ती भिन्न के द्वारा विभाजित किया जाय तो क्या फल होगा ? ॥१२॥

इस प्रकार, कलासवर्ण व्यवहार में, भिन्न भागहार नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

भिन्न सम्बन्धी वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल

भिन्नों के सम्बन्ध में वर्ग करने वर्गमूल निकालने, घन करने, और घनमूल निकालने के लिये नियम—

जब हल किये गये भिन्न के अंश और हर का अलग-अलग वर्ग, वर्गमूल, घन अथवा घनमूल निकाल लिया जाता है तब इस तरह प्राप्त नये अंश को नये हर द्वारा भाजित किया जाता है । इस प्रकार भिन्न के सम्बन्ध में वर्ग अथवा वर्गमूल, घन अथवा घनमूल प्राप्त होता है ॥१३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे अंकगणितज्ञ ! मुझे बतलाओ कि $\frac{५}{२}$, $\frac{७}{२}$, $\frac{९}{२}$, $\frac{१६}{३}$, $\frac{२०}{३}$, $\frac{१००}{३}$ और $\frac{२००}{३}$ के वर्ग क्या होंगे ? ॥१४॥ दिये गये भिन्नों के अंश ३से आरम्भ होते हैं और उत्तरोत्तर क्रमशः २ द्वारा बढ़ते चले जाते हैं; हर २ से आरम्भ होते हैं और उत्तरोत्तर १ द्वारा बढ़ते चले जाते हैं । इन भिन्नों की संख्या १२ है । हे अंकगणितज्ञों में अग्रणी ! मुझे उनके वर्ग शीघ्र बतलाओ ? ॥१५॥ हे अंकगणितज्ञ ! मुझे शीघ्र बताओ कि $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{९}$, $\frac{१}{१६}$, $\frac{१}{२५}$ और $\frac{१}{३६}$ के वर्गमूल क्या होंगे ?॥१६॥ हे कुशल व्यक्ति ! मुझे भिन्नों के वर्गों से सम्बन्धित प्रश्नों में प्राप्त वर्गित राशियों के वर्गमूल तथा $\frac{६७६}{२५}$ का वर्गमूल बतलाओ ॥१७॥

---

(१७) यहाँ $\frac{६७६}{२५}$ को मूल गाथा में $\frac{७०० - ३ \times ८}{५^२}$ के रूप में दर्शाया गया है ।

अर्धत्रिभागपादाः पञ्चांशकषष्ठसप्तमाष्टांशाः। दृष्टा नवमश्चैषां पृथक् पृथग्ब्रूहि गणक घनम् ॥१८॥
त्रितयादि चतुश्चयकोंऽशगणो द्विमुखद्विचयोऽत्र हरप्रचयः।
दशकं पदमाशु तदीयघनं कथय प्रिय सूक्ष्ममते गणिते ॥१९॥
शतकस्य पञ्चविंशस्याष्टविभक्तस्य कथय घनमूलम्।
नवयुतसप्तशतानां विंशानामष्टभक्तानाम् ॥२०॥
भिन्नघने परिदृष्टघनानां मूलमुदग्रमते वद मित्र।
त्र्यूनशतद्वययुग्द्विसहस्र्या श्चापि नवप्रहतत्रिहृतायाः ॥२१॥

इति भिन्नवर्गवर्गमूलघनघनमूलानि।

भिन्नसंकलितम्

भिन्नसंकलिते करणसूत्रं यथा—

पदमिष्टं प्रचयहतं द्विगुणप्रभवान्वितं चयेनोनम्।
गच्छार्धेनाभ्यस्तं भवति फलं भिन्नसंकलिते ॥२२॥

---

१ M सप्तशतस्यापि सखे त्र्येकोनत्रिंशकाष्टकाप्तस्य।

$\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{५}$, $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{७}$, $\frac{१}{८}$ और $\frac{१}{९}$ राशियाँ दी गई हैं; इनके घन अलग-अलग बतलाओ ॥१८॥ दिये गये भिन्नों के अंश ३ से आरम्भ होकर ४ द्वारा उत्तरोत्तर बढ़ते हैं; हर २ से आरम्भ होकर उत्तरोत्तर २ द्वारा बढ़ते हैं। ऐसे भिन्नात्मक पदों की संख्या १० है। हे तीव्र बुद्धिधारी गणक मित्र! बतलाओ कि उनके घन क्या होंगे? ॥१९॥ $\frac{१२५}{८}$ और $\frac{७२९}{८}$ के घनमूल निकालो ॥२०॥ हे अप्रमते मित्र! भिन्नों के घन निकालने के प्रश्नों में प्राप्त घन राशियों के घनमूल और $\frac{२१९७}{२७}$ का घनमूल निकालकर बतलाओ।

इस प्रकार कलासवर्ण व्यवहार में भिन्न सम्बन्धी वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल नामक परिच्छेद समाप्त हुआ।

भिन्न संकलित (भिन्नात्मक श्रेढियों का योगकरण)

भिन्नात्मक श्रेढियों का संकलन सम्बन्धी नियम—

समान्तर श्रेढि में भिन्नात्मक श्रेढि को बनाने वाले पदों की चुनी हुई संख्या को प्रचय द्वारा गुणित करते हैं और प्रथमपद की द्विगुणित राशि में मिलाते हैं। प्राप्त फल को प्रचय से ह्रासित करते हैं। जब यह परिणामी राशि पदों की संख्या की आधी राशि से गुणित की जाती है, तब वह समान्तर श्रेढि की भिन्नात्मक श्रेढि के योग को उत्पन्न करती है ॥२२॥

---

(२२) बीजीयरूप से, $य = (नब + २अ - ब) \frac{न}{२}$ है। इसके लिये द्वितीय अध्याय की ६२वीं गाथा देखिये।

अत्रोद्देशकः

द्वित्र्यंशः षड्भागस्त्रिचरणभागो मुखं चयो गच्छः ।
द्वौ पञ्चमौ त्रिपादो द्वित्र्यंशोऽन्यस्य कथय किं वित्तम् ॥२३॥
आदिः प्रचयो गच्छस्त्रिपञ्चमः पञ्चमस्त्रिपादांशः ।
सर्वांशहरौ वृद्धौ द्वित्रिभिरा सप्तकाच्च का चितिः ॥२४॥

इष्टगच्छस्याद्युत्तरवर्गरूपघनरूपधनानयनसूत्रम्—

पदमिष्टमेकमादिर्व्येकेष्टदलोद्धृतं मुखोनपदम् । प्रचयो वित्तं तेषां वर्गो गच्छाहतं वृन्दम् ॥२५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

जिस श्रेढि में प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या क्रमशः $\frac{२}{३}$, $\frac{१}{६}$ और $\frac{३}{४}$ हों तथा ऐसी ही एक और श्रेढि में ये क्रमशः $\frac{२}{५}$, $\frac{३}{४}$ और $\frac{२}{३}$ हों तो इन श्रेढियों के योग बतलाओ ॥२३॥ समानान्तर श्रेढि में दी गई एक श्रेढि के प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या क्रमशः $\frac{३}{५}$, $\frac{१}{५}$ और $\frac{३}{४}$ है। इन सब भिन्नात्मक राशियों के अंश और हर उत्तरोत्तर २ और ३ द्वारा क्रमशः बढ़ाये जाते हैं जब तक कि ७ श्रेढियाँ इस प्रकार तैयार नहीं हो जावीं। बतलाओ कि इनमें से प्रत्येक श्रेढि का योग क्या है ?॥२४॥

जब योग, दी हुई श्रेढि के पदों की संख्या का वर्गरूप या घनरूप हो तो चुने हुए पदों वाली श्रेढि के सम्बन्ध में प्रथम पद, प्रचय और योग निकालने का नियम—

जो भी पदों की संख्या चुनी गई हो उसे लो और प्रथम पद को एक मान लो। पदों की संख्या को प्रथम पद द्वारा ह्रासित कर और तब एक कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा भाजित करने से प्रचय प्राप्त होता है। इनके सम्बन्ध में श्रेढि का योग पदों की संख्या की राशि का वर्ग होता है। यह जब पदों की संख्या द्वारा गुणित किया जाता है तो योग का घन प्राप्त होता है ॥२५॥

---

(२३) जब श्रेढि में पदों की संख्या भिन्न के रूप में दी गई हो तो स्पष्ट है कि ऐसी श्रेढि साधारणतः बनाई नहीं जा सकती। परन्तु, अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि दिया गया नियम इन दशाओं में ठीक उतरता है।

(२५) स्पष्ट है कि, सूत्र में $य = \frac{न}{२}(२अ + \overline{न - १}\,ब)$, और जब $अ = १$ और $ब = \frac{२(न - अ)}{न - १}$ हो तो य का मान $न^२$ के तुल्य हो जाता है। इस योग में न का गुणन करने में, अ और ब का न द्वारा गुणन भी अंतर्भूत है ताकि जब $अ = न$ और $ब = \frac{न - अ}{न - १} २न$ हो, तब $य = न^३$ हो। कुछ और विचार करने पर ज्ञात होगा कि अ का मान चाहे पूर्णांक अथवा भिन्नीय हो फिर भी ब का $\frac{२(न \sim अ)}{न - १}$ रूपवाला मान य की अर्हा को $न^२$ के रूप में ला सकता है।

'$\sim$' चिह्न का अर्थ अन्तर होता है।

अत्रोद्देशकः

[1]पदमिष्टं द्वित्र्यंशो रूपेणांशो हरश्च संवृद्धः । यावद्दशपदमेषां वद मुखचयवर्गवृन्दानि ॥२६॥

इष्टघनधनाद्युत्तरगच्छानयनसूत्रम्—

इष्टचतुर्थः प्रभवः प्रभवात्प्रचयो भवेद्द्विसंगुणितः ।
प्रचयश्चतुरभ्यस्तो गच्छस्तेषां युतिर्वृन्दम् ॥२७॥

अत्रोद्देशकः

द्विमुखैकचया अंशास्त्रिप्रभवैकोत्तरा हरा उभये ।
पञ्चपदा वद तेषां घनधनमुखचयपदानि सखे ॥२८॥

१ यह श्लोक M में अप्राप्य है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दी हुई श्रेढि में पदों की चुनी हुई संख्या $\frac{2}{3}$ है; इस भिन्न के अंश और हर उत्तरोत्तर एक द्वारा बढ़ाये जाते हैं जब तक कि १० विभिन्न भिन्नात्मक पद प्राप्त नहीं होते । इन भिन्नों को संवादी समान्तर श्रेढियों के पदों की संख्या मानकर उनके सम्बन्ध में प्रथम पद, प्रचय और योग के वर्ग तथा घन निकालो ॥२६॥

समान्तर श्रेढि के दिये हुए योग (जो कि किसी इष्ट राशि का घन हो) के सम्बन्ध में प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या निकालने का नियम—

इष्ट राशि का चतुर्थांश प्रथम पद है । इस प्रथम पद में दो का गुणन करने पर प्रचय उत्पन्न होता है । प्रचय में चार का गुणा करने पर (एक) इष्ट श्रेढि के पदों की संख्या प्राप्त होती है । इनसे सम्बन्धित योग इष्ट राशि का घन होता है ॥२७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अंश २ से आरम्भ होते हैं और उत्तरोत्तर १ द्वारा बढ़ते हैं; हर को १ द्वारा बढ़ाते हैं जो कि आरम्भ में ३ है । ये दोनों प्रकार के पद (अंश और हर) में से प्रत्येक संख्या में पाँच है । इन चुनी हुई भिन्नात्मक राशियों के सम्बन्ध में, हे मित्र, घनात्मक योग और संवादी प्रथमपद, प्रचय और पदों की संख्या निकालो ॥२८॥

(२७) यह नियम केवल विशेष दशा में प्रयुक्त किया गया है । यह साधारण रूप से भी प्रयोग में लाया जा सकता है । नियम इस तरह है :

$$\frac{क}{४}+\frac{३क}{४}+\frac{५क}{४}+\cdots\cdots २\text{ क पदों तक}=\frac{क}{४}(२\,क)^{२}=क^{३}$$

इस क्रिया की साधारण प्रयोज्यता, समीकरण $\frac{क}{प^{२}}\times(पक)^{२}=क^{३}$ से शीघ्र स्पष्ट हो सकती है । इन सब दशाओं में श्रेढिके पदों की संख्या प्रथम पद को $प^{३}$ से गुणित करने पर प्राप्त हो सकती है क्योंकि प्रथम पद $\frac{क}{प^{२}}$ है । प्रत्येक दशा में प्रचय प्रथमपद से द्विगुणित लिया जाता है ।

इष्टधनाद्युत्तरतो द्विगुणत्रिगुणद्विभागत्रिभागादीष्टधनाद्युत्तरानयनसूत्रम्[1]—

इष्टविभक्तेष्टधनं द्विष्ठं[2] तत्प्रचयताडितं प्रचयः ।
तत्प्रभवगुणं प्रभवो गुणभागस्येष्टवित्तस्य ॥२९॥

अत्रोद्देशकः

प्रभवस्त्र्यर्धो रूपं प्रचयः पञ्चाष्टमः समानपदम् ।
इच्छाधनमपि तावत्कथय सखे कौ मुखप्रचयौ ॥३०॥
प्रचयादादिर्द्विगुणस्त्रयोदशाष्टादशं पदं स्वेष्टम् । वित्तं तु सप्तषष्टिः षड्घनभक्ता वदादिचयौ ॥३१॥
मुखमेकं द्वित्र्यंशः प्रचयो गच्छः समश्चतुर्नवमः ।
धनमिष्टं द्वाविंशतिरेकाशीत्या वदादिचयौ ॥३२॥

---

१ M गुणभागाद्युत्तरानयनसूत्रम् ।
२ M प्रचयेन ।
३ M गुणभागाद्युत्तरेच्छायाः ।
४ यह श्लोक M में ३१ वें श्लोक के स्थान में है तथा B में छूटा हुआ है ।

दी हुई समान्तर श्रेढि के ज्ञात योग, प्रथम पद और प्रचय से किसी श्रेढि के प्रथमपद और प्रचय निकालना जबकि इष्ट योग दी गई श्रेढि के ज्ञात योग से दुगुना, तिगुना, आधा, एक तिहाई, अथवा उसका अपवर्त्य या अंश हो—

हल करने की सुविधा के लिए इष्ट योग को ज्ञात योग द्वारा विभाजित कर दो स्थानों में रखो । यह भजनफल, जब ज्ञात प्रचय द्वारा गुणित किया जाता है तब चाहा हुआ प्रचय प्राप्त होता है । और वही भजनफल, जब ज्ञात प्रथमपद द्वारा गुणित होता है तब चाहे हुए प्रथम पद को उत्पन्न करता है ॥२९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी श्रेढि का प्रथम पद $\frac{३}{२}$ है, प्रचय १ है और पदों की संख्या (जो दी हुई तथा इष्ट, दोनों श्रेढियों, के लिये उभयनिष्ठ है) $\frac{५}{८}$ है । इष्ट श्रेढि तथा दी गई श्रेढि का योग अलग-अलग $\frac{५}{८}$ हैं । हे मित्र ! इष्ट श्रेढि का प्रथमपद तथा प्रचय निकालो ॥३०॥ (प्रचय १ है) और प्रथमपद प्रचय का दुगुना है; पदों की संख्या $\frac{१३}{१८}$ है; इष्ट श्रेढि का योग $\frac{६७}{२१६}$ है । प्रथमपद और प्रचय निकालो ॥३१॥ प्रथम पद १ है, प्रचय $\frac{२}{३}$ और पदों की संख्या दोनों (दी गई श्रेढि और इष्ट श्रेढि) के लिये उभय-साधारण $\frac{४}{९}$ है । इष्ट श्रेढि का योग $\frac{२२}{८१}$ है । इष्ट श्रेढि के प्रथमपद और प्रचय निकालो ॥३२॥

---

(२९) ८४ वीं गाथा का नोट अध्याय २ में देखिये ।

(३२) प्रतीक रूप से, $न = \dfrac{\sqrt{२\,बय + \left(\frac{ब}{२} - अ\right)^{२}} + \frac{ब}{२} - अ}{ब}$

अध्याय २ की गाथा ६९ वीं का नोट भी देखिये ।

गेच्छानयनसूत्रम्—

द्विगुणचयगुणितवित्तादुत्तरदलमुखविशेषकृतिसहितात् ।
मूलं प्रचयार्धयुतं प्रभवोनं चयहृतं गच्छः ॥३३॥

प्रकारान्तरेण तदेवाह—

द्विगुणचयगुणितवित्तादुत्तरदलमुखविशेषकृतिसहितात् ।
मूलं क्षेपपदोनं प्रचयेन हृतं च गच्छः स्यात् ॥३४॥

अत्रोद्देशकः

द्विपञ्चांशो वक्त्रं त्रिगुणचरणःस्यादिह चयः
षडंशः सप्तघ्नत्रिकृतिविहृतो वित्तमुदितम् ।
चयः पंचाष्टांशः पुनरपि मुखं त्र्यष्टमभिति
त्रिचत्वारिंशाःस्वं प्रिय वद पदं शीघ्रमनयोः ॥३५॥

आद्युत्तरानयनसूत्रम्—

गेच्छाप्तगणितमादिर्विगतैकपदार्धगुणितचयहीनम् ।
पदहृतधनमाद्यूनं निरेकपददलहृतं प्रचयः ॥३६॥

---

१ नीचे लिखे हुए दो श्लोकों में स्थान में M में इस प्रकार का पाठ है—

अष्टोत्तरगुणराशीत्यादिना इष्ट-धनगच्छ आनेतव्यः ।

इसके साथही, परिकर्म व्यवहार की ७० वीं गाथा की पुनरावृत्ति है ।

२ K और B प्रभवो गच्छाप्तधनम् ।

समान्तर श्रेढि में पदों की संख्या निकालने के लिये नियम—

प्रथम पद और प्रचय की आधी राशि के अन्तर के वर्ग में, प्रचय की दुगुनी राशि को श्रेढि के योग द्वारा गुणित करने से प्राप्त राशि जोड़ी जाती है । इस प्राप्त राशि के वर्गमूल में प्रचय की आधी राशि जोड़ी जाती है । इस योगफल को प्रथम पद द्वारा ह्रासित कर और तब प्रचय द्वारा भाजित करने पर श्रेढि के पदों की संख्या प्राप्त होती है ॥३३॥

पदों की संख्या निकालने की दूसरी विधि—

प्रथमपद और प्रचय की आधी राशि के अन्तर के वर्ग में, प्रचय की दुगुनी राशि को श्रेढि के योग द्वारा गुणित करने से प्राप्त फल मिलाते हैं । योगफल के वर्गमूल में से क्षेपपद घटाते हैं । जब इसे प्रचय द्वारा भाजित करते हैं तब श्रेढि के पदों की संख्या प्राप्त होती है ॥३४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दी हुई श्रेढि के सम्बन्ध में, प्रथम पद $\frac{२}{५}$ है, प्रचय $\frac{३}{४}$ है और योग $\frac{७}{४}$ है । पुनः, दूसरी श्रेढि के सम्बन्ध में, प्रचय $\frac{५}{८}$ है, प्रथमपद $\frac{३}{८}$ है और योग $\frac{४३}{८}$ है । हे मित्र ! इन दो श्रेढियों के विषय में, पदों की संख्या शीघ्र निकालो ॥३५॥

प्रथम पद और प्रचय निकालने के लिये नियम—

श्रेढि के योग को पदों की संख्या द्वारा भाजित करने से प्राप्त राशि जब एक कम पदों की संख्या की आधी राशि और प्रचय के गुणनफल द्वारा ह्रासित की जाती है, तब श्रेढि का प्रथम पद उत्पन्न होता है । जब योग को पदों की संख्यासे भाजित कर और प्रथमपद द्वारा ह्रासित कर एक कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा भाजित करते हैं तब प्रचय प्राप्त होता है ।

---

(३४) क्षेप पद के लिये अध्याय २ की ७० वीं गाथा देखिये ।

(३६) द्वितीय अध्याय की ७४ वीं गाथा का नोट देखिये ।

अत्रोद्देशकः

त्रिचतुर्थचतुःपञ्चमचयगच्छे खेषुशशिहृतैकत्रिंशद्- ।
वित्ते त्र्यंशचतुःपञ्चममुखगच्छे च वद मुखं प्रचयं च ॥३७॥

इष्टगच्छयोर्व्यस्ताद्युत्तरसमधनद्विगुणत्रिगुणद्विभागत्रिभागधनानयनसूत्रम्—

व्येकात्महतो गच्छः स्वेष्टघ्नो द्विगुणितान्यपदहीनः ।
मुखमात्मोनान्यकृतिर्द्विकेष्टपदघातवर्जिता प्रचयः ॥३८॥

अत्रोद्देशकः

एकादिगुणविभागः स्वं व्यस्ताद्युत्तरे हि वद मित्र ।
द्वित्र्यंशैकादशपञ्चांशकमिश्रनवपदयोः ॥३९॥

गुणधनगुणसंकलितधनयोः सूत्रम्—

पदमितगुणहतिगुणितप्रभवः स्याद्गुणधनं तदाद्यूनम् ।
एकोनगुणविभक्तं गुणसंकलितं विजानीयात् ॥४०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो श्रेढियों के प्रथम पद और प्रचय निकालो जब कि एक दशा में योग $\frac{३१}{१५०}$ है, $\frac{३}{४}$ प्रचय है और $\frac{४}{५}$ पदों की संख्या है, तथा अन्य दशा में योग $\frac{३१}{१५०}$ है, $\frac{१}{३}$ प्रथम पद है और $\frac{४}{५}$ पदों की संख्या है ॥३७॥

जब पदों की संख्या कोई भी चुनी हुई राशि हो, तब दो श्रेढियों के सम्बन्ध में परस्पर बदले हुए प्रथम पद, प्रचय, तथा उनके योग (जिनमें एक-दूसरे के बराबर अथवा एक दूसरे से दुगुना, तिगुना, आधा या तिहाई हो) निकालने के लिये नियम—

एक श्रेढि के पदों की संख्या स्वतः के द्वारा गुणित कर एक द्वारा ह्रासित करते हैं। इसे दोनों श्रेढियों के योग की इष्ट निष्पत्ति द्वारा गुणित कर, और तब, दूसरी श्रेढि के पदों की संख्या की दुगुनी राशि द्वारा ह्रासित कर परस्पर बदलने योग्य प्रथम पद प्राप्त करते हैं ॥३८॥

दूसरी श्रेढि के पदों की संख्या का वर्ग, पदों की संख्या द्वारा ही ह्रासित करते हैं। इसे इष्ट निष्पत्ति और प्रथम श्रेढि के पदों की संख्या के गुणनफल की दुगुनी राशि द्वारा ह्रासित करने पर, परस्पर बदलने योग्य उस श्रेढि का प्रचय उत्पन्न होता है।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो श्रेढियों के सम्बन्ध में, जिनमें १०$\frac{१}{३}$ और ९$\frac{१}{५}$ पदों की संख्या है, प्रथम पद और प्रचय परस्पर बदलने योग्य हैं। एक श्रेढि का योग दूसरी श्रेढि के योग का अपवर्त्य अथवा अंश है जो एक से आरम्भ होनेवाली प्राकृत संख्याओं द्वारा गुणन अथवा भाग द्वारा प्राप्त हुआ है। हे मित्र ! इन योगों को, प्रथम पदों और प्रचयों को निकालो ॥३९॥

गुणोत्तर श्रेढि में गुणधन एवं श्रेढि का योग निकालने के लिये नियम—

गुणोत्तर श्रेढि में प्रथमपद को, जितनी पदों की संख्या होती है उतनी बार साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित करने पर गुणधन प्राप्त होता है। यह गुणधन प्रथमपद द्वारा ह्रासित होकर तथा एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा भाजित होकर गुणोत्तर श्रेढि के योग के बराबर हो जाता है ॥४०॥

---

(३८) द्वितीय अध्याय की ८६ वीं गाथा का नोट देखिये।
(४०) द्वितीय अध्याय की ९३ वीं गाथा का नोट देखिये।

गुणसंकलितान्त्यधनानयने तत्संकलितानयने च सूत्रम्—

गुणसंकलितान्त्यधनं विगतैकपदस्य गुणधनं भवति ।
तद्गुणगुणं मुखोनं व्येकोत्तरभाजितं सारम् ॥४१॥

अत्रोद्देशकः

प्रभवोऽष्टमश्चतुर्थः प्रचयः पञ्च पदमत्र गुणगुणितम् ।
गुणसंकलितं तस्यान्त्यधनं चाचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥४२॥
गुणधनसंकलितधनयोराद्युत्तरपदान्यपि पूर्वोक्तसूत्रैरानयेत् ।

समानेष्टोत्तरगच्छसंकलितगुणसंकलितसमधनस्याद्यानयनसूत्रम्—

मुखमेकं चयगच्छाविष्टौ मुखवित्तरहितगुणचित्या ।
हृतचयधनमादिगुणं मुखं भवेद्द्विचितिधनसाम्ये ॥४३॥

१ केवल B में प्राप्य ।

गुणोत्तर श्रेढि का अन्तिमपद तथा योग निकालने के लिये नियम—

गुणोत्तर श्रेढि का अंत्यधन अथवा अंतिम पद, दूसरी ऐसी ही श्रेढि का गुणधन होता है जिसमें पदों की संख्या एक न्यून होती है। यह अंत्यधन साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित होकर और प्रथम पद द्वारा ह्रासित होकर तथा एक कम साधारण निष्पत्ति द्वारा भाजित होकर श्रेढि के योग को उत्पन्न करता है ॥४१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

गुणोत्तर श्रेढि के सम्बन्ध में प्रथमपद $\frac{१}{८}$ है, साधारण निष्पत्ति $\frac{१}{४}$ है और पदों की संख्या ५ है। मुझे शीघ्र बतलाओ कि श्रेढि का योग तथा अंतिम पद क्या क्या हैं ? ॥४२॥

समान योग वाली दो समान्तर एवं गुणोत्तर श्रेढि के उभय साधारण प्रथम पद को निकालने के लिये नियम, जब कि उनकी चुनी हुई पदों की संख्या बराबर हो और इसी तरह से वरण किये गये प्रचय और साधारण निष्पत्ति बराबर हों—

प्रथम पद को एक लेते हैं, पदों की संख्या और साधारण निष्पत्ति तथा प्रचय मन से कुछ भी चुन किये जाते हैं। यहां उत्तर धन को गुणोत्तर श्रेढि के योग में से आदि धन को घटाने से प्राप्त हुई राशि द्वारा भाजित करते हैं। इसे चुने हुए प्रथम पद से गुणित करने पर, इन दोनों श्रेढियों के सम्बन्ध में चाहा हुआ उभयसाधारण प्रथमपद उत्पन्न होता है ॥४३॥

---

(४१) द्वितीय अध्याय की ९५ वीं गाथा का नोट देखिये।

[पिछले अध्याय में कथित नियमों द्वारा गुणधन और श्रेढि के योग के सम्बन्ध में गुणोत्तर श्रेढि के प्रथमपद, साधारण निष्पत्ति और पदों की संख्या निकाली जा सकती हैं। इन नियमों के लिये अध्याय २ की ८७, ९७, १०१ और १०३ वीं गाथायें देखिये।]

(४३) आदि धन और उत्तरधन के लिये ६३ और ६४ वीं गाथायें (अध्याय २) देखिये। यह नियम प्रतीक रूप से इस तरह साधित होता है— $अ = \left\{ \frac{न(न-१)}{२} \times ब \right\} \Big/ \left\{ \frac{(र^{न}-१)१}{र-१} - न \times १ \right\}$ जहाँ ब = र है। सरल साधन के हेतु प्रथमपद को १ चुन लिया जाता है, परंतु स्पष्ट है कि कोई राशि पहिले इस तरह मानी जा सकती है। आदि धन और उत्तरधन के द्वारा नियम के कथन को सरल बनाने के लिये यहाँ प्रथमपद को मान लिया गया है। यहां प्राप्त सूत्र गुणोत्तर श्रेढि के योगसूत्र और समान्तर श्रेढि के सूत्र को समीकार रूप में लिखने से मिला है। यहां ध्यान देने योग्य शब्द चय है जिसका उपयोग गुणोत्तर और समान्तर श्रेढि, दोनों के क्रमशः साधारण निष्पत्ति और प्रचय के लिये किया गया है।

अत्रोद्देशकः

माबबाधिभुवनानि पदान्यम्भोधिपञ्चमुनयस्त्रिहृतास्ते ।
उत्तराणि वदनानि कति स्युर्युग्मसंकलितवित्तसमेषु ॥४४॥

इति मिश्रसंकलितं समाप्तम् ।

मिश्रव्युत्कलितम्

मिश्रव्युत्कलिते करणसूत्रं यथा—

गच्छाधिकेष्टमिष्टं चयहतमूनोत्तरं द्विहादियुतम् । शेषेष्टपदार्धगुणं व्युत्कलितं स्वेष्टवित्तं च ॥४५॥

शेषगच्छस्याद्यानयनसूत्रम्—

प्रचयार्धोनः प्रभवो युतश्चयघ्नेष्टपदचयार्धाभ्याम् । शेषस्य पदस्यादिश्चयस्तु पूर्वोक्त एव भवेत् ॥४६॥[1]
गुणगुणितेऽपि चयादी तथैव भेदोऽयमत्र शेषपदे ।
इष्टपदमितगुणाहतिगुणितप्रभवो भवेद्वक्त्रम् ॥४७॥

१ M प्रचयगुणितेष्टगच्छस्सादिः प्रभवः पदस्य शेषस्य । पूर्वोक्तः प्रचयस्स्यादिष्टस्य प्राक्तनादेव ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पदों की संख्या क्रमशः ५, ४ और ३ है । साधारण निष्पत्ति तथा बराबर प्रचय क्रमशः $\frac{४}{३}$, $\frac{५}{३}$ और $\frac{७}{३}$ हैं । इन समान योग वाली गुणोत्तर तथा समान्तर श्रेढियों के संवादी प्रथम पदों की अर्हाओं (values) को निकालो ॥४४॥

इस प्रकार, कलासवर्ण व्यवहार में, संकलित नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

भिन्न व्युत्कलित [श्रेढिरूप भिन्नों का व्युत्कलन]

भिन्न व्युत्कलित क्रिया को करने का नियम निम्नलिखित है—

श्रेढि में कुल पदों की संख्या को चुने हुए पदों की संख्या में सम्मिलित करो और स्वयं चुनी हुई पदों की संख्या को अलग सं को । इन राशियों में से प्रत्येक को प्रचय द्वारा गुणित करो और गुणनफलों को प्रचय द्वारा ह्रासित करो तथा दो द्वारा गुणित करो । इन परिणामी राशियों को अब क्रमशः शेषपदों की संख्या की आधी राशि और पदों की चुनी हुई संख्या की आधी राशि द्वारा गुणित करते हैं तब क्रम से शेष श्रेढि का योग तथा श्रेढि के चुने हुए भाग का योग प्राप्त होता है ॥४५॥

शेष गच्छ सम्बन्धी प्रथम पद को निकालने के लिये नियम—

श्रेढि का प्रथमपद, प्रचय की आधी राशि द्वारा ह्रासित होकर और प्रचय द्वारा गुणित चुनी हुई पदों की संख्या द्वारा मिलाया जाकर तथा प्रचय की आधी राशि द्वारा भी मिलाया जाकर शेष श्रेढि के शेष पदों की संख्या के प्रथम पद को उत्पन्न करता है । जैसा प्रचय दी हुई श्रेढि में होता है वैसा ही प्रचय शेष श्रेढि का होता है ॥४६॥ गुणोत्तर श्रेढि के विषय में भी, साधारण निष्पत्ति और प्रथमपद ठीक वैसे ही होते हैं जैसे कि दी हुई श्रेढि और उसके चुने हुए भाग में होते हैं । दी हुई श्रेढि के प्रथम पद को साधारण निष्पत्ति को उतने बार गुणित करते हैं जितनी कि चुनी हुई पदों की संख्या होती है । प्राप्त गुणनफल शेष श्रेढि का प्रथमपद होता है । शेष श्रेढि के प्रथमपद और दी हुई श्रेढि के प्रथमपद में यही अंतर होता है ॥४७॥

(४५) द्वितीय अध्याय की १०६ वीं गाथा का नोट देखिये ।
(४६) द्वितीय अध्याय की १०९ वीं गाथा का नोट देखिये ।
(४७) द्वितीय अध्याय की ११० वीं गाथा का नोट देखिये ।

अत्रोद्देशकः

पादोत्तरं दलास्यं पदं त्रिपादांशकःसमुद्दिष्टः । स्वेष्टं चतुर्थभागः[1] किं व्युत्कलितं समाकलय[2] ॥४८॥
प्रभवोऽर्धं पञ्चांशः प्रचयो द्विञ्यंशको भवेद्गच्छः । पञ्चाष्टांशःस्वेष्टं पदमूणमाचक्ष्व गणितज्ञ ॥४९॥
आदिश्चतुर्थभागः प्रचयः पञ्चांशकास्त्रिपञ्चांशः ।
गच्छो वाञ्छागच्छो दशमो व्यवकलितमानं किम् ॥५०॥
त्रिभागौ द्वौ वक्त्रं पञ्चमांशश्चयःस्यात् पदं त्रिघ्नः पादः पञ्चमःस्वेष्टगच्छः ।
षडंशःसप्तांशो वा व्ययः को वद त्वं कलावास प्रज्ञाचन्द्रिकाभास्वदिन्दो ॥५१॥
द्वादशपदं चतुर्थर्णोत्तरमर्धोनपञ्चकं वदनम् । त्रिचतुःपञ्चाष्टेष्टपदानि व्युत्कलितमाकलय ॥५२॥

गुणसंकलितव्युत्कलितोदाहरणम् ।

द्वित्रिभागरहिताष्टमुखं द्वित्र्यंशको गुणचयोऽष्ट पदं भोः ।
मित्र रत्नगतिपञ्चपदानीष्टानि शेषमुखवित्तपदं किम् ॥५३॥

इति भिन्नव्युत्कलितं समाप्तम्[3] ।

---

१ M च चतुर्भागः ।

२ M किं व्युत्कलितं समाकलय ।

३ K और M में इसके पश्चात् "इति सारसङ्ग्रहे महावीराचार्यस्य कृतौ द्वितीयव्यवहारस्समाप्तः" जोड़ा गया है । यह वास्तव में भूल प्रतीत होती है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दी हुई श्रेढि में प्रचय $\frac{1}{4}$ है, प्रथमपद $\frac{1}{2}$ है, पदों की संख्या $\frac{3}{4}$ है और चुनी हुई पदों की (हटाई जाने वाली) संख्या $\frac{1}{4}$ है । ऐसी श्रेढि की शेष श्रेढि का योग निकालो ॥४८॥ समान्तर श्रेढि के सम्बन्ध में प्रथमपद $\frac{1}{2}$ है, प्रचय $\frac{1}{5}$ है और पदों की संख्या $\frac{2}{3}$ है । यदि हटाये जाने वाले पदों की संख्या $\frac{5}{8}$ है तो हे गणितज्ञ, शेष श्रेढि का योगफल बताओ ॥४९॥ दी हुई श्रेढि में प्रथमपद $\frac{1}{4}$ है, प्रचय $\frac{1}{5}$ है और पदों की संख्या $\frac{3}{5}$ है । यदि चुनी हुई पदों की संख्या $\frac{1}{10}$ हो तो शेष श्रेढि का योगफल बतलाओ ॥५०॥ प्रथमपद $\frac{2}{3}$ है, प्रचय $\frac{1}{5}$ है, पदों की संख्या $\frac{3}{4}$ है और चुनी गई पदों की संख्या $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{6}$ अथवा $\frac{1}{7}$ है । हे चंद्रमा के प्रकाश रूपी बुद्धि से चमकते हुए चंद्रमा कि भांति कला के वास ! मुझे बतलाओ कि शेष पदों की संख्या का योग क्या होगा ? ॥५१॥ दी हुई श्रेढि के पदों की संख्या १२ है, प्रचय $-\frac{1}{4}$ (ऋण $\frac{1}{4}$) है और प्रथमपद $४\frac{1}{2}$ है तथा चुनी गई पदों की संख्याएं क्रमशः ३, ४, ५ अथवा ८ हैं । शेष पदों की संख्या का योगफल अलग-अलग निकालो ॥५२॥

गुणोत्तर श्रेढि में व्युत्कलित् का उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथमपद $७\frac{1}{3}$ है, साधारण निष्पत्ति $\frac{2}{3}$ है और पदों की संख्या ८ है । चुनी हुई पदों की संख्याएं क्रमशः ३, ४, ५ हैं । बतलाओ कि शेष श्रेढियों के सम्बन्ध में प्रथमपद, योग और पदों की संख्या क्या-क्या हैं ? ॥५३॥

इस प्रकार, कलासवर्ण व्यवहार में, भिन्न व्युत्कलित् नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

---

(५१) कला के यहाँ दो अर्थ हैं—प्रथम तो ज्ञान और अन्य "चंद्रमा के अंक" ।

कलासवर्णषड्जातिः

इतः परं कलासवर्णे षड्जातिमुदाहरिष्यामः—
भागप्रभागावथ भागभागो भागानुबन्धः परिकीर्तितोऽतः ।
भागापवाहः सह भागमात्रा षड्जातयोऽमुत्र कलासवर्णे ॥५४॥

भागजातिः

तत्र भागजातौ करणसूत्रं यथा—
सदृशहृतच्छेदहतौ मिथोंऽशहारौ समच्छिदावंशौ ।
लुप्तैकहरौ योज्यौ त्याज्यौ वा भागजातिविधौ ॥५५॥

कलासवर्ण षड्जाति (छः प्रकार के भिन्न)

अब हम छः प्रकार के भिन्नों का प्रतिपादन करेंगे —

भाग (साधारण भिन्न), प्रभाग (भिन्नों के भिन्न), भागभाग (जटिल या संकर भिन्न complex fractions), भागानुबंध (संबद्ध भिन्न fractions in association), भागापवाह (वियवन भिन्न fractions in dissociation) और भाग मात्र (भिन्न जिनमें ऊपर कथित भिन्नों में से दो या अधिक भिन्न सम्मिलित हों); ये भिन्नों के छः भेद कहलाते हैं ॥५४॥

भागजाति [साधारण भिन्नों का जोड़ और घटाना]

साधारण भिन्नों का क्रिया (करण) सम्बन्धी नियम—

दिये गये दो साधारण भिन्नों सम्बन्धी क्रियाओं में प्रत्येक के अंश और हर को, उभय साधारण गुणनखंड द्वारा हरों को विभाजित करने से प्राप्त भजनफलों द्वारा एकान्तर से गुणित करते हैं। वे भिन्न इस तरह प्रह्रासित होकर समान हर वाले हो जाते हैं। तब इनमें से कोई एक हर अलग कर, अंशों को जोड़ते अथवा घटाते हैं [ताकि दूसरे समान हर के सम्बन्ध में परिणामी राशि अंश हो] ॥५५॥

---

(५५) भिन्नों को साधारण हरों में प्रह्रासित करने का नियम केवल भिन्न युग्म के लिये प्रयोज्य है। निम्नलिखित उदाहरण से यह नियम स्पष्ट हो जावेगा—

$\frac{\text{अ}}{\text{कख}} + \frac{\text{ब}}{\text{खग}}$ को हल करने के लिये यहाँ, "अ" और "कख" को "ग" से गुणित करते हैं जोकि दूसरे भिन्न के हर "खग" को हरों के साधारण गुणनखण्ड ख द्वारा विभाजित करने पर भजनफल "ग" के रूप में प्राप्त होता है। इसी प्रकार दूसरे भिन्न में "ब" और "खग" को "क" से गुणित करते हैं जो प्रथम भिन्न के हर "कख" को हरों के साधारण गुणनखण्ड "ख" द्वारा विभाजित करने पर "क" के रूप में प्राप्त होता है। इस तरह हमें क्रमशः $\frac{\text{अग}}{\text{कखग}}$ और $\frac{\text{बक}}{\text{कखग}}$ प्राप्त होते हैं। इस तरह

$$\frac{\text{अग}}{\text{कखग}} + \frac{\text{बक}}{\text{कखग}} = \frac{\text{अग} + \text{बक}}{\text{कखग}}.$$

प्रकारान्तरेण समानच्छेदमुद्भावयितुमुत्तरसूत्रम्—

छेदापवर्तकानां लब्धानां चाहतौ निरुद्धः स्यात् । हरहृतनिरुद्धगुणिते हारांशगुणे समो हारः ॥५६॥

अत्रोद्देशकः

जम्बूजम्बीरनारङ्गचोचमोचाम्रदाडिमम् । अक्रीणादर्धषड्भागद्वादशांशकविंशकैः ॥५७॥

त्रिंशच्चतुर्विंशेनाष्टमेन यथा क्रमम् । श्रावको जिनपूजायै तद्योगे किं फलं वद ॥५८॥

अष्टपञ्चदशं विंशं सप्तषट्त्रिंशदंशकम् । एकादशत्रिषष्ट्यंशमेकविंशं च सङ्क्षिप ॥५९॥

एकद्विकत्रिकाद्येकोत्तरनवदशकषोडशान्त्यहराः ।

निजनिजमुखप्रमांशाः स्वपराभ्यस्ताश्च किं फलं तेषाम् ॥६०॥

१ यह और अनुगामी श्लोक M में अप्राप्य हैं ।

२ P में ५७ और ५८ श्लोक छूट गये हैं ।

३ यह श्लोक केवल K और B में प्राप्य है ।

साधारण (common) हर को दूसरी विधि द्वारा निकालने का नियम—

हरों के सभी संभव गुणनखंडों और उनके सभी अन्तिम (ultimate) भजन फलों के सन्तत गुणन से निरुद्ध (लघुत्तम समापवर्त्य) प्राप्त होता है । निरुद्ध को हरों द्वारा भाजित करने से प्राप्त भजन फलों में हरों और अंशों का गुणन करते हैं । इस प्रकार से प्राप्त हरों और अंशों सम्बन्धी अपवर्त्यों के हर समान होते हैं ॥५६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक श्रावक ने जिन पूजा के लिए जम्बूफल, नीबू, नारंगी, नारियल, केले, आम और अनार क्रमशः $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{१२}$, $\frac{१}{२०}$, $\frac{१}{३०}$, $\frac{१}{२४}$ और $\frac{१}{८}$ स्वर्ण मुद्राओं के खरीदे; मुझे बतलाओ कि जब इन भिन्नों का योग किया जाय तो क्या परिणाम होगा? ॥५७-५८॥ $\frac{८}{१५}$, $\frac{१}{२०}$, $\frac{७}{३६}$, $\frac{११}{६३}$ और $\frac{१}{२१}$ को जोड़ो ॥५९॥ भिन्नों के ३ समूह हैं, जहाँ हर १, २, और ३ से क्रमशः आरम्भ होते हैं और उत्तरोत्तर एक द्वारा बढ़ते चले जाते हैं जब तक कि ऐसे हरों में अंतिम ९, १० और १६ (क्रमशः विभिन्न समूह में) नहीं हो जाते । इन भिन्नों के समूह में अंश, हरों के समूह की प्रथम संख्या के तुल्य हैं, और इन ऊपर कथित प्रत्येक समूह वालों का प्रत्येक हर उत्तरवर्ती द्वारा गुणित किया जाता है । अंतिम हर, प्रत्येक दशा में अपरिवर्तित रहता है क्योंकि उसके उत्तरवर्ती हर का अभाव रहता है)। बतलाओ कि अंतमें इन परिणामी भिन्नों के प्रत्येक समूह का योग क्या होगा ? ॥६०॥ भिन्नों के चार कुलक (sets) हैं । हर १, २, ३ और ४ से क्रमशः आरम्भ होते हैं और उत्तरोत्तर एक द्वारा बढ़ते चले जाते हैं जब तक कि अंतिम हर भिन्न २ कुलकों में क्रमवार २०, ४२, २५ और ३६ नहीं हो जाते । इन भिन्नों के कुलकों के अंश इन हरों के कुलकों की प्रथम संख्या के बराबर हैं । हरों के कुलक का प्रत्येक भिन्न उत्तरवर्ती द्वारा गुणित किया जाता है (अंतिम हर प्रत्येक दशा में अपरिवर्तित रहता है ।) अंत में, परिणामी भिन्नों में

(६०) परिणामी प्रश्न ये हैं:—मान बतलाओ—

(i) $\frac{१}{१ \times २} + \frac{१}{२ \times ३} + \frac{१}{३ \times ४} + \cdots\cdots + \frac{१}{८ \times ९} + \frac{१}{९}$,

एकद्विकत्रिकाद्याश्चतुराद्याश्चैकवृद्धिका हाराः ।
निजनिजमुखप्रमांशाः स्वासन्नपराहताः क्रमशः ॥६१॥
विंशत्यन्ताः षड्गुणसप्तान्ताः पञ्चवर्गपश्चिमकाः । षट्त्रिंशत्पाश्चात्याः सङ्क्षेपे किं फलं तेषां ॥६२॥
चन्दनघनसारागरुकुङ्कुममक्रेष्ट जिनमहाय नरः ।
चरणदलविंशपञ्चमभागैः कनकस्य किं शेषम् ॥६३॥
पादं पञ्चांशमर्धं त्रिगुणितदशमं सप्तविंशांशकं च
स्वर्णद्वन्द्वं प्रदाय स्मितसितकमलं स्त्यानदध्याज्यदुग्धम् ।
श्रीखण्डं त्वं गृहीत्वानय जिनसदनप्रार्चनायाब्रवीन्मा-
मित्यत्र श्रावकार्यो भण गणक कियच्छेषमंशान्विशोध्य ॥६४॥
अष्टपञ्चमुखौ हारावुभयेऽप्येकवृद्धिकाः । त्रिंशदन्ताः पराभ्यस्ताश्चतुर्गुणितपश्चिमाः ॥६५॥
स्वस्ववक्त्रप्रमाणांशा रूपात्संशोध्य तद्द्वयम् । शेषं सखे समाचक्ष्व प्रोत्तीर्णगणितार्णव ॥६६॥
एकोनविंशतिरथ क्रमात् त्रयोविंशतिर्द्विषष्टिश्च । रूपविहीना त्रिंशत्ततस्त्रयोविंशतिशतं स्यात् ॥६७॥
पञ्चत्रिंशत्तस्मादष्टाशीतिकशतं विनिर्दिष्टम् । सप्तत्रिंशदमुष्मादष्टानवतित्रिकोनपञ्चाशत् ॥६८॥
चत्वारिंशच्छतिका सैका च पुनः शतं सषोडशकम् । एकत्रिंशदतः स्याद्द्वानवतिः सप्तपञ्चाशत् ॥६९

१ ६३ और ६४ श्लोक K और B में प्राप्य हैं ।
२ M मुरु
३ यह श्लोक M में छूट गया है । ४ B विंशत्य ।
५ यह श्लोक M में अप्राप्य है । ६ K और B भागजात्यब्धिपारग ।

कुलकों को जोड़ने पर क्या योग प्राप्त होगा ? ॥६१-६२॥ एक मनुष्य ने जिन उत्सव पर संदल (चंदन) लकड़ी, कपूर, अगरु और सौंफ (कुंकुममक्रेष्ट) क्रमशः [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] स्वर्ण मुद्रा के, १ स्वर्ण मुद्रा में से, खरीदे । बतलाओ क्या शेष है ? ॥६३॥ एक योग्य श्रावक ने मुझे दो स्वर्ण मुद्राएँ देते हुए कहा कि जिन मंदिर में पूजा के लिये [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] स्वर्ण मुद्रा के क्रमशः विकसित श्वेत कमल, गाढ़ा दही, घृत, दुग्ध और चंदन लकड़ी लाओ । हे मित्र ! मुझे बतलाओ कि इतने खर्च के पश्चात् मेरे पास स्वर्ण मुद्रा का कितना भाग बचा ? ॥६४॥ भिन्नों के दो कुलक हैं । हर क्रमशः ८ और ५ से आरम्भ होते हैं और दोनों दशाओ में उत्तरोत्तर एक द्वारा बढ़ते जाते हैं जब तक कि दोनों दशाओं में अंतिम हर ३० नहीं हो जाता । इन कुलकों के अंश दोनों कुलकों के हर के प्रथम पद के तुल्य हैं । प्रत्येक कुलक के हरों में से प्रत्येक अपने उत्तरवर्ती द्वारा गुणित होता है । अंतिम हर दोनों दशाओं में ४ द्वारा गुणित किया जाता है । भिन्नों के दोनों परिणामी कुलकों को जोड़ने से प्राप्त दोनों योगो में प्रत्येक में से एक घटाने के पश्चात्, हे साधारण भिन्न महासागर के पार उतरने वाले मित्र, मुझे बतलाओ कि क्या शेष रहेगा ? ॥६५-६६॥ कुछ दिये हुए भिन्नों के हर क्रमशः १९, २३, ६१, २९, १२३, ३५, १८८, ३७, ९८, ४७, १४०, ४१, ११६, ३१, ९२, ५७, ७३, ५५, ११०, ४९, ७४, २१९ हैं; और,

---

$$\text{(ii)}\ \frac{२}{२\times३}+\frac{२}{३\times४}+\frac{२}{४\times५}+\cdots\cdots+\frac{२}{९\times१०}+\frac{२}{१०},$$

$$\text{(iii)}\ \frac{३}{३\times४}+\frac{३}{४\times५}+\frac{३}{५\times६}+\cdots\cdots+\frac{३}{१५\times१६}+\frac{२}{१६},$$

ऽयधिका सप्ततिरस्मात्सपञ्चपञ्चाशदपि च सा द्विगुणा ।
सप्तकृतिः सचतुष्का सप्ततिरेकोनविंशतिद्विशतम् ॥७०॥
हारा निरूपिता अंशा एकाद्येकोत्तरा अमून् । प्रक्षिप्य फलमाचक्ष्व भागजात्यब्धिपारग ॥७१॥

अत्रांशोत्पत्तौ सूत्रम्—

एकं परिकल्प्यांशं तैरिष्टैः समहरांशकान् हन्यात् ।
यद्गुणितांशसमासः फलसदृशोंऽशास्त एवेष्टा ॥७२॥

एकांशवृद्धोनां राशीनां युतावंशाद्धारस्याधिक्ये सत्यंशोत्पादक सूत्रम्—

समहारैकांशकयुतिहृतयुत्यंशोंऽश एकवृद्धीनाम् ।
शेषमितरांशयुतिहृतमन्यांशोऽस्त्येवमा चरमात् ॥७३॥

---

१ B प्रोत्तीर्णगणितार्णव ।
२ B सदृशवृद्ध्यंशराशीनां अंशोत्पादक सूत्रम् ।

अंश १ से आरम्भ होकर उत्तरोत्तर क्रमवार १ द्वारा बढ़ते चले जाते हैं । इस सब भिन्नों को जोड़कर, हे भिन्न रूपी महासागर के उसपार पहुँचनेवाले, योगफल को बतलाओ ॥६७-७१॥

जब भिन्नों के हर तथा योग दिये गये हों तो अंश निकालने के लिये नियम—

सब दिये गये हरों के सम्बन्ध में अंश को 'एक' बनाओ; तब किसी भी तरह चुनी हुई संख्याओं द्वारा साधारण हरों में लाये गये अंशों को गुणित करो । यहां वे संख्यायें चाहे हुए अंशों में बदल जाती हैं, जिनका योग संबंधित भिन्नों के योग के बराबर होता है ॥७२॥

जब भिन्नों के योग का हर अंश से बड़ा हो और अंश उत्तरोत्तर एक द्वारा बढ़ते चले जाते हों, तो ऐसे भिन्नों के सम्बन्ध में अंशों के निकालने के लिये नियम—

सम्बन्धित भिन्नों के दिये गये योग को तथा जिनके अंश 'एक' होते हैं ऐसे भिन्नों को साधारण हरों में प्रहासित कर लिया जाता है । भिन्नों के दिये गये योग को ऐसे भिन्नों के योग द्वारा भाजित करने से प्राप्त भजनफल उन अंशों में से प्रथम चाहा हुआ अंश बन जाता है । इसके पश्चात् के इष्ट अंश उत्तरोत्तर एक द्वारा बढ़ते चले जाते हैं और जिन्हें निकाला जा सकता है । इस भाग में प्राप्त शेषफल को समान हर वाले अन्य अंशों द्वारा विभाजित करने पर, परिणामी भजनफल दूसरा चाहा हुआ अंश बन जाता है जब कि वह प्रथम में जो कि पहिले ही प्राप्त हो चुका है, जोड़ दिया जाय । इस तरह अंत तक प्रश्न का साधन करना पड़ता है ॥७३॥

---

(७२) सूत्र ७४ के प्रश्न को हल करने से यह नियम स्पष्ट हो जावेगा । यहाँ प्रत्येक दिये गये हर के सम्बन्ध मेंअंश एक मान लिया जाता है; इस तरह हमें [illegible], [illegible], [illegible] प्राप्त होते हैं जो एक से हरों में प्रहासित किये जाने पर [illegible], [illegible], [illegible] हो जाते हैं । जब अंशों को क्रमवार २, ३ और ४ से गुणित करते हैं तो इस तरह प्राप्त गुणनफलों का योग दिये गये योग का अंश (८७७) हो जाता है । इसलिये, २, ३, और ४ चाहे हुए अंश हैं । आलोकनीय है, कि इस दिये गये योग का हर उतना है जितना कि भिन्नों का साधारण हर है ।

(७३) इस नियम के अनुसार ७४ वीं गाथा का प्रश्न इस प्रकार साधित होता है—

अत्रोद्देशकः

नवकदशैकादशाहतराशीनां नवतिनवशतीभक्ता । त्र्यूनाशीत्यष्टशती संयोगः केंऽशकाः कथय ॥७४॥

छेदोत्पत्तौ सूत्रम्—

रूपांशकराशीनां रूपाद्यास्त्रिगुणिता हराः क्रमशः ।
द्विद्वित्र्यंशाभ्यस्तावादिमचरमौ फले रूपे ॥७५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

९, १० और ११ द्वारा क्रमशः विभाजित की गई कुछ संख्याओं का योग ८७७ भाजित ९९० है। बतलाओ कि भिन्नों को जोड़ने की इस क्रिया में अंश क्या क्या हैं ? ॥७४॥

चाहे हुए हरों को निकालने के लिये नियम—

'एक' अंश वाली विभिन्न भिन्नीय राशियों का योग जब 'एक' हो, तब चाहे हुए हर एक से आरम्भ होकर क्रमवार, उत्तरोत्तर ३ से गुणित किये जाते हैं, इस तरह प्राप्त प्रथम और अंतिम हर फिर से क्रमशः २ और $\frac{२}{३}$ द्वारा गुणित किये जाते हैं ॥७५॥

प्रत्येक दिये गये हरों के सम्बन्ध में अंश को एक मानकर तथा भिन्नों को समान हरों में प्रह्रासित करने पर $\frac{११०}{९९०}$, $\frac{९९}{९९०}$ और $\frac{९०}{९९०}$ प्राप्त होते हैं। दिये गये योग $\frac{८७७}{९९०}$ को इन भिन्नों के योग $\frac{२९९}{९९०}$ द्वारा विभाजित करने पर हमें भजनफल २ प्राप्त होता है जो प्रथम हर सम्बन्धी अंश है। इस भाग में प्राप्त शेष, २७९, को शेष माने हुए अंशों के योग १८९ द्वारा विभाजित करते हैं जिससे भजनफल १ प्राप्त होता है। इस भजनफल १ को प्रथम भिन्न के अंश २ में जोड़ने पर द्वितीय हर सम्बन्धी अंश प्राप्त हो जाता है। इस दूसरे भाग के शेष ९० को अंतिम भिन्न के माने हुए अंश ९० के द्वारा विभाजित करते हैं, और प्राप्त भजनफल १ को जब पिछले भिन्न के अंश ३ में जोड़ते हैं तब अंतिम हर का अंश प्राप्त होता है। इसलिये, वे भिन्न, जिनका योग $\frac{८७७}{९९०}$ है, ये हैं:—$\frac{२}{९}$, $\frac{३}{१०}$ और $\frac{४}{११}$.

यहाँ इस तरह उत्तरोत्तर निकाले गये अंश क्रमबद्ध दिये गये हरों के सम्बन्ध में चाहे हुए अंश बन जाते हैं। बीजीय रूप से भी, तीन भिन्नों का योग—

$$\frac{\text{बसक} + (\text{क} + १)\,\text{अस} + (\text{क} + २)\,\text{अब}}{\text{अबस}}$$ है और हर अ, ब और स हैं। इनके अंश इस विधि से क, क + १ और क + २ सरलता से निकाले जा सकते हैं।

(७५) उपर्युक्त प्रदर्शित रीति द्वारा प्रश्न को हल करने से यह ज्ञात होगा कि जब न भिन्न हों, तो प्रथम और अन्तिम भिन्न को छोड़कर (न − २) पद गुणोत्तर श्रेढि में होते हैं जिसका प्रथमपद $\frac{१}{३}$ और साधारण निष्पत्ति (common ratio) $\frac{१}{३}$ होती है। (न − २) पदों का योग $\frac{१}{३}\left\{१-\left(\frac{१}{३}\right)^{न-२}\right\}\Big/\left(१-\frac{१}{३}\right)$ होता है जो प्रह्रासित करने पर $\frac{१}{२}-\frac{१}{२}\cdot\frac{१}{३^{न-२}}$

अथवा, $\frac{१}{२}-\frac{१}{२/३}\times\frac{१}{३^{न-१}}$ के तुल्य होता है। इससे स्पष्ट है कि जब प्रथम भिन्न $\frac{१}{२}$ हो तो अन्तिम भिन्न $\frac{१}{\frac{२}{३}\cdot३^{न-१}}$ को इस अन्तिम फल में जोड़ने पर योग १ हो जाता है। इस सम्बन्ध में, न पदों वाली

अत्रोद्देशकः

पञ्चानां राशीनां रूपांशानां युतिर्भवेद्रूपम् ।
षण्णां सप्तानां वा के हाराः कथय गणितज्ञ ॥७६॥

विषमस्थानां छेदोत्पत्तौ सूत्रम्—

एकांशकराशीनां द्याद्या रूपोत्तरा भवन्ति हराः। स्वासन्नपराभ्यस्ताः सर्वे दलिताः फले रूपे ॥७७॥

एकांशानामनेकांशानां चैकांशे फले छेदोत्पत्तौ सूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

जिनमें प्रत्येक का अंश एक है ऐसी पांच या छः अथवा सात विभिन्न भिन्नीय राशियों का योग प्रत्येक दशा में १ है। हे गणितज्ञ ! चाहे हुए हरों को निकालो ॥७६॥

भिन्नों की अयुग्म संख्या लेने पर हरों को निकालने के लिये नियम—

जिनके प्रत्येक अंश १ हों ऐसी विभिन्न भिन्नीय राशियों का योग १ हो, तो चाहे हुए हर २ से आरम्भ होकर, उत्तरोत्तर मान में १ द्वारा बढ़ते चले जाते हैं। प्रत्येक ऐसा हर उस संख्या से गुणित किया जाता है जो मान में तत्काल उत्तरवर्ती के बराबर होता है और तब उसे आधा किया जाता है ॥७७॥

कुछ इष्ट भिन्नों के विषय में चाहे हुए हरों को निकालने के लिए नियम जबकि उनके अंशों में प्रत्येक १ अथवा १ से अन्य हो और जब उनके भिन्नीय योग का अंश भी १ हो—

गुणोत्तर श्रेढि में जिसका प्रथम पद $\frac{१}{अ}$ है और साधारण निष्पत्ति $\frac{१}{अ}$ है अ की सभी पूर्णांक धनात्मक अर्हाओं (मानों) के लिये योग $\frac{१}{अ - १}$ से $\left\{ \frac{१}{(अ - १)/अ} \times \text{श्रेढि का (न + १) वां पद} \right\}$ न्यून होता है। इसलिये, यदि हम गुणोत्तर श्रेढि के योग में इस गाथा के नियम के अनुसार अन्तिम भिन्न $\left\{ \frac{१}{(अ - १)/अ} \times \text{(न − १) वां पद} \right\}$ जोड़ते हैं तो हमें $\frac{१}{अ-१}$ प्राप्त होगा। इस $\frac{१}{अ-१}$ से योग १ प्राप्त करने के लिये उसमें $\frac{अ - २}{अ - १}$ जोड़ना पड़ता है। इस $\frac{अ - २}{अ - १}$ को नियम में प्रथम भिन्न कहा गया है और इसका मान २ चुना गया है क्योंकि सभी भिन्नों का अंश १ होना चाहिए।

(७७) यहाँ $\frac{१}{२ \times ३ \times \frac{१}{२}} + \frac{१}{३ \times ४ \times \frac{१}{२}} + \frac{१}{४ \times ५ \times \frac{१}{२}} + \ldots\ldots + \frac{१}{(न - १)न \times \frac{१}{२}} + \frac{१}{न \times \frac{१}{२}}$

$$= २ \left[\frac{१}{२ \times ३} + \frac{१}{३ \times ४} + \frac{१}{४ \times ५} + \ldots\ldots + \frac{१}{(न - १)न} + \frac{१}{न} \right]$$

$$= २ \left[\left(\frac{१}{२} - \frac{१}{३} \right) + \left(\frac{१}{३} - \frac{१}{४} \right) + \ldots\ldots + \left(\frac{१}{न - १} - \frac{१}{न} \right) + \frac{१}{न} \right]$$

$$= २ \times \frac{१}{२} = १$$

लब्धहरः प्रथमस्यच्छेदः सस्वांशकोऽयमपरस्य । प्राक् स्वपरेण हतोऽन्त्यः स्वांशेनैकांशके योगे ।७८।

अत्रोद्देशकः

सप्तकनवकत्रितयत्रयोदशांशप्रयुक्तराशीनाम् । रूपं पादः षष्ठः संयोगाः के हराः कथय ॥७९॥

एकांशकानामेकांशेऽनेकांशे च फले छेदोत्पत्तौ सूत्रम्—

सेष्टो हारो भक्तः स्वांशेन निरग्रमादिमांशहरः । तद्युतिहाराप्तष्टः शेषोऽस्मादित्थमितरेषाम् ॥८०॥

जब कुछ इष्ट भिन्नों के योग का अंश १ हो, तब उनके चाहे हुए हरों को निकालने के लिये योग के हर को प्रथम राशि का हर मान लो और इस हर को अपने अंश से संयुक्त कर उसे उत्तरवर्ती राशि का हर मान लो, और ऐसे प्रत्येक हर को क्रमवार तत्काल उत्तरवर्ती के द्वारा गुणित करते चले जाओ। अन्तिम हर को उसी के अंश द्वारा गुणित करो ॥७८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

जिनके अंश क्रमशः ७, ९, ३ और १३ हैं ऐसे भिन्नों के योग १, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{६}$ हैं। बतलाओ कि उन भिन्नीय राशियों के हर क्या हैं ॥७९॥

जिनका अंश १ है ऐसे कुछ इच्छित भिन्नों के हर निकालने के लिये नियम जब कि उन भिन्नों के योग का अंश १ अथवा और कोई दूसरी राशि हो—

दिये गये योग के हर को जब कोई चुनी हुई राशि में मिलाते हैं और ताकि कुछ भी शेष न बचे इस तरह उसे उस योग के अंश द्वारा विभाजित करते हैं तो वह भिन्नों की चाही हुई श्रेढि के प्रथम अंश के सम्बन्ध में हर बन जाता है। ऊपर चुनी हुई राशि जब प्रथम भिन्न के हर द्वारा विभाजित की जाती है और दिये गये योग के हर द्वारा भी विभाजित की जाती है तब वह इष्ट श्रेढि के शेष भिन्नों के योग को उत्पन्न करती है। इष्ट श्रेढि के शेष भिन्नों के इस ज्ञात योग से इसी तरह अन्य हरों को निकालते हैं ॥८०॥

---

(७८) बीजीय रूप से यदि योग $\frac{१}{न}$ हो, और अ, ब, स तथा द दिये गये अंश हों तो भिन्नों को निम्न रीति से जोड़ते हैं—

$$\text{योग} = \frac{अ}{न\,(न+अ)} + \frac{ब}{(न+अ)\,(न+अ+ब)} + \frac{स}{(न+अ+ब)\,(न+अ+ब+स)}$$

$$+ \frac{द}{द\,(न+अ+ब+स)}$$

$$= \frac{अ\,(न+अ+ब)+ब\,न}{न\,(न+अ)\,(न+अ+ब)} + \frac{स+न+अ+ब}{(न+अ+ब)\,(न+अ+ब+स)}$$

$$= \frac{(न+अ)\,(अ+ब)}{न\,(न+अ)\,(न+अ+ब)} + \frac{१}{न+अ+ब} = \frac{अ+ब+न}{न\,(न+अ+ब)}$$

$$= \frac{१}{न}$$

(८०) बीजीय रूप से, यदि $\frac{अ}{न}$ योग है तो प्रथम भिन्न $\frac{१}{(न+प)/अ}$ होता है; और नियम

अत्रोद्देशकः

त्रयाणां रूपकांशानां राशीनां के हरा वद। फलं चतुर्थभागः स्याच्चतुर्णां च त्रिसप्तमम्॥८१॥

ऐकांशानामनेकांशानां चानेकांशे फले छेदोत्पत्तौ सूत्रम्—

इष्टहता दृष्टांशाः फलांशसदृशो यथा हि तद्योगः। निजगुणहृतफलहारस्तद्धारो भवति निर्दिष्टः॥८२॥

अत्रोद्देशकः

एकांशेन राशीनां त्रयाणां के हरा वद। द्वादशाप्ता त्रयोविंशत्यंशका च युतिर्भवेत्॥८३॥

त्रिसप्तकनवांशानां त्रयाणां के हरा वद। द्व्यूनपञ्चाशदाप्ता त्रिसप्तत्यंशा युतिर्भवेत्॥८४॥

एकांशकयो राश्योरेकांशे फले छेदोत्पत्तौ सूत्रम्—

१ ८३ और ८४ श्लोक B में छूट गये हैं।

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन विभिन्न भिन्नीय राशियों का योग $\frac{१}{४}$ है, तथा उनमें से प्रत्येक का अंश १ है। ऐसी चार अन्य राशियों का योग $\frac{३}{७}$ है। बतलाओ कि हर क्या हैं? ॥८१॥

जिनका अंश एक अथवा कोई और संख्या हो ऐसे कुछ इच्छित भिन्नों के हर निकालने के लिये नियम जब कि उन भिन्नों के योग का अंश १ की अपेक्षा अन्य संख्या हो—

ज्ञात अंश कुछ चुनी हुई राशियों द्वारा गुणित किये जाते हैं, ताकि इन गुणनफलों का योग इष्ट भिन्नों के दिये गये योग के अंश के बराबर हो जावे। यदि इष्ट भिन्नों के दिये गये योग के हर को उसी गुणक से विभाजित किया जाय (जिससे कि दिया गया अंश गुणित किया गया है) तो वह अंश सम्बन्धी चाहे हुए हर को उत्पन्न करता है॥८२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन भिन्नीय राशियों में, प्रत्येक का अंश १ है। उनके हरों का मान निकालो जब कि उन राशियों का योग $\frac{२३}{१२}$ हो ॥८३॥ क्रमशः ३, ७ और ९ अंशवाली तीन भिन्नीय राशियों के हरों का मान बतलाओ जब कि उन राशियों का योग $\frac{७३}{४८}$ हो ॥८४॥

१ अंशवाली दो भिन्नीय राशियों के हरों का मान निकालने के लिये नियम जब कि उन भिन्नीय राशियों के योग का अंश १ हो—

दिये गये योग के हर को चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित करने पर किसी एक इष्ट भिन्नीय राशि का हर प्राप्त होता है। यह हर, एक कम (पिछली) चुनी हुई संख्या द्वारा विभाजित किया जाने पर

में शेष भिन्नों का योग $\frac{प}{\frac{न+प}{अ}न}$ कथित है, जहां 'प' चुनी हुई राशि है। यह $\frac{प}{\frac{न+प}{अ}न}$ स्पष्ट रूप से $\frac{अ}{न} - \frac{१}{\frac{न+प}{अ}}$ को हल करने से प्राप्त होती है। यहां प को इस तरह चुनना चाहिये कि (न + प) में अ का पूरा पूरा भाग जा सके।

वाञ्छाहतयुतिहारश्छेदः स्यादेकवाञ्छयाप्तोऽन्यः ।
फलहारहारलब्धे स्वयोगगुणिते हरौ वा स्तः ॥८५॥

अत्रोद्देशकः

राश्योरेकांशयोश्छेदौ कौ भवेतां तयोर्युतिः ।
षडंशो दशभागो वा ब्रूहि त्वं गणितार्थवित् ॥८६॥

एकांशकयोरनेकांशयोश्च एकांशेऽनेकांशेऽपि फले छेदोत्पत्तौ प्रथमसूत्रम्—

इष्टगुणांशोऽन्यांशप्रयुतः शुद्धं हृतः फलांशेन । इष्टाप्तयुतिहरघ्नो हरः परस्य तु तदिष्टहृतिः ॥८७॥

१ P और B में यह पाठान्तर जुड़ा है:—
शुद्धं फलांशभक्तः स्वान्यांशयुतो निजेष्टगुणितांशः ।

दूसरे इष्ट अंश को उत्पन्न करता है। अथवा, दिये गये योग के हर के सम्बन्ध में किसी चुने हुए भाजक और प्राप्त भजनफल में से प्रत्येक को उनके योग द्वारा गुणित करने पर दो इष्ट हरों की उत्पत्ति होती है ॥८५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे अंकगणित के सिद्धान्तों के ज्ञाता ! दो इष्ट भिन्नीय राशियों के हर निकालो जब कि उनका योग या तो $\frac{१}{६}$ अथवा $\frac{१}{१०}$ हो ॥८६॥

जिनका अंश १ अथवा कोई और संख्या है ऐसे दो इष्ट भिन्नों के हरों को निकालने के लिये नियम जब कि उन भिन्नों के योग का अंश १ अथवा कोई और संख्या हो—

कोई भी एक (either) अंश चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित होकर, तब अन्य अंश द्वारा मिलाया जाकर, तब इष्ट भिन्नों के दिये गये योग के अंश द्वारा विभाजित होकर (ताकि कुछ भी शेष न रहे,) और तब ऊपर की चुनी हुई संख्या द्वारा विभाजित होकर तथा इष्ट भिन्नों के योग के हर द्वारा गुणित होकर, चाहे हुए हर को उत्पन्न करता है। अन्य भिन्न का हर इस हर को ऊपर की चुनी हुई राशि द्वारा गुणित कर प्राप्त कर सकते हैं ॥८७॥

(८५) बीजीय रूप से, जब दो इष्ट भिन्नों का योग $\frac{१}{न}$ है, तो इस नियम के अनुसार भिन्न क्रमशः $\frac{१}{प\ न}$ तथा $\frac{१}{(प\ न)/(प-१)}$ होते हैं, जहां प कोई भी चुनी हुई राशि है। यह शीघ्र देखने में आवेगा कि इन दोनों भिन्नों का योग $\frac{१}{न}$ है।

अथवा, जब योग $\frac{१}{अ\ ब}$ हो, तब भिन्नों को $\frac{१}{अ\ (अ+ब)}$ और $\frac{१}{ब\ (अ+ब)}$ लिया जा सकता है।

(८७) बीजीय रूप से, यदि अ और ब अंश वाले दो इष्ट भिन्नों का योग $\frac{म}{न}$ है तो वे भिन्न $\frac{अ}{\frac{अ प+ब}{म}\times\frac{न}{प}}$ और $\frac{ब}{\frac{अ प+ब}{म}\times\frac{न}{प}\times प}$ होंगे, जहाँ 'प' कोई भी संख्या इस तरह चुनी गई है कि अ प + ब को म द्वारा विभाजित किया जा सके। इन भिन्नों का योग $\frac{म}{न}$ प्राप्त होगा।

अत्रोद्देशकः

रूपांशकयो राश्योः कौ स्यातां हारकौ युतिः पादः ।
पञ्चांशो वा द्विहतः सप्तकनवकांशयोश्च वद ॥८८॥

द्वितीयसूत्रम्—

फलहारताडितांशः परांशसहितः फलांशकेन हृतः ।
स्यादेकस्य च्छेदः फलहरगुणितोऽयमन्यस्य ॥८९॥

अत्रोद्देशकः

राशिद्वयस्य कौ हारावेकांशस्यास्य संयुतिः । द्विसप्तांशो भवेद्ब्रूहि षडष्टांशस्य च प्रिय ॥९०॥
अर्धत्र्यंशदशांशकपञ्चदशांशकयुतिर्भवेद्रूपम् । त्यक्ते पञ्चदशांशे रूपांशावत्र कौ योज्यौ ॥९१॥
दलपादपञ्चमांशकविंशानां भवति संयुतौ रूपम् । सप्तैकादशकांशौ कौ योज्याविह विना विंशम्॥९२

युग्मान्याश्रित्य च्छेदोत्पत्तौ सूत्रम्—

युग्मप्रमितान् भागानेकैकांशान् प्रकल्प्य फलराशेः ।
तेभ्यः फलात्मकेभ्यो द्विराशिविधिना हराः साध्याः ॥९३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो इष्ट भिन्नीय राशियों में प्रत्येक का अंश १ है । इनके हरों को निकालो जब कि इन राशियों का योग या तो $\frac{१}{४}$ अथवा $\frac{२}{५}$ हो । साथ ही, उन दो अन्य भिन्नीय राशियों के हर निकालो जिनके अंश क्रमशः ७ और ९ हैं ॥८८॥

दूसरा नियम निम्नलिखित है :—

इष्ट भिन्नों में किसी एक के अंश को इष्ट भिन्नों के योग के हर द्वारा गुणित कर दूसरे अंश में मिलाते हैं । प्राप्त फल को इष्ट भिन्नों के योग के अंश द्वारा विभाजित करते हैं तो इष्ट भिन्नों में से एक भिन्न का हर उत्पन्न होता है । इस हर को जब इष्ट भिन्नों के योग के हर द्वारा गुणित करते हैं तब वह दूसरे भिन्न का हर हो जाता है ॥८९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे मित्र ! मुझे बतलाओ कि दो भिन्नीय राशियों के (जिनमें प्रत्येक के अंश १, १ हैं) हर क्या होंगे जब कि उन इष्ट भिन्नों का योग $\frac{२}{७}$ है । दो अन्य इष्ट भिन्नों के भी हर क्या होंगे जिनके अंश क्रमशः ६ और ८ हों ॥९०॥ $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{१०}$ और $\frac{१}{१५}$ का योग १ है । यदि $\frac{१}{१५}$ छोड़ दिया जावे तो दो ऐसे १ अंश वाले भिन्न बतलाओ जिनको शेष भिन्नों में जोड़ने पर योग पुनः कुल के तुल्य हो जावे ॥९१॥ $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{५}$ और $\frac{१}{२०}$ का योग १ है । यदि $\frac{१}{२०}$ छोड़ दिया जाय तो क्रमशः ७ और ११ हर वाले ऐसे दो भिन्न कौन से होंगे जिनको शेष में जोड़ने पर उनका योग कुल योग के तुल्य हो जावे ॥९२॥

कुछ इष्ट भिन्नों को युग्मों (pairs) में लेकर उनके हरों को निकालने के लिये नियम—

सब इष्ट भिन्नों के योग को दिये गये अंशों के युग्मों की संख्या के तुल्य भागों में विपाटित करने के बाद, (इस तरह कि प्रत्येक के अंश १, १ हों), इन भागों को युग्मों के योग में अलग-अलग

---

(८९) गाथा ८७ में दिये गये नियम की यह विशेष स्थिति है क्योंकि इष्ट भिन्नों के हर का आदेशन (substitution) इस नियम में, पिछले नियम में चुनी गई राशि के स्थान में करते हैं ।

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकत्रयोदशसप्तनवैकादशांशराशीनाम् । के हाराः फलमेकं पञ्चांशो वा चतुर्गुणितः ॥९४॥

एकसूत्रोत्पन्नरूपांशहारैः सूत्रान्तरोत्पन्नरूपांशहारैश्च फले रूपे छेदोत्पत्तौ नष्टभागानयनेच सूत्रम्—

वाञ्छितसूत्रजहारा हरा भवन्त्यन्यसूत्रजहरघ्नाः । दृष्टांशैक्योनं फलमभीष्टनष्टांशमानं स्यात् ॥९५॥

अत्रोद्देशकः

परहतिदलनविधानात्त्रयोदश स्वपरसंगुणविधानात् ।
भागाश्चत्वारोऽतः कति भागाः स्युः फले रूपे ॥९६॥
प्राक्स्वपरहतविधानात्सप्तस्वासन्नपरगुणार्धविधानात् ।
भागास्त्रितयश्चातः कति भागाः स्युः फले रूपे ॥९७॥
रूपांशका द्विषट्कद्वादशविंशतिहरा विनष्टोऽत्र । पञ्चमराशी रूपं सर्वसमासः स राशिः कः ॥९८॥

इति भागजातिः ।

लेते हैं । उनमें से चाहे हुए हरों को, दो घटक भिन्नीय राशियों के सम्बन्ध में बतलाये गये नियम द्वारा निकालते हैं ॥९३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

उन इष्ट भिन्नों के हर क्या होंगे जिनके अंश क्रमशः ३, ५, १३, ७, ९ और ११ हैं, जब कि उन भिन्नीय राशियों का योग १ अथवा $\frac{4}{5}$ है ? ॥९४॥

जिनका संवादी अंश १ है और जो उपर्युक्त नियमों द्वारा प्राप्त किये गये हैं ऐसे हरों की सहायता से कुछ हरों को निकालने के लिये (नियम); तथा जिनका संवादी अंश १ है और जिनके इष्ट भिन्नों का योग एक है तथा जो उपर्युक्त अन्य नियमों द्वारा प्राप्त किये गये हैं ऐसे भिन्नों की सहायता से हरों को निकालने के लिये (नियम) और नष्ट भाग का मान निकालने के लिये नियम—

किसी भी चुने हुए नियम के अनुसार प्राप्त हरों को दूसरे नियम से प्राप्त हरों द्वारा गुणित करने पर चाहे हुए हर प्राप्त होते हैं । इन भिन्नों का योग, विशिष्ट भाग के योग द्वारा ह्रासित किये जाने पर छोड़े हुए नष्ट भाग का मान होता है ॥९५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

नियम ७७ द्वारा प्राप्त भिन्नों की संख्या १३ है और नियम क्रम ७८ द्वारा प्राप्त भिन्नों की संख्या ४ है । इन नियमों की सहायता से प्राप्त भिन्नों का योग १ है, तो बतलाओ कि विघटक भिन्न कितने हैं ? ॥९६॥ गाथा ७८ के नियम द्वारा प्राप्त भिन्नों की संख्या ७ है और नियम ७७ गाथानुसार प्राप्त संख्या ३ है । यदि इन नियमों द्वारा प्राप्त भिन्नों का योग १ हो तो बतलाओ विघटक भिन्न कितने हैं ? ॥९७॥ जिनके अंश १, १ हैं ऐसे कुछ भिन्नों के हर क्रमशः २, ६, १२ और २० हैं । यहां पाँचवीं भिन्नीय राशि छोड़ दी गई है । इन पाँचों भिन्नों का योग १ है, बतलाओ कि वह छोड़ी गई भिन्नीय राशि क्या है ? ॥९८॥

इस प्रकार, कलासवर्ण षड्जाति में भाग जाति नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

---

(९३) दो भिन्नीय राशियों के सम्बन्ध में गाथा ८५, ८७ और ८९ में नियम दे दिये गये हैं ।

प्रभागभागभागजात्योः सूत्रम्—
अंशानां संगुणनं हाराणां च प्रभागजातौ स्यात् ।
गुणकारोंऽशकराशेर्हारहरो भागभागजातिविधौ ॥९९॥

प्रभागजातावुद्देशकः

रूपार्धं त्र्यंशार्धं त्र्यंशार्धार्धं दलार्धपञ्चांशम् । पञ्चांशार्धत्र्यंशं तृतीयभागार्धसप्तांशम् ॥१००॥
दलदलदलसप्तांशं त्र्यंशत्र्यंशकदलार्धदलभागम् । अर्धत्र्यंशत्र्यंशकपञ्चांशं पञ्चमांशदलम् ॥१०१॥
क्रीतं पणस्य दत्त्वा कोकनदं कुन्दकेतकीकुमुदम् । जिनचरणं प्रार्चयितुं प्रक्षिप्यैतान् फलं ब्रूहि ॥१०२
रूपार्धं त्र्यंशकार्धार्धं पादसप्तनवांशकम् । द्वित्रिभागद्विसप्तांशं द्विसप्तांशनवांशकम् ॥१०३॥
दत्त्वा पणद्वयं कश्चिदानैषीन्नूतनं घृतम् । जिनालयस्य दीपार्थं शेषं किं कथय प्रिय ॥१०४॥
त्र्यंशाद्द्विपञ्चमांशस्तृतीयभागात् त्रयोदशषडंशः ।
पञ्चाष्टादशभागात् त्रयोदशांशोऽष्टमाश्च नवमः ॥१०५॥
नवमाच्चतुस्त्रयोदशभागः पञ्चांशकात् त्रिपादार्धम् ।
संक्षिप्याचक्ष्वैतान् प्रभागजातौ श्रमोऽस्ति यदि ॥१०६॥

प्रभाग और भागभाग जाति (संयुत और जटिल भिन्न)

संयुत (compound) और जटिल (complex) भिन्नों को सरल करने के लिये नियम—

संयुत भिन्नों को सरल करने में, अंशों का उनमें ही गुणन तथा हरों का उनमें ही गुणन होगा। संकर (complex) भिन्नों सम्बन्धी सरलीकरण किया में भिन्न के हर का हर, दिये गये भिन्न के अंश का गुणक हो जाता है ॥९९॥

प्रभाग जाति (संयुत भिन्नों) पर उदाहरणार्थ प्रश्न

जिन प्रभु के चरणों में पूजन के अर्पण के निमित्त निम्नलिखित पण मूल्य पर कोकनद (कमल) कुन्द (jasamins), केतकी और कुमुद (lily) खरीदे गये : १ का $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$; $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{5}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{3}$; $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{7}$; $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{7}$; $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$; $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{5}$ और $\frac{1}{5}$ का $\frac{1}{2}$; एक पण के इन दिये हुए भागों को जोड़कर फल निकालो ॥१०० से १०२॥ एक मनुष्य किसी विक्रेता को पण के क्रमशः १ का $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{2}$; $\frac{2}{3}$ का $\frac{1}{4}$, $\frac{2}{7}$ का $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{2}$ का $\frac{2}{7}$ भाग दो पण में से देकर जिन मंदिर में दीपक जलाने के लिये नूतन घी खरीद कर लाया। हे मित्र ! बतलाओ कि शेष कितने पण रकम उसके पास बची ? ॥१०३–१०४॥

यदि तुमने संयुत भिन्नों के सम्बन्ध में परिश्रम किया है तो बतलाओ कि निम्नलिखित भिन्नों का योग करने पर परिणामी योगफल क्या होगा ? $\frac{1}{3}$ का $\frac{2}{5}$, $\frac{1}{3}$ का $\frac{13}{6}$, $\frac{5}{18}$ का $\frac{1}{13}$, $\frac{1}{8}$ का $\frac{1}{9}$, $\frac{1}{9}$ का $\frac{4}{13}$ और $\frac{1}{5}$ का $\frac{3}{4}$ का $\frac{1}{2}$ ॥१०५–१०६॥

---

(९९) यहां संकर भिन्न में अंश पूर्णांक है और हर भिन्नीय है।

अत्रैकाव्यक्तानयनसूत्रम्—

रूपं न्यस्याव्यक्ते प्राग्विधिना यत्फलं भवेत्तेन । भक्तं परिदृष्टफलं प्रभागजातौ तदज्ञातम् ॥१०७॥

अत्रोद्देशकः

राशेः कुतश्चिदष्टांशस्त्र्यंशपादोऽर्धपञ्चमः । षष्ठत्रिपादपञ्चांशः किमव्यक्तं फलं दलम् ॥१०८॥

अनेकाव्यक्तानयनसूत्रम्—

कृत्वाज्ञातनिष्टान् फलसदृशो तद्युतिर्यथा भवति ।
विभजेत पृथग्व्यक्तैरविदितराशिप्रमाणानि ॥१०९॥

अत्रोद्देशकः

राशेः कुतश्चिदर्धं कुतश्चिदष्टांशकत्रिपञ्चांशः । कस्माद्द्वित्र्यंशार्धं फलमर्धं के स्युरज्ञाताः ॥११०॥

भागभागजातावुद्देशकः

षट्सप्तभागभागस्त्र्यष्टांशांशश्चतुर्नवांशांशः । त्रिचतुर्थभागभागः किं फलमेतद्युतौ ब्रूहि ॥१११॥

जिनका योग दिया गया है ऐसे संयुत भिन्नों के प्रत्येक समूह का एक साधारण अज्ञात (तत्व) निकालने के लिये नियम—

दिया गया योग जब संयुत भिन्नों के अज्ञात तत्व के स्थान में एक रखने के उपर्युक्त नियमानुसार प्राप्त योग द्वारा विभाजित किया जाता है तब संयुत भिन्नों की योग क्रिया में चाहे हुए अज्ञात तत्व को उत्पन्न करता है ॥१०७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी राशि का $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{3}$ का $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{5}$ और $\frac{1}{6}$ का $\frac{3}{4}$ का $\frac{1}{5}$ का योग $\frac{1}{2}$ है; बतलाओ कि यह अज्ञात राशि क्या है ? ॥१०८॥

दिये गये योग वाले संयुत भिन्नों के प्रत्येक समूह में रहने वाले एक से अधिक अज्ञात तत्वों को निकालने के लिये नियम—

आंशिक रूप से ज्ञात विभिन्न संयुत भिन्नों के अज्ञात मानों को उन चुनी हुई राशियों के समान बनाओ जो दिये हुए संयुत भिन्नों की संख्या के बराबर हों और जिनका योग दिये गये आंशिक संयुत भिन्नों के दत्त योग के तुल्य हो। तब इन चुनी हुई अज्ञात संयुत भिन्नीय राशियों के मानों को उनके ज्ञात तत्वों द्वारा क्रमशः विभाजित करो ॥१०९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

(निम्नलिखित आंशिक रूप से ज्ञात संयुक्तभिन्न, नाप्ता,) कोई राशि का $\frac{1}{2}$; किसी अन्य राशि का $\frac{1}{8}$ का $\frac{3}{5}$ और अन्य राशि का $\frac{2}{3}$ का $\frac{1}{2}$; इन सबका योग $\frac{1}{2}$ है। इनके सम्बन्ध में अज्ञात तत्व क्या क्या हैं ? ॥ ११० ॥

संकर भिन्नों पर प्रश्न

$\frac{1}{6/7}$, $\frac{1}{3/8}$ $\frac{1}{4/9}$ और $\frac{1}{3/4}$, दिये गये हैं; बताओ कि इनका योगफल क्या होगा ?

---

(१०९) ११०वीं गाथा के प्रश्न के निम्नलिखित साधन द्वारा नियम स्पष्ट हो जावेगा। इष्ट भिन्नों के योग $\frac{1}{2}$ को, गाथा ७८ के नियमानुसार ३ भिन्नों में विपाटित करने पर हमें $\frac{1}{6}$, $\frac{1}{12}$ और $\frac{1}{4}$ प्राप्त होते हैं। इन आंशिक रूप से ज्ञात संयुत भिन्नों को हम क्रमवार $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{8}$ का $\frac{3}{5}$ और $\frac{2}{3}$ का $\frac{1}{2}$ द्वारा विभाजित करते हैं जिससे $\frac{1}{3}$, $\frac{10}{9}$ और $\frac{3}{4}$ राशियां प्राप्त होती हैं।

द्वित्र्यंशार्धं रूपं त्रिपादभक्तं द्विकं द्वयं चापि। द्वित्र्यंशोकृतमेकं नवकात्संशोध्य वद शेषम् ॥११२॥

इति प्रभागभागभागजाती।

भागानुबन्धजातौ सूत्रम्—

हरहतरूपेष्वंशान् संक्षिप भागानुबन्धजातिविधौ। गुणयामांशच्छेदावंशयुतच्छेदहाराभ्याम् ॥११३॥

रूपभागानुबन्ध उद्देशकः

[2]द्वित्रिषट्काष्टनिष्काणि द्वादशाष्टषडंशकैः। पञ्चाष्टमैः समेतानि विंशतेः शोधय प्रिय ॥११४॥

सार्धेनैकेन पङ्कजं साष्टांशैर्दशभिर्हिमम्। सार्धाभ्यां कुङ्कुमं द्वाभ्यां क्रीतं योगे कियद्भवेत्[3] ॥११५॥

[4]साष्टमाष्टौ षडंशान् षड्द्वादशांशयुतं द्वयम्। त्र्यं पञ्चाष्टमोपेतं विंशतेः शोधय प्रिय ॥११६॥

सप्ताष्टौ नवदशमाषकान् सपादान् दत्त्वा ना जिननिलये चकार पूजाम्।

उन्मीलत्कुरबककुन्दजातिमल्लीमालाभिर्गणक वदाशु ताम् समस्य ॥११७॥

१ B में गुणयेदग्रांशहरौ सहितांशच्छेद°, पाठ है।
२ यह श्लोक P में अप्राप्य है।
३ M द्रवेत्
४ यह श्लोक केवल P में प्राप्य है।

॥ १११ ॥ ९ में से $\frac{१}{२/३}$, $\frac{२}{३/४}$ और $\frac{२}{३/४}$ तथा $\frac{१}{२/३}$ घटाने पर क्या शेष रहेगा ? ॥ ११२ ॥

इस प्रकार, कलासवर्ण षड्जाति में, प्रभागजाति नामक परिच्छेद समाप्त हुआ।

भागानुबंध जाति [संयव भिन्न]

भागानुबंध भिन्नों के सरलीकरण के सम्बन्ध में नियम—

भागानुबंध भिन्न को सरल करने के लिये अंश को संयवित पूर्णसंख्या (associated whole number) और हर के गुणनफल में जोड़ देते हैं। यदि सम्बन्धित संख्या पूर्णांक न होकर भिन्नीय हो तो प्रथम भिन्न के अंश और हर को दूसरे भिन्न के क्रमशः अंशसहित हर तथा हर से गुणित करो ॥११३॥

रूपभागानुबंध (संयवित पूर्णांक वाले भागानुबंध भिन्न) पर उदाहरणार्थ प्रश्न

निष्क क्रमशः २, ३, ६ और ८ हैं और वे १/१२, १/८, १/६ और ५/८ से संयवित हैं। हे मित्र इनके योग को २० में से घटाओ ॥ ११४ ॥ १½ निष्क के कमल, १०⅛ निष्क का कपूर और २½ निष्क की सौंफ खरीदी गई। योग करनेपर उनका कुल मान बतलाओ ? ॥ ११५ ॥ हे मित्र २० में से निम्न-लिखित को घटाओ—८⅛, ६⅙, २ १/१२ और ३⅝ ॥११६॥ एक व्यक्ति जिन मंदिर में पूजन हेतु ७¼, ८¼, ९¼ और १०¼ माषों के खिले हुए कुरबक, कुन्द, जाति और मल्लिका (जूही) फूलों के हार भेंट करता है। हे गणितज्ञ ! मुझे शीघ्र बताओ कि उन माषों को जोड़ने के बाद क्या प्राप्त होगा ? ॥ ११७ ॥

(११३) भागानुबंध का शाब्दिक अर्थ संयवित भिन्न है। यह नियम दो प्रकार के संयवित भिन्नों में प्रयोज्य होता है। प्रथम मिश्र संख्या है अर्थात् पूर्णांक से संयवित भिन्न है, और दूसरा प्रकार वह है जिसमें भिन्न से संयवित भिन्न रहते हैं। जैसे १/३ से संयवित १/२; स्व के १/३ से संयवित १/२ और इस संयवित राशि के १/४ से संयवित १/२। "१/३ से संयवित १/२" का अर्थ होता है १/२ + १/२ का १/३; दूसरे उदाहरण का अर्थ है : १/२ + १/२ का १/३ + १/४ का (१/२ + १/२ का १/३) इस प्रकार के संयवन को "योजित अनुगमन" (additive consecution) कहते हैं।

भागानुबन्ध उद्देशकः

स्वत्र्यंशपादसंयुक्तं दलं पञ्चांशकोऽपि च । त्र्यंशः स्वकीयषष्ठार्धसहितस्तद्युतौ कियत् ॥११८॥
त्र्यंशार्धांशकसप्तमांशचरमैः स्वैरन्वितादर्धतः पुष्पाण्यर्धतुरीयपञ्चनवमैः स्वीयैर्युतात्सप्तमात् ।
गन्धं पञ्चमभागतोऽर्धचरणत्र्यंशांशकैर्मिश्रिताद् धूपं चार्चयितुं नरो जिनवरानानेष्ट किं तद्युतौ ॥
स्वदलसहितं पादं स्वत्र्यंशकेन समन्वितद्विगुणनवमं स्वाष्टांशत्र्यंशकार्धविमिश्रितम् ।
नवममपि च स्वाष्टांशाद्यर्धपश्चिमसंयुतं निजदलयुतं त्र्यंशं संशोधय त्रितयात्प्रिय ॥१२०॥
स्वदलसहितपादं सस्वपादं दशांशं निजदलयुतषष्ठं सस्वकत्र्यंशमर्धम् ।
चरममपि समेतस्वत्रिभागं समस्य प्रिय कथय समग्रप्रज्ञ भागानुबन्धे ॥१२१॥

अत्राग्राव्यक्तानयनसूत्रम्—

कल्पितभागा रूपानीतानुबन्धफलभक्ताः । क्रमशः खण्डसमानास्तेऽज्ञातांशप्रमाणानि ॥१२२

१ B. स्वचरणाद्यर्धान्तिमैः ।

भाग भागानुबंध [संयवित भिन्नों वाले] भिन्न पर उदाहरणार्थ प्रश्न

यहाँ $\frac{1}{2}$ स्व के $\frac{1}{3}$ भाग और इस राशि ($\frac{1}{3}$) के $\frac{1}{4}$ भाग से संयवित है । $\frac{1}{5}$ भी इसी तरह संयवित है; $\frac{1}{3}$ स्वके $\frac{1}{6}$ भाग और इस संयवित राशि ($\frac{1}{6}$) के $\frac{1}{2}$ भाग से संयवित है । बतलाओ कि इन सबका योग प्राप्त करने पर क्या मान प्राप्त होगा ? ॥ ११८ ॥ श्री जिनवर के पूजन के लिये कोई व्यक्ति, $\frac{1}{3}$ से आरम्भ होकर $\frac{1}{7}$ में अंत होनेवाले भिन्नों से संयवित $\frac{1}{2}$ निष्क के फूल; $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{5}$ और $\frac{1}{9}$ से संयवित $\frac{1}{7}$ निष्क के द्रव्य (गंध); और $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{3}$ से इसी तरह संयवित $\frac{1}{5}$ निष्क की धूप खरीदता है । इन निष्कों का योगफल क्या होगा ? ॥ ११९ ॥ हे मित्र ! २ में से निम्नलिखित को घटाओ : स्व के $\frac{1}{2}$ से तथा इस राशि $\frac{1}{2}$ के $\frac{1}{3}$ भाग से संयवित $\frac{1}{4}$; स्व के $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{2}$ भागों से संयवित $\frac{2}{9}$ (यौगिक अनुगम में); $\frac{1}{8}$ से आरम्भ होकर $\frac{1}{2}$ में अंत होने वाले भिन्नों से संयवित $\frac{1}{9}$; और स्वः के $\frac{1}{2}$ भाग से संयवित $\frac{1}{3}$ ॥१२०॥ हे भागानुबंध में समग्र प्रज्ञ मित्र ! क्या योगफल होगा जब कि निम्नलिखित भिन्न जोड़े जावेंगे ? स्व के $\frac{1}{2}$ से संयवित $\frac{1}{4}$; स्व के $\frac{1}{4}$ भाग से संयवित $\frac{1}{10}$; स्वके $\frac{1}{2}$ भाग से संयवित $\frac{1}{6}$, स्व के $\frac{1}{3}$ भाग से संयवित $\frac{1}{2}$; और स्वके $\frac{1}{3}$ से संयवित $\frac{1}{4}$ ॥१२१॥

अब अग्र अव्यक्त (जिनका योग दिया गया है ऐसे संयवित भिन्नों में प्रत्येक के आरम्भ में आने वाला एक अज्ञात) निकालने के लिये नियम यह है—

जो इष्ट विघटक तत्वों की संख्या के बराबर है तथा जिनका योग दिया गया है ऐसे कल्पित भागों को, जब क्रम से, इन विघटक तत्वों सम्बन्धी संयवित राशि को १ मानकर प्राप्त की हुई परिणामी राशियों द्वारा विभाजित किया जाता है तब इष्ट अज्ञात सम्बन्धी राशियों का मान उत्पन्न होता है ॥१२२॥

(१२२) गाथा १२३ के प्रश्न को साधित करने पर यह नियम स्पष्ट हो जावेगा—

किसी भिन्न के तीन कुलक (sets) दिये गये हैं; योग १ को, नियम ७५ के अनुसार तीन भिन्नों में विपाटित करने पर हमें $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{6}$ प्राप्त होते हैं । इन भिन्नों को तीन दिये गये, अज्ञात राशि १ वाले, भिन्नों के कुलकों को सरल करने से प्राप्त हुई राशियों द्वारा भाजित करने पर हमें $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{10}$ इष्ट राशियाँ प्राप्त होती हैं ।

अत्रोद्देशकः

कश्चित्स्वकैरर्धतृतीयपादैरंशोऽपरः पञ्चचतुर्नवांशैः ।
अन्योऽपि पञ्चांशनवांशकार्धैर्युतो युती रूपमिहांशकाः के ॥१२३॥
कोऽप्यंशः स्वार्धपञ्चांशत्रिपादलवकैर्युतः । अर्धं प्रजायते शीघ्रं वदाव्यक्तप्रमां प्रिय ॥१२४॥

शेषेष्टस्थानाव्यक्तभागानयनसूत्रम्—

ऐक्यात्कल्पितभागाः सवर्णितैर्व्यैकराशिभिर्भक्ताः ।
क्रमशो रूपविहीनाः स्वेष्टपदेष्वविदितांशाः स्युः ॥१२५॥

इति भागानुबन्धजातिः ।

अथ भागापवाहजातौ सूत्रम्—

हरहतरूपेष्वंशानपनय भागापवाहजातिविधौ । गुणयाग्रांशच्छेदावंशोनच्छेदहाराभ्याम् ॥१२६॥

१ B गुणयेदग्रांशहरौ रहितांशच्छेदहाराभ्याम् ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

(यौगिक अनुगम में) स्वके $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{4}$ भागों से संयवित एक भिन्न दिया गया है। अन्य भिन्न, स्व के $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{9}$ भागों से संयवित हैं। पुनः अन्य भिन्न स्वके $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{9}$ और $\frac{1}{2}$ भागों से संयवित हैं। इस तरह संयवित भिन्नों का योग १ हो तो बतलाओ कि वे भिन्न क्या-क्या हैं ? ॥१२३॥ एक भिन्न स्वके $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{4}$ भागों से संयवित होकर $\frac{1}{2}$ हो जाता है। हे मित्र ! मुझे शीघ्र ही उस अज्ञात भिन्न का मान बतलाओ ॥१२४॥

आरम्भ का स्थान छोड़कर अन्य इष्ट स्थानों के किसी अज्ञात भिन्न को निकालने के लिये नियम—

दिये गये योग के, मन से विपाटित भागों को जब क्रमशः इष्ट भागानुबंध भिन्नों की सरल की गई ज्ञात राशियों द्वारा विभाजित करते हैं और तब १ द्वारा ह्रासित करते हैं, तब इष्ट स्थानों की अज्ञात भिन्नीय राशियाँ प्राप्त होती हैं ॥१२५॥

इस प्रकार, कलासवर्ण षड्जाति में भागानुबंध जाति नामक परिच्छेद समाप्त हुआ।

भागापवाह जाति [वियवित भिन्न]

वियवित (Dissociated) भिन्नों को सरल करने के लिये नियम—

भागापवाह भिन्नों को सरल करने के लिये हर द्वारा गुणित वियुत पूर्ण संख्या में से अंश को घटाओ। जब वियुत राशि पूर्णांक न होकर भिन्नीय हो तब क्रमशः अंश और प्रथम भिन्न के हर को अंश द्वारा ह्रासित हर और दूसरे भिन्न के हर द्वारा गुणित करो ॥१२६॥

---

(१२५) इस नियम में दी गई विधि गाथा १२२ के समान है : इसमें प्राप्त फलों को एक द्वारा ह्रासित किया जाता है।

(१२६) भागापवाह का शाब्दिक अर्थ भिन्नीय वियवन है। जिस तरह भागानुबंध में भिन्न के दो प्रकार हैं, उसी तरह यहाँ भी २ प्रकार हैं। जब एक पूर्णांक और एक भिन्न भागापवाह सम्बन्ध में रहते हैं तब पूर्णांक में से भिन्न घटाया जाता है। दो या दो से अधिक भिन्न भी इस सम्बन्ध में हो सकते हैं, जैसे, स्वके $\frac{1}{4}$ भाग द्वारा वियुत $\frac{2}{5}$ अथवा स्व के $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{2}$ भागों द्वारा वियुत $\frac{3}{5}$; यहाँ अर्थ यह है कि $\frac{2}{5}$ का $\frac{1}{4}$, $\frac{2}{5}$ में से (प्रथम उदाहरण में) घटाया जायगा; दूसरे प्रश्न में : $\frac{3}{5}$ − $\frac{3}{5}$ का $\frac{1}{4}$ − ($\frac{3}{5}$ − $\frac{3}{5}$ का $\frac{1}{4}$) का $\frac{1}{8}$ − {$\frac{3}{5}$ − $\frac{3}{5}$ का $\frac{1}{4}$ − ($\frac{3}{5}$ − $\frac{3}{5}$ का $\frac{1}{4}$) का $\frac{1}{8}$} का $\frac{1}{2}$ प्राप्त होता है।

रूपभागापवाह उद्देशकः

त्र्यष्टचतुर्दशकर्षाः पादार्धद्वादशांशषष्ठोनाः । सवनाय नरेर्दत्तास्तीर्थकृतां तद्युतौ किं स्यात् ॥१२७॥
त्रिगुणपाददलत्रिहृताष्टमैर्विरहिता नव सप्त नव क्रमात् ।
प्रिय विशोध्य चतुर्गुणषट्कतः कथय शेषधनप्रमितिं द्रुतम् ॥१२८॥

भागभागापवाह उद्देशकः

द्विगुणितपञ्चमनवमत्र्यंशाष्टांशद्विसप्तमान् क्रमशः ।
स्वषडंशपादचरणत्र्यंशाष्टमवर्जितान् समस्य वद ॥१२९॥
षट्सप्तांशः स्वषष्ठाष्टमनवमदशांशैर्वियुक्तः पणस्य
स्यात्पञ्चद्वादशांशः स्वकचरणतृतीयांशपञ्चांशकोनः ।
स्वद्वित्र्यंशद्विपञ्चांशकदलवियुतः पञ्चषड्भागराशि-
र्द्वित्र्यंशोऽन्यः स्वपञ्चाष्टमपरिरहितस्तत्समासे फलं किम् ॥१३०॥
अर्धं त्र्यष्टमभागपादनवमैः स्वीयैर्विहीनं पुनः
स्वैरष्टांशकसप्तमांशचरणैरूनं तृतीयांशकम् ।
अध्यर्धात्परिशोध्य सप्तममपि स्वाष्टांशषष्ठोनितं
शेषं ब्रूहि परिश्रमोऽस्ति यदि ते भागापवाहे सखे ॥१३१॥

अत्राद्यव्यक्तभागानयनसूत्रम्—

लब्धात्कल्पितभागा रूपानीतापवाहफलभक्ताः । क्रमशः खण्डसमानास्तेऽज्ञातांशप्रमाणानि ॥१३२॥

वियुत पूर्णांकों वाले भागापवाह भिन्नों पर प्रश्न

३, ८, ४ और १० कर्ष को $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{12}$ और $\frac{1}{6}$ कर्ष द्वारा ह्रासित कर शेष कर्ष कुछ मनुष्यों द्वारा तीर्थंकरों के पूजन के लिये भेंट किये गये । इनका योग करने पर योगफल क्या होगा ? ॥१२७॥ हे मित्र ! मुझे शीघ्र बतलाओ कि $\frac{3}{4}$, $\frac{1}{2}$ और $\frac{3}{8}$ द्वारा ह्रासित क्रमवार ९, ७ और ९ राशियों को ६ × ४ द्वारा घटाया जाने पर कितना शेष रहेगा ? ॥ १२८ ॥

वियुत भिन्नों वाले भागापवाह भिन्नों पर प्रश्न

क्रमशः $\frac{1}{6}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{8}$ द्वारा ह्रासित $\frac{2}{5}$, $\frac{2}{9}$, $\frac{2}{3}$, $\frac{2}{8}$ और $\frac{2}{7}$ को क्रमवार जोड़ो और तब योगफल बतलाओ ॥ १२९ ॥ दिये गये $\frac{6}{7}$ पण में, अनुगामी स्व की $\frac{1}{6}$, $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{9}$ और $\frac{1}{10}$ राशियों को ह्रासित करो, पुनः स्व की $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{5}$ राशियों द्वारा $\frac{5}{12}$ को ह्रासित करो, इसी तरह स्व की $\frac{2}{3}$, $\frac{2}{5}$ और $\frac{1}{2}$ राशियों द्वारा $\frac{5}{6}$ को ह्रासित करो और अन्य राशि $\frac{2}{3}$ को स्व की $\frac{5}{8}$ संख्या द्वारा ह्रासित करो । इन सभी परिणामों को जोड़कर फल बतलाओ ॥ १३० ॥ भागापवाह भिन्न के सम्बन्ध में, हे मित्र, यदि तुमने कष्ट किया है तो बतलाओ कि $1\frac{1}{2}$ में से निम्नलिखित राशियाँ घटाने पर क्या शेष रहेगा ? स्व के $\frac{3}{8}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{9}$ भागों द्वारा ह्रासित $\frac{1}{2}$; इसी तरह स्व के $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{7}$ और $\frac{1}{4}$ भागों द्वारा ह्रासित $\frac{1}{3}$; और इसी तरह स्व के $\frac{1}{8}$ और $\frac{1}{6}$ भागों द्वारा ह्रासित $\frac{1}{7}$ ॥ १३१ ॥

दिये गये योग वाले प्रत्येक वियवित भिन्न में आरम्भ में रहनेवाले एक अज्ञात तत्व को निकालने के लिये नियम—

जोकि संख्या में इष्ट विघटक तत्वों के तुल्य हैं ऐसे दिये गये योग के, मन से विपाटित भागों को, जब क्रमवार इन विघटक तत्वों सम्बन्धी वियुत राशि को १ मानने से प्राप्त परिणामी राशियों द्वारा विभाजित किया जाता है तो इष्ट वियुत अज्ञात राशियों के मान प्राप्त होते हैं ॥ १३२ ॥

---

(१३२) इस गाथा की रीति १२२वीं गाथा के समान है ।

अत्रोद्देशकः

कश्चित्स्वकैश्चरणपञ्चमभागषष्ठैः कोऽप्यंशको दलषडंशकपञ्चमांशैः ।
हीनोऽपरो द्विगुणपञ्चमपादषष्ठैः तत्संयुतिर्दलमिहाविदितांशकाः के ॥१३३॥
कोऽप्यंशस्स्वार्धषड्भागपञ्चमाष्टमसप्तमैः । विहीनो जायते[1] षष्ठः स कोऽंशो गणितार्थवित् ॥१३४॥

शेषेष्टस्थानाव्यक्तभागानयनसूत्रम्—

लब्धात्कल्पितभागाः सवर्णितैर्व्यक्तराशिभिर्भक्ताः ।
रूपात्पृथगपनीताः स्वेष्टपदेष्वविदितांशाः स्युः ॥१३५॥

इति भागापवाहजातिः ।

भागानुबन्धभागापवाहजात्योः सर्वा व्यक्तभागानयनसूत्रम्—

त्यक्त्वैकं स्वेष्टांशान् प्रकल्पयेदविदितेषु सर्वेषु ।
एतैस्तं पुनरंशं प्रागुक्तैरानयेत्सूत्रैः ॥१३६॥

---

१ P, K और B में जायते के लिए तद्यतिः ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई भिन्न निज की $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{५}$ और $\frac{१}{६}$ राशियों द्वाराअनुगमन में (in consecution) ह्रासित किया जाता है । दूसरा भिन्न भी इसी तरह निज के $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{६}$, और $\frac{१}{५}$ भागों द्वारा ह्रासित किया जाता है । तीसरा भिन्न भी इसी तरह निज के $\frac{२}{५}$, $\frac{१}{४}$ और $\frac{१}{६}$ भागों द्वारा ह्रासित किया जाता है । इन तीनों ह्रासित राशियों का योग $\frac{१}{२}$ है । बतलाओ कि वे अज्ञात भिन्न कौन-कौन हैं ? ॥१३३॥ कोई भिन्न निज के $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{५}$ तथा $\frac{१}{८}$ और $\frac{१}{७}$ भागों द्वारा अनुगमन में ह्रासित किया जाता है और इस तरह $\frac{१}{६}$ हो जाता है । हे अंकगणित सिद्धान्त वेत्ता ! बतलाओ कि वह अज्ञात क्या है ? ॥१३४॥

अन्य चाहे हुए स्थानों वाला कोई अज्ञात भिन्न निकालने के नियम—

दिये गये योग से प्राप्त मन से चुने हुए विपाटित भाग क्रमशः इष्ट भागापवाह भिन्नों वाली सरलीकृत ज्ञात राशियों द्वारा विभाजित होकर और तब १ में से अलग अलग घटाये जाकर, चाहे हुए स्थानों की भिन्नीय राशियाँ हो जाते हैं ॥१३५॥

इस प्रकार कलासवर्ण षड्जाति में भागापवाह जाति नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

भागानुबन्ध अथवा भागापवाह प्रकार के भिन्नों के सम्बन्ध में अंतिममान ज्ञात होने पर (सर्व स्थान वाले) अज्ञात भिन्नों को निकालने के लिये नियम—

मन से, इच्छानुसार, केवल एक स्थान छोड़कर सब अज्ञात स्थानों सम्बन्धी भिन्न चुनो । तब ऊपर लिखे हुए नियमों द्वारा, उस अज्ञात भिन्न को, इन मन से चुनी हुई भिन्नीय राशियों की सहायता से प्राप्त करो ॥१३६॥

---

(१३५) गाथा १२५ में दिये गये नियम के समान यह भी है ।

(१३६) १२२, १२५, १३२ और १३५ गाथाओं में दिये गये नियमानुसार यह भी है ।

अत्रोद्देशकः

कश्चिद्दशोंऽशकैः कैश्चित्पञ्चभिः स्वैर्युतो दलम् ।
वियुक्तो वा भवेत्पादस्तानंशान् कथय प्रिय ॥१३७॥

भागमातृजातौ सूत्रम्—

भागादिमजातीनां स्वस्वविधिर्भागमातृजातौ स्यात् ।
सा षड्विंशतिभेदा रूपं छेदोऽच्छिदो राशेः ॥१३८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक भिन्न निज के पाँच अन्य भिन्नों से मिलाया जाने पर १/२ हो जाता है; और, एक अन्य भिन्न निज के पाँच अन्य भिन्नों द्वारा ह्रासित होकर १/४ हो जाता है। हे मित्र! उन सब अज्ञात भिन्नों का मान निकालो ॥१३७॥

भागमातृ जाति [दो या अधिक प्रकार के भिन्नों से संयुक्त भिन्न]

ऊपर वर्णित सभी प्रकार के भिन्नों का जिसमें समावेश है ऐसे भागमात्र प्रकार के भिन्न सरल करने के लिये नियम—

भागमात्र भिन्नों में, सरल भिन्नों को आदि लेकर विभिन्न प्रकार के भिन्नों सम्बन्धी नियम प्रयोज्य होते हैं। भागमात्र भिन्न के २६ प्रकार होते हैं। जिस राशि का हर नहीं होता उस राशि का हर एक ले लेते हैं ॥१३८॥

---

(१३७) इस प्रश्न में, प्रथम दशा को हल करने में, आरम्भ के स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों में १/५, १/३, १/६, १/२ और १/४ भिन्नों को चुनो; और तब गाथा १२२ में दिये गये नियम द्वारा प्रथम भिन्न को निकालो जो १/४ प्राप्त होगा। अथवा, १२५वीं गाथा के अनुसार आदि भिन्न के सिवाय छोड़े हुए अन्य स्थानों के भिन्न को निकालने के लिये १/४, १/५, १/३, १/२ और १/४ चुनो; भिन्न १/६ आवेगा। इसी तरह वियुत भिन्नों वाली दूसरी दशा को १३२वीं और १३५वीं गाथा के नियम की सहायता से साधित किया जा सकता है।

(१३८) २६ प्रकार के भिन्न तब प्राप्त होते हैं जब कि भाग, प्रभाग, भागभाग, भागानुबंध और भागापवाह को एक बार में क्रमशः दो, तीन, चार अथवा पाँच लेकर संचय (combinations) संख्या निकालते हैं। जैसे, भाग और प्रभाग मिश्रित होते हैं, भाग और भागभाग मिश्रित रहते हैं, आदि। दो का मिश्रण करने पर १० संचय प्राप्त होते हैं, ३ का मिश्रण एक बार में लेने से १० संचय, चार का मिश्रण एक बार लेने पर ५ संचय और सबको एक बार लेने पर १ संचय, इस तरह कुल २६ प्रकार प्राप्त होते हैं। १३९वीं गाथा के अन्त में ऐसे भागमात्र प्रकार का प्रश्न है जिसमें पाँचों प्रकार सम्मिलित हैं।

अत्रोद्देशकः

त्र्यंशः पादोऽर्धार्धं पञ्चमषष्ठस्त्रिपादहृतमेकम् ।
पञ्चार्धहृतं रूपं सषष्ठमेकं सपञ्चमं रूपम् ॥१३९॥
स्वीयतृतीययुग्दलमतो निजषष्ठयुतो द्विसप्तमो
हीननवांशमेकमपनीतदशांशकरूपमष्टमः ।
स्वेन नवांशकेन रहितश्चरणः स्वकपञ्चमोज्झितो
ब्रूहि समस्य तान् प्रिय कलासमकोत्पलमालिकाविधौ ॥१४०॥

इति भागमातृजातिः ।

इति सारसङ्ग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ कलासवर्णो नाम द्वितीयव्यवहारस्समाप्तः ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिया गया है कि भिन्न $\frac{1}{3}$ निज के, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ का $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{6}$ का $\frac{1}{5}$; $\frac{1}{3/4}$, $\frac{1}{5/2}$; $1\frac{1}{6}$, $1\frac{1}{5}$; $\frac{1}{2}$ भागों से संयुक्त है । पुनः, निज के $\frac{1}{6}$ भाग से संयुक्त $\frac{2}{7}$; $\frac{1}{9}$ द्वारा ह्रासित $\frac{1}{1}$; $\frac{1}{10}$ द्वारा ह्रासित १; निज के $\frac{1}{9}$ भाग द्वारा ह्रासित $\frac{1}{8}$; निज के $\frac{1}{5}$ भाग द्वारा ह्रासित $\frac{1}{4}$; जो नीलकमल पुष्पों की माला (उत्पल-मालिका) के समान गुँथे हुए हैं ऐसे भिन्न सम्बन्धी नियमों के अनुसार, हे मित्र, इन्हें जोड़कर बतलाओ कि योगफल क्या होगा ? ॥१३९ और १४०॥

इस प्रकार, कलासवर्ण षड्जाति में भागमातृ जाति नामक परिच्छेद समाप्त हुआ ।

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणितशास्त्र में कलासवर्ण नामक द्वितीय व्यवहार समाप्त हुआ ।

(१३९ और १४०) इस गाथा में उत्पलमालिका शब्द आया है जिसका अर्थ नीलकमल पुष्पमाला होता है । गाथा की संरचना का छंद भी यही है ।

४. प्रकीर्णक व्यवहारः

प्रणुतानन्तगुणौघं प्रणिपत्य जिनेश्वरं महावीरम् । प्रणतजगत्त्रयवरदं प्रकीर्णकं गणितमभिधास्ये॥१॥
[1]विध्वस्तदुर्नयध्वान्तः सिद्धः स्याद्वादशासनः । विद्यानन्दो जिनो जीयाद्वादीन्द्रो मुनिपुङ्गवः ॥२॥

इतः परं प्रकीर्णकं तृतीयव्यवहारमुदाहरिष्यामः—

भागः शेषो मूलकं शेषमूलं स्यातां जाती द्वे द्विरग्रांशमूले ।
भागाभ्यासोऽतोंऽशवर्गोऽथ मूलमिश्रं तस्माद्भिन्नदृश्यं दशामूः ॥ ३ ॥

१ B और M में यह श्लोक छूटा हुआ है ।

४. प्रकीर्णकव्यवहार

[भिन्नों पर विविध प्रश्न]

स्तवनीय अनन्त गुणों से पूर्ण और नमन करते हुए तीनों लोकों के जीवों को वर देने वाले जिनेश्वर महावीर को नमस्कार कर मैं भिन्नों पर विविध प्रश्नों का प्रतिपादन करूँगा ॥१॥ जिन्होंने दुर्नय के अंधकार का विध्वंस कर स्याद्वाद शासन को सिद्ध किया है, जो विद्यानन्द हैं, वादियों में अद्वितीय हैं और मुनिपुंगव हैं ऐसे जिन सदा जयवंत हों। इसके पश्चात्, मैं तीसरे विषय (भिन्नों पर विविध प्रश्न) का प्रतिपादन करूँगा ॥२॥ भिन्नों पर विविध प्रश्नों के दस प्रकार हैं; भाग, शेष, मूल, शेषमूल, द्विरग्रशेषमूल, अंशमूल, भागाभ्यास, अंशवर्ग, मूलमिश्र और भिन्नदृश्य ॥३॥

(३) 'भाग' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें निकाली जानेवाली कुल राशि के कुछ विशिष्ट भिन्नीय भागों को हटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है। हटाये गये भिन्नीय भाग में से प्रत्येक 'भाग' कहलाता है और ज्ञात शेष का संख्यात्मक मान 'दृश्य' कहलाता है।

'शेष' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें निकाली जानेवाली कुल राशि के ज्ञात भिन्नीय भाग को हटाने के पश्चात् अथवा उत्तरोत्तर शेष के कुछ ज्ञात भिन्नीय भाग हटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'मूल' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें कुल राशि में से कुछ भिन्नीय भाग अथवा उस कुल राशि के वर्गमूल का गुणक घटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'शेषमूल', 'मूल' से केवल इस बात में भिन्न है कि यह वर्गमूल पूरी राशि के स्थान में उसका वर्गमूल होता है जो दिये गये भिन्नीय भागों को घटाने के पश्चात् शेष रूप में बचता है।

'द्विरग्र शेषमूल' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें ज्ञात वस्तुओं की संख्या पहिले हटाई जाती है; तब उत्तरोत्तर शेष के कुछ भिन्नीय भाग और तब अग्र शेष के वर्गमूल का कोई गुणक हटाया जाता है; और अन्त में, शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है। प्रथम हटाई गई ज्ञात संख्या पूर्वाग्र कहलाती है।

'अंशमूल' प्रकार में कुल संख्या के भिन्नीय भाग के वर्गमूल के एक गुणक को हटाया जाता है और तब शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

तत्र भागजातिशेषजात्योः सूत्रम्—

भागोनरूपभक्तं दृश्यं फलमत्र भागजातिविधौ। अंशोनितरूपाहतिहृतमग्रं शेषजातिविधौ ॥ ४ ॥

भागजातावुद्देशकः

दृष्टोऽष्टमं पृथिव्यां स्तम्भस्य त्र्यंशको मया तोये।
पादांशः शैवाले कः स्तम्भः सप्त हस्ताः खे ॥ ५ ॥
षड्भागः पाटलीषु भ्रमरवरततेस्त्रिभागः कदम्बे
पादश्चूतद्रुमेषु प्रदलितकुसुमे चम्पके पञ्चमांशः।

भिन्नों पर विविध प्रश्नों में 'भाग' और 'शेष' भिन्नों सम्बन्धी नियम –

'भाग' प्रकार (भाग प्रकार की प्रक्रियाओं) में, ज्ञात भिन्न से ह्रासित १ के द्वारा दी गई राशि को भाजित कर चाहा हुआ फल प्राप्त किया जाता है। 'शेष' प्रकार की प्रक्रियाओं में, ज्ञात भिन्नों को एक में से क्रमशः घटाने से प्राप्त राशियों के गुणनफल द्वारा दी गई राशि को भाजित कर इष्ट फल प्राप्त किया जाता है ॥४॥

'भाग' जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न

मेरे द्वारा एक स्तम्भ का $\frac{1}{8}$ भाग जमीन में; $\frac{1}{3}$ पानी में $\frac{1}{4}$ काई में और ७ हस्त हवा में देखा गया। बतलाओ स्तम्भ की लम्बाई क्या है ? ॥५॥ श्रेष्ठ भ्रमरों के समूह में से $\frac{1}{6}$ पाटली वृक्ष में, $\frac{1}{3}$ कदम्ब वृक्ष में, $\frac{1}{4}$ आम्र वृक्ष में, $\frac{1}{5}$ विकसित पुष्पों वाले चम्पक वृक्ष में, $\frac{1}{30}$ सूर्य किरणों द्वारा पूर्ण विकसित कमल वृन्द में आनन्द ले रहे थे और एक मत्त भृङ्ग आकाश में भ्रमण कर रहा था।

---

(४) 'भाग' प्रकार के सम्बन्ध में नियम बीजीय रूप से यह है : $क = \frac{अ}{१ - ब}$ जहाँ क अज्ञात समुच्चय राशि है, जिसे निकालना है; अ 'दृश्य' अथवा अग्र है; और, ब दिया गया भाग अथवा दिये

'भागाभ्यास' अथवा 'भाग सम्वर्ग' प्रकार में, कुल संख्या के कुछ भिन्नीय भागों के गुणनफल अथवा गुणनफलों को दो, दो के संचय में लेकर उन्हें कुल संख्या में से घटाने से प्राप्त शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'अंशवर्ग' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें कुल में से भिन्नीय भाग का वर्ग (जहाँ, यह भिन्नीय भाग दी गई संख्या द्वारा बढ़ाया अथवा घटाया जाता है) हटाने के पश्चात् शेष भाग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'मूलमिश्र' प्रकार में वे प्रश्न होते हैं जिनमें कुछ दी गई संख्याओं द्वारा घटाई या बढ़ाई गई कुल संख्या के वर्गमूल में कुल के वर्गमूल को जोड़ने से प्राप्त योग का संख्यात्मक मान दिया गया होता है।

'भिन्न दृश्य' प्रकार में कुल का भिन्नीय भाग, दूसरे भिन्नीय भाग द्वारा गुणित होकर, उसमें से हटा दिया जाता है और शेष भाग कुल के भिन्नीय भाग के रूप में निरूपित किया जाता है। यह विचारणीय है कि इस प्रकार में, अन्य प्रकारों की अपेक्षा शेष को कुल के भिन्नीय भाग के रूप में रखा जाता है।

प्रोत्फुल्लाम्भोजषण्डे रविकरदलिते त्रिंशदंशोऽभिरेमे
तत्रैको मत्तभृङ्गो भ्रमति नभसि का तस्य वृन्दस्य संख्या ॥ ६ ॥
आदायाम्भोरुहाणि स्तुतिशतमुखरः श्रावकस्तीर्थकृद्भ्यः।
पूजां चक्रे चतुर्भ्यो वृषभजिनवरात् त्र्यंशमेषाममुष्य ।
त्र्यंशं तुर्यं षडंशं तदनु सुमतये तत्षड्द्वादशांशौ
शेषेभ्यो द्विद्विपद्मं प्रमुदितमनसादत्त किं तत्प्रमाणम् ॥ ७ ॥
स्ववशीकृतेन्द्रियाणां दूरीकृतविषकषायदोषाणाम् । शीलगुणाभरणानां दयाङ्गनालिङ्गिताङ्गानाम् ॥८॥
साधूनां सद्वृन्दं सन्दृष्टं द्वादशोऽस्य तर्कज्ञः । स्वत्र्यंशवर्जितोऽयं सैद्धान्तश्छान्दसस्तयोः शेषः ॥९॥
षड्घ्नोऽयं धर्मकथी स एव नैमित्तिकः स्वपादोनः ।
वादी तयोर्विशेषः षड्गुणितोऽयं तपस्वी स्यात् ॥१०॥
गिरिशिखरतटे मयोपदृष्टा यतिपतयो नवसंगुणाष्टसङ्ख्याः ।
रविकरपरितापितोज्ज्वलाङ्गाः कथय मुनीन्द्रसमूहमाशु मे त्वम् ॥११॥

बतलाओ कि उस समूह में भ्रमरों की संख्या कितनी थी ? ॥६॥ एक श्रावक ने कमलों को एकत्रित कर, ओर से शत स्तुतियाँ करते हुए, पूजन में इन कमलों के $\frac{1}{3}$ भाग और इस $\frac{1}{3}$ भाग के $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{6}$ भागों को क्रमशः जिनवर ऋषभ से आदि लेकर चार तीर्थंकरों को; इन्हीं $\frac{1}{3}$ भाग कमलों के $\frac{1}{6}$ और $\frac{1}{12}$ भागों को सुमति नाथ को; तब, शेष १९ तीर्थंकरों को प्रमुदित मन से २, २ कमल भेंट किये । बतलाओ कि उन सब कमलों का संख्यात्मक मान क्या है ? ॥७॥ कुछ साधुओं का समूह देखा गया। वे साधु इन्द्रियों को अपने वशमें कर चुके थे, विषरूपी कषाय के दोषों को दूर कर चुके थे। उनके शरीर सच्चरित्रता से और सद्गुणों रूपी आभरणों से शोभायमान थे तथा दया रूपी अंगना से आलिंगित थे । उस समूह का $\frac{1}{12}$ भाग तर्क शास्त्रियों युक्त था । निज के $\frac{1}{3}$ भाग द्वारा ह्रासित यह $\frac{1}{12}$ वाँ भाग सद्वृन्द, संदृष्ट साधुओं युक्त था । इन दोनों का अन्तर [$\frac{1}{12}$ और $\frac{1}{12}$ – $\frac{1}{12}$ का $\frac{1}{3}$] सिद्धान्त ज्ञाताओं की संख्या थी । इस अंतिम अनुपाती राशि में ६ का गुणन करने से प्राप्त राशि धर्म कथिकों की संख्या थी । निज के $\frac{1}{4}$ भाग द्वारा ह्रासित वह राशि नैमित्तिक ज्ञानियों की संख्या थी । इन अंत में कथित दो राशियों के अन्तर का राशिफल वादियों की संख्या थी । ६ द्वारा गुणित यह राशि कठोर तपस्वियों की संख्या थी । और, ९ × ८ यति मेरे द्वारा गिरि के शिखर के पास देखे गये, जिनका शरीर सूर्य के किरणों द्वारा परितप्त होकर उज्ज्वल दिखाई देता था । मुझे शीघ्र, इस मुनीन्द्र समुह का मान बतलाओ ॥८-११॥ पके हुए फलों (बालियों) के भार से झुके हुए सुन्दर शालि क्षेत्र में कुछ तोते (शुक) उतरे । किसी मनुष्य द्वारा भयग्रस्त होकर वे सब सहसा ऊपर उड़े । उनमें से आधे पूर्व दिशा की ओर, $\frac{1}{6}$ दक्षिण पूर्व (आग्नेय) दिशा में उड़े । जो पूर्व और आग्नेय दिशा में उड़े उनके अन्तर को निज की आधी राशि द्वारा ह्रासितकर और पुनः इस परिणामी राशि की

गये भिन्नीय भागों का योग है । यह स्पष्ट है, कि यह समीकरण क – बक = अ द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । शेष प्रकार का नियम, बीजीय रूप से निदर्शित करने पर,

$$क = \frac{अ}{(१ - ब_{१})(१ - ब_{२})(१ - ब_{३}) \times \ldots\ldots}$$ होता है, जहाँ $ब_{१}$, $ब_{२}$, $ब_{३}$ आदि उत्तरोत्तर शेषों के

फलभारनम्रकम्रे शालिक्षेत्रे शुकाः समुपविष्टाः । सहसोत्थिता मनुष्यैः सर्वे संत्रासिताः सन्तः ॥१२॥
तेषामर्धं प्राचीमाग्नेयीं प्रति जगाम षड्भागः ।
पूर्वाग्नेयीशेषः स्वदलोनः स्वार्धवर्जितो यामीम् ॥१३॥
याम्याग्नेयीशेषः स नैर्ऋतिं स्वद्विपञ्चभागोनः । यामोनैर्ऋत्यंशकपरिशेषो वारुणीमाशाम् ॥१४॥
नैर्ऋत्यपरविशेषो वायव्यां सस्वकत्रिसप्तांशः । वायव्यपरविशेषो युतस्वसप्ताष्टमः सौमीम् ॥१५॥
वायव्युत्तरयोर्युतिरैशानीं स्वत्रिभागयुगहीना । दशगुणिताष्टाविंशतिरवशिष्टा व्योम्नि कति कीराः॥१६॥
काचिद्वसन्तमासे प्रसूनफलगुच्छभारनम्रोद्याने ।
कुसुमासवरसरञ्जितशुककोकिलमधुपमधुरनिस्वननिचिते ॥१७॥
हिमकरधवले पृथुले सौधतले सान्द्ररुन्द्रमृदुतल्पे ।
फणिफणनितम्बबिम्बा कनदमलाभरणशोभाङ्गी ॥१८॥
पाठीनजठरनयना कठिनस्तनहारनम्रतनुमध्या ।
सह निजपतिना युवती रात्रौ प्रीत्यानुरममाणा ॥१९॥
प्रणयकलहे समुत्थे मुक्तामयकण्ठिका तदबलायाः ।
छिन्नावनौ निपतिता तत्त्र्यंशश्चेटिकां प्रापत् ॥२०॥
षड्भागः शय्यायामनन्तरान्तरार्धमितिभागाः । षट्संख्यानास्तस्याः सर्वे सर्वत्र संपतिताः ॥२१॥
एकाग्रषष्टिशतयुतसहस्रमुक्ताफलानि दृष्टानि । तन्मौक्तिकप्रमाणं प्रकीर्णकं वेत्सि चेत् कथय ॥२२॥

अर्द्ध राशि द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि के तोते दक्षिण दिशा की ओर उड़े । जो दक्षिण की ओर उड़े तथा आग्नेय दिशा में उड़े उनके अन्तर को, निज के $\frac{२}{५}$ भाग द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि के तोते दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य) दिशा में उड़े । जो नैऋत्य में उड़े तथा पश्चिम में उड़े, उनके अन्तर में उस निज के $\frac{३}{७}$ भाग को जोड़ने से प्राप्त संख्या के तोते उत्तर-पश्चिम (वायव्य) में उड़े । जो वायव्य और पश्चिम में उड़े उनके अन्तर में निज के $\frac{७}{८}$ भाग को जोड़ने से प्राप्त संख्या के तोते उत्तर दिशा में उड़े । जो वायव्य और उत्तर में उड़े उनका योगफल निज के $\frac{२}{३}$ भाग द्वारा ह्रासित होने से प्राप्त राशि के तोते उत्तर पूर्व (ईशान) दिशा में उड़े । तथा, २८० तोते ऊपर आकाश में शेष रहे । बतलाओ कुल कितने तोते थे ? ॥१२–१६॥

वसन्त ऋतु के मास में एक रात्रि को, कोई......युवती अपने पति के साथ, फल और पुष्पों के गुच्छों से नम्रीभूत हुए वृक्षोंवाले, और फूलों से प्राप्त रस द्वारा मस्त शुक, कोयल तथा भ्रमरवृन्द के मधुर स्वरों से गुंजित बगीचे में स्थित .....महल के फर्श पर सुख से तिष्ठी थी । तभी पति और पत्नी में प्रणयकलह होने के कारण, उस अबला के गले की मुक्तामयी कंठिका टूट गई और फर्श पर गिर पड़ी । उस मुक्ता के हार के $\frac{१}{३}$ मुक्ता दासी के पास पहुँचे; $\frac{१}{६}$ शय्या पर गिरे, तब शेष के $\frac{१}{२}$, और पुनः अग्रिम शेष के $\frac{१}{२}$ और फिर अग्रिम शेष के $\frac{१}{२}$; इसी तरह कुल ६ बार में प्राप्त मुक्ता राशि सर्वत्र गिरी । शेष बिना बिखरे हुए ११६१ मोती पाये गये । यदि तुम प्रकीर्णक भिन्नों का साधन करना जानते हो तो उस हार के मोतियों का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥१७-२२॥ स्फुरित इन्द्रनीलमणि समान नीले रंग

भिन्नीय भाग हैं । यह सूत्र निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त किया जा सकता है ।

$$क - ब_1 क - ब_2 (क - ब_1 क) - ब_3 \{क - ब_1 क - ब_2 (क - ब_1 क)\} - (इत्यादि)...... = अ.$$

(१७) कुछ शब्दों का अनुवाद छोड़ दिया गया है, जिन्हें पाठक मूल गाथा में देख सकते हैं ।

स्फुरदिन्द्रनीलवर्णं षट्पदवृन्दं प्रफुल्लितोद्याने । दृष्टं तस्याष्टांशोऽशोके कुटजे च षोडशको लीनः ॥२३॥
कुटजाशोकविशेषः षड्गुणितो विपुलपाटलीषण्डे ।
पाटल्यशोकशेषः स्वनवांशोनो विशालसालवने ॥२४॥
पाटल्यशोकशेषो युतः स्वसप्तांशकेन मधुकवने । पञ्चांशः संदृष्टो बकुलेषूत्फुल्लमुकुलेषु ॥२५॥
तिलकेषु कुरबकेषु च सरलेष्वाम्रेषु पद्मषण्डेषु । वनकरिकपोलमूलेष्वपि सन्तस्थे स पञ्चांशः ॥२६॥
किञ्जल्कपुञ्जपिञ्जरकञ्जवने मधुकराश्च विंशत् । दृष्टा भ्रमरकुलस्य प्रमाणमाचक्ष्व गणक त्वम् ॥२७॥
गोयूथस्य क्षितिभृति दलं तद्दलं शैलमूले षट् तस्यांशा विपुलविपिने पूर्वपूर्वार्धमानाः ।
संतिष्ठन्ते नगरनिकटे धेनवो दृश्यमाना द्वात्रिंशत् त्वं वद मम सखे गोकुलस्य प्रमाणम् ॥२८॥

इति भागजात्युद्देशकः ।

शेषजात्युद्देशकः

षड्भागमाम्रराशेः राजा शेषस्य पञ्चमं राज्ञी । तुर्यत्र्यंशदलानि त्रयोऽग्रहीषुः कुमारवराः ॥ २९ ॥
शेषाणि त्रीणि चूतानि कनिष्ठो दारकोऽग्रहीत् । तस्य प्रमाणमाचक्ष्व प्रकीर्णकविशारद ॥ ३० ॥
चरति गिरौ सप्तांशः करिणां षष्ठादिमार्धपाश्चात्याः ।
प्रतिशेषांशा विपिने षड्दृष्टाः सरसि कति ते स्युः ॥ ३१ ॥

१ M में 'स्फुरितेन्द्र०', पाठ है।

वाले भ्रमरों के समूह (षट्पद वृन्द) को प्रफुल्लित उद्यान में देखा गया। उस समूह का $\frac{1}{8}$ भाग अशोक वृक्षों में तथा $\frac{1}{16}$ भाग कुटज वृक्षों में छिप गया। जो क्रमशः कुटज और अशोक वृक्षों में छिप गये उन समूहों के अंतर को ६ द्वारा गुणित करने से प्राप्त भ्रमरों की राशि विपुल पाटली वृक्षों के समूह में छिप गई। पाटली और अशोक वृक्षों के भ्रमर समूहों के अन्तर को निज के $\frac{1}{9}$ भाग द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त भ्रमर राशि विशाल साल वृक्षों के वन में छिप गई। इसी अंतर को निज के $\frac{1}{7}$ भाग में मिलाने से प्राप्त भ्रमर राशि मधुक वृक्षों के वन में छिप गई। कुल समूह की $\frac{1}{5}$ भ्रमरराशि अच्छी तरह खिली हुई कलियों वाले बकुल वृक्षों में छिपी देखी गई और वही $\frac{1}{5}$ भ्रमर राशि तिलक, कुरबक, सरल और आम के वृक्षों में, कमलों के समूह में और वनहस्तियों वाले मंदिरों के मूल में छिप गई। और, शेष २२ भ्रमर बड़ीराशि के विभिन्न रंगों से व्याप्त कमल पुंज में देखे गये। हे गणितज्ञ! भ्रमर समूह का संख्यात्मक मान दो ॥२३-२७॥ गोकुल (पशुओं के झुण्ड) में से $\frac{1}{2}$ भाग पर्वत पर है; उसका $\frac{1}{2}$ भाग पर्वत के मूल में है; ऐसे ही ६ और भाग (जिनमें से प्रत्येक उत्तरोत्तर पूर्ववर्ती भाग का आधा है), किसी विपुल वन में है। शेष ३२ गायें नगर के निकट देखी जाती हैं। हे मेरे मित्र! उस पशु झुण्ड का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥२८॥

इस प्रकार, 'भाग' जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न समाप्त हुए।

'शेष' जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न

आम्र फलों के समूह में से राजा ने $\frac{1}{6}$ भाग लिया; रानी ने शेष का $\frac{1}{5}$ भाग लिया और प्रमुख राजकुमारों ने उसी शेष के क्रमशः $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$ और $\frac{1}{2}$ भाग लिये। सबसे छोटे ने शेष ३ आम लिये। हे प्रकीर्णक विशारद! आमसमूह का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥२९-३०॥ हाथियों के झुण्ड का $\frac{1}{7}$ भाग पर्वत पर विचरण कर रहा है। क्रम से उत्तरोत्तर शेष के $\frac{1}{6}$ भाग को आदि लेकर $\frac{1}{2}$ तक झुण्ड भाग वन में डोल रहे हैं। शेष ६ सरोवर के निकट हैं। बतलाओ कि वे कितने हाथी हैं? ॥३१॥

कोष्ठस्य लेभे नवमांशमेकः परेऽष्टभागादिदलान्तिमांशान् ।
शेषस्य शेषस्य पुनः पुराणा दृष्टा मया द्वादश तत्प्रमा का ॥ ३२ ॥

इति शेषजात्युद्देशकः ।

अथ मूलजातौ सूत्रम्—

मूलार्धाग्रे छिन्द्यादंशोनैकेन युक्तमूलकृतेः । दृश्यस्य पदं सपदं वर्गितमिह मूलजातौ स्वम् ॥३३॥

अत्रोद्देशकः

दृष्टोऽटव्यामुष्ट्रयूथस्य पादो मूले च द्वे शैलसानौ निविष्टे ।
उष्ट्रास्त्रिघ्नाः पञ्च नद्यास्तु तीरे किं तस्य स्यादुष्ट्रकस्य प्रमाणम् ॥ ३४ ॥
श्रुत्वा वर्षाभ्रमालापटहपटुरवं शैलशृङ्गोरुरङ्गे
नाट्यं चक्रे प्रमोदप्रमुदितशिखिनां षोडशांशोऽष्टमश्च ।
त्र्यंशः शेषस्य षष्ठो वरबकुलवने पञ्च मूलानि तस्थुः
पुन्नागे पञ्च दृष्टा भण गणक गणं बर्हिणां संगुणय्य ॥ ३५ ॥

१ B में 'हस्ति' पाठ है ।　　　२ B में 'नागाः' पाठ है ।
३ B में 'किं स्यात्तेषां कुञ्जराणां प्रमाणम्' पाठ है ।

एक आदमी को खजाने का $\frac{1}{9}$ भाग मिला । दूसरों को उत्तरोत्तर शेषों के $\frac{1}{8}$ से आरम्भ कर, क्रम से $\frac{1}{2}$ तक भाग मिले । अंत में शेष १२ पुराण मुझे दिखे । बतलाओ कि कोष्ठ में कितने पुराण हैं ? ॥३२॥

इस तरह शेष जाति के उदाहरणार्थ प्रश्न समाप्त हुए ।

'मूल' जाति सम्बन्धी नियम—

अज्ञात राशि के वर्गमूल का आधा गुणांक (वार द्योतक coefficient) और ज्ञात शेष में से प्रत्येक को अज्ञात राशि के भिन्नीय गुणांक से हासिल एक द्वारा भाजित करना चाहिये । इस तरह वर्ते हुए ज्ञात शेष को अज्ञात राशि के वर्गमूल के गुणांक के वर्ग में जोड़ते हैं । प्राप्त राशि के वर्गमूल में इसी प्रकार वर्ते हुए अज्ञात राशि के वर्गमूल के गुणांक को जोड़ते हैं । तत्पश्चात् परिणामी राशि का पूर्ण वर्ग करने पर, इस मूल प्रकार में इष्ट अज्ञात राशि प्राप्त होती है ॥३३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऊँटों के झुण्ड का $\frac{1}{4}$ भाग वन में देखा गया । उस झुण्ड के वर्गमूल का दुगुना भाग पर्वत के उतारों पर देखा गया । ५ ऊँटों के तिगुने, नदी के तीर पर देखे गये । ऊँटों की कुल संख्या क्या है ? ॥३४॥ वर्षा ऋतु में, घनावलि द्वारा उत्पन्न हुई स्पष्ट ध्वनि सुनकर, मयूरों के समूह के $\frac{1}{16}$ और $\frac{1}{8}$ भाग तथा शेष का $\frac{1}{3}$ भाग और तत्पश्चात् शेष का $\frac{1}{6}$ भाग, आनन्दातिरेक होकर पर्वत शिखररूपी विशाल नाट्यशाला पर नाचते रहे । उस समूह के वर्गमूल के पाँचगुने बकुल वृक्षों के उत्कृष्ट वन में ठहरे रहे । और, शेष ५ पुन्नाग वृक्ष पर देखे गये । हे गणितज्ञ ! गणना करके कुल मयूरों की संख्या बतलाओ ॥३५॥ किसी अज्ञात संख्या वाले सारस पक्षियों के झुण्ड का $\frac{1}{8}$ भाग कमल षण्ड (समूह)

(३३) बीजीय रूप से, यह नियम निम्नलिखित रूप में आता है—यहाँ अज्ञात राशि 'क' है ।

$$क = \left\{ \frac{स/२}{१ - ब} + \sqrt{\frac{अ}{१ - ब} + \left(\frac{स/२}{१ - ब}\right)^२} \right\}^२;$$ यह, समीकरण $क - (बक + स\sqrt{क} + अ) = ०$ के द्वारा सरलता से प्राप्त किया जा सकता है ।

चरति कमलषण्डे सारसानां चतुर्थो नवमचरणभागौ सप्त मूलानि चाद्रौ ।
विकचबकुलमध्ये सप्तनिघ्नाष्टमानाः कति कथय सखे त्वं पक्षिणो दक्ष साक्षात् ॥ ३६ ॥
न भागः कपिवृन्दस्य त्रीणि मूलानि पर्वते । चत्वारिंशद्वने दृष्टा वानरास्तद्गणः कियान् ॥ ३७ ॥
कलकण्ठानामर्धं सहकारतरोः प्रफुल्लशाखायाम् ।
तिलकेऽष्टादश तस्थुर्नो मूलं कथय पिकनिकरम् ॥ ३८ ॥
हंसकुलस्य दलं बकुलेऽस्थात् पञ्च पदानि तमालकुजाग्रे ।
अत्र न किंचिदपि प्रतिदृष्टं तत्प्रमितिं कथय प्रिय शीघ्रम् ॥ ३९ ॥

इतिमूलजातिः ।

अथ शेषमूलजातौ सूत्रम्—

पददलवर्गयुतान्मूलं सप्राक्पदार्धमस्य कृतिः ।
दृश्ये मूलं प्राप्ते फलमिह भागं तु भागजातिविधिः ॥ ४० ॥

पर चल रहा है; उसके $\frac{१}{४}$ और $\frac{१}{९}$ भाग तथा उसके वर्गमूल का ७ गुना भाग पर्वत पर विचर रहे हैं। कुछ पुष्पयुक्त बकुल वृक्षों के मध्य में शेष ५६ हैं। हे निपुण मित्र ! मुझे ठीक बतलाओ कि कुल कितने पक्षी हैं ॥३६॥ बन्दरों के समूह का कोई भी भिन्नीय भाग कहीं नहीं है। उसके वर्गमूल का तिगुना भाग पर्वत पर है, और शेष ४० वन में देखे गये हैं। उन बन्दरों की संख्या क्या है ? ॥३७॥ कोयलों की आधी संख्या आम्र की प्रफुल्लित शाखा पर है। १८ कोयलें एक तिलक वृक्ष पर देखी गई हैं। उनकी संख्या के वर्गमूल का कोई भी गुणक कहीं नहीं देखा गया है। उन कोयलों की संख्या क्या है ? ॥३८॥ हंसों की आधी संख्या बकुल वृक्षों के मध्य में देखी गई; उनके समूह के वर्गमूल की पाँच गुनी संख्या तमाल वृक्षों के शिखर पर देखी गई। शेष कहीं नहीं दिखाई दी। हे मित्र ! उस समूह का संख्यात्मक मान शीघ्र बतलाओ ॥३९॥

इस प्रकार 'मूल' जाति प्रकरण समाप्त हुआ।

शेषमूल जाति सम्बन्धी नियम—

अज्ञात समुच्चय राशि के शेष भाग के वर्गमूल के गुणांक की आधी राशि के वर्ग को लो। इसमें शेष ज्ञात संख्या मिलाओ। योगफल का वर्गमूल निकालो। अज्ञात समुच्चय राशि के शेष भाग को वर्गमूल के गुणांक की आधी राशि में इस वर्गमूल को मिलाओ। यदि अज्ञात समुच्चय राशि को मूल (original) समुच्चय राशि ही ले लिया जाता है तो इस अंतिम योग का वर्ग इष्ट फल होगा। परन्तु, यदि उस अज्ञात समुच्चय राशि का शेष भाग केवल एक भाग की तरह ही वर्ता जाता है, तो "भाग" प्रकार सम्बन्धी नियम उपयोग में लाना पड़ेगा ॥४०॥

यह समीकरण इस प्रकार के प्रश्नों का बीजीय निरूपण है। यहाँ 'स' अज्ञात राशि क के वर्गमूल का गुणांक है।

(४०) बीजीय रूप से, $\text{क} - \text{बक} = \left\{ \frac{\text{स}}{२} + \sqrt{\left(\frac{\text{स}}{२}\right)^{२} + \text{अ}} \right\}^{२}$ है। इस मान से इस अध्याय में दिये गये नियम ४ के अनुसार क का मान निकाला जा सकता है। समीकरण क − बक +

अत्रोद्देशकः

गजयूथस्य त्र्यंशः शेषपदं च त्रिसंगुणं सानौ[1]।
सरसि त्रिहस्तिनीभिर्नागो दृष्टः कतीह गजाः ॥ ४१ ॥
निर्जन्तुकप्रदेशे नानाद्रुमषण्डमण्डितोद्याने । आसीनानां यमिनां मूलं तरुमूलयोगयुतम् ॥ ४२ ॥
शेषस्य दशमभागो मूलं नवमोऽथ मूलमष्टांशः । मूलं सप्तममूलं षष्ठो मूलं च पञ्चमो मूलं ॥ ४३ ॥
एते भागाः काव्यप्रवचनधर्मप्रमाणनयविद्याः ।
वादच्छन्दोज्यौतिषमन्त्रालङ्कारशब्दज्ञाः ॥ ४४ ॥
द्वादशतपःप्रभावा द्वादशभेदाङ्गशास्त्रकुशलधियः ।
द्वादश मुनयो दृष्टाः कियती मुनिचन्द्र यतिसमितिः ॥ ४५ ॥
मूलानि पञ्च चरणेन युतानि सानौ शेषस्य पञ्चनवमः करिणां नगाग्रे ।
मूलानि पञ्च सरसीजवने रमन्ते नद्यास्तटे षडिह ते द्विरदाः कियन्तः ॥ ४६ ॥

इति शेषमूलजातिः ।

1 B में शेषस्य पदं त्रिसंगुणं पाठ है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

हाथियों के यूथ (झुंड) का $\frac{1}{3}$ भाग तथा शेष भाग की वर्गमूल राशि के हाथी, पर्वतीय उतार पर देखे गये । शेष एक हाथी ३ हस्तिनियों के साथ एक सरोवर के किनारे देखा गया । बतलाओ कितने हाथी थे ? ॥ ४१ ॥ कई प्रकार के वृक्षों के समूह द्वारा मंडित उद्यान के निर्जन्तुक प्रदेश में कई साधु आसीन थे । उनमें से कुछ के वर्गमूल की संख्या के साधु तरुमूल में बैठे हुए योगाभ्यास कर रहे थे । शेष के $\frac{1}{10}$, (इसको घटाकर) शेष का वर्गमूल, (इसको घटाकर) शेष के $\frac{1}{9}$, (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{8}$; (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{7}$; (इसको घटाकर) शेष का वर्गमूल; (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{6}$; (इसको घटाकर) शेष का $\frac{1}{5}$; इसको घटाकर शेष के वर्गमूल द्वारा निरूपित संख्याओं वाले वे थे जो (क्रमशः) काव्य प्रवचन, धर्म, प्रमाण नयविद्या, वाद, छन्द, ज्योतिष, मंत्र, अलंकार और शब्द शास्त्र (व्याकरण) जानने वाले थे, तथा वे भी थे जो बारह प्रकार के तप के प्रभाव से प्राप्त होनेवाली ऋद्धियों के धारी थे, तथा बारह प्रकार के अंग शास्त्र को कुशलता पूर्वक जानने वाले थे । इनके अतिरिक्त अंत में १२ मुनि देखे गये । हे मुनिचंद्र ! बतलाओ कि यति समिति का संख्यात्मक मान क्या था ? ॥ ४२–४५ ॥ हाथियों के समूह के वर्गमूल का $5\frac{1}{4}$ गुना भाग पर्वतीय उतार पर क्रीड़ा कर रहा है; शेष का $\frac{5}{9}$ भाग पर्वत के शिखर पर क्रीड़ा कर रहा है । (इसको घटाकर) शेष का वर्गमूल प्रमाण हस्तीगण कमल के वन में रमण कर रहा है । और, शेष ६ हस्ती नदी के तीर पर हैं । यहाँ सब हस्ती कितने हैं ? ॥ ४६ ॥

इस प्रकार, 'शेषमूल' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

"द्विरग्र शेष मूल" जाति [शेषों की संरचना करने वाली दो ज्ञात राशियों वाले 'शेषमूल' प्रकार] सम्बन्धी नियम—

(समूह वाचक अज्ञात राशि के) वर्गमूल का गुणांक, और (शेष रहने वाली) अंतिम ज्ञात

(ब$\sqrt{\text{कृ} - \text{बक}}$ + अ) = ० द्वारा उपर्युक्त क – बक का मान सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है । यहाँ भी 'क' अज्ञात राशि है ।

अथ द्विरग्रशेषमूलजातौ सूत्रम्—

मूलं दृश्यं च भजेदंशकपरिहाणरूपघातेन । पर्वाग्रमग्रराशौ क्षिपेदतः शेषमूलविधिः ॥ ४७ ॥

अत्रोद्देशकः

मधुकर एको दृष्टः खे पद्मे शेषपञ्चमचतुर्थौ । शेषत्र्यंशो मूलं द्वावाम्रे[1] ते कियन्तः स्युः ॥ ४८ ॥

सिंहाश्चत्वारोऽद्रौ प्रतिशेष षडंशकादिमार्धान्ताः ।

मूले चत्वारोऽपि च विपिने दृष्टाः कियन्तस्ते ॥ ४९ ॥

१ B में 'द्वौ चाम्रे' पाठ है।

राशि, इन दोनों को, प्रत्येक दशा में भिन्नीय समानुपाती राशियों को लेकर एक में से ह्रासित करने से प्राप्त शेषों के गुणनफल द्वारा विभाजित करना चाहिये । तब प्रथम ज्ञात राशि को उस अन्य ज्ञात राशि में (जिसे ऊपर साधित किया है) जोड़ देना चाहिये । तत्पश्चात् प्रकीर्णक भिन्नों के 'शेषमूल' प्रकार सम्बन्धी क्रिया की जाती है ॥ ४७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मधुमक्खियों के झुंड में से एक मधुमक्खी आकाश में दिखाई दी । शेष का $\frac{१}{५}$ भाग; पुनः, शेष का $\frac{१}{४}$ भाग; पुनः, शेष का $\frac{१}{३}$ भाग तथा झुंड के संख्यात्मक मान का वर्गमूल प्रमाण कमलों में दिखाई दिया । अंत में शेष दो मधुमक्खियाँ एक आम्रवृक्ष पर दिखाई दीं । बतलाओ कि उस झुंड में कितनी मधुमक्खियाँ हैं ? ॥४८॥ सिंह दल में से चार पर्वत पर देखे गये । दल के क्रमिक शेषों के $\frac{१}{६}$ वें भाग से आरम्भ होकर $\frac{१}{२}$ वें भाग तक के भिन्नीय भाग; दल के संख्यात्मक मान के वर्गमूल का द्विगुणित प्रमाण तथा अन्त में शेष रहने वाले ४ सिंह वनमें दिखाई दिये । बतलाओ कि उस दल में कितने सिंह है ? ॥४९॥ मृग दल में से तरुण हरिणियों के दो युग्म वन में देखे गये । झुण्ड के क्रमिक शेषों

(४७) बीजीय रूप से, इस नियम से $\frac{स}{(१-ब_१)(१-ब_२)\times\ldots इत्यादि}$ और $\frac{अ_२}{(१-ब_१)(१-ब_२)\times\cdots इत्यादि}+अ_१$, पद संहतियाँ प्राप्त होती हैं जिनका शेषमूल के सूत्र में स और अ के स्थान पर प्रतिस्थापन करना पड़ता है । 'शेषमूल' का सूत्र यह है

$$क-बक=\left\{\frac{स}{२}+\sqrt{\left(\frac{स}{२}\right)^२+अ}\right\}^२$$

। इस सूत्र का प्रयोग करने में ब का मान शून्य हो जाता है; क्योंकि द्विरग्र शेषमूल में गर्भित रहने वाला मूल अथवा वर्गमूल कुल राशि का होता है न कि राशि के भिन्नीय भाग का । जैसा कि इष्ट है, आदेशन करने से हमें

$$क=\left\{\frac{स}{२(१-ब_१)(१-ब_२)\times\ldots इत्यादि}+\sqrt{\left(\frac{स}{२(१-ब_१)(१-ब_२)\times\ldots इत्यादि}\right)^२+\frac{अ_२}{२(१-ब_१)(१-ब_२)\times\cdots इत्यादि}+अ_१}\right\}^२$$

प्राप्त होता है । यह फल समीकरण

$$क-अ_१-ब_१(क-अ_१)-ब_२\{क-अ_१-ब_१(क-अ_१)\}\ldots\ldots-स\sqrt{क}-अ_२=० $$

से सरलतापूर्वक प्राप्त हो सकता है; जहाँ कि $ब_१$, $ब_२$ इत्यादि उत्तरोत्तर शेषों के विभिन्न भिन्नीय भाग हैं और $अ_१$ तथा $अ_२$ क्रमशः प्रथम ज्ञात राशि और अंतिम ज्ञात राशि हैं। पुनः, यहाँ 'क' अज्ञात राशि है।

तरुणहरिणीयुग्मं दृष्टं द्विसंगुणितं वने कुधरनिकटे शेषाः पञ्चांशकादिदलान्तिमाः ।
विपुलकलमक्षेत्रे तासां पदं त्रिभिराहतं कमलसरसीतीरे तस्थुर्दशैव गणः कियान् ॥ ५० ॥

इति द्विरग्रशेषमूलजातिः ।

अथांशमूलजातौ सूत्रम्—

भागगुणे मूलाग्रे न्यस्य पदप्राप्तदृश्यकरणेन । यल्लब्धं भागहृतं धनं भवेदंशमूलविधौ ॥ ५१ ॥

अन्यदपि सूत्रम्—

दृश्यादंशकभक्ताच्चतुर्गुणान्मूलकृतियुतान्मूलम् । सपदं दलितं वर्गितमंशाभ्यस्तं भवेत् सारम् ॥५२॥

के ½ वें भाग से लेकर ⅙ वें भाग तक के भिन्नीय भाग पर्वत के पास देखे गये। उस झुण्ड के संख्यात्मक मान के वर्गमूल की तिगुनी राशि विस्तृत कलम (चांवल) क्षेत्र में देखी गई। अंत में, कमल सरोवर के किनारे शेष केवल १० देखे गये। झुण्ड का प्रमाण क्या है? ॥५०॥

इस प्रकार 'द्विरग्र शेषमूल' जाति प्रकरण समाप्त हुआ।

"अंशमूल" जाति सम्बन्धी नियम—

अज्ञात समूह वाचक राशि के दिये गये भिन्नीय भाग के वर्गमूल के गुणांक को तथा अंत में शेष रहनेवाली ज्ञात राशिको लिखो। इन दोनों राशियों को दिये गये समानुपाती भिन्न द्वारा गुणित करो। जो 'शेषमूल' प्रकार में अज्ञात राशिको निकालने की क्रिया द्वारा प्राप्त होता है, उस फल को जब दिये गये समानुपाती भिन्न द्वारा भाजित करते हैं तब अंशमूल प्रकार की इष्ट राशि प्राप्त होती है। ॥५१॥

'अंशमूल' प्रकार का अन्य नियम—

अंतिम शेष के रूप में दी गई ज्ञात राशि दिये गये समानुपाती भिन्न द्वारा भाजित की जाती है और ४ द्वारा गुणित की जाती है। प्राप्त फल में अज्ञात समूह वाचक राशि के दत्त भिन्न के वर्गमूल के गुणांक का वर्ग जोड़ा जाता है। इस योगफल के वर्गमूल को ऊपर कथित अज्ञात राशि के भिन्नीय भाग के वर्गमूल के गुणांक में जोड़ते हैं और तब आधा कर वर्गित करते हैं। प्राप्त फल को दत्त समानुपाती भिन्न द्वारा गुणित करने पर इष्ट फल प्राप्त होता है। ॥५२॥

---

(५०) इस गाथा में आया हुआ शब्द 'हरिणी" का अर्थ न केवल मादा हरिण होता है वरन् उस छन्द का भी नाम होता है जिसमें यह गाथा संरचित हुई है।

(५१) बीजीय रूप से कथन करने पर, यह नियम 'स ब' और 'अ ब' के मान निकालने में सहायक होता है, जिनका प्रतिस्थापन, शेषमूल प्रकार में किये गये अनुसार सूत्र $क - बक = \left\{ \frac{स}{२} + \sqrt{\left(\frac{स}{२}\right)^२ + अ} \right\}^२$ में क्रमशः स और अ के स्थान पर करना पड़ता है। ४७ वीं गाथा के टिप्पण के समान, क – बक यहाँ भी क हो जाता है। इष्ट प्रतिस्थापन के पश्चात् और फल को ब द्वारा विभाजित करने पर हमें $क = \left\{ \frac{सब}{२} + \sqrt{\left(\frac{सब}{२}\right)^२ + अब} \right\}^२ \div ब$ प्राप्त होता है।

क का यह मान समीकरण $क - स\sqrt{बक} - अ = ०$ से भी सरलता से प्राप्त हो सकता है।

(५२) बीजीय रूप से कथन करने पर, $क = \left\{ \frac{स + \sqrt{स^२ + \frac{४अ}{ब}}}{२} \right\}^२ \times ब$ होता है। यह पिछली गाथा के टिप्पण में दिये गये समीकार से भी स्पष्ट है।

अत्रोद्देशकः

पद्मनालत्रिभागस्य जले मूलाष्टकं स्थितम् । षोडशाङ्गुलमाकाशे जलनालोदयं वद ॥ ५३ ॥
द्वित्रिभागस्य यन्मूलं नवघ्नं हस्तिनां पुनः । शेषत्रिपञ्चमांशस्य मूलं षड्भिः समाहतम् ॥ ५४ ॥
विगलद्दानधारार्द्रगण्डमण्डलदन्तिनः । चतुर्विंशतिरादृष्टा मयाटव्यां कति द्विपाः ॥ ५५ ॥
क्रोडौघार्धचतुःपदानि विपिनं शार्दूलविक्रीडितं प्रापुः शेषदशांशमूलयुगलं शैलं चतुस्ताडितम् ।
शेषार्धस्य पदं त्रिवर्गगुणितं वप्रं वराहा वने दृष्टाः सप्तगुणाष्टकप्रमितयस्तेषां प्रमाणं वद ॥ ५६ ॥

इत्यंशमूलजातिः ।

अथ भागसंवर्गजातौ सूत्रम्—

स्वांशाप्तहरादूनाच्चतुर्गुणाग्रेण तद्धरेण हतात् । मूलं योज्यं त्याज्यं तच्छेदे तद्दलं वित्तम् ॥ ५७ ॥

१ B में 'धारार्द्र' पाठ है ।

२ इस श्लोक के पश्चात् सभी हस्तलिपियों में निम्नलिखित श्लोक है जो केवल ५७ वें श्लोक का व्याख्यानुवाद है—

अन्यच्च—

चतुर्हतदृष्टेनोनाद्भागाहृत्यंशहृतहारात् । तच्छेदेन हतान्मूलं योज्यं त्याज्यं तच्छेदे तदर्धवित्तम् ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कमल की नाल के त्रिभाग के वर्गमूल का आठगुना भाग पानी के भीतर है और १६ अंगुल पानी के ऊपर वायु में है । बतलाओ कि तली से पानी की ऊँचाई कितनी है तथा कमल नाल की लम्बाई क्या है ? ॥५३॥ हाथियों के झुण्ड में से, उनकी संख्या के २/३ भाग के वर्गमूल का ९ गुना प्रमाण, और शेषभाग के $\frac{3}{5}$ भाग के वर्गमूल का ६ गुना प्रमाण; और, अंत में शेष २४ हाथी वन में ऐसे देखे गये जिनके चौड़े गण्ड मण्डल से मद झर रहा था । बतलाओ कुल कितने हाथी हैं ? ॥५४-५५॥ वराहों के झुण्ड के अर्द्ध अंश के वर्गमूल की चौगुनी राशि जंगल में गई जहाँ शेर क्रीड़ा कर रहे थे । शेष झुंड के दसवें भाग के वर्गमूल की अठगुनी राशि पर्वत पर गई । शेष के अर्द्धभाग के वर्गमूल की ९ गुनी राशि नदी के किनारे गई । और अन्त में ५६ वराह वन में देखे गये । बताओ कि कुल वराह कितने थे ? ॥५६॥

इस प्रकार, 'अंशमूल' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

'भाग संवर्ग' जाति सम्बन्धी नियम—

(अज्ञात समूह वाचक राशि के विशिष्ट मिश्र भिन्नीय भाग के सरलीकृत) हर को स्व सम्बन्धित (सरलीकृत) अंश द्वारा विभाजित करने से प्राप्त फल में से दिये गये ज्ञात भाग की चौगुनी राशि घटाओ । तब इस अंतर फल को उसी (ऊपर वर्ते हुए सरलीकृत) हर द्वारा गुणित करो । इस गुणनफल के वर्गमूल को वर्ते हुए उसी हर में जोड़ो और फिर उसी में से घटाओ । तब योगफल अथवा अंतर फल में से किसी एक की अर्द्ध राशि, इष्ट (अज्ञात समूह वाचक) राशि होती है । ॥५७॥

---

(५६) "शार्दूल विक्रीडित" का अर्थ शेरों की क्रीड़ा होता है । इसके सिवाय यह नाम उस छन्द का भी है जिसमें कि यह श्लोक संरचित हुआ है ।

(५७) बीजीय रूप से कथन करने पर, क = $\frac{\frac{नफ}{मप} \pm \sqrt{\left(\frac{नफ}{मप} - ४अ\right)\frac{नफ}{मप}}}{२}$ होता है । क की

अत्रोद्देशकः

अष्टमं षोडशांशघ्नं शालिराशेः कृषीवलः। चतुर्विंशतिवाहांश्च लेभे राशिः कियान् वद ॥ ५८ ॥
शिखिनां षोडशभागः स्वगुणश्चूते तमालषण्डेऽस्थात्।
शेषनवांशः स्वहतश्चतुर्दशापि कति ते स्युः ॥ ५९ ॥
जले त्रिंशदंशाहतो द्वादशांशः स्थितः शेषविंशो हतः षोडशेन।
त्रिनिघ्नेन पङ्के करा विंशतिः खे सखे स्तम्भदैर्घ्यस्य मानं वद त्वम् ॥ ६० ॥

इति भागसंवर्गजातिः।

अथोनाधिकांशवर्गजातौ सूत्रम्—

स्वांशकभक्तहरार्धं न्यूनयुगधिकोनितं च तद्वर्गात्।
न्यूनाधिकवर्गाग्रान्मूलं स्वर्णं फलं पदेंऽशहृतम् ॥ ६१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई कृषक शालि के ढेरी की $\frac{1}{8}$ भाग प्रमाण राशि द्वारा गुणित उसी ढेरी की $\frac{1}{16}$ भाग प्रमाण राशि को प्राप्त करता है। इसके सिवाय उसके पास २४ वाह और रहती है। बतलाओ ढेरी का परिमाण क्या है? ॥५८॥ झुंड के $\frac{1}{16}$ वें भाग द्वारा गुणित मयूरों के झुंड का $\frac{1}{16}$ वां भाग, आम के वृक्ष पर पाया गया। स्व [अर्थात् शेष के $\frac{1}{9}$ वें भाग] द्वारा गुणित शेष का $\frac{1}{9}$ वां भाग, तथा शेष १४ मयूरों को तमाल वृक्ष के झुंड में देखा गया। बतलाओ वे कुल कितने हैं? ॥५९॥ किसी स्तम्भ के $\frac{1}{12}$ वें भाग को स्तम्भ के $\frac{1}{30}$ वें भाग द्वारा गुणित करने से प्राप्त भाग पानी के नीचे पाया गया। शेष के $\frac{1}{20}$ वें भाग को उसी शेष के $\frac{3}{16}$ वें भाग द्वारा गुणित करने से प्राप्त भाग कीचड़ में गड़ा हुआ पाया गया। शेष २० हस्त पानी के ऊपर हवा में पाया गया। हे मित्र! स्तम्भ की लम्बाई बताओ। ॥६०॥ इस प्रकार, "भाग संवर्ग" जाति प्रकरण समाप्त हुआ।

ऊनाधिक 'अंशवर्ग' जाति सम्बन्धी नियम—

(अज्ञात राशि के विशिष्ट भिन्नीय भाग के) हर की अर्द्ध राशि के स्व अंश द्वारा विभाजित करने से प्राप्त राशियों को (समूह वाचक अज्ञात राशि के विशिष्ट भिन्नीय भाग में से घटाई जाने वाली) दी गई ज्ञात राशि द्वारा मिश्रित अथवा ह्रासित करो। इस परिणामी राशि के वर्ग को (घटाई जाने वाली अथवा जोड़ी जाने वाली) ज्ञात राशि के वर्ग द्वारा तथा राशि के ज्ञात शेष द्वारा ह्रासित करो। जो फल मिले उसका वर्गमूल निकालो। इस वर्गमूल द्वारा उपर्युक्त प्रथम वर्ग राशि का वर्गमूल मिश्रित अथवा ह्रासित किया जाता है। जब प्राप्त राशि को अज्ञात राशि के विशिष्ट भिन्नीय भाग द्वारा विभाजित करते हैं तब अज्ञात राशि की इष्ट अर्हा (value) प्राप्त होती है ॥६१॥

इस अर्हा को समीकार $क - \frac{म}{न} क \times \frac{प}{फ} क - अ = ०$ द्वारा भी प्राप्त कर सकते हैं, जहाँ म/न और प/फ नियम में अपेक्षित भिन्न हैं।

(६१) बीजीय रूप से, $क = \left\{ \pm\sqrt{\left(\frac{न}{२म} \pm द\right)^{२} - द^{२} - अ} + \left(\frac{न}{२म} \pm द\right) \right\} \div \frac{म}{न}$;

क की यह अर्हा समीकार, $क - \left(\frac{म}{न}क \mp द\right)^{२} - अ = ०$, द्वारा भी प्राप्त हो सकती है, जहां द दी गई ज्ञात राशि है, जो अज्ञात राशि के इस उल्लिखित भिन्नीय भाग में से घटाई जाती है अथवा उसमें जोड़ी जाती है।

[1]हीनालाप उदाहरणम्

महिषीणामष्टांशो व्येको वर्गीकृतो वने रमते । पञ्चदशाद्रौ दृष्टास्तृणं चरन्त्यः कियन्त्यस्ताः ॥६२॥
अनेकपानां दशमो द्विवर्जितः स्वसंगुणः क्रीडति सल्लकीवने ।
चरन्ति षड्वर्गमिता गजा गिरौ कियन्त एतेऽत्र भवन्ति दन्तिनः ॥ ६३ ॥

[2]अधिकालाप उदाहरणम्

जम्बूवृक्षे पञ्चदशांशो द्विकयुक्तः स्वेनाभ्यस्तः केकिकुलस्य द्विकृतिघ्नाः ।
पञ्चाप्यन्ये मत्तमयूराः सहकारे रंरम्यन्ते मित्र वदैषां परिमाणम् ॥ ६४ ॥

इत्यूनाधिकांशवर्गजातिः ॥

अथ मूलमिश्रजातौ सूत्रम्—
मिश्रकृतिरूनयुक्ता व्यधिका च द्विगुणमिश्रसंभक्ता ।
वर्गीकृता फलं स्यात्करणमिदं मूलमिश्रविधौ ॥ ६५ ॥

१ M में 'हीन' छूट गया है । २ M में यह तथा अनुगामी श्लोक छूट गये हैं ।

हीनालाप प्रकार के उदाहरण

कुल झुंड के १/८ वें भाग के पूर्ण वर्ग से एक कम महिष (भैंसा) राशि वन में क्रीड़ा कर रही है । शेष १५, पर्वत पर घास चरते हुए दिखाई दे रहे हैं । बतलाओ कुल कितने भैंसे हैं ? ॥६२॥ कुल झुंड के १/१० वें भाग से दो कम प्रमाण, इसी प्रमाण द्वारा गुणित होने से लब्ध हस्ति राशि सल्लकी वन में क्रीड़ा कर रही है । शेष हाथी जो संख्या में ६ की वर्गराशि प्रमाण हैं, पर्वत पर विचर रहे हैं । बतलाओ वे कुल कितने हैं ? ॥६३॥

अधिकालाप प्रकार का उदाहरण

कुल झुंड के १/१५ भाग से २ अधिक राशि को स्व द्वारा गुणित करने से प्राप्त राशि प्रमाण मयूर जम्बू वृक्ष पर खेल रहे हैं । शेष गर्वीले $२^२ \times ५$ मयूर आम के वृक्ष पर खेल रहे हैं । हे मित्र ! उस झुंड के कुल मयूरों की संख्या बतलाओ ? ॥ ६४ ॥

इस प्रकार ऊनाधिक 'अंश वर्ग' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

'मूलमिश्र' जाति सम्बन्धी नियम—

(विशिष्ट अज्ञात राशियों के वर्गमूलों के) मिश्रित (ज्ञात) योग के वर्ग में (दी गई) ऋणात्मक राशि जोड़ दी जाती है, अथवा दी गई धनात्मक राशि उसमें से घटा दी जाती है । परिणामी राशि को उपर्युक्त मिश्रित योग की दुगुनी राशि द्वारा विभाजित करते हैं । इसे वर्गित करने पर इष्ट अज्ञात समूह की अर्हा (value) प्राप्त होती है । यही, 'मूलमिश्र' प्रकार के प्रश्नों का साधन करने का नियम है ॥ ६५ ॥

(६४) इस गाथा में 'मत्तमयूर' शब्द का अर्थ 'गर्वीला मयूर' होता है । यह इस छन्द का भी नाम है जिसमें यह गाथा संरचित हुई है ।

(६५) बीजीय रूप से, $क = \left\{ \frac{म^२ \pm द}{२ म} \right\}^२$ है यह क की अर्हा समीकार $\sqrt{क} + \sqrt{क \mp द} = म$ द्वारा सरलता से प्राप्त हो सकती है । यहाँ 'म', नियम में उल्लिखित ज्ञात मिश्रित योग है ।

हीनालाप उद्देशकः

मूलं कपोतवृन्दस्य द्वादशोनस्य चापि यत् । तयोर्योगे कपोताः षड् दृष्टास्तन्निकरः कियान् ॥६६॥
पारावतीयसंघे चतुर्घनोनेऽपि तत्र यन्मूलम् । तद्द्वययोगः षोडश तद्वृन्दे कति विहङ्गाः स्युः ॥६७॥

अधिकालाप उद्देशकः

राजहंसनिकरस्य यत्पदं साष्टषष्टिसहितस्य चैतयोः ।
संयुतिर्द्विकविहीनषट्कृतिस्तद्गणे कति मरालका वद ॥ ६८ ॥

इति मूलमिश्रजातिः ।

अथ भिन्नदृश्यजातौ सूत्रम्—

दृश्यांशोने रूपे भागाभ्यासेन भाजिते तत्र । यल्लब्धं तत्सारं प्रजायते भिन्नदृश्यविधौ ॥ ६९ ॥

अत्रोद्देशकः

सिकतायामष्टांशः संदृष्टोऽष्टादशांशसंगुणितः । स्तम्भस्यार्धं दृष्टं स्तम्भायामः कियान् कथय ॥७०॥

१ B में 'योगः', पाठ है । २ B, M और K में 'गगने' पाठ है ।

हीनालाप के उदाहरणार्थ प्रश्न

कपोतों की कुल संख्या के वर्गमूल में १२ द्वारा ह्रासित कपोतों की कुल संख्या के वर्गमूल को जोड़ने पर (ठीक फल) ६ कबूतर प्रमाण देखने में आता है । उस वृन्द के कपोतों की कुल संख्या क्या है ? ॥ ६६ ॥ कपोतों के कुल समूह का वर्गमूल, तथा ४ के घन द्वारा ह्रासित कपोतों की कुल संख्या का वर्गमूल निकालकर इन (दोनों राशियों) का योग १६ प्राप्त होता है । बतलाओ समूह में कुल कितने विहंग हैं ? ॥ ६७ ॥

अधिकालाप का उदाहरणार्थ प्रश्न

राजहंसों के समूह के संख्यात्मक मान का वर्गमूल तथा ६८ अधिक उसी समूह की संख्या का वर्गमूल (निकालने से प्राप्त) इन (दोनों राशियों) का योग $६^२ - २$ होता है । बतलाओ उस समूह में कितने हंस हैं ? ॥ ६८ ॥

इस प्रकार 'मूल मिश्र' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

'भिन्न दृश्य' जाति सम्बन्धी नियम—

जब एक को (अज्ञात राशियों से सम्बन्धित दी गई) भिन्नीय शेष राशि द्वारा ह्रासित कर (सम्बन्धित विशिष्ट) भिन्नीय भागों के गुणन फल द्वारा भाजित करते हैं, तब प्राप्त फल (भिन्नों पर प्रश्नों के) 'भिन्न दृश्य' प्रकार का साधन करने में, इष्ट उत्तर होता है ॥ ६९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी स्तम्भ का $\frac{१}{८}$ भाग, उसी स्तम्भ के $\frac{१}{१८}$ भाग द्वारा गुणित होता है । इससे प्राप्त भाग प्रमाण रेत में गड़ा हुआ पाया गया । उस स्तम्भ का $\frac{१}{२}$ भाग ऊपर दृष्टिगोचर हुआ । बतलाओ कि स्तम्भ की (खड़ा vertical) लम्बाई क्या है ? ॥ ७० ॥ कुछ हाथियों के झुंड के $\frac{१}{२४}$ वें भाग

---

(६९) बीजीय रूप से, $क = \left(१ - \frac{र}{य}\right) \div \frac{मप}{नफ}$ है । यह, समीकरण $क - \frac{म}{न}क \times \frac{प}{फ}क -$

द्विभक्तनवमांशकप्रहतसप्तविंशांशकः प्रमोदमवतिष्ठते करिकुलस्य पृथ्वीतले ।
विनीलजलदाकृतिर्विहरति त्रिभागो नगे वद त्वमधुना सखे करिकुलप्रमाणं मम ॥ ७१ ॥
साधूत्कृतेर्निवसति षोडशांशकस्त्रिभाजितः स्वकगुणितो वनान्तरे ।
पादो गिरौ मम कथयाशु तन्मितिं प्रोत्तीर्णवान् जलधिसमं प्रकीर्णकम् ॥ ७२ ॥

इति भिन्नदृश्यजातिः ॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ प्रकीर्णको नाम तृतीयव्यवहारः समाप्तः ॥

को उसी झुंड के १/९ वें भाग से गुणित करने तथा २ द्वारा विभाजित करने से प्राप्त फल प्रमाण के हाथी मैदान में प्रसन्न दशा में तिष्ठे हैं । शेष (बचा हुआ) १/३ भाग झुंड जो बादलों के समान अत्यन्त काले हाथियों का है, पर्वत पर क्रीड़ा कर रहा है । हे मित्र ! बतलाओ कि हाथियों के झुंड का संख्यात्मक मान क्या है ? ॥ ७१ ॥ साधुओं के समूह का १/१६ वां भाग ३ द्वारा विभाजित करने के पश्चात् स्व द्वारा गुणित (अर्थात् १/१६ ÷ ३ द्वारा गुणित) करने से प्राप्त भाग प्रमाण वन के अन्तः भाग में रह रहा है; उस समूह का (बचा रहने वाला) १/४ भाग पर्वत पर रह रहा है । हे जलधि सम प्रकीर्णक के प्रोत्तीर्णवान् ! मुझे शीघ्रही साधुओं के समूह का संख्यात्मक मान बतलाओ । ॥७२॥

इस प्रकार, 'भिन्न दृश्य' जाति प्रकरण समाप्त हुआ ।

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणित शास्त्र में 'प्रकीर्णक' नामक तृतीय व्यवहार समाप्त हुआ ।

$\frac{र}{य}$ क = ० से स्पष्ट है ।

(७१) 'पृथ्वी' शब्द जो इस गाथा में आया है, उसका अर्थ पृथ्वी है तथा यह उस छन्द का नाम भी है जिसमें यह गाथा संरचित हुई है ।

५. त्रैराशिकव्यवहारः

त्रिलोकबन्धवे तस्मै केवलज्ञानभानवे । नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूताखिलकर्मणे ॥ १ ॥
इतः परं त्रैराशिकं चतुर्थव्यवहारमुदाहरिष्यामः ।

तत्र करणसूत्रं यथा—

त्रैराशिकेऽत्र सारं फलमिच्छासंगुणं प्रमाणाप्तम् ।
इच्छाप्रमयोः साम्ये विपरीतेयं क्रिया व्यस्ते ॥ २ ॥

पूर्वार्धोद्देशकः

दिवसैस्त्रिभिः सपादैर्योजनषट्कं चतुर्थभागोनम् । गच्छति यः पुरुषोऽसौ दिनयुतवर्षेण किं कथय ॥३॥
व्यर्धाष्टाभिरहोभिः क्रोशाष्टांशं स्वपञ्चमं याति ।
पङ्गुः सपञ्चभागैर्वर्षैस्त्रिभिरत्र किं ब्रूहि ॥ ४ ॥
अङ्गुलचतुर्थभागं प्रयाति कीटो दिनाष्टभागेन । मेरोर्मूलाच्छिखरं कतिभिरोहोभिः समाप्नोति ॥५॥

---

१ P, K और M में स्व के लिये स पाठ है ।

---

५. त्रैराशिकव्यवहार

तीनों लोकों के बन्धु तथा सूर्य के समान केवल ज्ञान के धारी श्री वर्द्धमान को नमस्कार है जिन्होंने समस्त कर्म (मल) को निर्धूत कर दिया है । ॥१॥

इसके पश्चात्, हम त्रैराशिक नामक चतुर्थ व्यवहार का प्रतिपादन करेंगे ।

त्रैराशिक सम्बन्धी नियम—

यहाँ त्रैराशिक नियम में, फल को इच्छा द्वारा गुणित कर प्रमाण द्वारा विभाजित करने से इष्ट उत्तर प्राप्त होता है, जब कि इच्छा और प्रमाण समान (अनुक्रम direct अनुपात में) होते हैं । जब यह अनुपात प्रतिलोम (inverse) होता है तब यह गुणन तथा भाग की क्रिया विपरीत हो जाती है (ताकि भाग की जगह गुणन हो और गुणन के स्थान में भाग हो) । ॥२॥

पूर्वार्ध, अनुक्रम त्रैराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

वह मनुष्य जो ३$\frac{1}{4}$ दिन में ५$\frac{3}{4}$ योजन जाता है, १ वर्ष और १ दिन में कितनी दूर जाता है ? ॥३॥ एक लंगड़ा मनुष्य ७$\frac{1}{2}$ दिन में एक क्रोश का $\frac{1}{8}$ तथा उसका $\frac{1}{5}$ भाग चलता है । बतलाओ वह ३$\frac{1}{5}$ वर्षों में कितनी दूरी तय करता है ? ॥४॥ एक कीड़ा $\frac{1}{8}$ दिन में $\frac{1}{4}$ अंगुल चलता है । बतलाओ कि वह मेरुपर्वत की तली से उसके शिखर पर कब पहुँचेगा ? ॥५॥ वह मनुष्य जो ३$\frac{1}{2}$ दिन में १$\frac{1}{4}$ कार्षा-

---

(२) प्रमाण और फल के द्वारा अर्घ (rate) प्राप्त होती है । फल, इष्ट उत्तर के समान राशि होती है और प्रमाण, इच्छा के समान होता है । 'इच्छा' वह राशि है जिसके विषय में, किसी अर्घ (दर) से, कोई वस्तु निकालना होती है । जैसे कि गाथा ३ के प्रश्न में ३$\frac{1}{4}$ दिन प्रमाण है, ५$\frac{3}{4}$ योजन फल है, और १ वर्ष १ दिन इच्छा है ।

(५) मेरु पर्वत की ऊँचाई ९९,००० योजन अथवा ७६,०३२,०००,००० अंगुल मानी जाती है ।

कार्षापणं सपादं निर्विशति त्रिभिरहोभिरर्धयुतैः । यो ना पुराणशतकं सपणं कालेन केनासौ ॥६॥
कृष्णागरुसत्खण्डं[1] द्वादशहस्तायतं त्रिविस्तारम् । क्षयमेत्यङ्गुलमह्नः क्षयकालः कोऽस्य वृत्तस्य ॥७॥
स्वर्णैर्दशभिः सार्धैर्द्रोणाढककुडबमिश्रितः क्रीतः । वरराजमाषवाहः किं हेमशतेन सार्धेन ॥ ८ ॥
सार्धैस्त्रिभिः पुराणैः कुङ्कुमपलमष्टभागसंयुक्तम् । संप्राप्यं यत्र स्यात् पुराणशतकेन किं तत्र ॥ ९ ॥
सार्धार्द्रकसप्तपलैश्चतुर्दशार्धान्विताः पणा लब्धाः[2] । द्वात्रिंशदार्द्रकपलैः सपञ्चमैः किं सखे ब्रूहि ॥१०॥
कार्षापणैश्चतुर्भिः पञ्चांशयुतैः पलानि रजतस्य । षोडश सार्धानि नरो लभते किं कर्षनियुतेन ॥११॥
कर्पूरस्याष्टपलैस्त्र्यंशोनैर्नात्र पञ्च दीनारान् । भागांशकलायुक्तान् लभते किं पलसहस्रेण ॥ १२ ॥
सार्धैस्त्रिभिः पणैरिह घृतस्य पलपञ्चकं सपञ्चांशम् । क्रीणाति यो नरोऽयं किं साष्टमकर्षशतकेन ॥१३॥
सार्धैः पञ्चपुराणैः षोडश सदलानि वस्त्रयुगलानि । लब्धानि सैकषष्ट्या कर्षाणां किं सखे कथय ॥१४॥
वापी समचतुरश्रा सलिलवियुक्ताष्टहस्तघनमाना । शैलस्तस्यास्तीरे समुत्थितः[3] शिखरतस्तस्य ॥१५॥
वृत्ताङ्गुलविष्कम्भा जलधारा स्फटिकनिर्मला पतिता ।
वाप्यन्तरजलपूर्णा नगोच्छ्रितिः का च जलसंख्या ॥ १६ ॥

१ B में सत्कृष्णागरुखण्डं पाठ है । २ M और B में लभ्याः पाठ है । ३ B में समुत्थिता शि पाठ है ।

पण उपभोग में लाता है वह १ पण सहित १०० पुराण कितने दिन में खर्च करेगा । ॥६॥ १२ हाथ लम्बे (आयत) तथा ३ हाथ व्यास (विस्तार) वाले कृष्णागरु का सत्खंड (अच्छा टुकड़ा) एक दिन में एक घन अंगुल के अर्घ (rate) से क्षय होता है । बतलाओ कुल बेलनाकार टुकड़े को क्षय होने में कितना समय लगेगा ? ॥७॥ १०$\frac{1}{2}$ स्वर्ण में श्रेष्ठ काले चने का १ वाह, १ द्रोण, १ आढक और १ कुडब खरीदे जाते हैं । बतलाओ १००$\frac{1}{2}$ स्वर्ण में कितना कितना प्रमाण खरीदा जा सकेगा ? ॥८॥ यदि ३$\frac{1}{2}$ पुराणों के द्वारा १$\frac{1}{8}$ पल कुङ्कुम प्राप्त हो सकता हो तो १०० पुराणों में कितना प्राप्त हो सकेगा ? ॥९॥ ७$\frac{1}{2}$ पल 'आर्द्रक' के द्वारा १४$\frac{1}{2}$ पण प्राप्त किये गये । हे मित्र ! ३२$\frac{1}{5}$ पल आर्द्रक में क्या प्राप्त होगा ? ॥१०॥ ४$\frac{1}{5}$ कार्षापण में एक मनुष्य १६$\frac{1}{2}$ पल रजत प्राप्त करता है तो उसे १००,००० कर्ष में कितनी रजत प्राप्त होगी ? ॥११॥ ७$\frac{2}{3}$ पल कर्पूर के द्वारा एक मनुष्य ५ दीनार तथा १ भाग, १ अंश और १ कला प्राप्त करता है । बतलाओ कि उसे १००० पल के द्वारा क्या प्राप्त होगा ? ॥१२॥ वह मनुष्य जो ३$\frac{1}{2}$ पण में ५$\frac{1}{5}$ पल घी प्राप्त करता हो तो वह १००$\frac{1}{8}$ कर्ष में कितना प्राप्त करेगा ? ॥१३॥ ५$\frac{1}{2}$ पुराण के द्वारा एक मनुष्य १६$\frac{1}{2}$ युगल वस्त्र प्राप्त करता है । हे मित्र ! ६१ कर्ष में उसे कितने प्राप्त होंगे ?

जल रहित एक वर्गाकार कूप ५१२ घन हस्त है । उसके तीर पर एक पहाड़ी है । उसके शिखर से स्फटिक की भांति निर्मल जल धारा जिसके वर्तुल छेद (circular section) का व्यास १ अंगुल है, तली में गिरती है और कूप पानी से पूरी तरह भर जाता है । पहाड़ी की ऊँचाई क्या है तथा पानी का माप (संख्यात्मक मान में) क्या है ? ॥१५-१६॥ किसी राजा ने संक्रांति के अवसर पर

(७) यहाँ क्रिया में दिये गये व्यास से रंभ (बेलन) के अनुप्रस्थ छेद (cross-section) का क्षेत्रफल ज्ञात मान लिया जाता है । वृत्त का क्षेत्रफल अनुमानतः व्यास के वर्ग को ४ द्वारा भाजित कर और ३ द्वारा गुणित करने से प्राप्त राशि मान लिया जाता है ।

कृष्णागरु एक प्रकार की सुगन्धित लकड़ी है जिसे सुगन्ध के लिए अग्नि में जलाते हैं ।

(१५-१६) इस प्रश्न में पानी की धारा की लम्बाई पर्वत की ऊँचाई के बराबर है, जिससे ज्योंही वह पर्वत की तली में पहुँचती है, त्योंही वह शिखर से बहना बंद हुई मान ली जाती है । वाह्रों में

मुद्गद्रोणयुगं नवाज्यकुडवान् षट् तण्डुलद्रोणका-
नष्टौ वस्त्रयुगानि वत्ससहिता गाः षट् सुवर्णत्रयम् ।
संक्रान्तौ ददता नराधिपतिना षड्भ्यो द्विजेभ्यः सखे
षट्त्रिंशत्त्रिशतेभ्य आशु वद किं तद्दत्तमुद्गादिकम् ॥ १७ ॥

इति त्रैराशिकः ।

व्यस्तत्रैराशिके तुरीयपादस्योद्देशकः

कल्याणकनकनवतेः कियन्ति नववर्णकानि कनकानि ।
साष्टांशकदशवर्णकसगुञ्जहेम्नां शतस्यापि ॥ १८ ॥
व्यासेन दैर्घ्येण च षट्कराणां चीनाम्बराणां त्रिशतानि तानि ।
त्रिपञ्चहस्तानि कियन्ति सन्ति व्यस्तानुपातक्रमविद्वद त्वम् ॥ १९ ॥

इति व्यस्तत्रैराशिकः ।

व्यस्तपञ्चराशिक उद्देशकः

पञ्चनवहस्तविस्तृतदैर्घ्याणां चीनवस्त्रसप्तत्याम् । द्वित्रिकरव्यासायतितत्कृतवस्त्राणि कति कथय ॥२०॥

१ इस श्लोक के स्थान में B और K में निम्न पाठ है—
दुग्धद्रोणयुगं नवाज्यकुडवान् षट् शर्कराद्रोणकानष्टौ चोचफलानि सान्द्रदधिखार्यष्ट् पुराणत्रयम् ।
श्रीखण्डं ददता नृपेण सवनार्थं षड्जिनागारके षट्त्रिंशत्त्रिशतेषु मित्र वद मे तद्दत्तदुग्धादिकम् ॥

---

६ ब्राह्मणों को २ द्रोण मुद्ग (kidney-bean), ९ कुडव घी, ६ द्रोण चांवल, ८ युग्म (pairs) कपड़े, ६ बछड़ों सहित गायें और ३ सुवर्ण दिये । हे मित्र ! शीघ्र बतलाओ कि उसने ३३६ ब्राह्मणों को कितनी-कितनी मुद्गादि अन्य वस्तुएँ दी ? ॥१७॥

इस प्रकार अनुक्रम त्रैराशिक प्रकरण समाप्त हुआ ।

चौथे पाद* के अनुसार व्यस्त त्रैराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

शुद्ध स्वर्ण के ९० के लिये ९ वर्ण का स्वर्ण कितना होगा, तथा १०$\frac{१}{८}$ वर्ण के स्वर्ण की बनी हुई गुंज सहित १०० स्वर्ण (धरण) के लिये (९ वर्ण का स्वर्ण) कितना होगा ? ॥१८॥ ६ हस्त लम्बे और ६ हस्त चौड़े चीनी रेशम के टुकड़े ३०० टुकड़े हैं । हे व्यस्त अनुपात की रीति जानने वाले, बतलाओ कि उसी रेशम के ५ हस्त लम्बे, ३ हस्त चौड़े कितने टुकड़े उनमें से मिल सकेंगे ॥१९॥

इस प्रकार व्यस्त त्रैराशिक प्रकरण समाप्त हुआ ।

व्यस्त पंचराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

९ हस्त लम्बे, ५ हस्त चौड़े ७० चीनी रेशम के टुकड़ों में २ हस्त चौड़े और ३ हस्त लम्बे माप के कितने टुकड़े प्राप्त हो सकेंगे ? ॥२०॥

पानी की मात्रा निकालने के लिये घन माप तथा द्रव माप में सम्बन्ध दिया जाना चाहिये था । P में की संस्कृत और B में की कन्नड़ी टीकाओं के अनुसार १ घन अंगुल पानी, द्रव माप में १ कर्ष के बराबर होता है ।

(१७) एक राशि से दूसरी राशि में सूर्य के पहुँचने के मार्ग को संक्रांति कहते हैं ।

(१८) शुद्ध स्वर्ण यहाँ १६ वर्ण का लिया गया है ।

* यहाँ इस अध्याय की दूसरी गाथा के चौथे चतुर्थांश का निर्देश है ।

व्यस्तसप्तराशिक उद्देशकः

व्यासायामोदयतो बहुमाणिक्ये चतुर्नवाष्टकरे ।
द्विषडेकहस्तमितयः प्रतिमाः कति कथय तीर्थकृताम् ॥ २१ ॥

व्यस्तनवराशिक उद्देशकः

विस्तारदैर्ध्योदयतः करस्य षट्त्रिंशदष्टप्रमिता नवार्घा ।
शिला तया तु द्विषडेकमानास्ताः पञ्चकार्घाः कति चैत्ययोग्याः ॥ २२ ॥

इति व्यस्तपञ्चसप्तनवराशिकाः ।

गतिनिवृत्तौ सूत्रम्—
निजनिजकालोद्धृतयोर्गमननिवृत्त्योर्विशेषणाज्जाताम् ।
दिनशुद्धगतिं न्यस्य त्रैराशिकविधिमतः कुर्यात् ॥ २३ ॥

अत्रोद्देशकः

क्रोशस्य पञ्चभागं नौर्याति दिनत्रिसप्तभागेन । वार्धौ वाताविद्धा प्रत्येति क्रोशनवमांशम् ॥२४॥
कालेन केन गच्छेत् त्रिपञ्चभागोनयोजनशतं सा ।
संख्याब्धिसमुत्तरणे बाहुबलिस्त्वं समाचक्ष्व ॥ २५ ॥

---

१ B और K में तस्मिन्काले वार्धौ, पाठ है ।

व्यस्त सप्तराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

बतलाओ कि ४ हस्त चौड़े, ९ हस्त लम्बे, ८ हस्त ऊंचे बड़े मणि में से २ हस्त चौड़ी ६ हस्त लम्बी तथा १ हस्त ऊँची तीर्थंकरों की कितनी प्रतिमाएँ बन सकेंगी ? ॥२१॥

व्यस्त नव राशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

जिसकी कीमत ९ है ऐसी ६ हस्त चौड़ी ३० हस्त लम्बी तथा ८ हस्त ऊँची एक शिला दी गई है । बतलाओ कि जिन मंदिर बनवाने के लिये इस शिला में से, जिसकी कीमत ५ है ऐसी २ हस्त चौड़ी ६ हस्त लम्बी तथा १ हस्त ऊँची कितनी शिलायें प्राप्त हो सकेंगी ? ॥२२॥

इस प्रकार व्यस्त पंचराशिक, सप्तराशिक और नवराशिक प्रकरण समाप्त हुआ ।

गति निवृत्ति सम्बन्धी नियम—

दिन की शुद्ध गति को लिखो जो अग्र तथा पश्च (आगे तथा पीछे की ओर होने वाली) गतियों के दिये गये अर्घों (rates) के अन्तर से प्राप्त होती है, जबकि इन अर्घों में से प्रत्येक को प्रथम उनके विशिष्ट समयों द्वारा विभाजित कर लिया जाता है । और तब, इस शुद्ध दैनिक गति के सम्बन्ध में त्रैराशिक नियम की क्रिया करो ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

३/७ दिन में, एक जहाज समुद्र में १/५ क्रोश जाती है; उसी समय वह पवन के विरोध से १/९ क्रोश पीछे हट जाती है । हे संख्या समुद्र को पार करने के अर्थ बाहुबल धारी ! बतलाओ कि वह जहाज ९९ २/५ योजन कितने समय में जावेगी ? ॥२४-२५॥ एक मनुष्य जो ३ १/५ दिनों में १ १/४ स्वर्ण

सपादहेम त्रिदिनैः सपञ्चमैर्नरोऽर्जयन् व्येति सुवर्णतुर्यकम् ।
निजाष्टमं पञ्चदिनैर्दलोनितैः स केन कालेन लभेत सप्ततिम् ॥ २६ ॥
गन्धेभो मदलुब्धषट्पदपदप्रोद्भिन्नगण्डस्थलः
सार्धं योजनपञ्चमं व्रजति यः षड्भिर्दलोनैर्दिनैः ।
प्रत्यायाति दिनैस्त्रिभिश्च सदलैः क्रोशद्विपञ्चांशकं
ब्रूहि क्रोशदलोनयोजनशतं कालेन केनाप्नुयात् ॥ २७ ॥
वापी पयःप्रपूर्णा दशदण्डसमुच्छ्रिताब्जमिह जातम् ।
अङ्गुलयुगलं सदलं प्रवर्धते सार्धदिवसेन ॥ २८ ॥
निस्सरति यन्त्रतोऽम्भः सार्धेनाह्नाङ्गुले सविंशे द्वे ।
शुष्यति दिनेन सलिलं सपञ्चमाङ्गुलकमिनकिरणैः ॥ २९ ॥
कूर्मो नालमधस्तात् सपादपञ्चाङ्गुलानि चाकृषति ।
सार्धत्रिदिनैः पद्मं तोयसमं केन कालेन ॥ ३० ॥
द्वात्रिंशद्धस्तदीर्घः प्रविशति विवरे पञ्चभिः सप्तमार्धैः
कृष्णाहीन्द्रो दिनस्यासुरवपुरजितः सार्धसप्ताङ्गुलानि ।
पादेनाह्नोऽङ्गुले द्वे त्रिचरणसहिते वर्धते तस्य पुच्छं
रन्ध्रं कालेन केन प्रविशति गणकोत्तंस मे ब्रूहि सोऽयम् ॥ ३१ ॥

इति गतिनिवृत्तिः ।

मुद्रा कमाता है, ४$\frac{1}{2}$ दिन में $\frac{1}{4}$ स्वर्ण मुद्रा तथा उस ($\frac{1}{4}$) की $\frac{1}{8}$ स्वर्णमुद्रा खर्च करता है; बतलाओ कि वह ७० स्वर्ण मुद्रायें कितने दिनों में बचा सकेगा ? ॥२६॥ एक श्रेष्ठ हाथी, जिसके गण्ड स्थल पर झरते हुए मद की सुगन्ध से लुब्ध भ्रमर राशि पदों द्वारा आक्रमण कर रही है, ५$\frac{1}{2}$ दिन में एक योजन का $\frac{1}{5}$ भाग तथा $\frac{1}{2}$ भाग चलता है; और, ३$\frac{1}{2}$ दिन में $\frac{2}{5}$ क्रोश पीछे हट आता है; बतलाओ कि वह $\frac{1}{2}$ क्रोश कम १०० योजन की कुल दूरी कितने समय में तय करेगा ? ॥२७॥ एक वापिका पानी से पूरी भरी रहने पर गहराई में दश दण्ड रहती है । अंकुरित होता हुआ एक कमल तली से १$\frac{1}{2}$ दिन में २$\frac{1}{2}$ अंगुल के अर्घ (rate) से ऊगता है । यन्त्र द्वारा १$\frac{1}{2}$ दिन में वापिका का पानी निकल आने से पानी की गहराई २$\frac{1}{20}$ अंगुल कम हो जाती है । और, सूर्य की किरणों द्वारा १$\frac{1}{5}$ अंगुल (गहराई का) पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है; तथा, एक कछुआ कमल की नाल को ३$\frac{1}{2}$ दिन में ५$\frac{1}{4}$ अंगुल नीचे की ओर खींच लेता है । बतलाओ कि वह कमल पानी की सतह तक कितने समय में ऊग आवेगा ? ॥२८-३०॥ एक बलयुक्त, अजित, श्रेष्ठ कृष्णाहीन्द्र (काला सर्प) जो ३२ हस्त लम्बा है, किसी छिद्र में $\frac{5}{14}$ दिन में ७$\frac{1}{2}$ अंगुल प्रवेश करता है; और $\frac{1}{4}$ दिन में उसकी पूँछ २$\frac{3}{4}$ अंगुल बढ़ जाती है । हे अंकगणितज्ञों के भूषण ! मुझे बतलाओ कि यह सर्प इस छिद्र में कितने समय में पूरी तरह प्रवेश कर सकेगा ? ॥३१॥

इस प्रकार, गति निवृत्ति प्रकरण समाप्त हुआ ।

पंचराशिक, सप्तराशिक और नवराशिक सम्बन्धी नियम—

स्व स्थान से 'फल' को अन्य स्थान में पक्षान्तरित करो (जहाँ वैसी ही मूर्त राशि आवेगी); (सब इष्ट उत्तर को प्राप्त करने के लिये विभिन्न राशियों की) बड़ी संख्याओं वाली पंक्ति को (सबको

(२८-३०) कुएँ की गहराई मूल गाथा में तली से नापी गई 'ऊँचाई' कही गई है ।

पञ्चसप्तनवराशिकेषु करणसूत्रम्—
लाभं नीत्वान्योन्यं विभजेत् पृथुपङ्क्तिमल्पया पंक्त्या ।
गुणयित्वा जीवानां क्रयविक्रययोस्तु तानेव ॥ ३२ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वित्रिचतुःशतयोगे पञ्चाशत्षष्टिसप्ततिपुराणाः । लाभार्थिना प्रयुक्ता दशमासेष्वस्य का वृद्धिः ॥३३॥
हेम्नां सार्धाशीतेर्मासस्त्र्यंशेन वृद्धिरध्यर्धा । सत्रिचतुर्थनवत्याः कियती पादोनषण्मासैः ॥३४॥

१ P में निम्नलिखित पाठान्तर है ।
प्रकान्तरेण सूत्रम्—
संक्रम्य फलं छिन्द्याल्लघुपंक्त्यानेकराशिकां पंक्तिम् । स्वगुणामश्वादीनां क्रयविक्रययोस्तु तानेव ।
अन्यदपि सूत्रम्—
संक्रम्य फलं छिन्द्यात् पृथुपंक्त्यभ्यासमल्पया पंक्त्या । अश्वादीनां क्रयविक्रययोरश्वादिकांश्च संक्रम्य ॥
B केवल बाद का श्लोक दिया गया है जिसके दूसरे चौथाई भाग का पाठान्तर यह है—
पृथुपंक्त्यभ्यासमल्पपंक्त्याहृत्या ।

साथ गुणित करने के पश्चात्), सबको साथ लेकर गुणित की गई विभिन्न राशियों की छोटी संख्याओं वाली पंक्ति द्वारा विभाजित करना चाहिये । परन्तु, जीवित पशुओं को बेचने और खरीदने के प्रश्नों में केवल उन्हें प्ररूपण करनेवाली संख्याओं के सम्बन्ध में ही पक्षान्तरण करते हैं ॥३२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यक्ति द्वारा ५०, ६० और ७० पुराण क्रमशः २, ३ और ४ प्रतिशत प्रतिमास के अर्घ (दर) से लाभ के लिये ब्याज पर दिये गये । दस माह में उसे कितना ब्याज प्राप्त होगा ? ॥३३॥ $\frac{1}{3}$ मास में ८०$\frac{1}{2}$ स्वर्ण मुद्राओं पर ब्याज १$\frac{1}{2}$ होता है । ५$\frac{3}{4}$ माह में ९०$\frac{3}{4}$ स्वर्ण मुद्राओं पर वह कितना होगा ? ॥३४॥ वह जो १६ वर्ण के १०८ स्वर्ण खंडों में २० रत्न प्राप्त करता है तो १० वर्ण

(३२) फल का पक्षान्तरण तथा अन्य कथित क्रियायें निम्नलिखित साधित उदाहरण से स्पष्ट हो जावेंगी । गाथा ३६ के प्रश्न में दिया गया न्यास (data) प्रथम निम्न प्रकार प्ररूपित किया जाता है ।

९ मानी	१ वाह + १ कुम्भ
३ योजन	१० योजन
६० पण	

अब यहाँ फल, जो ६० पण है, को अन्य पंक्ति में पक्षान्तरित करते हैं तब—

९ मानी	१ वाह + १ कुम्भ = १$\frac{1}{4}$ वाह
३ योजन	१० योजन
	६० पण

अब, जिसमें विभिन्न राशियों की संख्या अधिक है ऐसी दाहिने हाथ की पंक्ति की सब राशियों को गुणित कर उसे वाम पंक्ति (जिसमें विभिन्न राशियों की संख्या कम है) की सब राशियों को गुणित करने से प्राप्त गुणनफल द्वारा भाजित करना चाहिये । तब हमें पणों की संख्या प्राप्त होगी जो कि इष्ट उत्तर होगा ।

यथा, $$\frac{१\frac{१}{४} \times १० \times ६०}{९ \times ३}$$

षोडशवर्णककाञ्चनशतेन यो रत्नविंशतिं लभते । दशवर्णसुवर्णानामष्टाशीतिर्द्विशत्या किम् ॥३५॥
गोधूमानां मानीनव नयता योजनत्रयं लब्धाः । षष्टिः पणाः सवाहं कुम्भं दशयोजनानि कति ॥३६॥

भाण्डप्रतिभाण्डस्योद्देशकः

कस्तूरीकर्षत्रयमुपलभते दशभिरष्टभिः कनकैः
कर्षद्वयकर्पूरं मृगनाभित्रिशतकर्षकैः कति नौ ॥३७॥
पनसानि षष्टिमष्टभिरुपलभतेऽशीतिमातुलुङ्गानि ।
दशभिर्माषैर्नवशतपनसैः कति मातुलुङ्गानि ॥३८॥

जीवक्रयविक्रययोरुद्देशकः

षोडशवर्षास्तुरगा विंशतिरर्हन्ति नियुतकनकानि ।
दशवर्षसप्तिसप्ततिरिह कति गणकाग्रणीः कथय ॥ ३९ ॥
स्वर्णत्रिशती मूल्यं दशवर्षाणां नवाङ्गनानां स्यात् । षट्त्रिंशन्नारीणां षोडशसंवत्सराणां किम् ॥४०॥
षट्कशतयुक्तनवतेर्दशमासैर्वृद्धिरत्र का तस्याः ।
कः कालः किं वित्तं विदिताभ्यां भण गणकमुखमुकुर ॥ ४१ ॥

१ B में अन्त में ना जुड़ा है ।
२ K, M और B में ना के लिए हेमकर्षाः पाठ है ।

वाले २८८ स्वर्ण खंडों में क्या प्राप्त करेगा ? ॥३५॥ एक मनुष्य जो ९ मानी गेहूँ ३ योजन तक ले जाकर ६० पण प्राप्त करता है, वह एक कुम्भ और एक वाह गेहूँ १० योजन तक लेजाकर क्या प्राप्त करेगा ? ॥३६॥

भांड प्रतिभांड (विनिमय) पर उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य १० स्वर्ण मुद्राओं में ३ कर्ष कस्तूरी तथा ८ स्वर्ण मुद्राओं में २ कर्ष कर्पूर प्राप्त करता है। बतलाओ कि उसे ३०० कर्ष कस्तूरी के बदले में कितने कर्ष कर्पूर प्राप्त होगा ? ॥३७॥ एक मनुष्य ८ माशा चाँदी के बदले में ६० पनस प्राप्त करता है और १० माशा चाँदी के बदले में ८० अनार प्राप्त करता है। बतलाओ कि ९०० पनस फलों के बदले में वह कितने अनार प्राप्त करेगा ? ॥३८॥

पशुओं के क्रय और विक्रय पर उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रत्येक १६ वर्ष की उम्र वाले बीस घोड़ों की कीमत १००,००० स्वर्ण मुद्राएँ हैं। हे गणित-ग्रामणी ! बतलाओ कि प्रत्येक १० वर्ष वाले ७० घोड़ों का मूल्य इस अर्थ से क्या होगा ? ॥३९॥ प्रत्येक १० वर्ष की उम्रवाली ९ नवाङ्गनाओं का मूल्य ३०० स्वर्ण मुद्राएँ हैं। प्रत्येक १६ वर्ष की उम्रवाली ३६ नवाङ्गनाओं का मूल्य क्या होगा ? ॥४०॥ ६ प्रतिशत प्रतिमास की दर से ९० पर १० मास में क्या ब्याज होगा ? हे गणक मुख मुकुर ! दो अन्य आवश्यक ज्ञात राशियों की सहायता से बतलाओ कि उस ब्याज के सम्बन्ध में समय क्या होगा और उस ब्याज तथा समय के सम्बन्ध में मूलधन क्या होगा ? ॥४१॥

सप्तराशिक उद्देशकः

त्रिचतुर्व्यासायामौ श्रीखण्डावर्हतोऽष्टहेमानि ।
षण्णवविस्तृतिदैर्घ्यौ हस्तेन चतुर्दशात्र कति ॥ ४२ ॥

इति सप्तराशिकः ।

नवराशिक उद्देशकः

पंञ्चाष्टत्रिव्यासदैर्घ्योदयाम्भो धत्ते वापी शालिनी वाहषट्कम् ।
सप्तव्यासा हस्ततः षष्टिदैर्घ्याः पात्सेधोः किं नवाचक्ष्व विद्वन् ॥ ४३ ॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ त्रैराशिको नाम चतुर्थव्यवहारः ॥

१ ४३ वें श्लोक के सिवाय K और B में निम्नलिखित श्लोक प्राप्य है—
द्व्यष्टाशीतिव्यासदैर्घ्योन्नताम्भो धत्ते वापी शालिनी सार्धवाहौ ।
हस्तादष्टायामकाः षोडशोच्छ्राः षट्कव्यासाः किं चतस्रा वद त्वम् ॥

सप्तराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

जिनमें प्रत्येक का व्यास ३ हस्त और लम्बाई (आयाम) ४ हस्त है, ऐसे संदल-लकड़ी के दो टुकड़ों का मूल्य ८ स्वर्ण मुद्राएं हैं । इस अर्थ से, जिनमें प्रत्येक ६ हस्त व्यास में और ९ हस्त लम्बाई में है ऐसे संदल-लकड़ी के १४ टुकड़ों का क्या मूल्य होगा ? ॥४२॥

नवराशिक पर उदाहरणार्थ प्रश्न

जो चौड़ाई, लम्बाई और (तली से) ऊंचाई में क्रमशः ५, ८ और ३ हस्त है ऐसी किसी घर की वापिका में ६ वाह पानी भरा है । हे विद्वान् ! बतलाओ कि ७ हस्त चौड़ी, ६० हस्त लम्बी और तली से ५ हस्त ऊँची ९ वापिकाओं में कितना पानी समावेगा ? ॥४३॥

इस प्रकार सप्तराशिक और नवराशिक प्रकरण समाप्त हुआ ।

इस प्रकार महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणित शास्त्र में त्रैराशिक नामक चतुर्थ व्यवहार समाप्त हुआ ।

(४३) इस गाथा में 'शालिनी' शब्द का अर्थ "घर की" होता है । यह उस छंद का भी नाम है जिसमें यह गाथा संरचित हुई है ।

६. मिश्रकव्यवहारः

प्राप्तानन्तचतुष्टयान् भगवतस्तीर्थस्य कर्तॄन् जिनान्
सिद्धान् शुद्धगुणांस्त्रिलोकमहितानाचार्यवर्यानपि ।
सिद्धान्तार्णवपारगान् भवभृतां नेतॄनुपाध्यायकान्
साधून् सर्वगुणाकरान् हितकरान् वन्दामहे श्रेयसे ॥ १ ॥
इतः परं मिश्रगणितं नाम पञ्चमव्यवहारमुदाहरिष्यामः । तद्यथा—

संक्रमणसंज्ञाया विषमसंक्रमणसंज्ञायाश्च सूत्रम्—

युतिवियुतिदलनकरणं संक्रमणं छेदलब्धयो राश्योः ।
संक्रमणं विषममिदं प्राहुर्गणिततार्णवान्तगताः ॥ २ ॥

---

६. मिश्रकव्यवहार

जिन्होंने अनन्त चतुष्टय प्राप्त कर धर्म तीर्थ की प्रवर्तना की है ऐसे अरिहंत प्रभुओं की, जो अष्टक्षायिक गुण सम्पन्न हैं तथा तीनों लोकों में आदर को प्राप्त हैं ऐसे सिद्ध प्रभुओं की, श्रेष्ठ आचार्यों की, जो जैन सिद्धान्त सागर के पारगामी हैं तथा संसारी जीवों को मोक्षमार्ग के उपदेशक हैं ऐसे उपाध्यायों की और जो सर्व सद्गुणों के धारक हैं तथा दूसरों के हितकर्ता हैं ऐसे साधुओं की हम अपने सर्वोपरि हित के लिये वन्दना करते हैं ॥१॥

इसके पश्चात् हम मिश्रित उदाहरण नामक पाँचवें व्यवहार का प्रतिपादन करेंगे ।

पारिभाषिक शब्द 'संक्रमण' और 'विषम संक्रमण' के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये सूत्र—

गणित समुद्र के पारगामी, किन्हीं दो राशियों के योग अथवा अन्तर के आधा करने को संक्रमण कहते हैं । और, ऐसी दो राशियाँ जो क्रमशः भाजक तथा भजनफल रहती हैं, उनके संक्रमण को विषम संक्रमण कहते हैं ॥२॥

(१) कर्म और जन्म मरण के दुःखों से पूर्ण संसारीजीवनरूपी नदी को पार करने के लिये 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग 'एक ऐसे स्थान के लिये हुआ है जो उथला होने के कारण नदी को पार करने में सहायक सिद्ध होता है । संसार अर्थात् चतुर्संक्रमण के दुःखों रूपी सागर को पार कराने के लिये भगवान् आत्माओं के लिये नैमित्तिक सहायक माने गये हैं । इसलिये इन जिनों को तीर्थंकर कहा जाता है ।

(२) बीजीय रूप से, दो राशियों अ और ब का संक्रमण $\frac{अ+ब}{२}$ और $\frac{अ \backsim ब}{२}$ के मान निकालना है । उनका विषम संक्रमण, $\frac{ब+\frac{अ}{ब}}{२}$ और $\frac{ब \backsim \frac{अ}{ब}}{२}$ के मान निकालना है ।

अत्रोद्देशकः

द्वादशसंख्याराशेर्द्वाभ्यां संक्रमणमत्र किं भवति ।
तस्माद्राशेर्मेकं विषमं वा किं तु संक्रमणम् ॥ ३ ॥

पञ्चराशिकविधिः

पञ्चराशिकस्वरूपवृद्ध्यानयनसूत्रम्—
इच्छाराशिः स्वस्य हि कालेन गुणः प्रमाणफलगुणितः ।
कालप्रमाणभक्तो भवति तदिच्छाफलं गणिते ॥ ५ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकषट्कशते पञ्चाशत्षष्टिसप्ततिपुराणाः । लाभार्थतः प्रयुक्ताः का वृद्धिर्मासषट्कस्य ॥ ५ ॥
त्र्यर्धाष्टकशतयुक्तास्त्रिंशत्कार्षापणाः पणाश्चाष्टौ । मासाष्टकेन जाता दलहीनेनैव का वृद्धिः ॥ ६ ॥
षष्ट्या वृद्धिर्दृष्टा पञ्च पुराणाः पणत्रयविमिश्राः । मासद्वयेन लब्धा शतवृद्धिः का तु वर्षस्य ॥ ७ ॥
सार्धशतकप्रयोगे सार्धकमासेन पञ्चदश लाभः । मासदशकेन लब्धा शतत्रयस्यात्र का वृद्धिः ॥८॥
साष्टशतकाष्टयोगे त्रिषष्टिकार्षापणा विशा दत्ताः । सप्तानां मासानां पञ्चमभागान्वितानां किम् ॥९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

जब संख्या १२, दो से आयोजित हो तो संक्रमण क्या होगा? और, २ के सम्बन्ध में उसी संख्या १२ का भागीय विषम संक्रमण क्या होगा?

पंचराशिक विधि

पंचराशिक प्रकार के ब्याज को निकालने की विधि के लिये नियम—

इच्छा का प्ररूपण करनेवाली संख्या, अर्थात् जिस पर ब्याज निकालना इष्ट होता है ऐसे धन को उससे सम्बन्धित समय द्वारा गुणित किया जाता है और तब दिये हुए मूलधन पर ब्याज दर का निरूपण करने वाली संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। गुणनफल को समय तथा मूलधन राशि द्वारा भाजित किया जाता है। यह भजनफल, गणित में, इष्ट धन का ब्याज होता है ॥४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५०, ६० और ७० पुराण क्रमशः ३, ५ और ६ प्रतिशत प्रतिमाह की दर (rate) से ब्याज पर दिये गये, उनका ६ माह में ब्याज क्या होगा? ॥५॥ ३० कार्षापण और ८ पण, ७$\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रतिमाह की दर से ब्याज पर दिये गये, ७$\frac{1}{2}$ माह में कितना ब्याज होगा? ॥६॥ ६० पर २ माह में ५ पुराण और ३ पण ब्याज होता है; १०० पण १ वर्ष का ब्याज बतलाओ ॥७॥ १५० को १$\frac{1}{2}$ माह तक उधार देने से १५ ब्याज प्राप्त होता है। इसी अर्घ से ३०० पर १० माह का ब्याज क्या होगा? ॥८॥ एक व्यापारी ने ६३ कार्षापण, १०८ पर ८ प्रतिमाह की दर से उधार दिये, बतलाओ ७$\frac{1}{5}$ माह में कितना ब्याज होगा ॥९॥

---

(४) बीजीय रूप से $ब = \frac{ध \times अ \times बा}{आ \times धा}$ जहाँ आ, धा और बा प्रमाण अथवा दर सम्बन्धी क्रमशः अवधि, मूलधन और ब्याज हैं और अ, ध तथा ब इच्छा की क्रमशः अवधि, मूलधन और ब्याज हैं। प्रमाण और इच्छा के विशेष स्पष्टीकरण के लिये अध्याय ५ की गाथा २ की पाद टिप्पणी देखिये।

(५) ब्याज की दर यदि उल्लिखित न हो तो उसे प्रतिमास समझना चाहिये।

मूलानयनसूत्रम्—

मूलं स्वकालगुणितं स्वफलेन विभाजितं तदिच्छायाः ।
कालेन भजेल्लब्धं फलेन गुणितं तदिच्छा स्यात् ॥ १० ॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चार्धकशतयोगे पञ्च पुराणान्दलोनमासौ द्वौ । वृद्धिं लभते कश्चित् किं मूलं तस्य मे कथय ॥११॥
सप्तत्याः सार्धमासेन फलं पञ्चार्धमेव च । व्यर्धाष्टमासे मूलं किं फलयोः सार्धयोर्द्वयोः ॥ १२ ॥
त्रिकपञ्चकषट्कशते यथा नवाष्टादशाथ पञ्चकृतिः ।
पञ्चांशकेन मिश्रा षट्सु हि मासेषु कानि मूलानि ॥ १३ ॥

कालानयनसूत्रम्—

कालगुणितप्रमाणं स्वफलेच्छाभ्यां हृतं ततः कृत्वा ।
तदिहेच्छाफलगुणितं लब्धं कालं बुधाः प्राहुः ॥ १४ ॥

उधार दिये गये मूलधन को निकालने के लिये नियम—

मूलधन राशि को उसी से सम्बन्धित समय द्वारा गुणित करते हैं और सम्बन्धित ब्याज द्वारा विभाजित करते हैं। तब इस भजनफल को (उधार दिये गये) मूलधन से सम्बन्धित अवधि द्वारा विभाजित करते हैं; यह अंतिम भजनफल जब उपार्जित ब्याज द्वारा गुणित किया जाता है तब वह मूलधन प्राप्त होता है जिस पर कि उक्त ब्याज प्राप्त हुआ है ॥१०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ब्याज दर $२\frac{१}{२}$ प्रतिशत प्रतिमाह से $१\frac{१}{२}$ माह तक रकम उधार देकर एक व्यक्ति ५ पुराण ब्याज प्राप्त करता है। मुझे बतलाओ कि उस ब्याज के सम्बन्ध में मूलधन क्या है ? ॥११॥ ७० पर $१\frac{१}{२}$ माह में $२\frac{१}{२}$ ब्याज होता है। यदि $७\frac{१}{२}$ माह में $२\frac{१}{२}$ ब्याज होता हो तो बतलाओ कि कितना मूलधन ब्याज पर दिया गया है ? ॥१२॥ क्रमशः ३, ५ और ६ प्रतिशत प्रति माह की दर से उधार देने पर ६ माह में प्राप्त होने वाले ब्याज क्रमशः ९, १८ और $२५\frac{१}{५}$ हैं; कौन-कौन से मूलधन ब्याज पर दिये गये हैं ? ॥१३॥

अवधि निकालने के लिये नियम—

मूलधन को सम्बन्धित अवधि से गुणित करो; तब इस गुणनफल को उसी से सम्बन्धित ब्याज दर से भाजित करो और उधार दी हुई रकम से भी भाजित करो। प्राप्त भजनफल को उधार दी हुई रकम के ब्याज द्वारा गुणित करो। बुद्धिमान मनुष्य कहते हैं कि परिणामी गुणनफल (उपार्जित ब्याज की) अवधि होता है ॥१४॥

---

(१०) प्रतीक रूप से, $\frac{\text{प} \times \text{आ} \times \text{ब}}{\text{ब} \times \text{अ}} = \text{प}$

(१४) प्रतीक रूप से, $\frac{\text{प} \times \text{आ} \times \text{ब}}{\text{ब} \times \text{प}} = \text{अ}$

अत्रोद्देशकः

सप्तार्धशतकयोगे वृद्धिस्त्वष्टाप्रविंशतिरशीत्या ।
कालेन केन लब्धा कालं विगणय्य कथय सखे ॥ १५ ॥
विंशतिषट्शतकस्य प्रयोगतः सप्तगुणषष्टिः । वृद्धिरपि चतुरशीतिः कथय सखे कालमाशु त्वम् ॥१६॥
षट्कशतेन हि युक्ताः षण्णवतिर्वृद्धिरत्र संदृष्टा । सप्तोत्तरपञ्चाशत् त्रिपञ्चभागश्च कः कालः ॥१७॥

भाण्डप्रतिभाण्डसूत्रम्—

भाण्डस्वमूल्यभक्तं प्रतिभाण्डं भाण्डमूल्यसंगुणितम् ।
स्वेच्छाभाण्डाभ्यस्तं भाण्डप्रतिभाण्डमूल्यफलमेतत् ॥ १८ ॥

अत्रोद्देशकः

क्रीतान्यष्टौ शुण्ठ्याः पलानि षड्भिः पणैः सपादांशैः ।
पिप्पल्याः पलपञ्चकमथ पादोनैः पणैर्नवभिः ॥ १९ ॥
शुण्ठ्याः पलैर्[1] केनचिदशीतिभिः कति पलानि पिप्पल्याः ।
क्रीतानि विचिन्त्य त्वं गणितविदाचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥ २० ॥

इति मिश्रकव्यवहारे पञ्चराशिविधिः समाप्तः ।

वृद्धिविधानम्

इतः परं मिश्रकव्यवहारे वृद्धिविधानं व्याख्यास्यामः ।

---

१ M और B दोनों में अशुद्ध पाठ है : कश्चित् त्वशीतिभिः स च पलानि पिप्पल्याः.

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे मित्र ! अवधि की गणना कर बतलाओ कि ३$\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से ८० पर २८ ब्याज कितने समय में प्राप्त होगा ? ॥१५॥ २० प्रति ६०० प्रतिमाह के अर्घ से उधार दिया गया धन ४२० है। ब्याज भी ८४ है। हे मित्र ! मुझे शीघ्र बतलाओ कि यह ब्याज कितनी अवधि में उपार्जित हुआ है ?॥१६॥ ६ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से ९६ उधार दिये जाते हैं। उन पर ५७$\frac{3}{5}$ ब्याज होता है। यह ब्याज कितनी अवधि में प्राप्त हुआ होगा ? ॥१७॥

भांडप्रतिभांड (वस्तुओं के पारस्परिक विनिमय) के सम्बन्ध में नियम—

बदले में ली गई वस्तु के परिमाण को उसके स्वमूल्य तथा बदले में दी गई वस्तु के परिमाण द्वारा विभाजित करते हैं। तब, उसे बदले में दी गई वस्तु के मूल्य द्वारा गुणित करते हैं और तब, बदली जाने वाली (जिसे बदलना इष्ट है) वस्तु के परिमाण द्वारा गुणित करते हैं। यह परिणामी गुणनफल, बदले में ली गई वस्तु तथा बदले में दी गई वस्तु के मूल्यों की संवादी इष्ट राशि होती है ॥१८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

८ पल शुण्ठि (सूखी अदरख) ६$\frac{1}{4}$ पण में खरीदी गई और ५ पल लम्बी मिर्च ८$\frac{3}{4}$ पण में खरीदी गई। हे गणितज्ञ ! विचारकर मुझे शीघ्र बतलाओ कि ऊपर लिखी हुई दर से खरीदी जाने वाली लम्बी मिर्च, ८० पल सूखी अदरख (सोंठ) के बदले में कितने पल खरीदी जा सकेगी ? ॥१९–२०॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में पंचराशिक विधि नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

वृद्धि विधान [ब्याज]

इसके पश्चात्, मिश्रक व्यवहार में हम ब्याज पर व्याख्या करेंगे।

मूलवृद्धिमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

रूपेण कालवृद्ध्या युतेन मिश्रस्य भागहारविधिम् । कृत्वा लब्धं मूल्यं वृद्धिर्मूलोनमिश्रधनम् ॥२१॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चकशतप्रयोगे द्वादशमासैर्धनं प्रयुक्तं चेत् । साष्टा चत्वारिंशन्मिश्रं तन्मूलवृद्धी के ॥ २२ ॥

पुनरपि मूलवृद्धिमिश्रविभागसूत्रम्—

इच्छाकालफलघ्नं स्वकालमूलेन भाजितं सैकम् । संमिश्रस्य विभक्तं लब्धं मूलं विजानीयात् ॥२३॥

अत्रोद्देशकः

सार्धद्विशतकयोगे मासचतुष्केण किमपि धनमेकः ।
दत्त्वा मिश्रं लभते किं मूल्यं स्यात् त्रयस्त्रिंशत् ॥ २४ ॥

कालवृद्धिमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

मूलं स्वकालगुणितं स्वफलेच्छाभ्यां हृतं ततः कृत्वा ।

मिश्रित रकम में से धन और ब्याज अलग करने के लिये नियम—

मूलधन और ब्याज सम्बन्धी दिये गये मिश्रधन को जो दी गई अवधि के ब्याज में जोड़कर प्राप्त किया जाता है, ऐसी (ब्याज) राशि द्वारा ह्रासित किया जाय तो इष्ट मूलधन प्राप्त होता है; और इष्ट ब्याज को मिश्रित धन में से (निकाले हुए) इष्ट मूलधन को घटाकर प्राप्त कर लेते हैं ॥२१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि कोई धन ५ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से ब्याज पर दिया जाय तो १२ माह में मिश्रधन ४८ हो जाता है । बतलाओ कि मूलधन और ब्याज क्या हैं ? ॥२२॥

मिश्रधन में से मूलधन और ब्याज अलग करने के लिये दूसरा नियम—

दिये गये समय तथा ब्याज दर के गुणनफल को समयदर तथा मूलधनदर द्वारा भाजित करते हैं । प्राप्त फल में १ जोड़ने से प्राप्त राशि द्वारा मिश्रधन को भाजित करते हैं जिससे परिणामी भजनफल इष्ट मूलधन होता है ॥२३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

$२\frac{१}{२}$ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से रकम को ब्याजपर देने से किसी को चार माह में ३३ मिश्रधन प्राप्त होता है । बतलाओ मूलधन क्या है ? ॥२४॥

मिश्र योग में से अवधि तथा ब्याज को अलग करने के लिये नियम—

मूलधनदर को अवधि दर द्वारा गुणित करो और ब्याज दर तथा दिये गये मूलधन द्वारा

---

(२१) प्रतीक रूप से $ध = \dfrac{म}{१ + \dfrac{१ \times अ \times बा}{आ \times धा}}$, जहाँ म = ध + ब है; इसलिये ब = म − ध

(२३) प्रतीक रूप से, $ध = म \div \left\{ \dfrac{अ \times बा}{आ \times धा} + १ \right\}$, स्पष्ट है कि यह बहुत कुछ गाथा २१ में दिये गये सूत्र के समान है ।

सैकं तेनाप्तस्य च मिश्रस्य फलं हि वृद्धिः स्यात् ॥ २५ ॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चकशतप्रयोगे फलार्थिना योजितैव धनषष्टिः ।
कालः स्ववृद्धिसहितो विंशतिरपि कः कालः ॥ २६ ॥
अर्धत्रिकसप्तत्याः सार्धाया योगयोजितं मूलम् ।
पञ्चोत्तरसप्तशतं मिश्रमशीतिः स्वकालवृद्ध्योर्हि ॥ २७ ॥
व्यर्धचतुष्काशीत्या युक्ता मासद्वयेन सार्धेन ।
मूलं चतुःशतं षट्त्रिंशन्मिश्रं हि कालवृद्ध्योर्हि ॥ २८ ॥

मूलकालमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

स्वफलोद्धृतप्रमाणं कालचतुर्वृद्धिताडितं शोध्यम् ।
मिश्रकृतेस्तन्मूलं मिश्रे क्रियते तु संक्रमणम् ॥ २९ ॥

विभाजित करो। परिणामी राशिको १ में मिलाओ। प्राप्तफल द्वारा मिश्रयोग को विभाजित करने पर इष्ट ब्याज प्राप्त होता है ॥२५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्ध से किसी साहूकार ने ६० उधार दिये। अवधि तथा समय मिलाकर २० होता है। बतलाओ कि अवधि क्या है? ॥२६॥ $१\frac{१}{२}$ प्रति $७०\frac{१}{२}$ प्रति मास की दर से ब्याज पर दिया गया मूलधन ७०५ है। समय और ब्याज का मिश्रयोग ८० है। समय तथा ब्याज के मानों को अलग-अलग निकालो ॥२७॥ $३\frac{१}{२}$ प्रति ८० की दर से $२\frac{१}{२}$ माहों के लिये ब्याज पर दिया गया मूलधन ४०० है और समय तथा ब्याज का मिश्रयोग ३६ है। समय तथा ब्याज अलग-अलग बतलाओ ॥२८॥

मूलधन और ब्याज की अवधि को उनके मिश्रयोग में से अलग करने के लिये नियम—

अवधि और मूलधन के दिये गये मिश्रयोग के वर्ग में से वह राशि घटाई जाती है जो मूलधन-दर को ब्याजदर से भाजित करने और अवधिदर तथा दिये गये ब्याज की चौगुनी राशि द्वारा गुणित करने पर प्राप्त होती है। इस परिणामी शेष के वर्गमूल को दिये गये मिश्रयोग के सम्बन्ध में संक्रमण क्रिया* करने के उपयोग में लाते हैं ॥२९॥

(२५) प्रतीक रूप से, $ब = म \div \left\{ \frac{धा \times आ}{बा \times ध} + १ \right\} = ब$, जहाँ $म = ब + अ$

(२९) प्रतीक रूप से, $\left\{ \frac{\sqrt{म^२ - \frac{धा \times आ}{बा} \times ४ ब \times म}}{२} \right\} = ध$ अथवा अ, (यथा स्थिति) जहाँ, $म = ध + अ$; दिये गये नियम के अनुसार, मूल (करणी) गत राशि का मान $(ध - अ)^२$ है; इसके वर्गमूल तथा मिश्र इन दोनों के सम्बन्ध में संक्रमण की क्रिया की जाती है।

---

* संक्रमण क्रिया को समझने के लिये अध्याय ६ का श्लोक २ देखिये।

अत्रोद्देशकः

सप्तत्या वृद्धिरियं चतुःपुराणाः फलं च पञ्चकृतिः ।
मिश्रं नव पञ्चगुणाः पादेन युतास्तु किं मूलम् ॥ ३० ॥
त्रिकषष्ट्या दत्त्वैकः किं मूलं केन कालेन । प्राप्तोऽष्टादशवृद्धिं षट्षष्टिः कालमूलमिश्रं हि ॥ ३१ ॥
अध्यर्धमासिकफलं षष्ट्याः पञ्चार्धमेव संदृष्टम् ।
वृद्धिस्तु चतुर्विंशतिरथ षष्टिर्मूलयुक्तकालश्च ॥ ३२ ॥

प्रमाणफलेच्छाकालमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

मूलं स्वकालवृद्धिद्विकृतिगुणं छिन्नमितरमूलेन । मिश्रकृतिशेषमूलं मिश्रे क्रियते तु संक्रमणम् ॥३३॥

अत्रोद्देशकः

अध्यर्धमासकस्य च शतस्य फलकालयोश्च मिश्रधनम् ।
द्वादश दलसंमिश्रं मूलं त्रिंशत्फलं पञ्च ॥ ३४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

४ पुराण, ७० पर प्रतिमाह ब्याज है । कुल पर प्राप्त ब्याज २५ है । मूलधन तथा ब्याज की अवधि का मिश्रयोग ४५¼ है । कितना मूलधन उधार दिया गया है ? ॥३०॥ ३ प्रति ६० प्रतिमास के अर्घ से कोई मनुष्य कितना मूलधन कितने समय के लिये ब्याज पर लगाये ताकि उसे ब्याज १८ प्राप्त हो जबकि उस अवधि तथा उस मूलधन का मिश्रयोग ६६ दिया गया है ॥३१॥ ६० पर १½ माह में ब्याज केवल २½ है । यहाँ ब्याज २४ है और मूलधन तथा अवधि का मिश्रयोग ६० है । समय तथा मूलधन क्या हैं ? ॥३२॥

ब्याजदर तथाइष्ट अवधि को मिश्रितयोग में से अलग-अलग करने के लिये नियम—

मूलधनदर स्व समयदर द्वारा गुणित किया जाता है, तथा दिये गये ब्याज से और ४ से भी गुणित करने के उपरान्त अन्य दिये गये मूलधन द्वारा विभाजित किया जाता है । इस परिणामी भजनफल को दिये गये मिश्रयोग के वर्ग में से घटाकर प्राप्त शेष के वर्गमूल को मिश्रयोग के सम्बन्ध में संक्रमण क्रिया करने के उपयोग में लाते हैं ॥३३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अर्ध अधिक प्रतिशत प्रतिमाह की इष्ट दर से ब्याज दर और अवधि का मिश्रयोग १२½ होता है । मूलधन ३० है और उस पर ब्याज ५ है । बतलाओ ब्याज दर और अवधि क्या-क्या हैं ? ॥३४॥

---

(३३) प्रतीक रूप से, $\sqrt{म^2 - \frac{धा \times आ \times ब \times ४}{अ}}$ को 'म' के साथ इष्ट संक्रमण क्रिया करने के उपयोग में लाते हैं । यहाँ म = बा + अ है ।

मूलकालवृद्धिमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

मिश्रादूनितराशिः कालस्तस्यैव रूपलाभेन । सैकेन भजेन्मूलं स्वकालमूलोनितं फलं मिश्रम् ॥३५॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चकशतप्रयोगे न ज्ञातः कालमूलफलराशिः । तन्मिश्रं द्वाशीतिर्मूलं किं कालवृद्धी के ॥ ३६ ॥

बहुमूलकालवृद्धिमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

विभजेत्स्वकालताडितमूलसमासेन फलसमासहतम् ।
कालाभ्यस्तं मूलं पृथक् पृथक् चादिशेद् वृद्धिम् ॥ ३७ ॥

अत्रोद्देशकः

चत्वारिंशत्त्रिंशद्विंशतिपञ्चाशदत्र मूलानि । मासाः पञ्चचतुस्त्रिकषट् फलपिण्डश्चतुर्स्त्रिंशत् ॥३८॥

१ हस्तलिपि में यह अशुद्ध रूप प्राप्य है; शुद्ध रूप 'द्वयशीति' छंद की आवश्यकता को समाधानित नहीं करता है ।

मूलधन, ब्याज और समय को उनके मिश्रयोग में से अलग-अलग प्राप्त करने के लिये नियम—

दिये गये मिश्रयोग में से कोई मन से चुनी हुई संख्या को घटाने पर इष्ट समय प्राप्त हुआ मान लिया जाता है । उस अवधि के लिये १ पर ब्याज निकालकर उसमें १ जोड़ते हैं । तब, दिये गये मिश्रितयोग में से मन से चुनी गई अवधि घटाकर शेष राशि को उपर्युक्त प्राप्त राशि द्वारा विभाजित करते हैं । परिणामी भजनफल इष्ट मूलधन होता है । मिश्रयोग को निज के संवादी समय और मूलधन द्वारा ह्रासित करने पर इष्ट ब्याज प्राप्त होता है ॥३५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से उधार दी गई रकम के विषय में अवधि, मूलधन और ब्याज का निरूपण करने वाली राशियाँ ज्ञात नहीं हैं । उनका मिश्रयोग ८२ है । अवधि, मूलधन और ब्याज निकालो ॥३६॥

विभिन्न धनों पर विभिन्न अवधियों में उपार्जित विभिन्न ब्याजों को उन्हीं के मिश्रयोग में से अलग-अलग ब्याज प्राप्त करने के लिये नियम—

प्रत्येक मूलधन संवादी समय से गुणित होकर तथा ब्याजों की कुल दत्त रकम द्वारा गुणित होकर, अलग-अलग उन गुणनफलों के योग द्वारा विभाजित किया जाता है जो प्रत्येक मूलधन को उसके संवादी समय द्वारा गुणित करने पर प्राप्त होते हैं । प्राप्त फल उस मूलधन सम्बन्धी ब्याज घोषित किया जाता है ॥३७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस प्रश्न में दिये गये मूलधन ४०, ३०, २० और ५० हैं; और मास क्रमशः ५, ४, ३ और ६ हैं । ब्याज की राशियों का योग ३४ है । प्रत्येक ब्याज राशि निकालो ॥३८॥

(३५) यहाँ ३ अज्ञात राशियाँ दी गई हैं । समय का मान मन से चुन लिया जाता है और अन्य दो राशियाँ अध्याय ६ की २१वीं गाथा के नियमानुसार प्राप्त हो जाती हैं ।

(३७) प्रतीक रूप से, $\frac{ध_1 अ_1 म}{ध_1अ_1 + ध_2अ_2 + ध_3अ_3 + \ldots} = ब_1$; और

$\frac{ध_2 अ_2 म}{ध_1अ_1 + ध_2अ_2 + ध_3अ_3 + \ldots} = ब_2$; जहाँ $म = ब_1 + ब_2 + ब_3 + \ldots$; $ध_1, ध_2, ध_3$ आदि विभिन्न मूलधन हैं तथा $अ_1, अ_2, अ_3$ आदि विभिन्न अवधियाँ हैं ।

बहुमूलमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

स्वफलैः स्वकालभक्तैस्तद्युत्या मूलमिश्रधनराशिम् ।
छिन्द्यादंशं गुणयेत् समागमो भवति मूलानाम् ॥ ३९ ॥

अत्रोद्देशकः

दशषट्त्रिपञ्चदशका वृद्धय इषवश्चतुस्त्रिषण्मासाः ।
मूलसमासो दृष्टश्चत्वारिंशच्छतेन संमिश्रा ॥ ४० ॥
पञ्चार्धषड्दशापि च सार्धाः षोडश फलानि च त्रिंशत् ।
मासास्तु पञ्च षट् खलु सप्ताष्ट दशाप्यशीतिरथ पिण्डः ॥ ४१ ॥

बहुकालमिश्रविभागानयनसूत्रम्—

स्वफलैः स्वमूलभक्तैस्तद्युत्या कालमिश्रधनराशिम् ।
छिन्द्यादंशं गुणयेत् समागमो भवति कालानाम् ॥ ४२ ॥

१ हस्तलिपि में छिन्द्यादंशान् पाठ है जो शुद्ध प्रतीत नहीं होता है ।

विभिन्न मूलधनों को उन्हीं के मिश्रयोग से अलग-अलग करने के नियम—

उधार दी गई विभिन्न मूलधन की राशियों के मिश्रयोग का निरूपण करनेवाली राशि को उन भजनफलों के योग द्वारा विभाजित करो जो विभिन्न ब्याजों को उनकी संवादी अवधियों द्वारा अलग-अलग विभाजित करने पर प्राप्त होते हैं । परिणामी भजनफल को क्रमशः ऐसे विभिन्न भजनफलों द्वारा विभाजित करो जो कि विभिन्न ब्याजों को उनकी संवादी अवधियों द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त होते हैं । इस प्रकार विभिन्न मूलधन की राशियों को अलग-अलग निकालते हैं ॥३९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिये गये विभिन्न ब्याज १०, ६, ३ और १५ हैं और संवादी अवधियाँ क्रमशः ५, ४, ३ और ६ मास हैं; विभिन्न मूलधन की रकमों का योग १४० है । ये मूलधन की रकमें कौन-कौन सी हैं ? ॥४०॥ विभिन्न ब्याज राशियाँ ५/२, ६, १० १/२, १६ और ३० हैं । उनकी संवादी अवधियाँ क्रमशः ५, ६, ७, ८ और १० माह हैं । विभिन्न मूलधन की रकमों का मिश्रयोग ८० है । इन रकमों को अलग-अलग बतलाओ ॥४१॥

विभिन्न अवधियों को उनके मिश्रयोग में से अलग-अलग प्राप्त करने के लिये नियम —

विभिन्न अवधियों के मिश्रयोग का निरूपण करनेवाली राशि को उन विभिन्न भजनफलों के योग द्वारा विभाजित करो जो कि विभिन्न ब्याजों को उनके संवादी मूलधनों द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त होते हैं । और तब, परिणामी भजनफल को अलग-अलग उपर्युक्त भजनफलों में से प्रत्येक द्वारा गुणित करो । इस प्रकार विभिन्न अवधियाँ निकाली जाती हैं ॥४२॥

(३९) प्रतीक रूप से, $\dfrac{\text{म}}{\frac{\text{ब}_1}{\text{अ}_1}+\frac{\text{ब}_2}{\text{अ}_2}+\frac{\text{ब}_3}{\text{अ}_3}+\dots}\times\dfrac{\text{ब}_1}{\text{अ}_1}=\text{घ}_1$;

और, $\dfrac{\text{म}}{\frac{\text{ब}_1}{\text{अ}_1}+\frac{\text{ब}_2}{\text{अ}_2}+\frac{\text{ब}_3}{\text{अ}_3}+\dots}\times\dfrac{\text{ब}_2}{\text{अ}_2}=\text{घ}_2$, जहाँ $\text{म}=\text{घ}_1+\text{घ}_2+\text{घ}_3+\dots$ इत्यादि

(४२) प्रतीक रूप से, $\dfrac{\text{म}}{\frac{\text{ब}_1}{\text{घ}_1}+\frac{\text{ब}_2}{\text{घ}_2}+\frac{\text{ब}_3}{\text{घ}_3}+\dots}\times\dfrac{\text{ब}_1}{\text{घ}_1}=\text{अ}_1$, जहाँ $\text{म}=\text{अ}_1+\text{अ}_2+\text{अ}_3+$ ...इत्यादि; इसी तरह अ_2, अ_3 इत्यादि के मान निकालते हैं ।

अत्रोद्देशकः

चत्वारिंशत्त्रिंशद्विंशतिपञ्चाशदत्र मूलानि ।
दशषट्त्रिपञ्चदश फलमष्टादश कालमिश्रधनराशिः ॥ ४२ ॥

प्रमाणराशौ फलेन तुल्यमिच्छाराशिमूलं च तदिच्छाराशौ वृद्धिं च संपीड्य तन्मिश्रराशौ प्रमाणराशेर्वृद्धिविभागानयनसूत्रम्—

कालगुणितप्रमाणं परकालहृतं तदेकगुणमिश्रधनात् ।
इतरार्धकृतियुतान् पदमितरार्धोनं प्रमाणफलम् ॥ ४४ ॥

अत्रोद्देशकः

मासचतुष्कशतस्य प्रनष्टवृद्धिः प्रयोगमूलं तत् ।
स्वफलेन युतं द्वादश पञ्चकृतिस्तस्य कालोऽपि ॥ ४५ ॥
मासत्रितयाशीत्याः प्रनष्टवृद्धिः स्वमूलफलराशेः । पञ्चमभागेनोनाश्चाष्टौ वर्षेण मूलवृद्धी के ॥४६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस प्रश्न में, दिये गये मूलधन ४०, ३०, २० और ५० हैं तथा संवादी ब्याज राशियाँ क्रमशः १०, ६, ३ और १५ हैं। विभिन्न अवधियों का मिश्रयोग १८ है। बतलाओ कि अवधियाँ क्या-क्या हैं? ॥४३॥

ब्याजदर के बराबर दिया गया मूलधन और इस उधार दिये गये मूलधन के ब्याज, इन दोनों के मिश्रयोग को निरूपित करनेवाली राशि में से मूलधनदर एवं ब्याजदर अलग-अलग निकालने के लिये नियम—

मूलधनदर को अवधिदर द्वारा गुणित कर उसे जिस समय तक ब्याज लगाया गया है उस समय द्वारा विभाजित करते हैं। इस परिणामी भजनफल को दिये गये मिश्रयोग द्वारा एक बार गुणित करते हैं, और तब, उसमें उपर्युक्त भजनफल की आधी राशि के वर्ग को जोड़ते हैं। इस तरह प्राप्त राशि का वर्गमूल निकालते हैं। प्राप्त फल को उसी भजनफल की अर्द्धराशि द्वारा ह्रासित करते हैं तो मूलधन के बराबर इष्ट ब्याजदर प्राप्त होती है ॥४४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ब्याजदर प्रतिशत प्रति ४ माह अज्ञात है। वही अज्ञात राशि उधार दिया गया मूलधन भी है। यह सुद के ब्याज से जोड़ी जाने पर १२ हो जाती है। २५ माह अवधि है जिसमें कि वह ब्याज उपार्जित हुआ है। ब्याजदर को निकालो जो मूलधन के तुल्य है ॥४५॥ ब्याजदर प्रति ८० प्रति ३ माह अज्ञात है। एक साल के ब्याज तथा उस अज्ञात राशि के तुल्य मूलधन का मिश्रयोग ७$\frac{४}{५}$ है। बतलाओ कि मूलधन और ब्याजदर क्या क्या हैं? ॥४६॥

---

(४४) प्रतीक रूप से, $\sqrt{\frac{\text{पा आ}}{\text{अ}} \times \text{म} + \left(\frac{\text{पा आ}}{\text{२अ}}\right)^{2}} - \frac{\text{पा आ}}{\text{२अ}}$ = बा जो ध के तुल्य है।

समानमूलवृद्धिमिश्रविभागसूत्रम्—

अन्योन्यकालविनिहतमिश्रविशेषस्य तस्य भागाख्यम् ।
कालविशेषेण हृते तेषां मूलं विजानीयात् ॥ ४७ ॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चाशदष्टपञ्चाशन्मिश्रं षट्षष्टिरेव च । पञ्च सप्तैव नव हि मासाः किं फलमानय ॥ ४८ ॥
त्रिंशच्चैकत्रिंशद् द्वित्र्यंशाः स्युः पुनस्त्रयस्त्रिंशत् । सत्र्यंशा मिश्रधनं पञ्चत्रिंशच्च गणकादात् ॥४९॥
कश्चिन्नरश्चतुर्णां त्रिभिश्चतुर्भिश्च पञ्चभिः षड्भिः । मासैर्लब्धं किं स्यान्मूलं शीघ्रं समाचक्ष्व ॥५०॥

समानमूलकालमिश्रविभागसूत्रम्—

अन्योन्यवृद्धिसंगुणमिश्रविशेषस्य तस्य भागाख्यम् ।
वृद्धिविशेषेण हृते लब्धं मूलं बुधाः प्राहुः ॥ ५१ ॥

अत्रोद्देशकः

एकत्रिपञ्चमिश्रितविंशतिरिह कालमूलयोर्मिश्रम् ।
षड् दश चतुर्दश स्युर्लाभाः किं मूलमत्र साम्यं स्यात् ॥ ५२ ॥

मूलधन जो सब दशाओं में एकसा रहता है, और (विभिन्न अवधियों के) ब्याजों को, उनके मिश्रयोग में से अलग-अलग करने के लिये नियम—

कोई भी दो दिये गये मिश्रयोगों को क्रमशः एक दूसरे के ब्याज की अवधियों द्वारा गुणित करने से प्राप्त राशियों के अंतर द्वारा विभाजित करने पर जो भजनफल प्राप्त होता है वह उन दिये गये मिश्रयोगों सम्बन्धी इष्ट मूलधन है ॥४७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मिश्रयोग ५०, ५८ और ६६ हैं और अवधियाँ जिनमें कि ब्याज उपार्जित हुए हैं, क्रमशः ५,७ और ८ माह हैं । प्रत्येक दशा में ब्याज बतलाओ ॥४८॥ हे गणितज्ञ ! किसी मनुष्य ने ४ व्यक्तियों को क्रमशः ३, ४, ५ और ६ मास के अन्त में उसी मूलधन और ब्याज के मिश्रयोग ३०, ३१$\frac{2}{3}$, ३३$\frac{1}{3}$ और ३५ दिये । मुझे शीघ्र बतलाओ कि यहाँ मूलधन क्या है ? ॥ ४९-५० ॥

मूलधन (जो प्रत्येक दशा में वही रहता हो) और अवधि (जितने समय में ब्याज उपार्जित किया गया हो) को उन्हीं के मिश्रयोग में से अलग-अलग करने के लिये नियम—

कोई भी दो मिश्रयोगों को क्रमशः एक दूसरे के ब्याज द्वारा गुणित कर, प्राप्त राशियों के अन्तर को दो चुने हुए ब्याजों के अन्तर द्वारा विभाजित करने पर भजनफल के रूप में इष्ट मूलधन प्राप्त होता है, ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥५१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मूलधन और अवधियों के मिश्रयोग २१, २३ और २५ हैं । यहाँ ब्याज ६, १० और १४ हैं । बतलाओ कि समान जहाँ वाला मूलधन क्या है ? ॥५२॥ दिये गये मिश्रयोग ३५, ३७ और ३९ हैं;

(४७) प्रतीक रूप से, $\frac{\text{म}_1 \text{अ}_2 \backsim \text{म}_2 \text{अ}_1}{\text{अ}_1 \backsim \text{अ}_2} = \text{ध}$

(५१) प्रतीक रूप से, $\frac{\text{म}_1 \text{ब}_2 \backsim \text{म}_2 \text{ब}_1}{\text{ब}_1 \backsim \text{ब}_2} = \text{ध}$, जहाँ म_1, म_2, आदि, विभिन्न मिश्रयोग हैं ।

पञ्चत्रिंशन्मिश्रं सप्तत्रिंशच्च नवयुतत्रिंशत् । विंशतिरष्टाविंशतिरथ षट्त्रिंशच्च वृद्धिधनम् ॥ ५३ ॥

उभयप्रयोगमूलानयनसूत्रम्—

रूपस्येच्छाकालादुभयफले ये तयोर्विशेषेण । लब्धं विभजेन्मूलं स्वपूर्वसंकल्पितं भवति[1] ॥ ५४ ॥

अत्रोद्देशकः

उद्वृत्त्या षट्कशते प्रयोजितोऽसौ पुनश्च नवकशते ।
मासैस्त्रिभिश्च लभते सैकाशीतिं क्रमेण मूलं किम् ॥ ५५ ॥
त्रिवृद्ध्यैव शते मासे प्रयुक्तश्चाष्टभिःशते । लाभोऽशीतिः कियन्मूलं भवेत्तन्मासयोर्द्वयोः ॥ ५६ ॥

वृद्धिमूलविमोचनकालानयनसूत्रम्—

मूलं स्वकालगुणितं फलगुणितं तत्प्रमाणकालाभ्याम् ।
भक्तं स्कन्धस्य फलं मूलं कालं फलात्प्राग्वत् ॥ ५७ ॥

१ इसी नियम को कुछ अशुद्ध रूप में परिवर्तित पाठ में इस प्रकार उल्लिखित किया गया है—

पुनरप्युभयप्रयोगमूलानयनसूत्रम्—

इच्छाकालादुभयप्रयोगवृद्धिं समानीय । तद्वृद्ध्यन्तरभक्तं लब्धं मूलं विजानीयात् ॥

ब्याज २०, २८ और ३६ हैं । समान अंशों वाला मूलधन क्या है ? ॥५३॥

दो भिन्न ब्याजदरों पर लगाया हुआ मूलधन प्राप्त करने के लिये नियम—

दो ब्याज राशियों के अंतर को उन दो राशियों के अंतर द्वारा विभाजित करो जो दी हुई अवधियों में १ पर ब्याज होती हैं । यह भजनफल स्वपूर्व संकल्पित मूलधन होता है ॥५४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

६ प्रतिशत की दर पर उधार लेकर, और तब ९ प्रतिशत की दर पर उधार देकर कोई व्यक्ति चलन (differential) लाभ के द्वारा ठीक ३ माह के पश्चात् ८१ प्राप्त करता है । मूलधन क्या है ? ॥५५॥ ३ प्रतिशत प्रतिमास के अर्घ से कोई रकम उधार ली जाकर ८ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से ब्याज परदी जाती है । चलन लाभ, २ माह के अन्त में ८० होता है । बतलाओ वह रकम क्या है ? ॥५६॥

जब मूलधन और ब्याज दोनों (किश्तों द्वारा) चुकाये जाते हों तब समय निकालने के नियम—

उधार दिया गया मूलधन किश्त के समय द्वारा गुणित किया जाता है और फिर ब्याज दर द्वारा गुणित किया जाता है । इस गुणनफल को मूलधनदर द्वारा और अवधिदर द्वारा विभाजित करने पर उस किश्त सम्बन्धी ब्याज प्राप्त होता है । इस ब्याज से, किश्त का मूलधन और ऋण को चुकाने का समय, दोनों को प्राप्त किया जाता है ॥५७॥

---

(५४) प्रतीक रूप से, $\dfrac{ब_1 \backsim ब_2}{\dfrac{1 \times अ_1 \times बा_1}{आ_1 \times था_1} - \dfrac{1 \times अ_2 \times बा_2}{आ_2 \times था_2}} = ध$

(५७) प्रतीक रूप से, $\dfrac{ध \times प \times ब}{था \times आ}$ = किश्त सम्बन्धी ब्याज, जहाँ प प्रत्येक किश्त की अवधि है ।

अत्रोद्देशकः

मासे हि पञ्चैव च सप्ततीनां मासद्वयेऽष्टादशकं प्रदेयम् ।
स्कन्धं चतुर्भिः सहिता त्वशीतिः मूलं भवेत्को नु विमुक्तिकालः ॥ ५८ ॥
षष्ट्या मासिकवृद्धिः पञ्चैव हि मूलमपि च षट्त्रिंशत् ।
माससित्रतये स्कन्धं त्रिपञ्चकं तस्य कः कालः ॥ ५९ ॥

समानवृद्धिमूलमिश्रविभागसूत्रम्—

मूलैः स्वकालगुणितैर्वृद्धिविभक्तैः समासकैर्विभजेत् ।
मिश्रं स्वकालनिघ्नं वृद्धिर्मूलानि च प्राग्वत् ॥ ६० ॥

अत्रोद्देशकः

द्विकषट्कचतुः शतके चतुः सहस्रं चतुः शतं मिश्रम् ।
मासद्वयेन वृद्ध्या समानि कान्यत्र मूलानि ॥ ६१ ॥
त्रिकशतपञ्चकसप्ततिपादोनचतुष्कषष्टियोगेषु । नवशतसहस्रसंख्या मासत्रितये समा युक्ता ॥६२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ब्याजदर ५ प्रति ७० प्रतिमास है; प्रत्येक २ माह में चुकाई जाने वाली किश्त १८ है एवं उधार दिया गया मूलधन ८४ है। विमुक्ति काल (कर्ज चुकाने का समय) बतलाओ ॥५८॥ ६० पर प्रतिमास ब्याज ५ होता है। उधार दिया गया मूलधन ३६ है। ३ माह में चुकाई जाने वाली प्रत्येक किश्त १५ है। उस कर्ज के चुकने का समय बतलाओ ॥५९॥

जिन पर समान ब्याज उपार्जित हुआ है ऐसे विभिन्न मूलधनों को मिश्रयोग से अलग-अलग करने के लिये नियम—

मिश्रयोग को अवधि द्वारा गुणित कर, उन राशियों के योग से विभाजित करो जो (राशियाँ) विभिन्न मूलधनदरों को उनकी संवादी अवधिदरों द्वारा गुणित करने तथा संवादी ब्याजदरों द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त होती हैं। इस प्रकार ब्याज प्राप्त होता है और उससे मूलधन प्राप्त किये जाते हैं ॥६०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

२, ६ और ४ प्रतिशत प्रतिमास की दर से दिये गये मूलधनों का मिश्रयोग ४,४०० है। इन समस्त मूलधनों की २ माह की ब्याज राशियाँ बराबर होती हैं। बतलाओ कि वह ब्याजराशि क्या है और विभिन्न मूलधन क्या-क्या हैं ? ॥६१॥ कुल रकम ९,९००; ३ प्रतिशत, ५ प्रति ७० और ३$\frac{3}{4}$ प्रति ६० प्रतिमाह की दर से विभिन्न मूलधनों में ब्याज पर वितरित कर दी गई। प्रत्येक दशा में ३ माह में ब्याज बराबर-बराबर उपार्जित हुआ। उस समान ब्याजराशि को तथा विभिन्न मूलधनों को अलग-अलग प्राप्त करो ॥६२॥

---

(६०) प्रतीक रूप से, $\dfrac{म \times अ}{\dfrac{धा_1 \times आ_1}{बा_1} + \dfrac{धा_2 \times आ_2}{बा_2} + \ldots इत्यादि} = ब$; इसके द्वारा मूलधनों को अध्याय ६ की १० वीं गाथा के नियम द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

विमुक्तकालस्य मूलानयनसूत्रम्—
स्कन्धं स्वकालभक्तं विमुक्तकालेन ताडितं विभजेत् ।
निर्मुक्तकालवृद्ध्या रूपस्य हि सैकया मूलम् ॥ ६३ ॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चकशतप्रयोगे मासौ द्वौ स्कन्धमष्टकं दत्त्वा । मासैः षष्टिभिरिह वै निर्मुक्तः किं भवेन्मूलम् ॥६४॥
द्वौ सत्रिपञ्चभागौ स्कन्धं द्वादशदिनैर्ददात्येकः । त्रिकशतयोगे दशभिर्मासैर्मुक्तं हि मूलं किम् ॥६५॥

वृद्धियुक्तहीनसमानमूलमिश्रविभागसूत्रम्—
कालस्वफलोनाधिकरूपोद्धृतरूपयोगहृतमिश्रे[1] ।

---

[1] "मिश्रः" पाठ हस्तलिपियों में है; यहाँ व्याकरण की दृष्टि से मिश्रे शब्द अधिक संतोषजनक है ।

ज्ञात अवधि में चुकाई जाने वाली किश्तों सम्बन्धी उधार दिये गये मूलधन को निकालने का नियम—

किश्त की रकम को उसकी अवधि द्वारा विभाजित करते हैं और कर्ज चुकाने के समय (विमुक्ति काल) द्वारा गुणित करते हैं । अब प्राप्त राशि को उस राशि द्वारा विभाजित करते हैं जो १ में १ पर कर्ज निर्मुक्ति समय के लिये लगाये हुए ब्याज को जोड़ने पर प्राप्त होती है । इस प्रकार मूलधन प्राप्त होता है ॥६३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ प्रतिशत प्रतिमास की दर से जब प्रत्येक किश्त की अवधि २ मास रही, और प्रत्येक बार में ८ किश्त रूप में चुकाया गया तब एक मनुष्य ६० माह में ऋणमुक्त हुआ । बतलाओ उसने कितना धन उधार लिया था ? ॥६४॥

कोई व्यक्ति १२ दिनों में एक बार २$\frac{३}{५}$ किश्तरूप में देता है । यदि ब्याज दर ३ प्रतिशत प्रतिमास हो तो १० माह में चुकने वाले ऋण के परिमाण को बतलाओ ? ॥६५॥

ऐसे विभिन्न मूलधनों को अलग-अलग निकालने के लिये नियम जो उनके मिश्रयोग में जब उन्हीं के ब्याजों द्वारा मिलाये जाने पर अथवा उसमें से ह्रासित किये जाने पर एक दूसरे के तुल्य हो जाते हैं (सभी दत्त दशाओं में मूलधनों में ब्याज राशियाँ जोड़ी जाती हैं अथवा उनमें से घटायी जाती हैं)—

क्रमशः दी गई ब्याज दर के अनुसार, प्रत्येक दशा में, एक में उपार्जित ब्याज या तो मिलाया जाता है अथवा एक में से ह्रासित किया जाता है । तब, प्रत्येक दशा में, इन राशियों द्वारा एक को विभाजित किया जाता है । इसके पश्चात् , विभिन्न उधार दिये गये धनों के मिश्रयोग को इन परिणामी भजनफलों के योग द्वारा विभाजित किया जाता है । और मिश्र योग सम्बन्धी इस तरह बर्ते गये उन उपर्युक्त भजनफलों के योग के संवादी समानुपाती भाग द्वारा अलग-अलग प्रत्येक दशा में उसे गुणित

(६३) प्रतीक रूप से,

$$\frac{\frac{स}{प} \cdot अ}{१ + \frac{१ \times अ \times ब}{आ \times धा}} = ध; \text{ जहाँ }$$

स = किश्त (स्कंध) है
प = किश्त का समय है
और
अ = ऋण के चुकने की अवधि है ।

प्रक्षेपो गुणकारः स्वफलोनाधिकसमानमूलानि ॥ ६६ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकाष्टकशतैः प्रयोगतोऽष्टासहस्रपञ्चशतम् ।
विंशतिसहितं वृद्धिभिरुद्धृत्य समानि पञ्चभिर्मासैः ॥ ६७ ॥
त्रिकषट्काष्टकषष्ट्या मासद्वितये चतुस्सहस्राणि ।
पञ्चाशद्द्विशतयुतान्यतोऽष्टमासकफलादृते सदृशानि ॥ ६८ ॥
द्विकपञ्चकनवकशते मासचतुष्के त्रयोदशसहस्रम् ।
सप्तशतेन च मिश्रा चत्वारिंशत्सवृद्धिसममूलानि ॥ ६९ ॥

किया जाता है । इससे उधार दी गईं रकमें उत्पन्न होती हैं जो उनके ब्याजों द्वारा मिलाई जाने पर अथवा ह्रासित किये जाने पर समान हो जाती हैं ॥६६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

८,५२० रुपये क्रमशः ३, ५ और ८ प्रतिशत प्रतिमास की दर से (भागों में) ब्याज पर दिये जाते हैं । ५ माह में उपार्जित ब्याजों द्वारा ह्रासित करने पर वे दत्त रकमें बराबर हो जाती हैं । इस तरह ब्याज पर लगाये हुए धनों को बतलाओ ॥ ६७ ॥ ४,२५० द्वारा निरूपित कुल धन को (भागों में) क्रमशः ३, ६ और ८ प्रति ६० की दर से २ माह के लिये ब्याज पर लगाया गया है । ८ माह में होने वाले ब्याजों को धनों में से घटाने पर जो धन प्राप्त होते हैं वे तुल्य देखे जाते हैं । इस प्रकार विनियोजित विभिन्न धनों को बतलाओ ॥ ६८ ॥ १३,७४० रुपये, (भागों में) २, ५ और ९ प्रतिशत प्रतिमाह के अर्घ से ब्याज पर लगाये जाते हैं । ४ माह के लिये उधार दिये गये धनों में ब्याजों को जोड़ने पर वे बराबर हो जाते हैं । इन धनों को बतलाओ ॥ ६९ ॥ ३,६४३ रुपये (भागों में) क्रमशः १$\frac{1}{2}$, $\frac{5}{2}$ और $\frac{5}{2}$ प्रति ८० प्रतिमाह की दर से ब्याज पर लगाये जाते हैं । ८ माह में

---

(६६) प्रतीक रूप से,

$$\frac{\text{म}}{\dfrac{1}{1 \pm \left(\dfrac{1 \times \text{अ} \times \text{बा}_1}{\text{आ}_1 \times \text{घा}_1}\right)} + \dfrac{1}{1 \pm \left(\dfrac{1 \times \text{अ} \times \text{बा}_2}{\text{आ}_2 \times \text{घा}_2}\right)} + \text{इत्यादि}} \times \frac{1}{1 \pm \left(\dfrac{1 \times \text{अ} \times \text{बा}_1}{\text{आ}_1 \times \text{घा}_1}\right)} = \text{ध}_1$$

इसी प्रकार,

$$\frac{\text{म}}{\dfrac{1}{1 \pm \left(\dfrac{1 \times \text{अ} \times \text{बा}_1}{\text{आ}_1 \times \text{घा}_1}\right)} + \dfrac{1}{1 \pm \left(\dfrac{1 \times \text{अ} \times \text{बा}_2}{\text{आ}_2 \times \text{घा}_2}\right)} + \text{इत्यादि}} \times \frac{1}{1 \pm \left(\dfrac{1 \times \text{अ} \times \text{बा}_2}{\text{आ}_2 \times \text{घा}_2}\right)} = \text{ध}_2;$$

इसी तरह ध_3, ध_4 आदि के लिये ।

सैकार्धैकपञ्चार्धैकषडर्धैकाशीतियोगयुक्तास्तु ।
मासाष्टके षडधिका चत्वारिंशच्च षट्कृतिशतानि ॥ ७० ॥

संकलितस्कन्धमूलस्य मूलवृद्धिविमुक्तिकालनयनसूत्रम्—

स्कन्धाप्तमूलचितिगुणितस्कन्धेच्छाप्रघातियुतमूलं स्यात् ।
स्कन्धे कालेन फलं स्कन्धोद्धृतकालमूलहृतकालः ॥ ७१ ॥

अत्रोद्देशकः

केनापि संप्रयुक्ता षष्टिः पञ्चकशतप्रयोगेण । मासत्रिपञ्चभागात् सप्तोत्तरतश्च सप्तादिः ॥ ७२ ॥
तत्षष्टिसप्तांशकपदमितिसंकलितधनमेव । दत्त्वा तत्सप्तांशकवृद्धिं प्रादाच्च चितिमूलम् ॥
किं तद्वृद्धिः का स्यात् कालस्तदृणस्य मौक्षिको भवति ॥ ७३½ ॥

उत्पन्न हुए ब्याजों को मूलधनों में जोड़ने पर देखा जाता है कि वे बराबर हो जाते हैं। उन विनियोजित रकमों को निकालो ॥ ७० ॥

समान्तर श्रेढि बद्ध किस्तों द्वारा चुकाई गई ऋण की रकम के सम्बन्ध में धन, ब्याज और ऋण मुक्ति का समय निकालने के लिये नियम—

इष्ट ऋण धन वह मूलधन है जो मन से चुनी हुई (महत्तम प्राप्य किस्त की) रकम और श्रेढि के पदों की संख्या के भिन्नीय भाग के गुणनफल को (१ जिसका प्रथम पद है, १ प्रचय है और उपर्युक्त महत्तम ऋण की रकम को प्रथम किस्त द्वारा विभाजित करने से प्राप्त पूर्णांक मान वाली संख्या (भजनफल) जिसके पदों की संख्या है, ऐसी) समान्तर श्रेढि द्वारा गुणित प्रथम किस्त से मिलाने पर प्राप्त होता है। ब्याज वह है जो किस्त की अवधि में उत्पन्न होता है। किस्त की अवधि को प्रथम किस्त द्वारा विभाजित करने और मन से चुनी हुई ऋण की महत्तम रकम द्वारा गुणित करने पर जो प्राप्त होता है वह ऋण मुक्त होने का समय है ॥ ७१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य ने ५ प्रतिशत प्रतिमाह की दर से ब्याज लगाये जाने वाले ऋण की मुक्ति के लिये ६० को महत्तम रकम चुना तथा ७ प्रथम किस्त चुनी जो उत्तरोत्तर $\frac{३}{५}$ माह में होनेवाली किस्तों में ७ द्वारा बढ़ती चली गई। इस प्रकार, उसने $\frac{६०}{७}$ पदों वाली समान्तर श्रेढि के योग को ऋण रूप में चुकाया तथा उन ७ के अपवर्त्यों (multiples) पर लगने वाले ब्याज को भी चुकाया। श्रेढि के योग की संवादी ऋण रकम को निकालो, चुकाये गये ब्याज को निकालो और बतलाओ कि उस ऋण की मुक्ति का समय क्या है ? ॥ ७२–७३½ ॥ किसी मनुष्य ने ५ प्रतिशत प्रतिमास ब्याज की दर लगाये जाने

---

(७१) यह नियम (कई शब्द छूट जाने के कारण) अत्यन्त भ्रमोत्पादक है तथा ७२–७३½ वीं गाथा के उदाहरण हल करने पर स्पष्ट हो जावेगा। यहाँ मूल अथवा किस्त की महत्तम प्राप्य रकम ६० है। यह प्रथम किस्त की रकम ७ द्वारा विभाजित होने पर $\frac{६०}{७}$ अथवा ८$\frac{४}{७}$ होती है जिसमें से ८ समान्तर श्रेढि के पदों की संख्या है। ऐसी समान्तर श्रेढि का १ प्रथम पद है, १ प्रचय है और $\frac{४}{७}$ अग्र अथवा ऊपर का भिन्नीय भाग है। उपर्युक्त श्रेढि के योग ३६ को प्रथम किस्त ७ द्वारा गुणितकर $\frac{४}{७}$ और ६० के गुणनफल में जोड़ देते हैं। यहाँ ६० महत्तम प्राप्य रकम है। इस प्रकार ३६ × ७ + $\frac{४}{७}$ × ६० = $\frac{२००४}{७}$ प्राप्त होता है जो ऋण का इष्ट मूलधन है। $\frac{२००४}{७}$ पर $\frac{३}{५}$ माह में ५ प्रतिशत प्रतिमाह की दर से पूर्ण पर चुकाया गया ब्याज होगा। ऋण मुक्ति की अवधि ($\frac{३}{५}$ ÷ ७) × ६० = $\frac{३६}{७}$ माह होगी।

केनापि संप्रयुक्ताशीतिः पञ्चकशतप्रयोगेण ॥ ७४½ ॥
अष्टाद्यष्टोत्तरतस्तदशीत्यष्टांशगच्छेन । मूलधनं दत्त्वाष्टाद्यष्टोत्तरतो धनस्य मासार्धात् ॥ ७५½ ॥
वृद्धिं प्रादान्मूलं वृद्धिश्च विमुक्तिकालश्च । एषां परिमाणं किं विगणय्य सखे ममाचक्ष्व ॥ ७६½ ॥

एकीकरणसूत्रम्—

वृद्धिसमासं विभजेन्मासफलैक्येन लब्धमिष्टः कालः । कालप्रमाणगुणितस्तदिष्टकालेन संभक्तः ॥
वृद्धिसमासेन हतो मूलसमासेन भाजितो वृद्धिः ॥ ७७½ ॥

अत्रोद्देशकः

युक्ता चतुश्शतीह द्विकत्रिकपञ्चकचतुष्कशतेन । मासाः पञ्च चतुर्द्वित्रयः प्रयोगैककालः कः ॥७८½॥

इति मिश्रकव्यवहारे वृद्धिविधानं समाप्तम् ।

वाले ऋण की मुक्ति के लिये ८० को महत्तम रकम चुना । इसके साथ, ८ प्रथम किस्त की रकम थी जो प्रति ½ माह में उत्तरोत्तर ८ द्वारा बढ़ती चली गई । इस प्रकार, उसने समान्तर श्रेढि के योग को ऋण रूप में चुकाया । इस समान्तर श्रेढि में ⁸⁰⁄₈ पदों की संख्या थी । इन ८ के अपवर्तों पर ब्याज भी चुकाया गया । हे मित्र ! श्रेढि के योग की संवादी ऋण की रकम, चुकाया गया ब्याज और ऋण मुक्ति का समय अच्छी तरह गणना कर निकालो ॥ ७३½–७६ ॥

औसत साधारण ब्याज को निकालने के लिये नियम—

(विभिन्न उपार्जित होने वाले) ब्याजों के योग को (विभिन्न संवादी) एक माह के तात्कालिक ब्याजों के योग द्वारा विभाजित करने पर परिणामी भजनफल, इष्ट समय होता है । (काल्पनिक) समयदर और मूलधनदर के गुणनफल को इष्ट समय द्वारा विभाजित करते हैं और (उपार्जित होने वाले विभिन्न) ब्याजों के योग द्वारा गुणित करते हैं । प्राप्तफल को विभिन्न दिये गये मूलधनों के योग द्वारा फिर से विभाजित करते हैं । इससे इष्ट ब्याज दर प्राप्त होती है । ॥ ७७–७७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस प्रश्न में, चार सौ की ४ रकमें अलग-अलग क्रमशः २, ३, ५ और ४ प्रतिशत प्रतिमास की दर से ५, ४, २ और ३ माहों के लिये ब्याज पर लगाई गईं । औसत साधारण अवधि और ब्याजदर निकालो ॥ ७८½ ॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में वृद्धि विधान नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

(७७ और ७७½) विभिन्न उत्पन्न होने वाले ब्याज वे होते हैं जो अलग-अलग रकमों के, विभिन्न दरों पर उनकी क्रमवार अवधियों के लिये ब्याज होते हैं ।

प्रतीक रूप से, $$\left\{\frac{\text{घ}_1\times\text{अ}_1\times\text{बा}_1}{\text{आ}\times\text{धा}}+\frac{\text{घ}_2\times\text{अ}_2\times\text{बा}_2}{\text{आ}\times\text{धा}}+\dots\dots\right\}\div\left\{\frac{\text{घ}_1\times 1\times\text{बा}_1}{\text{आ}\times\text{धा}}+\frac{\text{घ}_2\times 1\times\text{बा}_2}{\text{आ}\times\text{धा}}+\dots\dots\right\}$$

$= \text{अ}_{\text{औ}}$ अथवा औसत अवधि ;

और $$\frac{\text{धा}\times\text{आ}}{\text{अ}_{\text{औ}}}\times\left\{\frac{\text{घ}_1\times\text{अ}_1\times\text{बा}_1}{\text{आ}\times\text{धा}}+\frac{\text{घ}_2\times\text{अ}_2\times\text{बा}_2}{\text{आ}\times\text{धा}}+\dots\dots\right\}\div$$

$(\text{घ}_1+\text{घ}_2+\dots\dots) = \text{ब}_{\text{औ}}$ अथवा औसत ब्याज ।

प्रक्षेपककुट्टीकारः

इतः परं मिश्रकव्यवहारे प्रक्षेपककुट्टीकारगणितं व्याख्यास्यामः ।
प्रक्षेपककरणमिदं सवर्गविच्छेदनांशयुतिहृतमिश्रः ।
प्रक्षेपकगुणकारः कुट्टीकारो बुधैः समुद्दिष्टम् ॥ ७९½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वित्रिचतुष्षड्भागैर्विभाज्यते द्विगुणषष्टिरिह हेम्नाम् ।
भृत्येभ्यो हि चतुर्भ्यो गणकाचक्ष्वाशु मे भागान् ॥ ८०½ ॥
प्रथमस्यांशत्रितयं त्रिगुणोत्तरतश्च पञ्चभिर्भक्तम् ।
दीनाराणां त्रिशतं त्रिषष्टिसहितं क एकांशः ॥ ८१½ ॥
आदाय चाम्बुजानि प्रविश्य सच्छ्रावकोऽथ जिननिलयम् ।
पूजां चकार भक्त्या पूजार्हेभ्यो जिनेन्द्रेभ्यः ॥ ८२½ ॥
वृषभाय चतुर्थांशं षष्ठांशं शिष्टपार्श्वाय । द्वादशमथ जिनपतये त्र्यंशं मुनिसुव्रताय ददौ ॥ ८३½॥
नष्टाष्टकर्मणे जगदिष्टायारिष्टनेमयेऽष्टांशम् । षष्ठचतुर्भागं भक्त्या जिनशान्तये प्रददौ ॥ ८४½ ॥
कमलान्यशीतिमिश्राण्यायातान्यथ शतानि चत्वारि ।
कुसुमानां भागाख्यं कथय प्रक्षेपकाख्यकरणेन ॥ ८५½ ॥

प्रक्षेपक कुट्टीकार (समानुपाती भाग)

इसके पश्चात् हम इस मिश्रक व्यवहार में समानुपाती भाग के गणित का प्रतिपादन करेंगे—

समानुपाती भाग की क्रिया वह है जिसमें दी गई (समूह वाचक) राशि पहिले (विभिन्न समानुपाती भागों का निरूपण करने वाले) समान (साधारण) हर वाले भिन्नों के अंशों के योग द्वारा विभाजित की जाती है । ऐसे समान हर वाले भिन्नों के हरों को उच्छेदित कर विचारते नहीं हैं । प्राप्त फल को प्रत्येक दशा में क्रमशः इन समानुपाती अंशों द्वारा गुणित करते हैं । इसे बुधजन (विद्वज्जन) 'कुट्टीकार' कहते हैं ॥ ७९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस प्रश्न में १२० स्वर्ण मुद्राएँ ४ नौकरों में क्रमशः $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{6}$ के भिन्नीय भागों में बाँटी जाती हैं । हे अंकगणितज्ञ ! मुझे शीघ्र बतलाओ कि उन्हें क्या मिला ? ॥ ८०½ ॥ ३६३ दीनारों को पाँच व्यक्तियों में बाँटा गया । इनमें से प्रथम को ३ भाग मिले और शेष भाग को उत्तरोत्तर ३ की साधारण निष्पत्ति में बाँटा गया । प्रत्येक का हिस्सा बतलाओ ॥ ८१½ ॥ एक सच्चे श्रावक ने किसी संख्या के कमल के फूल लिये और जिन मंदिर में जाकर पूज्यनीय जिनेन्द्रों की भक्तिभाव से पूजा की । उसने वृषभ भगवान् को $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{6}$ पूज्य पार्श्व भगवान् को, $\frac{1}{12}$ जिन पति को, $\frac{1}{3}$ मुनि सुव्रत भगवान् को भेंट किये; $\frac{1}{8}$ भाग आठों कर्मों का नाश करने वाले जगदिष्ट अरिष्टनेमि भगवान् को और $\frac{1}{4}$ का $\frac{1}{6}$ शांति जिन भगवान् को भेंट किये । यदि वह ४८० कमल के फूल इस पूजा के लिये लाया हो तो इस प्रक्षेप नामक क्रिया द्वारा फूलों का समानुपाती वितरण प्राप्त करो ॥ ८२½–८५½ ॥ ४८० की

(७९½) ८०½ वीं गाथा के प्रश्न को इस नियमानुसार हल करने में हमें $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{6}$ से $\frac{6}{12}$, $\frac{4}{12}$, $\frac{3}{12}$, $\frac{2}{12}$ प्राप्त होते हैं । हरों को हटाने के पश्चात्, हमें ६, ४, ३, २ प्राप्त होते हैं । ये प्रक्षेप अथवा समानुपाती अंश भी कहलाते हैं । इनका योग १५ है, जिसके द्वारा बाँटी जानेवाली रकम

चत्वारि शतानि सखे युतान्यशीत्या नरैर्विभक्तानि ।
पञ्चभिराचक्ष्व त्वं द्वित्रिचतुःपञ्चषड्गुणितैः ॥ ८६½ ॥

इष्टगुणफलानयनसूत्रम्—

भक्तं शेषैर्मूलं गुणगुणितं तेन योजितं प्रक्षेपम् ।
तद्द्रव्यं मूल्यघ्नं क्षेपविभक्तं हि मूल्यं स्यात् ॥ ८७½ ॥

अस्मिन्नर्थे पुनरपि सूत्रम्—

फलगुणकारैर्हत्वा पणान् फलैरेव भागमादाय ।
प्रक्षेपके गुणाः स्युस्त्रैराशिकः फलं वदेन्मतिमान् ॥ ८८½ ॥

अस्मिन्नर्थे पुनरपि सूत्रम्—

स्वफलहताः स्वगुणघ्नाः पणास्तु तैर्भवति पूर्ववच्छेषः ।
इष्टफलं निर्दिष्टं त्रैराशिकसाधितं सम्यक् ॥ ८९½ ॥

रकम ५ व्यक्तियों में २, ३, ४, ५ और ६ के अनुपात में विभाजित की गई। हे मित्र ! प्रत्येक के हिस्से में कितनी रकम पड़ी ? ॥ ८६½ ॥

इष्ट गुणफल को प्राप्त करने के लिये नियम—

मूल्यदर को खरीदने योग्य वस्तु (को प्ररूपित करने वाली संख्या) द्वारा विभाजित किया जाता है। तब इसे (दी गई) समानुपाती संख्या द्वारा गुणित करते हैं। इसके द्वारा, इसे योग करने की विधि से समानुपाती भागों का योग प्राप्त हो जाता है। तब दी गई राशि क्रमानुसारी समानुपाती भागों द्वारा गुणित होकर तथा उनके उपर्युक्त योगद्वारा विभाजित होकर इष्ट समानुपात में विभिन्न वस्तुओं के मान को उत्पन्न करती है।

इसी के लिये दूसरा नियम—

मूल्यदरों (का निरूपण करने वाली संख्याओं) को क्रमशः खरीदी जाने वाली विभिन्न वस्तुओं के (दिये गये) समानुपातों को निरूपित करने वाली संख्याओं द्वारा गुणित करते हैं। तब फल को मूल्यदर पर खरीदने योग्य वस्तुओं की संख्याओं से क्रमवार विभाजित करते हैं। परिणामी राशियाँ प्रक्षेप की क्रिया में (चाहे हुए) गुणक (multipliers) होती हैं। बुद्धिमान लोग फिर इष्ट उत्तर को त्रैराशिक द्वारा प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८८½ ॥

इसी के लिये एक और नियम—

विभिन्न मूल्यदरों का निरूपण करने वाली संख्याएँ क्रमशः उनकी स्वसंबन्धित खरीदने योग्य वस्तुओं का निरूपण करनेवाली संख्याओं द्वारा गुणित की जाती हैं। और तब, उनकी संबन्धित समानुपाती संख्याओं द्वारा गुणित की जाती हैं। इनकी सहायता से, शेष क्रिया साधित की जाती है। इष्टफल त्रैराशिक निर्दिष्ट क्रिया द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त हो जाता है ॥ ८९½ ॥

---

१२० विभाजित की जाती है और परिणामी भजनफल ८ को अलग-अलग समानुपाती अंशों ६, ४, ३, २ द्वारा गुणित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त रकमें ६ × ८ अर्थात् ४८, ४ × ८ अथवा ३२, ३ × ८ अर्थात् २४, २ × ८ अथवा १६ हैं। प्रक्षेप का अर्थ समानुपाती भाग की क्रिया भी होता है तथा समानुपाती अंश भी होता है।

(८७½–८९½) इन नियमों के अनुसार ९०½ वीं और ९१½ वीं गाथाओं का हल निकालने के लिये २, ३ और ५ को क्रमशः ३, ५ और ७ से विभाजित करते हैं तथा ६, ३ और १ द्वारा गुणित

अत्रोद्देशकः

द्वाभ्यां त्रीणि त्रिभिः पञ्च पञ्चभिः सप्त मानकैः ।
दाडिमाम्रकपित्थानां फलानि गणितार्थवित् ॥ ९०½ ॥
कपित्थात् त्रिगुणं ह्याम्रं दाडिमं षड्गुणं भवेत् ।
क्रीत्वानय सखे शीघ्रं त्वं षट्सप्ततिभिः पणैः ॥ ९१½ ॥
दध्याज्यक्षीरघटैर्जिनबिम्बस्याभिषेचनं कृतवान् ।
जिनपुरुषो द्वासप्ततिपलैस्त्रयः पूरिताः कलशाः ॥ ९२½ ॥
द्वात्रिंशत्प्रथमघटे पुनश्चतुर्विंशतिर्द्वितीयघटे ।
षोडश तृतीयकलशे पृथक् पृथक् कथय मे कृत्वा ॥ ९३½ ॥
तेषां दधिघृतपयसां ततश्चतुर्विंशतिर्घृतस्य पलानि ।
षोडश पयःपलानि द्वात्रिंशद् दधिपलानीह ॥ ९४½ ॥
वृत्तिस्त्रयः पुराणाः पुंसश्चारोहकस्य तत्रापि । सर्वेऽपि पञ्चषष्टिः केचिद्भग्ना धनं तेषाम् ॥ ९५½ ॥
संनिहितानां दत्तं लब्धं पुंसा दशैव चैकस्य ।
के संनिहिता भग्नाः के मम संचिन्त्य कथय त्वम् ॥ ९६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अनार, आम और कपित्थ क्रमशः २ पण में ३, ३ पण में ५ और ५ पण में ७ की दर से प्राप्य हैं। हे गणना के सिद्धांतों को जानने वाले मित्र ! ७६ पणों के फल लेकर शीघ्र आओ ताकि आमों की संख्या कपित्थों की संख्या की तिगुनी हो और अनारों की संख्या ६ गुनी हो ॥ ९०½–९१½ ॥ किसी जिनानुगामी ने जिन प्रतिमा का दही, घी और दुग्ध से पूरित कलशों द्वारा अभिषेक कराया। इनके ७२ पलों द्वारा ३ पात्र भर गये। प्रथम घट में ३२ पल, दूसरे घट में २४ तथा तीसरे में १६ पल पाये गये। इन दधि, घी, दूध मिश्रित पात्रों में मिश्रित द्रव्यों को अलग-अलग ज्ञात और प्राप्त करो जबकि कुल मिलाकर २४ पल घी, १६ पल दूध और ३२ पल दही है ॥ ९२½–९४½ ॥ एक अश्वारोही सैनिक का वेतन ३ पुराण था। इस दर पर कुल ६५ व्यक्ति नियुक्त थे। उनमें से कुछ मारे गये और उनके वेतन की रकम रणक्षेत्र में शेष रहनेवाले सैनिकों को दे दी गई। इस प्रकार, प्रत्येक मनुष्य को १० पुराण प्राप्त हुए। मुझे बतलाओ कि रणक्षेत्र में कितने सैनिक खेत रहे और कितने जीवित बचे ? ॥ ९५½–९६½ ॥

करते हैं। इस प्रकार हमें २/३ × ६, ३/४ × ३, ५/६ × १ से क्रमशः ४, ९/४ और ५/६ प्राप्त होते हैं। ये समानुपाती भाग हैं। ८८½ और ८९½ सूत्रों में इन समानुपाती भागों के संबंध में प्रक्षेप की क्रिया का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु, ८७½ करण नियम में यह क्रिया पूरी तरह वर्णित है।

इष्टरूपाधिकहीनप्रक्षेपककरणसूत्रम्—

पिण्डोऽधिकरूपोनो हीनोत्तररूपसंयुतः शेषात्। प्रक्षेपककरणमतः कर्तव्यं तैर्युता हीनाः ॥ ९७½॥

अत्रोद्देशकः

प्रथमस्यैकांशोऽतो द्विगुणद्विगुणोत्तराद्व्रजन्ति नराः।
चत्वारोंऽशः कः स्यादेकस्य हि सप्तषष्टिरिह ॥ ९८½ ॥
प्रथमादध्यर्धगुणात् त्रिगुणाद्रूपोत्तराद्विभाज्यन्ते।
साष्टा सप्ततिरेभिश्चतुर्भिराप्तांशकान् ब्रूहि ॥ ९९½ ॥
प्रथमादध्यर्धगुणाः पञ्चार्धगुणोत्तराणि रूपाणि। पञ्चानां पञ्चाशत्सैका चरणत्रयाभ्यधिका॥१००½॥
प्रथमात्पञ्चार्धगुणाश्चतुर्गुणोत्तरविहीनभागेन।
भक्तं नरैश्चतुर्भिः पञ्चदशोनं शतचतुष्कम् ॥ १०१½ ॥

समानुपाती भाग सम्बन्धी नियम, जहाँ मन से चुनी हुई कुछ पूर्णांक राशियों को जोड़ना अथवा घटाना होता है—

दी गई कुल राशि को जोड़ी जाने वाली पूर्णांक राशियों द्वारा ह्रासित किया जाता है, अथवा घटाई जानेवाली पूर्णांक धनात्मक राशियों में मिलाया जाता है। तब इस परिणामी राशि की सहायता से समानुपाती भाग की क्रिया की जाती है, और परिणामी समानुपाती भागों को क्रमशः उनमें जोड़ी जानेवाली पूर्णांक राशियों से मिला दिया जाता है; अथवा, वे उन घटाई जानेवाली पूर्णांक राशियों द्वारा क्रमशः ह्रासित की जाती हैं ॥ ९७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चार मनुष्यों ने उत्तरोत्तर द्विगुणित समानुपाती भागों में और उत्तरोत्तर द्विगुणित अन्तरों वाले योग में अपने हिस्सों को प्राप्त किया। प्रथम मनुष्य को एक हिस्सा मिला। ६७ बाँटी जाने वाली राशि है। प्रत्येक के हिस्से क्या हैं ? ॥ ९८½ ॥ ७८ की रकम इन चार मनुष्यों में ऐसे समानुपाती भागों में वितरित की जाती है जो उत्तरोत्तर प्रथम से आरम्भ होकर प्रत्येक पूर्ववर्ती से १½ गुणे हैं और (योग में) जिनका अन्तर एक से आरम्भ होकर तिगुना वृद्धि रूप है। प्रत्येक के द्वारा प्राप्त भागों के मान बतलाओ। ॥ ९९½ ॥ पाँच मनुष्यों के हिस्से क्रमिकरूपेण प्रथम से आरम्भ होकर प्रत्येक पूर्ववर्ती से १½ गुने हैं, और योग में अन्तर की राशियाँ वे हैं जो उत्तरोत्तर (पूर्ववर्ती अन्तर) से २½ गुणी हैं। ५१¾ विभाजित की जाने वाली कुल राशि है। प्रत्येक के द्वारा प्राप्त भागों के मान बतलाओ ॥ १००½ ॥ ४०० ऋण १५ को चार मनुष्यों के बीच ऐसे भागों में विभाजित किया जाता है जो पहिले से आरम्भ होकर प्रत्येक पूर्ववर्ती से २½ गुणे हैं, और जो उन अंतरों द्वारा ह्रासित हैं जो उत्तरोत्तर पूर्ववर्ती अंतर से ४ गुने हैं। विभिन्न भागों के मानों के प्राप्त करो ॥१०१½॥

(९७½) समानुपाती भाग की क्रिया यहाँ ८७½ से ८९½ में दिये गये नियमों में से किसी भी एक के अनुसार की जा सकती है।

(९८½) हिस्सों में जोड़ी जानेवाली अंतर राशि यहाँ १ है जो दूसरे मनुष्य के संबंध में है। यह दो शेष मनुष्यों में से प्रत्येक के लिये पूर्ववर्ती अंतर की दुगुनी है। यह अंतर दूसरे मनुष्य के लिये स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं है जैसा कि इस उदाहरण में १ उल्लिखित है। १००½ वीं गाथा और १०१½ वीं गाथा के उदाहरण में भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

समधनार्घानयनतज्ज्येष्ठधनसंख्यानयनसूत्रम्—

ज्येष्ठधनं सैकं स्यात् स्वविक्रयेऽन्त्यार्घगुणमपैकं तत् ।
क्रयणे ज्येष्ठानयनं समानयेत् करणविपरीतात् ॥ १०२$\frac{1}{2}$ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वावष्टौ षट्त्रिंशन्मूलं नृणां षडेव चरमार्घः । एकार्घेण क्रीत्वा विक्रीय च समधना जाताः ॥१०३$\frac{1}{2}$॥
सार्धैकमर्धमर्धद्वयं च संगृह्य ते त्रयः पुरुषाः ।
क्रयविक्रयौ च कृत्वा षड्भिःपश्चार्घात्समधना जाताः ॥ १०४$\frac{1}{2}$ ॥

(व्यापार में लगाई गई) सबसे ऊँची रकम ज्येष्ठ धन का मान तथा बेचने की मुल्य रकमें उत्पन्न करने वाली कीमतों के मान को निकालने के लिये नियम—

लगाया गया सबसे बड़ा धन, १ में मिलाने पर (बेची जाने वाली) वस्तु के विक्रय की दर हो जाता है। वही (बेचने की दर) जब शेष वस्तु की (दी गई) बेचने की कीमत द्वारा गुणित होकर एक द्वारा ह्रासित की जाती है तब खरीदने की दर उत्पन्न होती है। इस विधि को विपर्यसित (उल्टा) करने पर कारबार में लगाया गया सबसे बड़ा धन निकाला जा सकता है ॥१०२$\frac{1}{2}$॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन मनुष्यों ने क्रमशः २, ८ और ३६ रकमें लगाईं। ६ वह कीमत है जिस पर शेष वस्तुएं बेची जाती हैं। उसी दर पर खरीद कर और बेच कर वे तुल्य धन वाले बन जाते हैं। खरीद और बेचने की कीमतों को निकालो ॥ १०३$\frac{1}{2}$ ॥ उन्हीं तीन मनुष्यों ने क्रमशः १$\frac{1}{2}$, $\frac{1}{2}$ और २$\frac{1}{2}$ धनों को व्यापार में लगाया और उन्हीं कीमतों पर उसी वस्तु का क्रय और विक्रय किया। अंत में, शेष को ६ द्वारा निरूपित राशि में बेचने पर वे समान धन वाले बन गये। खरीदने और बेचने के दामों को निकालो ॥ १०४$\frac{1}{2}$ ॥ समान धन वाली राशि ४१ है। जिस कीमत पर अन्त में शेष वस्तुएं बेची

१०२$\frac{1}{2}$) इस नियम पर किये जानेवाले प्रश्नों में, विभिन्न मूल रकमों से किसी साधारण दर पर कोई वस्तु खरीदी हुई समझ ली जाती है। तब इस तरह खरीदी हुई वस्तु कोई अन्य साधारण दर पर बेची जाती है। व्यापार में लगाये गये धन की इकाई में बेची जाने के लिये पर्याप्त न होने के कारण जितनी वस्तु की मात्रा बच रहती है वह यहाँ पर 'शेष' कहलाती है। जिस कीमत पर यह 'शेष' बेची जाती है उसे अवशिष्ट-मूल्य (अंत्यार्घ) कहते हैं। प्रतीक रूपसे, मानलो अ, अ + ब और अ + ब + स मूलधन हैं। यहाँ अन्तिम (अ + ब + स) ज्येष्ठधन अर्थात् सबसे बड़ा धन है। मानलो प चरमार्घ (अन्त्यार्घ) अथवा अवशिष्ट-मूल्य है; तब, इस नियमानुसार अ + ब + स + १ = बेचने की दर; और (अ + ब + स + १) प − १ = खरीदने की दर होती हैं। यह सरलतापूर्वक दिखलाया जा सकता है कि वस्तु को बेचने की दर पर और शेष को अवशिष्ट-मूल्य पर बेचने से जो रकमें प्राप्त होती हैं उनका योग प्रत्येक दशा में एकसा होता है।

यह आलोकनीय है कि खरीदने की दर, इस नियम पर आश्रित प्रश्नों में, समधन अथवा समान विक्रयोदय (बिक्री की रकमों) के मान के समान होती है।

चत्वारिंशत् सैका समधनसंख्या षडेव चरमार्घः ।
आचक्ष्व गणक शीघ्रं ज्येष्ठधनं किं च कानि मूलानि ॥ १०५½ ॥
समधनसंख्या पञ्चत्रिंशद्भवन्ति यत्र दीनाराः ।
चत्वारश्चरमार्घो ज्येष्ठधनं किं च गणक कथय त्वम् ॥ १०६½ ॥

चरमार्घभिन्नजातौ समधनार्घानयनसूत्रम्—

तुल्यापच्छेदधनान्त्यार्घाभ्यां विक्रयक्रयार्घौ प्राग्वत् ।
छेदच्छेदकृतिघ्नावनुपातात् समधनानि भिन्नेऽन्त्यार्घे ॥ १०७½ ॥
अर्धत्रिपादभागा धनानि षट्पञ्चमांशकाश्चरमार्घः ।
एकार्घेण क्रीत्वा विक्रीय च समधना जाताः ॥ १०८½ ॥

पुनरपि अन्त्यार्घे भिन्ने सति समधनानयनसूत्रम्—

ज्येष्ठांशद्विहरहतिः सान्त्यहरा विक्रयोऽन्त्यमूल्यघ्नः ।
नैकोद्वयखिलहरघ्नः स्यात्क्रयसंख्यानुपातोऽथ ॥ १०९½ ॥

जाती हैं वह ६ है । हे अंकगणितज्ञ ! मुझे शीघ्र बतलाओ कि कौन सी सबसे ऊंची लगाई गई रकम है और विभिन्न अन्य रकमें कौन-कौन हैं ? ॥ १०५½ ॥ उस दशा में जब कि ३५ दीनार समान धन राशि है, और ४ वह कीमत है जिस पर शेष वस्तुएं बेची जाती हैं, हे गणितज्ञ ! मुझे बतलाओ कि सबसे ऊंची लगाई जाने वाली रकम क्या है ? ॥ १०६½ ॥

जब अवशिष्ट-कीमत (अन्त्य अर्घ) भिन्नीय रूप में हों तब समान बेचने की रकमें उत्पन्न करने वाली कीमतों के मान निकालने के लिये नियम—

अवशिष्ट-कीमत (अन्त्य अर्घ) भिन्नीय होने पर बेचने और खरीदने की दरों को पहिले की भाँति प्राप्त करते हैं जब कि लगाई गई रकमों और अवशिष्ट-कीमत को समान हर वाला बना कर उपयोग में लाते हैं । यह हर इस समय उपेक्षित कर दिया जाता है । तब इष्ट बेचने और खरीदने की दरों को प्राप्त करने के लिये इन बेचने और खरीदने की दरों को इस हर और हर के वर्ग द्वारा गुणित करते हैं । तब समान विक्रयोदय (बेचने की रकमों) को त्रैराशिक के नियम द्वारा प्राप्त करते हैं ॥ १०७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापार में ½, ¾, ¼ तीन व्यक्तियों द्वारा लगाई गई रकमें हैं । अवशिष्ट-कीमत (अन्त्यार्घ) ⅚ है । उन्हीं कीमतों पर खरीदने और बेचने पर वे समान धन राशि वाले बन जाते हैं । बेचने की कीमत और खरीदने की कीमत तथा समान विक्रय-धन निकालो ॥ १०८½ ॥

जब अवशिष्ट-कीमत (अन्त्यार्घ) भिन्नीय हो तब समान विक्रयोदय (बेचने की रकमों) को निकालने के लिये दूसरा नियम—

सबसे बड़े अंश, दो और (लगाई गई मूल रकमों के प्राप्य) हरों का संतत गुणनफल जब अवशिष्ट-मूल्य के मान के हर में जोड़ा जाता है तब बेचने की दर उत्पन्न होती है । जब इसे अवशिष्ट-मूल्य (अन्त्यार्घ) से गुणित कर और १ द्वारा ह्रासित कर और फिर उत्तरोत्तर दो तथा समस्त हरों द्वारा गुणित किया जाता है, तब खरीदने की दर प्राप्त होती है । तत्पश्चात्, त्रैराशिक की सहायता से बेचने की रकमों (sale-proceeds) का साधारण मान प्राप्त होता है ॥ १०९½ ॥

१०५½) यहाँ आलोकनीय है कि इस नियमानुसार केवल सबसे बड़ी रकम निकाली जाती है । अन्य रकमें मन से चुन ली जाती हैं, ताकि ये सबसे बड़ी रकम से छोटी हों ।

अत्रोद्देशकः

अर्धं द्वौ त्र्यंशौ च त्रीन् पादांशश्च[1] संगृह्य ।
विक्रीय क्रीत्वान्ते पञ्चभिरंश्र्यंशकैः समानधनाः ॥ ११०$\frac{1}{2}$ ॥

इष्टगुणेष्टसंख्यायामिष्टसंख्यासमर्पणानयनसूत्रम्—

अन्त्यपदे स्वगुणहृते क्षिपेदुपान्त्यं च तस्यान्तम् । तेनोपान्त्येन भजेद्यल्लब्धं तद्भवेन्मूलम् ॥१११$\frac{1}{2}$॥

अत्रोद्देशकः

कश्चिच्छ्रावकपुरुषश्चतुर्मुखं जिनगृहं समासाद्य ।
पूजां चकार भक्त्या सुरभीण्यादाय कुसुमानि ॥ ११२$\frac{1}{2}$ ॥
द्विगुणमभूदाद्यमुखे त्रिगुणं च चतुर्गुणं च पञ्चगुणम् ।
सर्वत्र पञ्च पञ्च च तत्संख्याम्भोरुहाणि कानि स्युः ॥ ११३$\frac{1}{2}$ ॥
द्वित्रिचतुर्भागगुणाः पञ्चार्धगुणास्त्रिपञ्चसप्ताष्टौ । भक्तैर्भक्त्यार्हद्भ्यो दत्तान्यादाय कुसुमानि॥११४$\frac{1}{2}$॥

इति मिश्रकव्यवहारे प्रक्षेपककुट्टीकारः समाप्तः ।

---

१. M में श्लोक क्रम ११०$\frac{1}{2}$ के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक जोड़ा गया है, जो B में प्राप्य नहीं है :—

अर्धत्रिपादभागा धनानि षट्पञ्चमांशकान्त्यार्घः । एकार्घेण क्रीत्वा विक्रीय च समधना जाताः ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

$\frac{1}{2}$, $\frac{2}{3}$, $\frac{3}{4}$ क्रमशः व्यापार में लगाकर वही वस्तु खरीदने और बेचने तथा $\frac{5}{6}$ अवशिष्ट-मूल्य से तीन व्यापारी अंत में समान विक्रयोदय (बेचने की रकम) वाले हो जाते हैं। खरीद की कीमत बेचने की कीमत और बिक्री की तुल्य रकमें क्या क्या हैं ? ॥ ११०$\frac{1}{2}$ ॥

ऐसे प्रश्न को हल करने के लिये नियम जिसमें मन से चुनी हुई संख्या बार चुने गये अपवर्त्यों में मन से चुनी हुई राशियाँ समर्पित को (दी) गई हों :—

उपांतिम राशि को, अंतिम राशि की ही संवादी अपवर्त्य संख्या द्वारा विभाजित अंतिम राशि में जोड़ा जावे। इस क्रिया से प्राप्त फल को उस अपवर्त्य संख्या द्वारा विभाजित किया जावे जो कि इस दी गई उपांतिम राशि से संयवित (associated) है। सब विभिन्न दी गई राशियों के सम्बन्ध में इस क्रिया को करने पर इष्ट मूल राशि प्राप्त होती है। ॥ १११$\frac{1}{2}$ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी श्रावक ने चार दरवाजों वाले जिन मंदिर में (अपने साथ) सुगंधित फूल लेजाकर उन्हें पूजन में इस प्रकार भक्ति पूर्वक भेंट किये—चार दरवाजों पर क्रमशः वे दुगने हो गये, तब तिगुने हो गये, तब चौगुने हो गये और तब पाँचगुने हो गये। प्रत्येक द्वार पर उसने ५ फूल अर्पित किये बतलाओ कि उसके पास कुल कितने कमल के फूल थे ? ॥ ११२$\frac{1}{2}$–११३$\frac{1}{2}$ ॥ भक्तों द्वारा भक्ति पूर्वक फूल प्राप्त किये गये और पूजन में भेंट किये गये। फूल जो इस प्रकार भेंट किये गये उत्तरोत्तर ३, ५, ७, और ८ थे। उनकी संवादी अपवर्त्य राशियाँ क्रमशः $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{2}{5}$ थीं। फूलों की कुल मूल संख्या क्या थी ? ॥ ११४$\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में प्रक्षेपक कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

वल्लिकाकुट्टीकारः

इतः परं वल्लिकाकुट्टीकारगणितं व्याख्यास्यामः । कुट्टीकारे वल्लिकागणितन्यायसूत्रम्—
छित्त्वा छेदेन राशिं प्रथमफलमपोह्याप्तमन्योन्यभक्तं
स्थाप्योर्ध्वाधर्यतोऽधो मतिगुणमयुजाल्पेऽवशिष्टे धनर्णम् ।
छित्त्वाधः स्वोपरिघ्नोपरियुतहरभागोऽधिकाग्रस्य हारं
छित्त्वा छेदेन साग्रान्तरफलमधिकाग्रान्वितं हारघातम् ॥ ११५½ ॥

वल्लिका कुट्टीकार

इसके पश्चात् हम वल्लिका कुट्टीकार* नामक गणना विधि की व्याख्या करेंगे ।

कुट्टीकार सम्बन्धी वल्लिका नामक गणना विधि के लिये नियम—

दी गई राशि (समूह वाचक संख्या) को दिये गये भाजक द्वारा विभाजित करो । प्रथम भजनफल को अलग कर दो । तब (विभिन्न परिणामी शेषों द्वारा विभिन्न परिणामी भाजकों के उत्तरोत्तर भाग से प्राप्त विभिन्न) भजनफलों को एक दूसरे के नीचे रखो, और फिर इसके नीचे मन से चुनी हुई संख्या रखो जिससे कि (उत्तरोत्तर भाग की उपर्युक्त विधि में) अयुग्म स्थिति क्रमवाले अल्पतम शेष को गुणित किया जाता है; और तब इसके नीचे इस गुणनफल को (प्रश्नानुसार दी गई ज्ञात संख्या द्वारा) बढ़ाकर या ह्रासित कर और तब (उपर्युक्त उत्तरोत्तर भाग की विधि में अन्तिम भाजक द्वारा) भाजित कर रखो । इस प्रकार वल्लिका अर्थात् बेलि सरीखी अंकों की शृङ्खला प्राप्त होती है । इसमें शृङ्खला की निम्नतम संख्या को, (इसके ठीक ऊपर की संख्या में ऊपर के ठीक ऊपर की संख्या का गुणन करने से प्राप्त) गुणनफल में जोड़ते हैं । ऐसी रीति को तब तक करते जाते हैं जब तक कि पूरी शृङ्खला समाप्त नहीं हो जाती है । यह योग पहिले ही दिये गये भाजक से भाजित किया जाता है । [इस अन्तिम भाजन में 'शेष' गुणक बन जाता है जिसमें, (इस प्रश्न में बतलाई गई विधि में) विभाजित या वितरित की जाने वाली राशि को प्राप्त करने के लिये, पहिले दी गई राशि (समूह वाचक संख्या) का गुणा किया जाता है । परन्तु, जो एक से अधिक बार बढ़ाई गईं अथवा ह्रासित की गईं हों, ऐसी दी गई राशियों (समूह वाचक संख्याओं) को एक से अधिक समानुपात में विभाजित करना पड़ता है । यहाँ दो विशिष्ट विभाजनों में से कोई एक के सम्बन्ध में प्राप्त] अधिक बड़ा समूह वाचक मान सम्बन्धी भाजक को (छोटे समूह वाचक मान सम्बन्धी) भाजक द्वारा ऊपर बतलाये अनुसार भाजित किया जाता है ताकि उत्तरोत्तर भजनफलों की लता के समान शृङ्खला पूर्व क्रम अनुसार इस दशा में भी प्राप्त हो जावे । इस शृंखला में निम्नतम भजनफल के नीचे, इस अन्तिम उत्तरोत्तर में भाग में अयुग्म स्थिति क्रमवाले अल्पतम शेष के मन से चुने हुए गुणक को रखा जाता है; और फिर इसके नीचे पहिले बतलाए हुए दो समूह वाचक मानों के अन्तर को ऊपर मन से चुने हुए गुणक द्वारा गुणित कर,

*वल्लिका कुट्टीकार कहने का कारण यह है कि इस नियम में समझाई गई कुट्टीकार की विधि लता समान अंकों की शृंखला पर आधारित होती है ।

(११५½) गाथा ११७½ वीं का प्रश्न साधित करने पर यह नियम स्पष्ट हो जावेगा । यहाँ कथन किया गया है कि ७ अलग फलों सहित ६३ केलों के ढेर २३ मनुष्यों में ठीक-ठीक भाजन योग्य हैं । एक ढेर में फलों की संख्या निकालना है । यहाँ ६३ को 'समूह वाचक संख्या' (राशि) कहा जाता है, और प्रत्येक में स्थित फलों के संख्यात्मक मान को 'समूह वाचक मान' कहा जाता है । इसी 'समूह

अन्तिम अयुग्म स्थिति क्रम वाले अल्पतम शेष में जोड़कर परिणामी योगफल को ऊपर की भाजन श्रृंखला के अन्तिम भाजक द्वारा विभाजित करने के पश्चात् प्राप्त संख्या को रखना चाहिये। इस प्रकार इस बाद

वाचक मान' को निकालना इष्ट होता है। अब इस नियम के अनुसार हम पहिले राशि अथवा समूह-वाचक संख्या ६३ को छेद अथवा भाजक २३ द्वारा भाजित करते हैं, और तब हम जिस प्रकार दो संख्याओं का महत्तम समापवर्त्य निकालते हैं उसी प्रकार की भाग विधि को यहाँ जारी रखते हैं।

```
२३ ) ६३ ( २
     ४६                    १
     १७ ) २३ ( १           २
          १७               १
           ६ ) १७ ( २      ४
               १२
                ५ ) ६ ( १
                    ५
                    १ ) ५ | ४
                        ४
                        १
```

यहाँ हम पाँचवें शेष के साथ ही भाग रोक देते हैं, क्योंकि वह भाजन की श्रेढ़ियों में अयुग्म स्थिति क्रम वाला अल्पतम शेष है।

```
१—५१
२—३८
१—१३
४—१२
१
८
```

यहाँ प्रथम भजनफल २ को उपेक्षित कर दिया जाता है; अन्य भजनफल बाजू के स्तम्भ में एक पंक्ति में एक के नीचे एक लिखे गये हैं। अब हमें एक ऐसी संख्या चुनना पड़ती है जो जब अन्तिम शेष १ के द्वारा गुणित की जाती है, और फिर ७ में जोड़ी जाती है, तो वह अन्तिम भाजक १ के द्वारा भाजन योग्य होती है। इसलिये, हम १ को चुनते हैं, जो श्रृंखला में अन्तिम अंक के नीचे लिखा हुआ है। इस चुनी हुई संख्या के नीचे, फिरसे चुनी हुई संख्या की सहायता से, उपर्युक्त भाग में प्राप्त भजनफल लिखा जाता है। इस प्रकार हमें बाजू में प्रथम स्तम्भ के अंकों में श्रृंखला अथवा वल्लिका प्राप्त हो जाती है। तब हम श्रृंखला के नीचे उप अन्तिम अंक अर्थात् १ को लिखकर उसके ऊपर के अंक ४ द्वारा गुणित करते हैं, और ८ जोड़ते हैं। यह ८, श्रृंखला की अंतिम संख्या है। परिणामी १२ इस तरह लिख दिया जाता है ताकि वह ४ के संवादी स्थान में हो। तत्पश्चात् इस १२ को वल्लिका श्रृंखला में उसके ऊपर के अंक १ द्वारा गुणित करते हैं और १ जोड़ने पर (जो कि उसके उसी प्रकार नीचे है) हमें १३ एक के संवादी स्थान में प्राप्त होता है। इसी प्रकार, क्रिया को जारी रखकर हमें ३८ और ५१ भी प्राप्त होते हैं जो २ और १ के संवादी स्थान में प्राप्त किये जाते हैं। इस ५१ को २३ द्वारा भाजित किया जाता है; और शेष ५ एक गुच्छे में फलों को अल्पतम संख्या दृष्टिगत होती है। निम्नलिखित बीजीय निरूपण द्वारा इस नियम का मूलभूत सिद्धान्त (rationale) स्पष्ट हो जावेगा—

$$\frac{\text{बा}\,\text{क}+\text{ब}}{\text{आ}} = \text{ख (जो एक पूर्णांक है)} = \text{फ}_1\,\text{क}+\text{प}_1,\ \text{जहाँ}\ \text{प}_1 = \frac{(\text{बा}-\text{आफ}_1)\,\text{क}+\text{ब}}{\text{आ}}$$

$$\therefore \text{क} = \frac{\text{आप}_1-\text{ब}}{\text{र}_1},\ (\text{ जहाँ } \text{र}_1 = \text{बा}-\text{आफ}_1 \text{ जो प्रथम शेष है }) = \text{फ}_2\,\text{प}_1+\text{प}_2,\ \text{जहाँ}\ \text{प}_2$$

$= \frac{\text{र}_2\,\text{प}_1 - \text{ब}}{\text{र}_1}$, और फ_2 दूसरा भजनफल है तथा र_2 दूसरा शेष है।

इसलिये, $\text{प}_1 = \frac{\text{र}_1\,\text{प}_2+\text{ब}}{\text{र}_2} = \text{फ}_3\,\text{प}_2+\text{प}_3$, जहाँ $\text{प}_3 = \frac{\text{र}_3\,\text{प}_2+\text{ब}}{\text{र}_2}$ और फ_3 तीसरा भजनफल तथा र_3 तीसरा शेष है।

के मिश्रित प्रश्न के हल के लिये इस तरह समान अंकों की श्रृंखला प्राप्त की जाती है। यह श्रृंखला पहिले की भाँति नीचे से ऊपर की ओर बर्ती जाती है और, पहिले की तरह, परिणामी संख्या को इस

इसी तरह, $\text{प}_2 = \frac{\text{र}_2\,\text{प}_3 - \text{ब}}{\text{र}_3} = \text{फ}_4\,\text{प}_3 + \text{प}_4$, जहाँ $\text{प}_4 = \frac{\text{र}_4\,\text{प}_3 - \text{ब}}{\text{र}_3}$ है; $\text{प}_3 = \frac{\text{र}_3\,\text{प}_4 + \text{ब}}{\text{र}_4}$ $= \text{फ}_5\,\text{प}_4 + \text{प}_5$, जहाँ $\text{प}_5 = \frac{\text{र}_5\,\text{प}_4 + \text{ब}}{\text{र}_4}$ है। इस प्रकार हमें निम्नलिखित सम्बन्ध प्राप्त होते हैं—

$$\text{क} = \text{फ}_2\,\text{प}_1 + \text{प}_2;\ \text{प}_1 = \text{फ}_3\,\text{प}_2 + \text{प}_3;\ \text{प}_2 = \text{फ}_4\,\text{प}_3 + \text{प}_4;\ \text{प}_3 = \text{फ}_5\,\text{प}_4 + \text{प}_5;$$

प_4 का मान इस तरह चुनते हैं ताकि $\frac{\text{र}_5\,\text{प}_4 + \text{ब}}{\text{र}_4}$ (जोकि उपर बतलाए अनुसार प_5 का मान है), एक पूर्णांक बन जावे। इस प्रकार, श्रृंखला फ_2, फ_3, फ_4, प_4 और प_5 को जमाते हैं जिससे क का मान प्राप्त हो जाता है; अर्थात् ऊपरी राशि की गुणन विधि को तथा श्रृंखला की निम्नतर राशि की जोड़ विधि को सबसे ऊपर की राशि तक ले जाकर क का मान प्राप्त करते हैं। क का मान इस प्रकार प्राप्त कर, उसे आ के द्वारा विभाजित करते हैं। प्राप्त शेष, क की अल्पतम अर्हा को निरूपित करता है; क्योंकि क के वे मान जो समीकार $\frac{\text{बाक} + \text{ब}}{\text{आ}}$ = कोई पूर्णांक, का समाधान करते हैं, सब समान्तर श्रेढि में होते हैं जहाँ प्रचय (common difference) आ होता है।

इस नियम के द्वारा वे प्रश्न भी हल किये जा सकते हैं जहाँ दो या दो से अधिक दशायें दी गई रहती हैं। ऐसे प्रश्न गाथाओं १२१½ से लेकर १२९½ तक दिये गये हैं। १२१½ वीं गाथा का प्रश्न इस नियम के अनुसार इस प्रकार हल किया जा सकता है—

दिया गया है कि फलों का एक ढेर जब ७ द्वारा ह्रासित किया जाता है तब वह ८ मनुष्यों में ठीक-ठीक भाजन योग्य हो जाता है, और वही ढेर जब ३ द्वारा ह्रासित किया जाता है तब १३ मनुष्यों में ठीक-ठीक भाजन योग्य हो जाता है। अब उपर्युक्त रीति द्वारा सबसे पहिले फलों की अल्पतम संख्या को निकाला जाता है जो प्रथम दशा का समाधान करे, और तब फलों की वह संख्या निकाली जाती है जो दूसरी दशा का समाधान करे। इस प्रकार, हमें क्रमशः १५ और १६ समूह वाचक मान प्राप्त होते हैं। अब अधिक बड़े समूह वाचक मान सम्बन्धी भाजक को छोटे समूह वाचक मान सम्बन्धी भाजक द्वारा विभाजित किया जाता है ताकि नयी वल्लिका (श्रृंखला) प्राप्त हो जावे। इस प्रकार, १३ को ८ द्वारा विभाजित करने पर और भाग को जारी रखने पर हमें निम्नलिखित प्राप्त होता है—

```
८)१३(१
  ८          १
  ५)८(१      १
    ५        १
    ३)५(१    १
      ३      १
      २)३(१  २
        २
        १)२(१
          १
          १
```

इसके द्वारा वल्लिका श्रृंखला इस प्रकार प्राप्त होती है—

१ को 'मति' चुनकर, और पहिले ही प्राप्त दो समूह मानों के अंतर (१६-१५) को अर्थात् १ को मति और अंतिम भाजक के गुणनफल में जोड़ते हैं। इस योग को अंतिम भाजक द्वारा भाजित करने पर हमें २ प्राप्त होता है जिसे वल्लिका (श्रृंखला) में मति के नीचे लिखना होता है। तब, वल्लिका के साथ पहिले की रीति करने पर हमें ११ प्राप्त होता है, जिसे प्रथम भाजक ८ द्वारा भाजित करने पर शेष ३ बच रहता है। इसे अधिक बड़े समूहमान सम्बन्धी भाजक १३ द्वारा गुणित कर, अधिक बड़े समूहमान में जोड़ दिया जाता है (१३×३+१६=५५)। इस प्रकार ढेर में फलों की संख्या ५५ प्राप्त होती है।

अन्तिम भाजन शृङ्खला के प्रथम भाजक द्वारा विभाजित करते हैं। (इस क्रिया में प्राप्त) शेष को (अधिक बड़े समूह वाचक मान सम्बन्धी) भाजक द्वारा गुणित करते हैं, और परिणामी गुणनफल में इस अधिकबड़े समूह वाचक मान को जोड़ देते हैं। (इस प्रकार दी गई समूह संख्या के इष्ट गुणक का मान प्राप्त किया जाता है, जो दो विचाराधीन विशिष्ट विभाजनों का समाधान करता है) ॥११५½॥

इस विधि का मूल भूत सिद्धान्त (rationale) निम्नलिखित विमर्श से स्पष्ट हो जावेगा—

(१) $\frac{बा_1 क + ब_1}{आ_1}$ पूर्णांक है; (२) $\frac{बा_2 क + ब_2}{आ_2}$ पूर्णांक है; और (३) $\frac{बा_3 क + ब_3}{आ_3}$ पूर्णांक है।

(१) में मानलो क का अल्पतम मान $= स_1$ है।

(२) में मानलो क का अल्पतम मान $= स_2$ है।

(३) में मानलो क का अल्पतम मान $= स_3$ है।

(४) जब (१) और (२) दोनों का समाधान करना पड़ता है, तब $दआ_1 + स_1$ को $क्षआ_2 + स_2$ के तुल्य होना पड़ता है, ताकि $स_1 - स_2 = क्षआ_2 - दआ_1$ हो; अर्थात्, $\frac{आ_1 द + (स_1 - स_2)}{आ_2} = क्ष$, हो।

अज्ञात मानवाली राशियों द और क्ष सहित होने से अनिर्धृत (indeterminate) समीकरण (४) से, जैसा कि पहले ही सिद्ध किया जा चुका है उसके अनुसार, द के अल्पतम धनात्मक पूर्णांक को प्राप्त कर सकते हैं। द के इस मान को $आ_1$ द्वारा गुणित करने, और तब $स_1$ में जोड़ने पर क का मान प्राप्त होता है जो (१) और (२) का समाधान करता है।

मानलो यह $त_1$ है, और इन दोनों समीकारों का समाधान करने वाला क का और अधिक बड़ा मान मानलो $त_2$ है।

(५) अब, $त_1 + नआ_1 = त_2$ है,

(६) और, $त_1 + मआ_2 = त_2$ है।

$\therefore \frac{आ_1}{आ_2} = \frac{म}{न}$. इस प्रकार, $आ_1 = म.प$, और $आ_2 = न.प$, जहाँ $आ_1$ और $आ_2$ का सबसे बड़ा साधारण गुणनखंड (मह. समा.) प है। $\therefore म = \frac{आ_1}{प}$, और $न = \frac{आ_2}{प}$.

(५) अथवा (६) में इनका मान रखने पर, $त_1 + \frac{आ_1 आ_2}{प} = त_2$ होता है।

इससे स्पष्ट है कि क का दूसरा उच्चतर मान जो दो समीकरणों का समाधान करता है वह $आ_1$ और $आ_2$ के लघुत्तम समापवर्त्य को निम्नतर मान में जोड़ने पर प्राप्त होता है।

फिर से, मानलो तीनों सभी समीकारों का समाधान करने वाले क का मान व है।

तब, $व = त_1 + \frac{आ_1 आ_2}{प} \times र$, (जहाँ र धनात्मक पूर्णांक है) = (मानलो) $त_1 + लर$ और

$व = स_3 + ष आ_3 = त_1 + ल र$, $\therefore र = \frac{ष आ_3 + स_3 - त_1}{ल}$ होगा।

पिछले समीकार में वल्लिका कुट्टीकार के सिद्धान्त का प्रयोग करने पर ष का मान प्राप्त हो जाता

अत्रोद्देशकः

जम्बूजम्बीररम्भाक्रमुकपनसखर्जूरहिन्तालताली-
पुन्नागाम्राद्यनेकद्रुमकुसुमफलैर्नम्रशाखाधिरूढम् ।
भ्राम्यद्भृंगाब्जवापीशुकपिककुलनानाध्वनिव्याप्तदिक्कं
पान्थाः श्रान्ता वनान्तं श्रमनुदममलं ते प्रविष्टाः प्रहृष्टाः ॥ ११६½ ॥
राशिस्त्रिषष्टिः कदलीफलानां संपीड्य संक्षिप्य च सप्तभिस्तैः ।
पान्थैस्त्रयोविंशतिभिर्विशुद्धा राशेस्त्वमेकस्य वद प्रमाणम् ॥ ११७½ ॥
राशीन् पुनर्द्वादश दाडिमानां समस्य संक्षिप्य च पञ्चभिस्तैः ।
पान्थैर्नरैर्विंशतिभिर्निरेकैर्भक्तांस्तथैकस्य वद प्रमाणम् ॥ ११८½ ॥
दृष्ट्वाम्रराशीन् पथिको यथैकत्रिंशत्समूहं कुरुते त्रिहीनम् ।
शेषे हृते सप्ततिभिस्त्रिमिश्रैर्नरैर्विशुद्धं कथयैकसंख्याम् ॥ ११९½ ॥
दृष्टाः सप्तत्रिंशत्कपित्थफलराशयो वने पथिकैः ।
सप्तदशापोह्य हृते व्येकाशीत्यांशकप्रमाणं किम् ॥ १२०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी वन का प्रकाशवान और ताजगी लाने वाला सीमास्थ (outskirts) बहुत से ऐसे वृक्षों से पूर्ण था जिनकी शाखायें फल-फूल के भार से नीचे झुक गईं थीं। ऐसे वृक्षों में जम्बू, जम्बीर, रम्भा, क्रमुक, पनस, खजूर, हिन्ताल, ताली, पुन्नाग और आम (समाविष्ट) थे। वह स्थान तोतों और कोयलों की ध्वनि से व्याप्त था। तोते और कोयलें ऐसे झरनों के किनारे पर थीं जिनमें कमलों पर भ्रमर भ्रमण कर रहे थे। ऐसे वनान्त में कुछ थके हुए यात्रियों ने सानन्द प्रवेश किया ॥ ११६½ ॥

केलों की ६३ ढेरियाँ और ७ केले के फल २३ यात्रियों में बराबर-बराबर बाँट दिये गये जिससे कुछ भी शेष न बचा। एक ढेरी में फलों की संख्या बतलाओ ॥ ११७½ ॥

फिर से, अनार की १२ ढेरियाँ और ५ अनार के फल उसी तरह १९ यात्रियों में बाँटे गये। एक ढेरी में कितने अनार थे ? ॥ ११८½ ॥

एक यात्री ने आमों की बराबर फलों वाली ढेरियाँ देखीं। ३१ ढेरियाँ ३ फलों द्वारा ह्रासित कर दी गईं। जब शेषफल ७३ व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँट दिये गये तो शेष कुछ भी न रहा। इन ढेरियों में से किसी भी एक में कितने फल थे ? ॥ ११९½ ॥

वनमें यात्रियों द्वारा ३७ कपित्थ फल की ढेरियाँ देखी गईं। १७ फल अलग कर दिये गये शेषफल ७९ व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँटने पर कुछ भी शेष न रहा। प्रत्येक को कितने-कितने फल मिले ? ॥ १२०½ ॥

है, और तब व का मान सरलता पूर्वक निकाला जा सकता है।

इससे यह देखा जाता है कि जब व का मान निकालने के लिये हम $त_1$ और $स_3$ को कुट्टीकार विधि के अनुसार बर्तते हैं; तब छेद अथवा भाजक को $त_1$ के सम्बन्ध में $\frac{आ_1 आ_2}{प}$ लेना पड़ता है; अथवा, प्रथम दो समीकारों में भाजकों के लघुत्तम समापवर्त्य को लेना पड़ता है।

दृष्ट्वाम्रराशिमपहाय च सप्त पश्चाद्भक्तेऽष्टभिः पुनरपि प्रविहाय तस्मात् ।
त्रीणि त्रयोदशभिरुद्दलिते विशुद्धः पान्थैर्वने गणक मे कथयैकराशिम् ॥ १२१½ ॥
द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिरेकः कपित्थफलराशिः ।
भक्तो रूपाग्रस्तत्प्रमाणमाचक्ष्व गणितज्ञ ॥ १२२½ ॥
द्वाभ्यामेकस्त्रिभिर्द्वौ च चतुर्भिर्भाजिते त्रयः । चत्वारि पञ्चभिः शेषः को राशिर्वद मे प्रिय ॥१२३½॥
द्वाभ्यामेकस्त्रिभिश्शुद्धश्चतुर्भिर्भाजिते त्रयः । चत्वारि पञ्चभिः शेषः को राशिर्वद मे प्रिय ॥१२४½॥
द्वाभ्यां निरग्र एकाग्रस्त्रिभिर्नाग्रो विभाजितः । चतुर्भिः पञ्चभिर्भक्तो रूपाग्रो राशिरेष कः ॥१२५½॥
द्वाभ्यामेकस्त्रिभिः शुद्धश्चतुर्भिर्भाजिते त्रयः । निरग्रः पञ्चभिर्भक्तः को राशिः कथयाधुना ॥१२६½॥
दृष्टा जम्बूफलानां पथि पथिकजनै राशयस्तत्र राशी
द्वौ त्र्यग्रौ तौ नवानां त्रय इति पुनरेकादशानां विभक्ताः ।
पञ्चाग्रास्ते यतीनां चतुरधिकतराः पञ्च ते सप्तकानां
कुट्टीकारार्थविन्मे कथय गणक संचिन्त्य राशिप्रमाणम् ॥ १२७½ ॥
वनान्तरे दाडिमराशयस्ते पान्थैस्त्रयः सप्तभिरेकशेषाः ।
सप्त त्रिशेषा नवभिर्विभक्ताः पञ्चाष्टभिः के गणक द्विरग्राः ॥ १२८½ ॥

वन में आमों की ढेरियाँ देखने के बाद और उनमें ७ फल निकालने के पश्चात् उन्हें ८ यात्रियों में बराबर-बराबर बाँट दिया गया । और जब, फिर से, उन्हीं ढेरियों में से ३ फल निकाल लिये गये तब उन्हें १३ यात्रियों में बाँट दिया गया । दोनों दशाओं में कुछ भी शेष न रहा । हे गणितज्ञ ! इस केवल एक ढेरी का संख्यात्मक मान (फलों की संख्या) बतलाओ ॥ १२१½ ॥

कपित्थ फलों की केवल एक ढेरी के फलों को २, ३, ४ अथवा ५ मनुष्यों में विभाजित करने पर प्रत्येक दशा में शेष १ बचता है । हे गणितवेत्ता ! उस ढेरी में फलों की संख्या बतलाओ ॥१२२½॥

जब २ द्वारा भाजित हो तब शेष १ रहता है, जब ३ द्वारा भाजित हो तब शेष २, जब ४ द्वारा तब शेष ३, जब ५ द्वारा तब शेष ४ है । हे मित्र ! ऐसी ढेरी में कितने फल हैं ? ॥ १२३½ ॥

जब २ द्वारा भाजित हो तब शेष १ है, जब ३ द्वारा तब शेष कुछ नहीं है, जब ४ द्वारा तब शेष ३ है, जब ५ द्वारा तब शेष ४ है । ढेरी का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥ १२४½ ॥

जब २ द्वारा भाजित हो तब शेष कुछ नहीं है, जब ३ द्वारा तब शेष १, जब ४ द्वारा तब शेष कुछ नहीं है; और जब ५ द्वारा भाजित हो तब शेष १ रहता है । यह राशि क्या है ? ॥ १२५½ ॥

जब २ द्वारा भाजित हो तब शेष १ है, जब ३ द्वारा तब शेष कुछ नहीं है, जब ४ द्वारा तब शेष ३, और जब ५ द्वारा भाजित हो तब शेष कुछ नहीं है । यह राशि कौन है ? ॥ १२६½ ॥

रास्ते में यात्रियों ने जम्बू फलों की कुछ बराबर ढेरियाँ देखीं । उनमें से २ ढेरियाँ ९ साधुओं में बराबर-बराबर बाँटने पर ३ फल शेष रहे । फिर से, ३ ढेरियाँ इसी प्रकार ११ व्यक्तियों में बाँटने पर ५ फल शेष बचे, पुनः ५ ढेरियों को ७ व्यक्तियों में बराबर बाँटनेपर शेष ४ फल बचे । हे विभाजन की कुट्टीकार विधि को जानने वाले अंकगणितज्ञ ! ठीक तरह सोचकर ढेरी का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥ १२७½ ॥

वन के अन्तर में अनार की ३ बराबर ढेरियाँ ७ यात्रियों में बराबर बाँट देने पर १ फल शेषफल है; ७ ऐसी ढेरियाँ उसी प्रकार ९ में बाँटने पर शेष ३ फल, और पुनः ५ ऐसी ढेरियाँ ८ में बाँट देने पर २ फल बचते हैं । हे अंकगणितज्ञ ! प्रत्येक का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥ १२८½ ॥

भक्ता द्वियुक्ता नवभिस्तु पञ्च युक्ताश्चतुर्भिश्च षडष्टभिस्तैः ।
पान्थैर्जनैः सप्तभिरेकयुक्ताश्चत्वार एते कथय प्रमाणम् ॥ १२९½ ॥

अग्रशेषविभागमूलानयनसूत्रम्—

शेषांशाग्रवधो युक् स्वाग्रेणान्यस्तदंशकेन गुणः । यावद्भागास्तावद्विच्छेदाः स्युस्तदग्रगुणाः॥१३०½॥

समान फलों की संख्या वाली ५ ढेरियाँ थीं, जिनमें २ फल मिलाने के पश्चात् ९ यात्रियों में बाँटने पर कुछ न रहा । ६ ऐसी ढेरियों में ४ फल मिलाने के पश्चात् उसी प्रकार ८ में बाँटने पर, और ४ ढेरियों में १ फल मिलाकर उसी प्रकार ७ में बाँटने पर शेष कुछ न रहा । ढेरी का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥ १२९½ ॥

इच्छानुसार वितरित मूल राशि को निकालने के लिये नियम, जब कि कुछ विशिष्ट ज्ञात राशियों को हटाने पर शेष को प्राप्त किया जाता है :—

हटाई जाने वाली (दी गई) ज्ञात राशि और (दी गई ज्ञात राशि को दे चुकने पर) जो शेष विशिष्ट भिन्नीय भाग बच रहता है उसका भिन्नीय समानुपात—इन दोनों का गुणनफल प्राप्त करो । इसके बाद की राशि, इस गुणनफल में पिछले शेष में से निकाली जाने वाली विशिष्ट ज्ञात राशि को जोड़कर प्राप्त की जाती है । और, इस परिणामी योग को इसी प्रकार के ऊपर कथित शेष के शेष रहने वाले भिन्नीय समानुपात द्वारा गुणित किया जाता है । यह उतने बार करना पड़ता है जितने कि वितरण करने पड़ते हैं । तत्पश्चात् इस तरह प्राप्त राशियों के हरों को अलग कर देना चाहिये । हर रहित राशियों और शेष के ऊपर कथित शेष रहने वाले भिन्नीय समानुपात के उत्तरोत्तर गुणनफलों को ज्ञात राशि और (अन्य तत्व, जैसे, अज्ञात राशि का गुणांक) अपवर्त्य (तथा भाजक के नाम से वल्लिका कुट्टीकार के प्रश्न में) उपयोग में लाते हैं ॥ १३०½ ॥

(१३०½) यहाँ हटाई जाने वाली ज्ञात राशि अग्र कहलाती है । अग्र के हटाने के पश्चात् जो बच रहता है वह 'शेष' कहलाता है । जो दिया अथवा लिया जाता है ऐसे शेष के भिन्न को अग्रांश कहते हैं, और अग्रांश के दिये अथवा लिये जानेपर जो शेष बच रहता है वह शेषांश अथवा शेष का शेष रहनेवाला भिन्नीय समानुपात कहलाता है, जैसे, जहाँ क का मान निकालना पड़ता है, और 'अ' विभाजित हुए भिन्नीय समानुपात $\frac{1}{3}$ को लेकर प्रथम विभाजन सम्बन्धी अग्र है, वहाँ $\frac{क - अ}{3}$ अग्रांश है और $(क - अ) - \frac{क - अ}{3}$ शेषांश है । १३२½–१३३½ वीं गाथा के प्रश्न को हल करने पर यह नियम स्पष्ट हो जावेगा—

यहाँ १ पहिला अग्र है, और $\frac{1}{3}$ पहिला अग्रांश है; इसलिये $(1 - \frac{1}{3})$ या $\frac{2}{3}$ शेषांश है । अब, अग्र और शेषांश का गुणनफल $1 \times \frac{2}{3}$ या $\frac{2}{3}$ है । इसे दो स्थानों में लिखो, यथा—

$\left\{ \begin{matrix} 2/3 \\ 2/3 \end{matrix} \right\}$ ....(१)

अब राशियों, $\left\{ \begin{matrix} 2/3 \\ 2/3 \end{matrix} \right\}$ की पुनरावृत्ति करो; किसी एक राशि में दूसरे अग्र १ को जोड़ दो । तब हमें $\left\{ \begin{matrix} 5/3 \\ 2/3 \end{matrix} \right\}$ प्राप्त होता है । दोनों को दूसरे शेषांश अर्थात् $1 - \frac{1}{3}$ या $\frac{2}{3}$ द्वारागुणित करो, ताकि $\left\{ \begin{matrix} 10/9 \\ 4/9 \end{matrix} \right\}$ प्राप्त हो।..(२)

इन अंकों को लेकर पहिले की तरह तीसरे अग्र १ को जोड़ो जिससे $\left\{ \begin{matrix} 19/9 \\ 4/9 \end{matrix} \right\}$ प्राप्त होगा ।

अत्रोद्देशकः

आनीतवत्याम्रफलानि पुंसि प्रागेकमादाय पुनस्तदर्धम् ।
गतेऽग्रपुत्रे च तथा जघन्यस्तत्रावशेषार्धमथो तमन्यः ॥ १३१½ ॥
प्रविश्य जैनं भवनं त्रिपूरुषं प्रागेकमभ्यर्च्य जिनस्य पादे[1] ।
शेषत्रिभागं प्रथमेऽनुमाने तथा द्वितीये च तृतीयके तथा ॥ १३२½ ॥
शेषत्रिभागद्वयतश्च शेषत्र्यंशद्वयं चापि ततस्त्रिभागान् ।
कृत्वा चतुर्विंशतितीर्थनाथान् समर्चयित्वा गतवान् विशुद्धः ॥ १३३½ ॥

इति मिश्रकव्यवहारे साधारणकुट्टीकारः समाप्तः ।

---

१. हस्तलिपि में पादौ शब्द है जो यहाँ शुद्ध प्रतीत नहीं होता है । B में पादे के लिये के ज्ञान् पाठ है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मनुष्य द्वारा घर पर आम्र फलों को लाने पर उसके बड़े पुत्र ने पहिले एक फल लिया और तब शेष के आधे लिये । बड़े लड़के के जाने पर, छोटे लड़के ने भी शेष में से उसी प्रकार फल लिये । (उसने, तत्पश्चात् , जो शेष रहा उसका आधा लिया); और अन्य पुत्र ने शेष आधे लिये । पिता के द्वारा लाये हुए फलों की संख्या निकालो । ॥ १३१½ ॥ कोई मनुष्य फूल लेकर ऐसे जिन-मंदिर में गया जो मनुष्य की ऊँचाई से तिगुना ऊँचा था । पहिले उसने इन फूलों में से पूजन में जिन भगवान् के चरणों में एक फूल चढ़ाया, और तब पूजन में शेष फूलों के एक तिहाई जिन भगवान् की प्रथम ऊँचाई-माप वाली प्रतिमा के चरणों में भेंट किये । शेष दो तिहाई फूलों में से उसने उसी प्रकार द्वितीय ऊँचाई-माप वाली प्रतिमा के चरणों में भेंट किये, और तब उसी प्रकार तीसरी ऊँचाई-माप वाली प्रतिमा के चरणों में भेंट किये । अंत में जो दो तिहाई बचे वे भी तीन बराबर भागों में बाँटे गये; और इन भागों में से एक-एक भाग आठ-आठ तीर्थंकरों को (इस प्रकार कुल २४ तीर्थंकरों को) भेंट करने पर उसके पास एक भी फूल न बचा । बतलाओ उसके पास कितने फूल थे ? ॥ १३२½–१३३½ ॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में, साधारण कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

दूसरे शेषांश $१ - \frac{१}{३}$ या $\frac{२}{३}$ द्वारा और अन्तिम अंश या $\frac{१}{३}$ द्वारा गुणित करो जिससे $\left\{ \begin{matrix} ३८/८१ \\ ८/८१ \end{matrix} \right\}$ प्राप्त होगा ।..(३)

(१), (२), (३) द्वारा दर्शाये गये भिन्नों की इन तीन राशियों में प्रथम भिन्नों के हरों को अलग कर देते हैं, और अंश वल्लिका कुट्टीकार में ऋणात्मक अग्र निरूपित करते हैं जहाँ उन राशियों में दूसरे भिन्नों में से प्रत्येक अंश और हर क्रमशः भाज्य, गुणक और भाजक का निरूपण करते हैं । इस प्रकार, $\frac{२ क - २}{३}$ पूर्णांक; $\frac{४ क - १०}{९}$ पूर्णांक, और $\frac{८ क - ३८}{८१}$ पूर्णांक प्राप्त होते हैं । इन तीन दशाओं को समाधानित करनेवाला क का मान, फूलों की संख्या होती है ।

विषमकुट्टीकारः

इतः परं विषमकुट्टीकारं व्याख्यास्यामः। विषमकुट्टीकारस्य सूत्रम्—
मतिसंगुणितौ छेदौ योज्योनत्याज्यसंयुतौ राशिहृतौ।
भिन्ने कुट्टीकारे गुणकारोऽयं समुद्दिष्टः॥ १३४½ ॥

अत्रोद्देशकः

राशिः षट्केन हतो दशान्वितो नवहृतो निरवशेषः।
दशभिर्हीनश्च तथा तद्गुणकौ[1] कौ ममाशु संकथय॥ १३५½ ॥

---

१. B गुणकारौ।

विषम कुट्टीकार*

इसके पश्चात् हम विषम कुट्टीकार की व्याख्या करेंगे।

विषम कुट्टीकार सम्बन्धी नियम :—

दिया हुआ भाजक दो स्थानों में लिख लिया जाता है, और प्रत्येक स्थान में मन से चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। (इस प्रश्न में) जोड़ने के लिये दी गई (ज्ञात) राशि इन स्थानों के किसी एक गुणनफल में से घटाई जाती है। घटाई जाने के लिये दी गई राशि अन्य स्थान में लिखे हुए गुणनफल में जोड़ दी जाती है। इस प्रकार प्राप्त दोनों राशियाँ (प्रश्नानुसार विभाजित की जाने वाली अज्ञात राशियों के) ज्ञात गुणांक (गुणक) द्वारा भाजित की जाती हैं। इस तरह प्राप्त प्रत्येक भजनफल इष्ट राशि होती है, जो भिन्न कुट्टीकार की रीति में दिये गये गुणक द्वारा गुणित की जाती है। ॥ १३४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई राशि ६ द्वारा गुणित होकर, तब १० द्वारा बढ़ाई जाकर और तब ९ द्वारा भाजित होकर कुछ भी शेष नहीं छोड़ती। इसी प्रकार, (कोई दूसरी राशि ६ द्वारा गुणित होकर), तब १० द्वारा ह्रासित होकर (और तब ९ द्वारा भाजित होकर) कुछ शेष नहीं छोड़ती। इन दो राशियों को शीघ्र बतलाओ (जो दिये गये गुणक से यहाँ इस प्रकार गुणित की जाती हैं।) ॥ १३५½ ॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में, विषम कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

---

* विषम और भिन्न दोनों शब्द कुट्टीकार के संबंध में उपयोग में लाये गये हैं और दोनों के स्पष्टतः एक से अर्थ हैं। ये इन नियमों के प्रश्नों में आने वाली भाज्य (dividend) राशियों के भिन्नीय रूप को निर्देशित करते हैं।

सकलकुट्टीकारः

सकलकुट्टीकारस्य सूत्रम्—
भाज्यच्छेदाग्रशेषैः प्रथमहृतिफलं त्याज्यमन्योन्यभक्तं
न्यस्यान्ते साग्रमूर्ध्वैरुपरिगुणयुतं तैः समानासमाने ।
स्वर्णघ्नं व्याग्रहारौ गुणधनमृणयोश्चाधिकाग्रस्य हारं
हृत्वा हृत्वा तु साग्रान्तरधनमधिकाग्रान्वितं हारघातम् ॥ १३६½ ॥

सकल कुट्टीकार

सकल कुट्टीकार सम्बन्धी नियम :—

विभाजित की जाने वाली अज्ञात राशि के भाज्य गुणक द्वारा अग्रनयनित (carried on) तथा भाजक और उत्तरोत्तर परिणामी शेषों द्वारा अग्रनयनित भाजनों में प्रथम के भजनफल को अलग कर दिया जाता है। इस पारस्परिक भाजन द्वारा, जो कि भाजक और शेष के समान हो जाने तक किया जाता है, अन्य भजनफल प्राप्त किये जाते हैं, जो ऊर्ध्वाधर श्रृंखला में अन्तिम तुल्य शेष और भाजक के साथ लिखे जाते हैं। इस श्रृंखला के निम्नतम अंक में भाजक द्वारा विभाजित की गई ज्ञात राशि से प्राप्त शेष को जोड़ना पड़ता है। (तब, श्रृंखला में इन संख्याओं द्वारा,) वह योग प्राप्त करते है, जो उत्तरोत्तर निम्नतम संख्या में उसके ठीक ऊपर की दो संख्याओं का गुणनफल जोड़ने पर प्राप्त होता है। (यह विधि तब तक की जाती है जब तक कि श्रृंखला का उच्चतम अंक भी क्रिया में शामिल नहीं हो जाता।) उसके बाद वह परिणामी योग और प्रश्न में दिया गया भाजक, दो शेषों के रूप में, अज्ञात राशि के दो मानों को उत्पन्न करता है। इस राशि के मानों को प्रश्न में दिये गये भाज्य गुणक द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त होने वाले दो मान या तो जोड़ी जाने वाली दी गई ज्ञात राशि से सम्बन्धित रहते हैं अथवा घटाई जाने वाली दी गई ज्ञात राशि से सम्बन्धित रहते हैं, जब कि ऊपर कथित भजनफलों की श्रृंखला की अंक पंक्ति की संख्या क्रमशः युग्म अथवा अयुग्म होती है। (जहाँ दिये गये समूह एक से अधिक प्रकार से बढ़ाये जाने पर अथवा घटाये जाने पर एक से अधिक अनुपात में वितरित किये जाना होते हैं वहाँ) अधिक बड़े समूहमान से सम्बन्धित भाजक (जिसे ऊपर समझाये अनुसार दो विशिष्ट विभाजनों में से किसी एक के सम्बन्ध में प्राप्त किया जाता है) को ऊपर के अनुसार बार-बार छोटे समूह मान से संबंधित भाजक द्वारा भाजित किया जाता है, ताकि उत्तरोत्तर भजनफलों की लता समान श्रृंखला इस दशा में भी प्राप्त हो सके। इस श्रृंखला के निम्नतम भजनफल के नीचे इस अंतिम उत्तरोत्तर भाग में अयुग्म स्थिति क्रमवाले अल्पतम शेष के मन से चुने हुए गुणक को रखा जाता है। फिर इसके नीचे वह संख्या रखी जाती है, जो दो समूह-मानों के अंतर को ऊपर कथित मन से चुने हुए गुणक से गुणित अयुग्म स्थिति क्रमवाले अल्पतम शेष के गुणनफल में जोड़नेपर, और तब इस परिणामी योग को ऊपर की भाजन श्रृंखला के अंतिम भाजक द्वारा भाजित करने पर प्राप्त होती है। इस प्रकार लता सदृश अंकों की श्रृंखला प्राप्त होती है, जिसकी आवश्यकता इस पिछले प्रकार के प्रश्न के साधन के लिये होती है। यह श्रृंखला नीचे से ऊपर तक पहिले की भाँति बर्ती जाती है, और परिणामी संख्या पहिले की तरह इस अंतिम भाजन श्रृंखला में प्रथम भाजक द्वारा भाजित की जाती है। इस क्रिया से प्राप्त शेष को अधिक बड़े समूह-मान से सम्बन्धित भाजक द्वारा गुणित किया जाना चाहिये। परिणामी गुणनफल में वह अधिक बड़ा समूहमान जोड़ देना चाहिये। (इस प्रकार, दिये गये समूहमान के इष्ट गुणक का मान प्राप्त करते हैं ताकि वह विचाराधीन दो उल्लिखित विभाजनों का समाधान करे) ॥ १३६½ ॥

(१३६½) यह नियम १३७½ वीं गाथा में दिये गये प्रश्न को हल करने पर स्पष्ट हो जावेगा—

अत्रोद्देशकः

सप्तोत्तरसप्तत्या युतं शतं योज्यमानमष्टत्रिंशत् । सैकशतद्वयभक्तं को गुणकारो भवेदत्र ॥ १३७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अज्ञात गुणनखंड का भाज्य (dividend) गुणक १७७ है । २४०, स्व में जोड़े जानेवाले अथवा घटाये जाने वाले गुणनफल से सम्बन्धित ज्ञात राशि है; पूरी राशि को २०१ द्वारा भाजित करने पर शेष कुछ नहीं रहता । यहाँ अज्ञात गुणनखण्ड कौन सा है, जिससे की दिया गया भाज्यगुणक गुणित किया जाता है ? ॥ १३७½ ॥ ३५ और अन्य राशियाँ, जो संख्या में १६ हैं, और उत्तरोत्तर मान

प्रश्न है कि जब $\frac{१७७ क \pm २४०}{२०१}$ पूर्णांक है तो क के मान क्या होंगे ? साधारण गुणन खंडों को निरसित करने पर हमें $\frac{५९ क \pm ८०}{६७}$ पूर्णांक प्राप्त होता है । लगातार किये जाने वाले भाग की इष्ट विधि को निम्नलिखित रूप में कार्यान्वित करते हैं—

```
६७)५९(०
    ०                  १
   ५९)६७(१             ७
      ५९               २
      ८)५९(७           १
        ५६             १
         ३)८(२         १
           ६           १ + १३ = १४
           २)३(१
             २
             १)२(१
               १
               १
```

प्रथम भजनफल को अलग कर, अन्य भजनफल, श्रृंखला में इस प्रकार लिखे जाते हैं– इसके नीचे १ और १ को अग्रिम लिखा जाता है । ये अन्तिम भाजक और शेष समान होते हैं । यहाँ भी जैसा कि वल्लिका कुट्टीकार में होता है, यह देखने योग्य है कि अन्तिम भाजन में कोई शेष नहीं रहता क्योंकि २ में १ का पूरा-पूरा भाग चला जाता है । परन्तु चूँकि, अन्तिम शेष, श्रृंखला के लिये चाहिये, इसलिये वह अन्तिम भजनफल छोटा से छोटा बनाकर रख दिया जाता है, और अन्तिम संख्या १ में यहाँ, १३ जोड़ते हैं, जो कि ८० में से ६७ का भाग देने पर प्राप्त होता है । इस प्रकार १४ प्राप्त कर, उसे श्रृंखला के अन्त में नीचे लिख दिया जाता है । इस प्रकार श्रृंखला पूरी हो जाती है । इस श्रृंखला के अंकों के लगातार किये गये गुणन और जोड़ द्वारा, (जैसा कि गाथा ११५½ के नोट में पहिले ही समझाया जा चुका है,) हमें ३९२ प्राप्त होता है । इसे ६७ द्वारा विभाजित किया जाता है । शेष ५७ क का एक मान होता है, जब कि ८० को श्रृंखला में अंकों की संख्या अयुग्म होने के कारण ऋणात्मक ले लिया जाता है । परन्तु जब ८० को धनात्मक लिया जाता है, तब क का मान (६७–५७) अथवा १० होता है । यदि श्रृंखला में अंकों की संख्या युग्म होती है, तो क का प्रथम निकाला हुआ मान धनात्मक अग्र सम्बन्धी होता है । यदि यह मान भाजक में से घटाया जाता है तो क का ऋणात्मक अग्र सम्बन्धी मान प्राप्त होता है ।

```
१—३९२
७—३४५
२—४७
१—१६
१—१५
१
१४
```

इस विधि का सिद्धान्त उसी प्रकार है जैसा कि वल्लिका कुट्टीकार के सम्बन्ध में है । परन्तु, उनमें अन्तर यही है कि यहाँ श्रृंखला में दो अन्तिम अंक दूसरी विधि द्वारा प्राप्त किये जाते हैं । अध्याय ६ की ११५½ वीं गाथा के नियम के नोट

पञ्चत्रिंशत् त्र्युत्तरषोडशपदान्येव हाराश्च ।
द्वात्रिंशदूव्यधिकैका त्र्युत्तरतोऽग्राणि के धनर्णगुणाः ॥ १३८½ ॥

में ३ द्वारा बढ़ती हुई हैं, दस भाज्यगुणक हैं। दिये गये भाजक, ३२ (और अन्य) हैं, जो उत्तरोत्तर २ द्वारा बढ़ते जाते हैं। और, १ को उत्तरोत्तर ३ द्वारा बढ़ाते जाने पर ज्ञात धनात्मक और ऋणात्मक सम्बन्धित राशियाँ उत्पन्न होती हैं। ज्ञात भाज्य-गुणक के अज्ञात गुणनखण्डों के मान क्या हैं जबकि वे धनात्मक या ऋणात्मक ज्ञात संख्याओं के साथ योगरूप से सम्बन्धित हैं ? ॥ १३८½ ॥

में दिये गये मूलभूत सिद्धान्त में अयुग्म स्थिति क्रम वाले शेष के साथ सम्बन्धित अग्र ब का बीजीय चिन्ह वही है जो इस प्रश्न में दिया गया है, परन्तु युग्म स्थिति क्रमवाले शेष के साथ सम्बन्धित अग्र ब का चिन्ह प्रश्न में जैसा दिया गया है उसके विपरीत है; इसलिये जब अयुग्म स्थिति क्रमवाले शेष तक लगातार भाजन किया जाता है तब प्राप्त क का मान उस अग्र के सम्बन्ध में होता है जिसका चिन्ह अपरिवर्तित है। और दूसरी ओर, जब लगातार भाजन युग्म स्थिति क्रमवाले शेष तक ले जाया जाता है तब वहाँ से प्राप्त क का मान उस अग्र के सम्बन्ध में होता है जिसका चिन्ह परिवर्तित है। जब प्राप्त शेषों की संख्या अयुग्म होती है, तब श्रंखला में भजनफलों की संख्या युग्म होती है; और जब शेषों की संख्या युग्म होती है, तब श्रंखला में भजनफलों की संख्या अयुग्म होती है। कारण यह है कि इस नियम में अन्तिम शेष से सम्बन्धित अग्र हमेशा धनात्मक लिया जाता है, इसलिये इस धनात्मक अग्र के सम्बन्ध में क का मान प्राप्त होता है जब कि अंतिम शेष अयुग्म स्थिति क्रममें हो। वह ऋणात्मक अग्र के सम्बन्ध में तब प्राप्त होता है जब कि अंतिम शेष युग्म स्थिति क्रम में हो। दूसरे शब्दों में, यदि भजनफलों की संख्या युग्म हो, तब धनात्मक अग्र सम्बन्धी मान प्राप्त होता है; और जब भजनफलों की संख्या अयुग्म हो, तब ऋणात्मक अग्र सम्बन्धी मान प्राप्त होता है।

इस प्रकार, धनात्मक और ऋणात्मक अग्रों के सम्बन्ध में क का मान प्राप्त करने पर दूसरा मान, इस मानको प्रश्न के भाजक में से घटाकर प्राप्त करते हैं। यह निम्नलिखित निरूपण से स्पष्ट हो जावेगा :— $\frac{\text{आक} \pm \text{ब}}{\text{बा}}$ = एक पूर्णांक। यहाँ मानलो क = ष; तब, $\frac{\text{आष} + \text{ब}}{\text{बा}}$ = एक पूर्णांक। हम जानते हैं कि $\frac{\text{आबा}}{\text{बा}}$ भी एक पूर्णांक है। इसलिये $\frac{\text{आबा}}{\text{बा}} - \frac{\text{आष} + \text{ब}}{\text{बा}}$, अथवा $\frac{\text{आ}(\text{बा} - \text{ष}) - \text{ब}}{\text{बा}}$ भी एक पूर्णांक है। यहाँ यह देखने योग्य है, कि तीनों दी गई संख्यात्मक राशियों के साधारण गुणनखंडों को लगातार भाजन के आरम्भ करने के पूर्व ही हटा देते हैं। अंतिम भाजक और अंतिम शेष बराबर होना चाहिये इसलिये इन में से प्रत्येक १ होता है। 'मति' जिसे वल्लिका कुट्टीकार के सम्बन्ध में नियमानुसार चुनना पड़ता है, और भजनफलों की श्रंखला के नीचे लिखना पड़ता है, वह इस नियम में हमेशा १ रहती है। अंतिम भाजक भी १ होता है। इसलिये वल्लिका कुट्टीकार में 'मति' यहाँ अंतिम भाजक का स्थान ले लेती है। इसके बाद देखा जायगा कि इस नियम द्वारा प्राप्त श्रंखला का अंतिम अंक (१ + अग्र) उतना ही रहता है जितना कि वल्लिका कुट्टीकार में प्राप्त श्रंखला का अंतिम अंक। यह अंतिम अंक, अंतिम भाजक को अग्र तथा मति और अंतिम शेष के गुणनफल के योग द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त करते हैं। यथा, अंतिम अंक = [अंतिम भाजक] ÷ { अग्र + (मति × अंतिम शेष) }

अधिकाल्पराश्योर्मूल्यमिश्रविभागसूत्रम्—
ज्येष्ठघ्नमहाराशेर्जघन्यफलताडितोनमपनीय ।
फलवर्गशेषभागो ज्येष्ठार्घोऽन्यो गुणस्य विपरीतम् ॥ १३९½ ॥

अत्रोद्देशकः

नवानां मातुलुङ्गानां कपित्थानां सुगन्धिनाम् । सप्तानां मूल्यसंमिश्रं सप्तोत्तरशतं पुनः ॥१४०½॥
सप्तानां मातुलुङ्गानां कपित्थानां सुगन्धिनाम् । नवानां मूल्यसंमिश्रमेकोत्तरशतं पुनः ॥ १४१½॥
मूल्ये ते वद मे शीघ्रं मातुलुङ्गकपित्थयोः । अनयोर्गणक त्वं मे कृत्वा सम्यक् पृथक् पृथक् ॥१४२½॥

बहुराशिमिश्रतन्मूल्यमिश्रविभागसूत्रम्—
इष्टघ्नफलैरूनितलाभादिष्टाप्तफलमसकृत् । तैरूनितफलपिण्डस्तच्छेदा गुणयुतास्तदर्घाः स्युः ॥१४३½॥

बड़ी और छोटी संख्याओं वाली वस्तुओं की कीमतों के दिये गये मिश्र योगों में से दो भिन्न वस्तुओं की विनिमयशील बड़ी और छोटी संख्या की कीमतों को अलग-अलग करने के लिये नियम—

दो प्रकार की वस्तुओं में से किसी एक की संवादी बड़ी संख्या द्वारा गुणित उच्चतर मूल्य-योग में से दो प्रकार की वस्तुओं में से अन्य सम्बन्धी छोटी संख्या द्वारा गुणित निम्नतर मूल्य-संख्या घटाओ। तब, परिणाम को इन वस्तुओं सम्बन्धी संख्याओं के वर्गों के अन्तर द्वारा भाजित करो। इस प्रकार प्राप्त फल अधिक संख्या वाली वस्तुओं का मूल्य होता है। दूसरा अर्थात् छोटी संख्या वाली वस्तु का मूल्य गुणकों (multipliers) को परस्पर बदल देने से प्राप्त हो जाता है ॥१३९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

९ मातुलुङ्ग (citron) और ७ सुगन्धित कपित्थ फलों की मिश्रित कीमत १०७ है। पुनः ७ मातुलुङ्ग और ९ सुगन्धित कपित्थ फलों की कीमत १०१ है। हे अंकगणितज्ञ ! मुझे शीघ्र बताओ कि एक मातुलुङ्ग और एक कपित्थ के दाम अलग-अलग क्या हैं ? ॥ १४०½–१४२½ ॥

दिये गये मिश्रित मूल्यों और दिये गये मिश्रित मानों में से विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के विभिन्न मिश्रित परिमाणों की संख्याओं और मूल्यों को अलग-अलग करने के लिये नियम—

(विभिन्न वस्तुओं की) दी गई विभिन्न मिश्रित) राशियों को मन से चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। इन मिश्रित राशियों के दिये गये मिश्रित मूल्य को इन गुणनफलों के मानों द्वारा अलग अलग ह्रासित किया जाता है। एक के बाद दूसरी परिणामी राशियों को मन से चुनी हुई संख्या द्वारा भाजित किया जाता है और शेषों को फिर से मन से चुनी हुई संख्या द्वारा भाजित किया जाता है। इस विधि को बारबार दुहराना पड़ता है। विभिन्न वस्तुओं की दी गई मिश्रित राशियों को उत्तरोत्तर ऊपरी विधि में संवादी भजनफलों द्वारा ह्रासित किया जाता है। इस प्रकार, मिश्रयोगों में विभिन्न वस्तुओं के संख्यात्मक मानों को प्राप्त किया जाता है। मन से चुने हुए गुणकों (multipliers) को उपर्युक्त लगातार भाग की विधि वाले मन से चुने हुए भाजकों में मिलाने से प्राप्त राशियाँ तथा उक्त गुणक भी दी गई विभिन्न वस्तुओं के प्रकारों में से क्रमशः प्रत्येक की एक वस्तु के मूल्यों की संरचना करते हैं। ॥ १४३½ ॥

(१३९½) बीजीय रूप से, यदि अ क + ब ख = म, और ब क + अ ख = न हो,
तब $अ^2 क + अ ब ख = अ म$ और $ब^2 क + अ ब ख = ब न$ होते हैं।
$\therefore क (अ^2 - ब^2) = अ म - ब न$,
अथवा, $क = \frac{अ म - ब न}{अ^2 - ब^2}$ होता है।

(१४३½) गाथाओं १४४½ और १४५½ के प्रश्न को निम्नलिखित प्रकार से साधित करने पर

अत्रोद्देशकः

अथ मातुलुङ्गकदलीकपित्थदाडिमफलानि मिश्राणि ।
प्रथमस्य सैकविंशतिरथ द्विरग्रा द्वितीयस्य ॥ १४४½ ॥
विंशतिरथ सुरभीणि च पुनस्त्रयोविंशतिस्तृतीयस्य ।
तेषां मूल्यसमासस्त्रिसप्ततिः किं फलं कोऽर्घः ॥ १४५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यहाँ, ३ ढेरियों में सुगन्धित मातुलुङ्ग, कदली, कपित्थ और दाड़िम फलों को इकट्ठा किया गया है। प्रथम ढेरी में २१, दूसरी में २२, और तीसरी में २३ हैं। इन ढेरियों में से प्रत्येक की मिश्रित कीमत ७३ है। प्रत्येक ढेरी में विभिन्न फलों की संख्या और भिन्न प्रकार के फलों की कीमत निकालो। ॥ १४४½ और १४५½ ॥

नियम स्पष्ट हो जावेगा।

प्रथम ढेरी में फलों की कुल संख्या २१ है।
दूसरी " " " " २२ है।
तीसरी " " " " २३ है।

मन से कोई भी संख्या जैसे, २ चुनने पर और उससे इन कुल संख्याओं को गुणित करने पर हमें ४२, ४४, ४६ प्राप्त होते हैं। इन्हें अलग-अलग ढेरियों के मूल्य ७३ में से घटाने पर शेष ३१, २९ और २७ प्राप्त होते हैं। इन्हें मन से चुनी हुई दूसरी संख्या ८ द्वारा भाजित करने पर भजनफल ३, ३, ३ और शेष ७, ५ और ३ प्राप्त होते हैं। ये शेष, पुनः, मन से चुनी हुई संख्या २ द्वारा भाजित होनेपर भजनफल ३, २, १ और शेष १, १, १ उत्पन्न करते हैं। इन अंतिम शेषों को यहाँ मन से चुनी हुई संख्या १ द्वारा भाजित करने पर भजनफल १, १, १ प्राप्त होते हैं और शेष कुछ भी नहीं। पहिली कुल संख्या के सम्बन्ध में निकाले गये भजनफलों को उसमें से घटाना पड़ता है। इस प्रकार हमें २१ – (३ + ३ + १) = १४ प्राप्त होता है; यह संख्या और भजनफल ३, ३, १ प्रथम ढेरी में भिन्न प्रकारों के फलों की संख्या प्ररूपित करते हैं। इसी प्रकार, हमें दूसरे समूह में १६, ३, २, १ और तीसरे समूह में १८, ३, १, १ विभिन्न प्रकार के फलों की संख्या प्राप्त होती है।

प्रथम चुना हुआ गुणक २, और उसके अन्य मन से चुने हुए गुणकों के योग कीमतें होती हैं। इस प्रकार, हमें क्रम से इन ४ भिन्न प्रकारों के फलों में प्रत्येक की कीमत २, २ + ८ या १०, २ + २ या ४, और २ + १ या ३, रूप में प्राप्त होती है।

इस रीति का मूलभूत सिद्धान्त निम्नलिखित बीजीय निरूपण द्वारा स्पष्ट हो जावेगा—

अक + ब ख + स ग + ड घ = प, ………………………………(१)
अ + ब + स + ड = न, ………………………………(२)

मानलो घ = श; तब (२) को श से गुणित करने पर हमें श (अ + ब + स + ड) = श न प्राप्त होता है। ………………………………(३)

(३) को (१) में से घटाने पर हमें अ (क – श) + ब (ख – श) + स (ग – श) = प – श न प्राप्त होता है। ………………………………(४)

जघन्योनमिलितराश्यानयनसूत्रम्—

पण्यहृताल्पफलोनैश्छिन्द्यादल्पघ्नमूल्यहीनेष्टम् ।
कृत्वा तावत्खण्डं तदूनमूल्यं जघन्यपण्यं स्यात् ॥ १४६$\frac{१}{२}$ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वाभ्यां त्रयो मयूरास्त्रिभिश्च पारावताश्च चत्वारः ।
हंसाः पञ्च चतुर्भिः पञ्चभिरथ सारसाः षट् च ॥ १४७$\frac{१}{२}$ ॥
यत्रार्घस्तत्र सखे षट्पञ्चाशत्पणैः खगान् क्रीत्वा ।
द्वासप्ततिमानयतामित्युक्त्वा मूल्यमेवादात् ।
कतिभिः पणैस्तु विहगाः कति विगणय्याशु जानीयाः ॥ १४९ ॥

कुल कीमत के दिये गये मिश्रित मान में से, क्रमशः, मँहगी और सस्ती वस्तुओं के मूल्यों के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

(दी गई वस्तुओं की दर-राशियों को) उनकी दर-कीमतों द्वारा भाजित करो। (इन परिणामी राशियों को अलग-अलग) उनमें से अल्पतम राशि द्वारा ह्रासित करो। तब (उपर्युक्त भजनफल राशियों में से) अल्पतम राशि द्वारा सब वस्तुओं की मिश्रित कीमत को गुणित करो; और (इस गुणनफल को) विभिन्न वस्तुओं की कुल संख्या में से घटाओ। तब (इस शेष को मन से) उतने भागों में विभक्त करो (जितने कि घटाने के पश्चात् बचे हुए उपर्युक्त भजनफलों के शेष होते हैं)। और तब, (इन भागों को उन भजनफल राशियों के शेषों द्वारा) भाजित करो। इस प्रकार, विभिन्न सस्ती वस्तुओं की कीमतें प्राप्त होती हैं। इन्हें कुल कीमत से अलग करनेपर खरीदी हुई महँगी वस्तु की कीमत प्राप्त होती है ॥१४६$\frac{१}{२}$॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

"२ पण में ३ मोर, ३ पण में ४ कबूतर, ४ पण में ५ हंस, और ५ पण में ६ सारस की दरों के अनुसार, हे मित्र, ५६ पण के ७२ पक्षी खरीद कर मेरे पास लाओ।" ऐसा कहकर एक मनुष्य ने खरीद की कीमत (अपने मित्र को) दे दी। शीघ्र गणना करके बतलाओ कि कितने पणों में उसने प्रत्येक प्रकार के कितने पक्षी खरीदे ॥ १४७$\frac{१}{२}$–१४९ ॥ ३ पण में ५ पल शुण्ठि, ४ पण में

---

(४) को (क – श) से विभाजित करने पर हमें भजनफल अ प्राप्त होता है, और शेष ब (ख – श) + स (ग – श) प्राप्त होता है, जहाँ क – श उपयुक्त पूर्णांक है। इसी प्रकार, हम यह क्रिया अंत तक ले जाते हैं।

इस प्रकार, यह देखने में आता है कि उत्तरोत्तर चुने गये भाजक क – श, ख – श और ग – श, जब श में मिलाये जाते हैं, तब वे विभिन्न कीमतों के मान को उत्पन्न करते हैं, प्रथम वस्तु की कीमत श ही होती है, और यह कि उत्तरोत्तर भजनफल अ, ब, स और साथ ही न – (अ + ब + स) विभिन्न प्रकारों की वस्तुओं के मान हैं। इस नियम में, दी गई वस्तुओं के प्रकारों की संख्या से एक कम संख्या के विभाजन किये जाते हैं। अंतिम भाजन में कोई भी शेष नहीं बचना चाहिए।

(१४६$\frac{१}{२}$) अगली गाथा (१४७$\frac{१}{२}$–१४९) में दिये गये प्रश्न को साधन करने पर नियम स्पष्ट हो जावेगा— दर-राशियां ३, ४, ५, ६ को क्रमवार दर-कीमतों २, ३, ४, ५ द्वारा विभाजित करते हैं। इस प्रकार हमें $\frac{३}{२}$, $\frac{४}{३}$, $\frac{५}{४}$, $\frac{६}{५}$ प्राप्त होते हैं। इनमें से अल्पतम $\frac{६}{५}$ को अन्य तीन में से अलग-

त्रिभिः पणैः शुण्ठिपलानि पञ्च चतुर्भिरेकादश पिप्पलानाम् ।
अष्टाभिरेकं मरिचस्य मूल्यं षष्ट्यानयाष्टोत्तरषष्टिमाशु ॥ १५० ॥

इष्टार्घैरिष्टमूल्यैरिष्टवस्तुप्रमाणानयनसूत्रम्—

मूल्यघ्नफलेच्छागुणपणान्तरेष्टघ्नयुतिविपर्यासः । द्विष्ठः स्वधनेष्टगुणः प्रक्षेपककरणमवशिष्टम् ॥१५१॥

११ पल लम्बी मिर्च, और ८ पण में १ पल मिर्च प्राप्त होती है । ६० पण खरीद के दामों में शीघ्र ही ६८ पल वस्तुओं को प्राप्त करो ॥ १५० ॥

इच्छित रकम (जो कि कुल कीमत है) में इच्छित दरों पर खरीदी गई कुछ विशिष्ट वस्तुओं के इच्छित संख्यात्मक-मान को निकालने के लिये नियम—

(खरीदी गई विभिन्न वस्तुओं के) दर—मानों में से प्रत्येक को (अलग-अलग खरीद के दामों के) कुल मान द्वारा गुणित किया जाता है । दर—रकम के विभिन्न मान अलग-अलग समग्न होते हैं । वे खरीदी गई वस्तुओं की कुल संख्या से गुणित किये जाते हैं । आगे के गुणनफल क्रमवार पिछले गुणनफलों में से घटाये जाते हैं । धनात्मक शेष एक पंक्ति में नीचे लिख लिये जाते हैं । ऋणात्मक शेष एक पंक्ति में उनके ऊपर लिखे जाते हैं । सभी में रहने वाले साधारण गुणनखंडों को अलग कर इस सबको अल्पतम पदों में प्रह्रासित (लघुकृत) कर लिया जाता है । तब इन प्रह्रासित अंतरों में से प्रत्येक को मन से चुनी हुई अलग राशि द्वारा गुणित किया जाता है । उन गुणनफलों को जो नीचे की पंक्ति में रहते हैं तथा उन्हें जो ऊपर की पंक्ति में रहते हैं, अलग-अलग जोड़ते हैं, और योगों को ऊपर नीचे लिखते हैं । संख्याओं की नीचे की पंक्ति के योग को ऊपर लिखते हैं और ऊपर की पंक्ति के योग को नीचे लिखते हैं । इन योगों को उनके सर्वसाधारण गुणनखंड हटाकर अल्पतम पदों में प्रह्रासित कर लिया जाता है । परिणामी राशियों में से प्रत्येक को नीचे दुबारा लिख लिया जाता है, ताकि एक को दूसरे के नीचे इतनी बार किया जा सके, जितने कि संवादी एकान्तर योग में संघटक तत्व होते हैं । इन संख्याओं को इस प्रकार दो पंक्तियों में जमाकर, उनकी क्रमवार दर—कीमतों और चीजों के दर—मानों द्वारा गुणित करते हैं । (अंकों की एक पंक्ति में दर—मूल्य गुणन और अंकों की दूसरी पंक्ति में दर—संख्या का गुणन करते हैं ।) इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों को फिरसे उनके सर्वसाधारण गुणनखंडों को हटाकर अल्पतम पदों में प्रह्रासित कर लिया जाता है । प्रत्येक ऊर्ध्वाधर (vertical) पंक्ति के परिणामी अंकों में से प्रत्येक को अलग-अलग उनके संवादी मन से चुने हुए गुणकों (multipliers) द्वारा गुणित करते हैं । गुणनफलों को पहिले की तरह दो क्षैतिज पंक्तियों में लिख लिया जाना चाहिये । गुणनफलों की ऊपरी पंक्ति की संख्यायें उस अनुपात में होती हैं, जिसमें कि क्रयधन वितरित किया गया है । और, जो संख्यायें गुणनफलों की निम्न पंक्ति में रहती हैं वे उस अनुपात में होती हैं जिसमें कि संवादी खरीदी गई वस्तुएँ वितरित की जाती हैं । इसलिये अब जो शेष रहती है वह केवल प्रक्षेपक-करण की क्रिया ही है । (प्रक्षेपक-करण क्रिया में त्रैराशिक नियम के अनुसार आनुपातिक विभाजन होता है) ॥१५१॥

अलग घटाने पर हमें $\frac{३}{१०}$, $\frac{२}{१८}$ और $\frac{१}{२८}$ प्राप्त होते हैं । उपर्युक्त अल्पतम राशि $\frac{५}{८}$ को दी गई मिश्रित कीमत ५६ से से गुणित करने पर ५६ × $\frac{५}{८}$ प्राप्त होता है । कुल पक्षियों की संख्या ७२ में से इसे घटाते हैं । शेष $\frac{२४}{८}$ को तीन भागों में बाँटते हैं; $\frac{९}{८}$, $\frac{८}{८}$ और $\frac{७}{८}$ । इन्हें क्रमशः $\frac{३}{१०}$, $\frac{२}{१८}$ और $\frac{१}{२८}$ द्वारा भाजित करने पर हमें प्रथम तीन प्रकार के पक्षियों की कीमतें $\frac{१४}{३}$, १२ और ३६ प्राप्त होती हैं । इन तीनों कीमतों को कुल ५६ में से घटाकर पक्षियों के चौथे प्रकार की कीमत प्राप्त की जा सकती है ।

(१५१) गाथा १५२–१५३ में दिये गये प्रश्न का साधन निम्नलिखित रीति से करने पर सूत्र

अत्रोद्देशकः

त्रिभिः पारावताः पञ्च पञ्चभिः सप्त सारसाः । सप्तभिर्नव हंसाश्च नवभिः शिखिनस्त्रयः ॥१५२॥
क्रीडार्थं नृपपुत्रस्य शतेन शतमानय । इत्युक्तः प्रहितः कश्चित् तेन किं कस्य दीयते ॥ १५३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कबूतर ५ प्रति ३ पण की दर से बेचे जाते हैं, सारस पक्षी ७ प्रति ५ पण की दर से, हंस ९ प्रति ७ पण की दर से, और मोरें ३ प्रति ९ पण की दर से बेची जाती हैं । किसी मनुष्य को यह कह कर भेजा गया कि वह राजकुमार के मनोरंजनार्थ ७२ पण में १०० पक्षियों को लावे । बतलाओ कि प्रत्येक प्रकार के पक्षियों को खरीदने के लिये उसे कितने-कितने दाम देना पड़ेंगे ? ॥१५२–१५३॥

५	७	९	३
३	५	७	९
५००	७००	९००	३००
३००	५००	७००	९००
०	०	०	६००
२००	२००	२००	०
०	०	०	६
२	२	२	०
०	०	०	३६
६	८	१०	०
६			
४			
४			
६			
६	६	६	४
६	६	६	४
१८	३०	४२	३६
३०	४२	५४	१२
३	५	७	६
५	७	९	२
९	२०	३५	३६
१५	२८	४५	१२

स्पष्ट हो जावेगा—दर-वस्तुओं और दर-कीमतों को दो पंक्तियों में इस प्रकार लिखो कि एक के नीचे दूसरी हो । इन्हें क्रमशः कुल कीमत और वस्तुओं की कुल संख्या द्वारा गुणित करो । तब घटाओ । साधारण गुणनखंड १०० को हटाओ । चुनी हुई संख्यायें ३, ४, ५, ६ द्वारा गुणित करो । प्रत्येक क्षैतिज पंक्ति में संख्याओं को जोड़ो और साधारण गुणनखंड ६ को हटाओ । इन अंकों की स्थिति को बदलो, और इन दो पंक्तियों के प्रत्येक अंक को उतने बार लिखो जितने कि बदली स्थिति के संवादी योग में संघटक तत्त्व होते हैं । दो पंक्तियों को दर-कीमतों और दर-वस्तुओं द्वारा क्रमशः गुणित करो । तब साधारण गुणनखंड ६ को हटाओ । अब पहिले से चुनी हुई संख्याओं ३, ४, ५, ६ द्वारा गुणित करो । दो पंक्तियों की संख्यायें उन अनुपातों को प्ररूपित करती हैं, जिनके अनुसार कुल कीमत और वस्तुओं की कुल संख्या वितरित हो जाती है । यह नियम अनिर्धारित (indeterminate) समीकरण सम्बन्धी है, इसलिये उत्तरों के कई सघ (sets) हो सकते हैं । ये उत्तर मन से चुनी हुई गुणक (multiplier) रूप राशियों पर निर्भर रहते हैं ।

यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि, जब कुछ संख्याओं को मन से चुने हुए गुणक (multipliers) मान लेते हैं, तब पूर्णांक उत्तर प्राप्त होते हैं । अन्य दशाओं में, अवाञ्छित भिन्नीय उत्तर प्राप्त होते हैं । इस विधि के मूलभूत सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के लिये अध्याय के अन्त में दिये गये नोट (टिप्पण) को देखिये ।

व्यस्तार्घपण्यप्रमाणानयनसूत्रम्[1] —

पण्यैक्येन पणैक्यमन्तरमतः पण्येष्टपण्यान्तरै-
श्छिन्द्यात्संक्रमणे कृते तदुभयोरर्घौ भवेतां पुनः ।
पण्ये ते खलु पण्ययोगविवरे व्यस्तं तयोरर्घयोः-
प्रश्नानां विदुषां प्रसादनमिदं सूत्रं जिनेन्द्रोदितम् ॥ १५४ ॥

अत्रोद्देशकः

आद्यमूल्यं यदेकस्य चन्दनस्यागरोस्तथा । पलानि विंशतिर्मिश्रं चतुरग्रशतं पणाः ॥ १५५ ॥
कालेन व्यत्ययार्घः स्यात्सषोडशशतं पणाः । तयोरर्घफले ब्रूहि त्वं षडष्ट पृथक् पृथक् ॥ १५६ ॥

१. उपलब्ध हस्तलिपियों में प्राप्य नहीं ।

जिनके मूल्यों को परस्पर बदल दिया गया है ऐसी दो दत्त वस्तुओं के परिमाण को प्राप्त करने के लिये नियम—

दो दत्त वस्तुओं की बेचने की कीमतों और खरीदने की कीमतों के योग के संख्यात्मक मान को दी गई वस्तुओं के योग के संख्यात्मक मान द्वारा भाजित किया जाता है । तब उन उपर्युक्त बेचने और खरीदने की कीमतों के अंतर को (दी गई वस्तुओं के दिये गये) योग में से किसी मन से चुनी हुई वस्तु राशि को घटाने पर प्राप्त हुए अंतर के संख्यात्मक मान द्वारा भाजित किया जाता है । यदि इनके साथ (अर्थात् ऊपर की प्रथम क्रिया में प्राप्त भजनफल और दूसरी क्रिया में प्राप्त कई भजनफलों में से किसी एक के साथ) संक्रमण क्रिया की जाय, तो वे दरें प्राप्त होती हैं जिन पर कि ये वस्तुएँ खरीदी जाती हैं । यदि वस्तुओं के योग और उनके अन्तर के सम्बन्ध में वही संक्रमण क्रिया की जावे तो वह वस्तुओं के संख्यात्मक मान को उत्पन्न करती है । उपर्युक्त खरीद-दरों के एकान्तरण से बेचने की दरें उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार के प्रश्नों के साधन का प्रतिपादन विद्वानों ने किया है और सूत्र भगवान् जिनेन्द्र के निमित्त से उदय को प्राप्त हुआ है ॥१५४॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चंदन काष्ठ के एक टुकड़े की मूल-कीमत और अगरु काष्ठ के एक टुकड़े की कीमत मिलाने से १०४ पण में २० पल वजन को वे दोनों प्राप्त होती हैं । जब वे अपनी पारस्परिक बदली हुई कीमतों पर बेची जाती हैं तो ११६ पण प्राप्त होते हैं । नियमानुसार ६ और ८ अलग-अलग मन से चुनी हुई संख्याएँ लेकर वस्तुओं की खरीद एवं बेचने की दर तथा उनका संख्यात्मक मान निकालो ॥१५५-१५६॥

(१५४) इस नियम में वर्णित विधि का बीजीय निरूपण गाथा १५५–१५६ के प्रश्न के सम्बन्ध में इस प्रकार दिया जा सकता है:—

मानलो अय + बर = १०४,...(१)
अर + बय = ११६,...(२)
अ + ब = २०...(३)
(१) और (२) का योग करने पर, (अ + ब) (य + र) = २२०,.............(४)
∴ य + र = ११...(५)

पुनः (१) को (२) में से घटाने पर, (अ – ब) (र – य) = १२ प्राप्त होता है । अब २ब को मनसे ६ के तुल्य मान लेते हैं । इस प्रकार, अ + ब – २ ब अथवा अ – ब = २० – ६ = १४......(६)

सूर्यरथाश्वेष्टयोगयोजनानयनसूत्रम्—

अखिलाप्ताखिलयोजनसंख्यापर्याययोजनानि स्युः ।
तानीष्टयोगसंख्यानिघ्नान्येकैकगमनमानानि ॥ १५७ ॥

अत्रोद्देशकः

रविरथतुरगाः सप्त हि चत्वारोऽश्वा वहन्ति धूर्युक्ताः ।
योजनसप्ततिगतयः के व्यूढाः के चतुर्योगाः ॥ १५८ ॥

सर्वधनेष्टहीनशेषपिण्डात् स्वस्वहस्तगतधनानयनसूत्रम्—

रूपोननरैर्विभजेत् पिण्डीकृतभाण्डसारमुपलब्धम् ।
सर्वधनं स्यात्तस्मादुक्तविहीनं तु हस्तगतम् ॥ १५९ ॥

अत्रोद्देशकः

वणिजस्ते चत्वारः पृथक् पृथक् शौल्किकेन परिपृष्टाः ।
किं भाण्डसारमिति खलु तत्राहैको वणिक्श्रेष्ठः ॥ १६० ॥
आत्मधनं विनिगृह्य द्वाविंशतिरिति ततः परोऽवोचत् ।
त्रिभिरुत्तरा तु विंशतिरथ चतुरधिकैव विंशतिस्तुर्यः ॥ १६१ ॥

सूर्य रथ के अश्वों के इष्ट योग द्वारा योजनों में तय की गई दूरी निकालने के लिए नियम—

कुल योजनों का निरूपण करने वाली संख्या कुल अश्वों की संख्या द्वारा विभाजित होकर प्रत्येक अश्व द्वारा प्रक्रम में तय की जानेवाली दूरी (योजनों में) होती है । यह योजन संख्या जब प्रयुक्त अश्वों की संख्या द्वारा गुणित की जाती है तो प्रत्येक अश्व द्वारा तय की जानेवाली दूरी का मान प्राप्त होता है ॥ १५७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यह प्रसिद्ध है कि सूर्य रथ के अश्वों की संख्या ७ है । रथ में केवल ४ अश्व प्रयुक्त कर उन्हें ७० योजन की यात्रा पूरी करना पड़ती है । बतलाओ कि उन्हें ४, ४ के समूह में कितने बार खोलना पड़ता है और कितने बार जोतना पड़ता है ? ॥१५८॥

समस्त वस्तुओं के कुल मान में से जो भी इष्ट है उसे घटाने के पश्चात् बचे हुए मिश्रित शेष में से संयुक्त साझेदारी के स्वामियों में से प्रत्येक की हस्तगत वस्तु के मान को निकालने के लिए नियम—

वस्तुओं के संयुक्त (conjoint) शेषों के मानों के योग को एक कम मनुष्यों की संख्या द्वारा भाजित करो; भजनफल समस्त वस्तुओं का कुल मान होगा । इस कुल मान को विशिष्ट मानों द्वारा ह्रासित करने पर संवादी दशाओं में प्रत्येक स्वामी की हस्तगत वस्तु का मान प्राप्त होता है ॥१५९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चार व्यापारियों ने मिलकर अपने धन को व्यापार में लगाया । उन लोगों में से प्रत्येक से अलग-अलग, महसूल पदाधिकारी ने व्यापार में लगाई गई वस्तु के मान के विषय में पूछा । उनमें से एक श्रेष्ठ वणिक ने, अपनी लगाई हुई रकम को घटाकर २२ बतलाया । तब, दूसरे ने २३, अन्य ने २४

$\therefore र - य = \frac{१२}{१४}$ ....(७)

यहाँ (७) और (५) तथा (६) और (३) के सम्बन्ध में संक्रमण क्रिया करते हैं, जिससे य, र, अ और ब के मान प्राप्त हो जाते हैं ।

सप्तोत्तरविंशतिरिति समानसारा निगूह्य सर्वेऽपि।
ऊचुः किं ब्रूहि सखे पृथक् पृथग्भाण्डसारं मे ॥ १६२ ॥

अन्योऽन्यमिष्टरत्नसंख्यां दत्त्वा समधनानयनसूत्रम्—

पुरुषसमासेन गुणं दातव्यं तद्विशोध्य पण्येभ्यः।
शेषपरस्परगुणितं स्वं स्वं हित्वा मणेर्मूल्यम् ॥ १६३ ॥

अत्रोद्देशकः

प्रथमस्य शक्रनीलाः षट् सप्त च मरकता द्वितीयस्य। वज्राण्यपरस्याष्टावेकैकार्घं प्रदाय समाः॥१६४॥

प्रथमस्य शक्रनीलाः षोडश दश मरकता द्वितीयस्य।
वज्रास्तृतीयपुरुषस्याष्टौ द्वौ तत्र दत्त्वैव ॥ १६५ ॥
तेष्वेकैकोऽन्याभ्यां समधनतां यान्ति ते त्रयः पुरुषाः।
तच्छक्रनीलमरकतवज्राणां किंविधा अर्घाः ॥ १६६ ॥

और चौथे ने २७ बतलाया। इस प्रकार कथन करने में प्रत्येक ने अपनी-अपनी लगाई हुई रकमों को वस्तु के कुल मान में से घटा लिया था। हे मित्र ! बतलाओ कि प्रत्येक का उस पण्यद्रव्य में कितना-कितना भाण्डसार (हिस्सा) था ? ॥१६०-१६२॥

किसी भी इष्ट संख्या के रत्नों का पारस्परिक विनिमय करने के पश्चात् समान रत्नमयी रकमों को निकालने के लिए नियम—

दिये जाने वाले रत्नों की संख्या को बदले में भाग लेनेवाले मनुष्यों की कुल संख्या द्वारा गुणित करो यह गुणनफल अलग-अलग (प्रत्येक के द्वारा हस्तगत) बेचे जानेवाले रत्नों की संख्या में से घटाया जाता है। इस तरह प्राप्त शेषों का संतत गुणन प्रत्येक दशा में रत्न का मूल्य उत्पन्न करता है, जब कि उससे सम्बन्धित शेष इस प्रकार के गुणनफल को प्राप्त करने में त्याग दिया जाता है ॥१६३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथम मनुष्य के पास (समान मूल्य वाले) शक्र नील रत्न थे, दूसरे मनुष्य के पास (उसी प्रकार के) ७ मरकत (मीना emeralds) थे, और अन्य (तीसरे मनुष्य) के पास ८ (उसी प्रकार के) हीरे थे। उनमें से प्रत्येक ने शेष अन्य में से प्रत्येक को अपने पास के एक रत्न के मूल्य को चुकाया जिससे वह दूसरों के समानधन वाला बन गया। प्रत्येक प्रकार के रत्न का मूल्य क्या-क्या है ? ॥१६४॥ प्रथम मनुष्य के पास १६ शक्र नील रत्न, दूसरे के पास १० मरकत हैं, और तीसरे मनुष्य के पास ८ हीरे हैं। इनमें से प्रत्येक दूसरों में से प्रत्येक को खुद के ही रत्नों को दे देता है, जिससे तीनों मनुष्य समान धनवाले बन जाते हैं। बतलाओ कि उन शक्र नील रत्न, मरकत तथा हीरों के अलग-अलग दाम क्या-क्या हैं ? ॥१६५-१६६॥

---

(१६३) मान लो 'म', 'न', 'प', क्रमशः तीन प्रकार के रत्नों की संख्याएँ है जिनके तीन भिन्न मनुष्य स्वामी हैं। मानलो परस्पर विनिमित रत्नों की संख्या 'अ' है, और 'क' 'ख', 'ग', किसी एक रत्न की क्रमशः तीन प्रकारों में कीमतें हैं। तब सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है कि

क = (न − ३ अ) (प − ३ अ);
ख = (म − ३ अ) (प − ३ अ);
ग = (म − ३ अ) (न − ३ अ).

क्रयविक्रयलाभैः मूलानयनसूत्रम्—

अन्योऽन्यमूलगुणिते विक्रयभक्ते क्रयं यदुपलब्धं। तेनैकोनेन हृतो लाभः पूर्वोद्धृतं मूल्यम् ॥१६७॥

अत्रोद्देशकः

त्रिभिः क्रीणाति सप्तैव विक्रीणाति च पञ्चभिः।
नव प्रस्थान् वणिक् किं स्याल्लाभो द्वासप्ततिर्धनम् ॥ १६८ ॥

इति मिश्रकव्यवहारे सकलकुट्टीकारः समाप्तः।

सुवर्णकुट्टीकारः

इतः परं सुवर्णगणितरूपकुट्टीकारं व्याख्यास्यामः। समस्तेष्टवर्णैरेकीकरणेन संकरवर्णानयनसूत्रम्—

कनकक्षयसंवर्गो मिश्रस्वर्णाहृतः क्षयो ज्ञेयः। परवर्णप्रविभक्तं सुवर्णगुणितं फलं हेम्नः ॥ १६९ ॥

खरीद की दर, बेचने की दर और प्राप्त लाभ द्वारा, लगाई गई रकम का मान प्राप्त करने के लिये नियम—

वस्तु को खरीदने और बेचने की दरों में से प्रत्येक को, एक के बाद एक, मूल्य दरों द्वारा गुणित किया जाता है। खरीद की दर की सहायता से प्राप्त गुणनफल को बेचने की दर से प्राप्त गुणनफल द्वारा भाजित किया जाता है। लाभ को एक कम परिणामी भजनफल द्वारा विभाजित करने पर लगाई गई मूल रकम उत्पन्न होती है ॥१६७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापारी ने ३ पण में ७ प्रस्थ अनाज खरीदा और ५ पण में ९ प्रस्थ की दर से बेचा। इस तरह उसे ७२ पण का लाभ हुआ। इस व्यापार में लगाई गई रकम कौन सी है? ॥१६८॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में सकल कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

सुवर्ण कुट्टीकार

इसके पश्चात् हम उस कुट्टीकार की व्याख्या करेंगे जो स्वर्ण गणित सम्बन्धी है। इच्छित विभिन्न वर्णों के सोने के विभिन्न प्रकार के घटकों को मिलाने से प्राप्त हुए संकर (मिश्रित) स्वर्ण के वर्ण को प्राप्त करने के लिए नियम—

यह ज्ञात करना पड़ता है कि विभिन्न स्वर्णमय घटक परिमाणों के (विभिन्न) गुणनफलों के योग को क्रमशः उनके वर्णों से गुणित कर, जब मिश्रित स्वर्ण की कुल राशि द्वारा विभाजित किया जाता है तब परिणामी वर्ण उत्पन्न होता है। किसी संघटक भाग के मूल वर्ण को जब बाद के कुल मिले हुए परिणामी वर्ण द्वारा विभाजित कर, और उस संघटक भाग में दत्त स्वर्ण परिमाण द्वारा गुणित करते हैं तब मिश्रित स्वर्ण की ऐसी संवादी राशि उत्पन्न होती है, जो मान में उसी संघटक भाग के बराबर होती है। ॥१६९॥

---

(१६७) यदि खरीद की दर ब में अ वस्तुएँ हों, और बेचने की दर द में स वस्तुएँ हों, तथा व्यापार में लाभ म हो, तो लगाई गई रकम

$$= म \div \left(\frac{अद}{बस} - १ \right) \text{ होती है।}$$

अत्रोद्देशकः

एकक्षयमेकं च द्विक्षयमेकं त्रिवर्णमेकं च । वर्णचतुष्के च द्वे पञ्चक्षयिकाश्च चत्वारः ॥ १७० ॥
सप्त चतुर्दशवर्णास्त्रिगुणितपञ्चक्षयाश्चाष्टौ । एतानेकीकृत्य ज्वलने क्षिप्त्वैव मिश्रवर्णं किम् ।
एतन्मिश्रसुवर्णं पूर्वैर्भक्तं च किं किमेकस्य ॥ १७१½ ॥

इष्टवर्णानामिष्टस्वर्णानयनसूत्रम्—

स्वैःस्वैर्वर्णैर्हतैर्मिश्रं स्वर्णमिश्रेण भाजितम् । लब्धं वर्णं विजानीयात्तदिष्टाप्तं पृथक् पृथक् ॥१७२½ ॥

अत्रोद्देशकः

विंशतिपणास्तु षोडश वर्णा दशवर्णपरिमाणैः ।
परिवर्तिता वद त्वं कति हि पुराणा भवन्त्यधुना ॥ १७३½ ॥
अष्टोत्तरशतकनकं वर्णाष्टांशत्रयेण संयुक्तम् ।
एकादशवर्णं चतुरुत्तरदशवर्णकैः कृतं च किं हेम ॥ १७४½ ॥

अज्ञातवर्णानयनसूत्रम्—

कनकक्षयसंवर्गं मिश्रं स्वर्णघ्नमिश्रतः शोद्ध्यम् । स्वर्णेन हृतं वर्णं वर्णविशेषेण कनकं स्यात् ॥१७५½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्वर्ण का एक भाग १ वर्ण का है, एक भाग २ वर्णों का है, एक भाग ३ वर्णों का है, २ भाग ४ वर्णों के हैं, ४ भाग ५ वर्णों के हैं, ७ भाग १४ वर्णों के है, और ८ भाग १५ वर्णों के हैं। इन्हें अग्नि में डालकर एक पिण्ड बना लिया जाता है। बतलाओ कि इस प्रकार मिश्रित स्वर्ण किस वर्ण का है ? यह मिश्रित स्वर्ण उन भागों के स्वामियों में वितरित कर दिया जाता है। प्रत्येक को क्या मिलता है ? ॥१७०–१७१½॥

जो मान में दिये गये वर्णों वाली दत्त स्वर्ण की मात्राओं के तुल्य है ऐसे किसी वाञ्छित वर्ण वाले स्वर्ण का (इच्छित) वजन निकालने के लिये नियम—

स्वर्ण की दी गई मात्राओं को अलग-अलग उनके ही वर्ण द्वारा क्रमवार गुणित किया जाता है, और गुणनफलों को जोड़ दिया जाता है। परिणामी योग को मिश्रित स्वर्ण के कुल वजन द्वारा भाजित किया जाता है। भजनफल को परिणामी औसत वर्ण समझ लिया जाता है। यह उपर्युक्त गुणनफलों का योग, इस स्वर्ण के समान (इच्छित) वजन को लाने के लिये, अलग-अलग वाञ्छित वर्णों द्वारा भाजित किया जाता है ॥१७२½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१६ वर्ण के २० पण वजनवाले स्वर्ण को १० वर्ण वाले स्वर्ण से बदला गया है; बतलाओ कि अब वह वजन में कितने पण हो जावेगा ? ॥१७३½॥ ११⅜ वर्ण वाला १०८ वजन का स्वर्ण १४ वर्ण वाले स्वर्ण से बदला जाने पर कितने वजन का हो जावेगा ? ॥१७४½॥

अज्ञात वर्ण को निकालने के लिये नियम—

स्वर्ण की कुल मात्रा को मिश्रण के परिणामी वर्ण से गुणित करो। प्राप्त गुणफल में से उस योग को घटाओ जो स्वर्ण की विभिन्न घटक मात्राओं को उनके निज के वर्णों द्वारा गुणित करने से प्राप्त गुणनफलों को जोड़ने पर प्राप्त होता है। जब शेष को अज्ञात वर्ण वाले स्वर्ण की ज्ञात घटक मात्रा से विभाजित किया जाता है, तब इष्ट वर्ण उत्पन्न होता है; और जब वह शेष परिणामी वर्ण तथा (स्वर्ण की अज्ञात घटक मात्रा के) ज्ञात वर्ण के अंतर द्वारा भाजित किया जाता है, तब उस स्वर्ण का इष्ट वजन उत्पन्न होता है ॥१७५½॥

अज्ञातवर्णस्य पुनरपि सूत्रम्—

स्वस्वर्णवर्णविनिहतयोगं स्वर्णैक्यदृढहताच्छोध्यम् । अज्ञातवर्णहेम्ना भक्तं वर्णं बुधाः प्राहुः ॥१७६½॥

अत्रोद्देशकः

[1]षड्जलधिवह्निकनकैस्त्रयोदशाष्टर्तुवर्णकैः क्रमशः । अज्ञातवर्णहेम्नः पञ्च विमिश्रक्षयं च सैकदश ।
अज्ञातवर्णसंख्यां ब्रूहि सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥ १७८ ॥
चतुर्दशैव वर्णानि सप्त स्वर्णानि तत्क्षये[2] । चतुस्स्वर्णे दशोत्पन्नमज्ञातक्षयकं वद ॥ १७९ ॥

अज्ञातस्वर्णानयनसूत्रम् –

स्वस्वर्णवर्णविनिहतयोगं स्वर्णैक्यगुणितदृढवर्णात् ।
त्यक्त्वाज्ञातस्वर्णक्षयदृढवर्णान्तराहृतं कनकम् ॥ १८० ॥

अत्रोद्देशकः

द्वित्रिचतुःक्षयमानास्त्रिभिः कनकास्त्रयोदशक्षयिकः ।
वर्णयुतिर्दश जाता ब्रूहि सखे कनकपरिमाणम् ॥ १८१ ॥

१. यहाँ रनल के स्थान में वह्नि, और ष्टाष्टुक्षयैः के स्थान में ष्टर्तुवर्णकैः आदेशित किया गया है, ताकि पाठ व्याकरण की दृष्टि से और उत्तम हो जावे ।

२. हस्तलिपि में पाठ तत्क्षय है, जो स्पष्टरूप से अशुद्ध है ।

अज्ञात वर्ण के सम्बन्ध में एक और नियम—

स्वर्ण की विभिन्न संघटक मात्राओं को उनके क्रमवार वर्णों से (respectively) गुणित करते हैं । प्राप्त गुणनफलों के योग को परिणामी वर्ण तथा स्वर्ण की कुलमात्रा के गुणनफल में से घटाते हैं । बुद्धिमान व्यक्ति कहते हैं कि यह शेष जब अज्ञात वर्णवाले स्वर्ण के वजन द्वारा भाजित किया जाता है तब इष्ट वर्ण उत्पन्न होता है ॥१७६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

क्रमशः १३, ८ और ६ वर्ण वाले ६, ४ और ३ वजन वाले स्वर्ण के साथ अज्ञात वर्ण वाला ५ वजन का स्वर्ण मिलाया जाता है । मिश्रित स्वर्ण का परिणामी वर्ण ११ है । हे गणना के भेदों को जानने वाले मित्र ! मुझे इस अज्ञात वर्ण का संख्यात्मक मान बतलाओ ॥१७७½–१७८॥ दिये गये नमूने का ७ वजन वाला स्वर्ण १४ वर्ण वाला है । ४ वजन वाला अन्य स्वर्ण का नमूना (प्रादर्श) उसमें मिला दिया जाता है । परिणामी वर्ण १० है । दूसरे नमूने के स्वर्ण का अज्ञात वर्ण क्या है ? ॥१७९॥

स्वर्ण का अज्ञात वजन निकालने के लिये नियम—

स्वर्ण की विभिन्न संघटक मात्राओं को निज के वर्णों द्वारा गुणित करते हैं । प्राप्त गुणनफलों के योग को, स्वर्ण के ज्ञात भारों को अभिनव दृढ़ (durable) परिणामी वर्ण द्वारा गुणित करने से प्राप्त गुणनफलों के योग में से घटाते हैं । शेष को स्वर्ण की अज्ञात मात्रा के ज्ञात वर्ण तथा मिश्रित स्वर्ण के दृढ़ (durable) परिणामी वर्ण के अन्तर द्वारा भाजित करने पर स्वर्ण का वजन प्राप्त होता है ॥१८०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्वर्ण के तीन टुकड़े जिनमें से प्रत्येक वजन में ३ है, क्रमशः २, ३ और ४ वर्ण वाले हैं । ये १३ वर्ण वाले अज्ञात वजन के स्वर्ण में गलाये जाते हैं । परिणामी वर्ण १० होता है । हे मित्र ! मुझे बतलाओ कि अज्ञात भारवाले स्वर्ण का माप क्या है ? ॥१८१॥

युग्मवर्णमिश्रसुवर्णानयनसूत्रम्—

ज्येष्ठाल्पक्षयशोधितपक्वविशेषाप्तरूपकैः प्राग्वत् ।
प्रक्षेपमतः कुर्यादेवं बहुशोऽपि वा साध्यम् ॥१८२॥

पुनरपि युग्मवर्णमिश्रस्वर्णानयनसूत्रम्—

इष्टाधिकान्तरं चैव हीनेष्टान्तरमेव च । उभे ते स्थापयेद्व्यस्तं स्वर्णं प्रक्षेपतः फलम् ॥ १८३ ॥

अत्रोद्देशकः

दशवर्णसुवर्णं यत् षोडशवर्णेन संयुतं पक्वम् ।
द्वादश चेत्कनकशतं द्विभेदकनके पृथक् पृथग्ब्रूहि ॥ १८४ ॥

बहुसुवर्णानयनसूत्रम्—

व्येकपदानां क्रमशः स्वर्णानीष्टानि कल्पयेच्छेषम् ।
अव्यक्तकनकविधिना प्रसाधयेत् प्राक्तनायेव ॥ १८५ ॥

दिये गये वर्णों वाले स्वर्ण के दो दिये गये नमूनों के मिश्रण के ज्ञात वजन और ज्ञात वर्ण द्वारा दो दिये गये वर्णों के संवादी स्वर्ण के भारों को निकालने के लिये नियम—

मिश्रण के परिणामी वर्ण और (अज्ञात संघटक मात्राओं वाले स्वर्ण के) ज्ञात उच्चतर और निम्नतर वर्णों के अन्तरों को प्राप्त करो । १ को इन अन्तरों द्वारा क्रमवार भाजित करो । तब पहिले की भाँति प्रक्षेप क्रिया (अथवा इन विभिन्न भजनफलों की सहायता से समानुपातिक विभाजन) करो। इस प्रकार, स्वर्ण की अनेक संघटक मात्राओं की अहों को भी प्राप्त किया जा सकता है ॥१८२॥

पुनः, दिये गये वर्ण वाले स्वर्ण के दो दिये गये नमूनों के मिश्रण के ज्ञात वजन और ज्ञात वर्ण द्वारा दो दिये गये वर्णों के संवादी स्वर्ण के भारों को निकालने के लिये नियम—

परिणामी वर्ण तथा (स्वर्ण की दो संघटक मात्राओं वाले दो दिये गये वर्णों के) उच्चतर वर्ण के अन्तर को और साथ ही परिणामी वर्ण तथा (दो दिये गये वर्णों के) निम्नतर वर्ण के अन्तर को विलोम क्रम में लिखो । इन विलोम क्रम में रखे हुए अन्तरों की सहायता से समानुपातिक वितरण की क्रिया करने पर प्राप्त किया गया परिणाम (संघटक मात्राओं वाले) स्वर्ण (के इष्ट भारों) को उत्पन्न करता है । ॥१८३॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि १० वर्ण वाला स्वर्ण, १६ वर्ण वाले स्वर्ण से मिलाया जाने पर १२ वर्ण वाला १०० वजन का स्वर्ण उत्पन्न करता है, तो स्वर्ण के दो प्रकारों के वजन के मापों को अलग-अलग प्राप्त करो ॥१८४॥

ज्ञात वर्ण और ज्ञात वजनवाले मिश्रण में ज्ञात वर्ण के बहुत से संघटक मात्राओं वाले स्वर्ण के भारों को निकालने के लिये नियम—

एक को छोड़कर सभी ज्ञात संघटक वर्णों के सम्बन्ध में मन से चुने हुए भारों को ले लिया जाता है । तब, जो शेष रहता है उसे पहिले जैसी दी गई दशाओं के सम्बन्ध में अज्ञात भार वाले स्वर्ण के निश्चित करने के नियम द्वारा हल करना पड़ता है । ॥१८५॥

---

[१८५] यहाँ दिया गया नियम ऊपर दी गई गाथा १८० में उपलब्ध है ।

अत्रोद्देशकः

वर्णाः शरर्तुनगवसुमृडविश्वे नव च पक्ववर्णं हि ।
कनकानां षष्टिश्चेत् पृथक् पृथक् कनकमा किं स्यात् ॥ १८६ ॥

द्वयनष्टवर्णानयनसूत्रम्—

स्वर्णाभ्यां हृतरूपे सुवर्णवर्णाहते द्विष्ठे ।
स्वस्वर्णहृतैकेन च हीनयुते व्यस्ततो हि वर्णफलम् ॥ १८७ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशदशकनकाभ्यां वर्णं न ज्ञायते[१] पक्वम् ।
वर्णं चैकादश चेद्वर्णौ तत्कनकयोर्भवेतां कौ ॥ १८८ ॥

१. B में यहाँ यते जुड़ा है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

संघटक राशियों वाले स्वर्ण के दिये गये वर्ण क्रमशः ५, ६, ७, ८, ११ और १३ हैं; और परिणामी वर्ण ९ है । यदि स्वर्ण की समस्त संघटक मात्राओं का कुल भार ६० हो तो स्वर्ण की विभिन्न संघटक मात्राओं के वजन में विभिन्न माप कौन-कौन होंगे ? ॥१८६॥

जब मिश्रण का परिणामी वर्ण ज्ञात हो, तब स्वर्ण की दो ज्ञात मात्राओं के नष्ट अर्थात् अज्ञात वर्णों को निकालने के लिये नियम—

१ को स्वर्ण के दिये गये दो वजनों द्वारा अलग-अलग भाजित करो । इस प्रकार प्राप्त भजनफलों में से प्रत्येक को अलग-अलग स्वर्ण की संगत मात्रा के भार द्वारा तथा परिणामी वर्ण द्वारा भी गुणित करो । इस प्रकार प्राप्त दोनों गुणनफलों को दो भिन्न स्थानों में लिखो । इन दो कुलकों (sets) में से प्रत्येक के इन फलों में से प्रत्येक को यदि उन राशियों द्वारा ह्रासित किया जाय अथवा जोड़ा जाय, जो १ को संगत प्रकार के स्वर्ण के ज्ञात भार द्वारा भाजित करने पर प्राप्त होती हैं, तो इष्ट वर्णों की प्राप्ति होती है ॥१८७॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि संघटक वर्ण ज्ञात न हो, और क्रमशः १६ और १० भार वाले दो भिन्न प्रकार के स्वर्णों का परिणामी वर्ण ११ हो, तो इन दो प्रकार के स्वर्ण के वर्ण कौन कौन हैं, बतलाओ ॥१८८॥

(१८७) गाथा १८८ के प्रश्न को निम्न रीति से साधित करने पर यह सूत्र स्पष्ट हो जावेगा—

$\frac{१}{१६}$ × १६ × ११ और $\frac{१}{१०}$ × १० × ११ दो स्थानों में लिख दिया जाता है ।

इस प्रकार; ११ ११ लिखने पर,
११ ११

$\frac{१}{१६}$ और $\frac{१}{१०}$ को दो कुलकों में प्रत्येक के इन फलों में से प्रत्येक को क्रमानुसार १ को वर्ण द्वारा भाजित करने से प्राप्त राशियों द्वारा जोड़ा और घटाया जाता है—

$\left.\begin{matrix} ११ + \frac{१}{१६} \\ ११ - \frac{१}{१०} \end{matrix}\right\}$ और $\left\{\begin{matrix} ११ - \frac{१}{१६} \\ ११ + \frac{१}{१०} \end{matrix}\right.$ इस प्रकार उत्तरों के दो कुलक (sets) प्राप्त होते हैं ।

पुनरपि द्वयनष्टवर्णानयनसूत्रम्—
एकस्य क्षयमिष्टं प्रकल्प्य शेषं प्रसाधयेत् प्राग्वत्।
बहुकनकानामिष्टं व्येकपदानां ततः प्राग्वत् ॥ १८९ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादशचतुर्दशानां स्वर्णानां समरसीकृते जातम्।
वर्णानां दशकं स्यात् तद्वर्णौ ब्रूहि संचिन्त्य ॥ १९० ॥

अपरार्धस्योदाहरणम्

सप्तनवशिखिदशानां कनकानां संयुते पक्वं। द्वादशवर्णं जातं किं ब्रूहि पृथक् पृथग्वर्णम् ॥ १९१ ॥

परीक्षणशलाकानयनसूत्रम्—
परमक्षयाप्तवर्णाः सर्वशलाकाः पृथक् पृथग्योज्याः।
स्वर्णफलं तच्छोध्यं शलाकपिण्डात् प्रपूर्णिका ॥ १९२ ॥

अत्रोद्देशकः

वैश्याः स्वर्णशलाकाश्चिकीर्षवः स्वर्णवर्णज्ञाः।
चक्रुः स्वर्णशलाका द्वादशवर्णं तदाद्यस्य ॥ १९३ ॥

पुनः, जब मिश्रण का परिणामी वर्ण ज्ञात हो, तब दो ज्ञात मात्राओं वाले स्वर्णों के अज्ञात वर्णों को निकालने के लिये नियम—

दो दी गई मात्राओं के स्वर्ण में से एक के सम्बन्ध में वर्ण मन से चुन लो। जो निकालना शेष हो उसे पहिले की भाँति प्राप्त किया जा सकता है। एक को छोड़ कर समस्त प्रकार के स्वर्ण की ज्ञात मात्राओं के सम्बन्ध में वर्ण मन से चुन लिये जाते हैं, और तब पहिले की तरह अपनाई गई रीति से अग्रसर होते हैं ॥१८९॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

क्रमशः १२ और १४ वजन वाले दो प्रकार के स्वर्ण को एक साथ गलाया गया, जिससे परिणामी वर्ण १० बना। उन दो प्रकार के स्वर्ण के वर्णों को सोचकर बतलाओ ॥१९०॥

नियम के उत्तरार्द्ध को निदर्शित करने के लिये उदाहरणार्थ प्रश्न

क्रमशः ७, ९, ३ और १० भारवाले चार प्रकार के स्वर्ण को गलाकर १२ वर्ण वाला स्वर्ण बनाया गया। प्रत्येक प्रकार के संघटक स्वर्ण के वर्णों को अलग-अलग बतलाओ ॥१९१॥

स्वर्ण की परीक्षण शलाका की अर्हा का अनुमान लगाने के लिये नियम—

प्रत्येक शलाका के वर्ण को, अलग-अलग, दिये गये महत्तम वर्ण द्वारा विभाजित करना पड़ता है। इस प्रकार प्राप्त (सभी) भजनफलों को जोड़ा जाता है। परिणामी योग शुद्ध स्वर्ण की इष्ट मात्रा का माप होता है। सभी शलाकाओं के भारों का योग करने पर, प्राप्त योगफल में से पिछले परिणामी योग को घटाते हैं। जो शेष बचता है वह प्रपूर्णिका (अर्थात् निम्न श्रेणी की मिश्रित धातु) की मात्रा होती है ॥१९२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्वर्ण के वर्ण को पहिचानने वाले ३ व्यापारी स्वर्ण की परीक्षण शलाकाओं को बनाने के इच्छुक थे। उन्होंने ऐसी स्वर्ण-शलाकाएँ बनाईं। पहिले व्यापारी का स्वर्ण १२ वर्ण वाला, दूसरे का

चतुरुत्तरदशवर्णं षोडशवर्णं तृतीयस्य । कनकं चास्ति प्रथमस्यैकोनं च द्वितीयस्य ॥ १९४ ॥
अर्धार्धेन्यूनमथ तृतीयपुरुषस्य पादोनम् । परवर्णादारभ्य प्रथमस्यैकान्त्यमेव च ह्यन्त्यम् ॥१९५॥
ह्यन्त्यं तृतीयवणिजः सर्वशलाकास्तु माषमिताः ।
शुद्धं कनकं किं स्यात् प्रपूरणी का पृथक् पृथक् त्वं मे ।
आचक्ष्व गणक शीघ्रं सुवर्णगणितं हि यदि वेत्सि ॥ १९६½ ॥

विनिमयवर्णसुवर्णानयनसूत्रम्—

क्रयगुणसुवर्णविनिमयवर्णेष्टघ्नान्तरं पुनः स्थाप्यम् ।
व्यस्तं भवति हि विनिमयवर्णान्तरहृत्फलं कनकम् ॥ १९७½ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशवर्णं कनकं सप्तशतं विनिमयं कृतं लभते ।
द्वादशदशवर्णाभ्यां साष्टसहस्रं तु कनकं किम् ॥ १९८½ ॥

---

१४ वर्ण वाला और तीसरे का १६ वर्ण वाला था । पहिले व्यापारी की परीक्षण शलाकाओं के विभिन्न नमूने, नियमित क्रम से, वर्ण में १ कम होते जाते थे। दूसरे के ½ और ½ कम और तीसरे के नियमित क्रम में ¼ कम होते जाते थे । पहिले व्यापारी ने परीक्षण स्वर्ण के नमूने को महत्तम वर्णवाले से आरम्भकर १ वर्ण वाले तक बनाये; इसी तरह से दूसरे व्यापारी ने २ वर्ण वाली तक की शलाकाएँ बनाईं और तीसरे ने भी महत्तम वर्ण वाली से आरम्भ कर ३ वर्ण वाली तक की परीक्षण शलाकाएँ बनाईं । प्रत्येक परीक्षण शलाका भार में १ माशा थी । हे गणितज्ञ ! यदि तुम वास्तव में स्वर्ण गणना को जानते हो, तो शीघ्र बतलाओ कि यहाँ शुद्ध स्वर्ण का माप क्या है, तथा प्रपूर्णिका (निम्न श्रेणी की मिली हुई धातु) की मात्रा क्या है ? ॥१९३–१९६½॥

दो दिये गये वर्ण वाले और बदले में प्राप्त स्वर्ण के भिन्न भारों को निकालने के लिये नियम—

पहिले बदले जाने वाले दिये गये स्वर्ण के भार को दिये गये वर्ण द्वारा गुणित करते हैं, और बदले में प्राप्त स्वर्ण का भार तथा बदले हुए स्वर्ण के दो नमूनों में से पहिले के वर्ण द्वारा गुणित करते हैं । प्राप्त गुणनफलों के अंतर को एक ओर लिख लिया जाता है । उपर्युक्त प्रथम गुणनफल को बदले में प्राप्त स्वर्ण का भार तथा बदले हुए स्वर्ण के दो नमूनों में से दूसरे के वर्ण द्वारा गुणित करने से प्राप्त गुणनफल द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त अंतर को दूसरी ओर लिख लिया जाता है । यदि तब, ये स्थिति में बदल दिये जायँ, और बदले हुए स्वर्ण के दो प्रकारों के दो विशिष्ट वर्णों के अंतर के द्वारा भाजित किये जायँ, तो (बदले में प्राप्त दो प्रकार के) स्वर्ण की दो इष्ट मात्रायें होती हैं ॥१९७½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१६ वर्ण वाला ७०० भार का स्वर्ण बदले जाने पर, १२ और १० वर्ण वाले दो प्रकार का कुल १००८ भार वाला स्वर्ण उत्पन्न करता है । अब स्वर्ण के इन दो प्रकारों में से प्रत्येक प्रकार का भार कितना कितना है ? ॥१९८½॥

(१९७½) यह नियम गाथा १९८½ के प्रश्न का साधन करने पर स्पष्ट हो जावेगा—

७०० × १६ – १००८ × १० और १००८ × १२ – ७०० × १६ की स्थितियों को बदल कर लिखने से ८९६ और ११२० प्राप्त होते हैं । जब इन्हें १२ – १० अर्थात् २ द्वारा भाजित करते हैं, तो क्रमशः १० और १२ वर्ण वाले स्वर्ण के ४४८ और ५६० भार प्राप्त होते हैं ।

बहुपदविनिमयसुवर्णकरणसूत्रम्—
वर्णघ्नकनकमिष्टस्वर्णेनाप्तं द्वढक्षयो भवति ।
प्राग्वत्प्रसाध्य लब्धं विनिमयबहुपदसुवर्णानाम् ॥१९९½॥

अत्रोद्देशकः

वर्णचतुर्दशकनकं शतत्रयं विनिमयं प्रकुर्वन्तः । वर्णैर्द्वादशदशवसुनगैश्च शतपञ्चकं स्वर्णम् ।
एतेषां वर्णानां पृथक् पृथक् स्वर्णमानं किम् ॥२०१॥

विनिमयगुणवर्णकनकलाभानयनसूत्रम्—
स्वर्णघ्नवर्णयुतिहृतगुणयुतिमूलक्षयघ्नरूपोनेन । आप्तं लब्धं शोध्यं मूलधनाच्छेषवित्तं स्यात् ॥२०२॥
तल्लब्धमूलयोगाद्विनिमयगुणयोगभाजितं लब्धम् ।
प्रक्षेपकेण गुणितं विनिमयगुणवर्णकनकं स्यात् ॥२०३॥

कई विशिष्ट प्रकार के बदले के परिणाम स्वरूप प्राप्त स्वर्ण के विभिन्न भारों को निकालने के लिये नियम—

यदि बदले जाने वाले दत्त स्वर्ण के भार को उसके ही वर्ण द्वारा गुणित कर उसे बदले में प्राप्त इष्ट स्वर्ण की मात्रा से भाजित किया जाय, तो समांग औसत वर्ण उत्पन्न होता है। इसके पश्चात्, पूर्व कथित क्रियाओं को प्रयुक्त करने पर, प्राप्त परिणाम बदले में प्राप्त विभिन्न प्रकार के स्वर्ण के इष्ट भारों को उत्पन्न करता है ॥१९९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य १४ वर्ण वाले ३०० भार के स्वर्ण के बदले में ५०० भार के विभिन्न वर्ण वाले १२, १०, ८ और ७ वर्ण वाले स्वर्ण के प्रकारों को प्राप्त करता है। बतलाओ कि इन भिन्न वर्णों में से प्रत्येक का संगत अलग-अलग स्वर्ण कितने-कितने भार का होता है? ॥२००½—२०१॥

बदले में प्राप्त स्वर्ण के विभिन्न ऐसे भारों को निकालने के लिये नियम, जो ज्ञात वर्ण वाले हैं और निश्चित गुणजों (multiples) के समानुपात में हैं—

दी गई समानुपाती गुणज (multiple) संख्याओं के योग को, (दी गई समानुपाती मात्राओं वाले विभिन्न प्रकार के बदले में प्राप्त) स्वर्ण की मात्राओं को, (इनके विशिष्ट) वर्णों द्वारा गुणित करने पर, प्राप्त गुणनफलों के योग द्वारा भाजित करते हैं। परिणामी भजनफल को बदले जाने वाले स्वर्ण के मूल वर्ण द्वारा गुणित किया जाता है। यदि इस गुणनफल को १ द्वारा ह्रासित कर इसके द्वारा बदले में प्राप्त स्वर्ण के भार में जो बढ़ती हुई है उसे भाजित करें, और प्राप्त भजनफल को स्वर्ण के मूल भार में से घटायें, तो (जो बदला नहीं गया है ऐसे) स्वर्ण का शेष भार प्राप्त होता है। यह शेष भार मूल स्वर्ण के भार तथा बदले के कारण भार में हुई वृद्धि के योग में से घटाया जाता है। इस प्रकार प्राप्त परिणामी शेष को बदले से सम्बन्धित समानुपाती गुणज (multiple) संख्याओं के योग द्वारा भाजित किया जाता है, और तब उन समानुपाती संख्याओं में से प्रत्येक द्वारा अलग-अलग गुणित किया जाता है। तब बदले में प्राप्त स्वर्ण के विशिष्ट वर्ण वाले और विशिष्ट अनुपात वाले विभिन्न भारों की प्राप्ति होती है ॥२०२—२०३॥

(१९९½) यहाँ उल्लिखित क्रिया १८५ वीं गाथा से मिलती है।

अत्रोद्देशकः

कश्चिद्वणिक् फलार्थी षोडशवर्णं शतद्वयं कनकम् ।
यत्किंचिद्विनिमयकृतमेकार्धं द्विगुणितं यथा क्रमशः ॥२०४॥
द्वादशवसुनवदशकक्षयकं लाभो द्विरभ्रशतम् ।
शेषं किं स्याद्विनिमयकांस्तेषां चापि मे कथय ॥२०५॥

दृश्यसुवर्णविनिमयसुवर्णैर्मूलानयनसूत्रम्—

विनिमयवर्णेनाप्तं स्वांशं स्वेष्टक्षयघ्नसंमिश्रात् ।
अंशैक्योनेनाप्तं दृश्यं फलमत्र भवति मूलधनम् ॥२०६॥

अत्रोद्देशकः

वणिजः कंचित् षोडशवर्णकसौवर्णगुलकमाहृत्य ।
त्रिचतुःपञ्चमभागान् क्रमेण तस्यैव विनिमयं कृत्वा ॥२०७॥
द्वादशदशवर्णैः संयुज्य च पूर्वशेषेण । मूलेन विना दृष्टं स्वर्णसहस्रं तु किं मूलम् ॥२०८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई व्यापारी लाभ प्राप्त करने का इच्छुक है, और उसके पास १६ वर्ण वाला २०० भार का स्वर्ण है। उसका एक भाग, १२, ८, ९ और १० वर्ण वाले चार प्रकार के स्वर्ण से बदला जाता है, जिनके भार ऐसे अनुपात में हैं जो १ से आरम्भ होकर नियमित रूप से २ द्वारा गुणित किये जाते हैं। इस बदले के व्यापार के फलस्वरूप स्वर्ण के भार में १०२ लाभ होता है। शेष (बिना बदले हुए) स्वर्ण का भार क्या है ? उन उपर्युक्त वर्णों के संगत (corresponding) स्वर्ण-प्रकारों के भारों कोभी बतलाओ, जो बदले में प्राप्त हुए हैं ॥२०४–२०५॥

जिसका कुछ भाग बदला गया है ऐसे स्वर्ण की सहायता से, और बदले के कारण बढ़ता देखा गया है ऐसे स्वर्ण के भार की सहायता से स्वर्ण की मूल मात्रा के भार को निकालने के लिये नियम—

बदले जाने वाले मूल स्वर्ण के प्रत्येक विशिष्ट भाग को उसके बदले के संगत वर्ण द्वारा भाजित किया जाता है। प्रत्येक दशा में, परिणामी भजनफल दिये गये मूल स्वर्ण के मन से चुने हुए वर्ण द्वारा गुणित किये जाते हैं; और तब ये सब गुणनफल जोड़े जाते हैं। इस योग में से मूल स्वर्ण के विभिन्न भिन्नीय बदले हुए भागों के योग को घटाया जाता है। अब यदि बदले के कारण स्वर्ण के भार की बढ़ती को इस परिणामी शेष द्वारा भाजित किया जाय, तो मूल स्वर्ण धन प्राप्त होता है ॥२०६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापारी की १६ वर्ण सोने की एक छोटी गेंद ली जाती है; तथा उसके $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$ और $\frac{1}{5}$ भाग क्रमशः १२, १० और ९ वर्ण वाले स्वर्ण से बदल दिये जाते हैं। इन बदले हुए विभिन्न प्रकार के स्वर्णों के भारों को मूल स्वर्ण के शेष भाग में जोड़ दिया जाता है। तब मूल स्वर्ण के भार को लेखा में से हटाने से भार में १००० बढ़ती देखी जाती है। इस मूल स्वर्ण का भार बतलाओ ॥२०७-२०८॥

इष्टांशदानेन इष्टवर्णानयनस्य तदिष्टांशकयोः सुवर्णानयनस्य च सूत्रम्—
अंशासैकं व्यस्तं क्षिप्त्वेष्टघ्नं भवेत् सुवर्णमयी ।
सा गुलिका तस्या अपि परस्परांशाप्तकनकस्य ॥ २०९ ॥
स्वहृढक्षयेण वर्णौ प्रकल्पयेत्प्राग्वदेव यथा ।
एवं तद्द्वययोरप्युभयं साम्यं फलं भवेद्यदि चेत् ॥२१०॥
प्राक्कल्पनेष्टवर्णौ गुलिकाभ्यां निश्चयौ भवतः ।
नो चेत्प्रथमस्य तदा किंचिन्न्यूनाधिकौ क्षयौ कृत्वा ॥२११॥
तत्क्षयपूर्वक्षययोरन्तरिते शेषमत्र संस्थाप्य ।
त्रैराशिकविधिलब्धं वर्णौ तेनोनिताधिकौ स्पष्टौ ॥२१२॥

दूसरे व्यक्ति के पास के वाञ्छित भिन्नीय भाग वाले स्वर्ण की पारस्परिक दान की सहायता से इष्ट वर्ण निकालने के लिये, तथा उन मन से चुने हुए दिये गये भागों के संगत स्वर्णों के भारों को क्रमशः निकालने के लिये नियम—

(दो विशिष्ट रूप से) दिये गये भागों में से प्रत्येक के संख्यात्मक मान द्वारा १ को भाजित कर व्युत्क्रम में लिखा जाता है । यदि इस प्रकार प्राप्त भजनफलों में से प्रत्येक को मन से चुनी हुई राशि द्वारा गुणित किया जाय, तो वह सोने की दो छोटी गेंदों में से प्रत्येक के भार को उत्पन्न करता है । सोने की इन छोटी गेंदों में से प्रत्येक का वर्ण, तथा व्यापार में दूसरे मनुष्य के द्वारा दिये गये स्वर्ण को, प्रत्येक दशा में, दिये गये अन्तिम औसत वर्ण की सहायता से प्राप्त करना पड़ता है । यदि इस प्रकार से प्राप्त उत्तर दोनों कुलक (sets) प्रश्न के इष्ट मानों से मेल खाते हैं, तो मन से चुनी हुई संख्या से प्राप्त दो वर्ण, (दो दिये गये छोटे स्वर्ण की गेंदों के सम्बन्ध में), कथित सत्यापित वर्ण हो जाते हैं । यदि ये उत्तर मेल नहीं खाते, तो उत्तरों के प्रथम कुलक के वर्णों को आवश्यकतानुसार छोटा या कुछ बड़ा बनाना पड़ता है । तब सुधारे हुए संघटक वर्णों के संगत औसत वर्ण को आगे प्राप्त करना पड़ता है । इसके पश्चात्, इस औसत वर्ण और पहिले प्राप्त (बिना मेल खानेवाले औसत) वर्ण के अन्तर को लिख लिया जाता है; और इष्ट समानुपातिक राशियाँ त्रैराशिक नियम द्वारा प्राप्त की जाती हैं । पहिली चुनी हुई संख्या के अनुसार प्राप्त वर्णों को जब इन दो राशियों में से क्रमशः एक द्वारा ह्रासित और दूसरी द्वारा जोड़ा जाता है, तब यहाँ इष्ट वर्णों की प्राप्ति होती है । ॥२०९-२१२॥

(२०९-२१२) गाथा २१३-२१५ के प्रश्न का साधन निम्न भाँति करने पर नियम स्पष्ट हो जावेगा—

१ को $\frac{१}{२}$ और $\frac{१}{३}$ द्वारा भाजित करने पर हमें क्रमशः २, ३ प्राप्त होते हैं । उनकी स्थिति बदल कर उन्हें किसी चुनी हुई संख्या (मानलो १) द्वारा गुणित करने से हमें ३, २ प्राप्त होते हैं । ये दो संख्याएं क्रमशः दो व्यापारियों की स्वर्ण मात्राओं का प्ररूपण करती हैं ।

९ को प्रथम व्यापारी के स्वर्ण का वर्ण चुनकर, हम उसके द्वारा प्रस्तावित बदले (विनिमय) में से, दूसरे व्यापारी के स्वर्ण के वर्ण १३ को सरलता पूर्वक प्राप्त कर सकते हैं । ये वर्ण ९ और १३, दूसरे व्यापारी द्वारा प्रस्तावित बदले में, औसत वर्ण $\frac{५३}{५}$ को उत्पन्न करते हैं, जब कि प्रश्न में दिया गया औसत वर्ण १२ अथवा $\frac{६०}{५}$ होता है ।

इसलिये वर्ण ९ और १३ को बदलना पड़ता है । यदि ९ के स्थान पर ८ चुना जाय तो १३

अत्रोद्देशकः

स्वर्णपरीक्षकवणिजौ परस्परं याचितौ ततः प्रथमः ।
अर्धं प्रादात् तामपि गुलिकां स्वसुवर्णे आयोज्य ॥२१३॥
वर्णदशकं करोमीत्यपरोऽवादीत् त्रिभागमात्रतया ।
लब्धे तथैव पूर्णं द्वादशवर्णं करोमि गुलिकाभ्याम् ॥२१४॥
उभयोः सुवर्णमाने वर्णौ संचिन्त्य गणिततत्त्वज्ञ ।
सौवर्णगणितकुशलं यदि तेऽस्ति निगद्यतामाशु ॥२१५॥

इति मिश्रकव्यवहारे सुवर्णकुट्टीकारः समाप्तः ।

विचित्रकुट्टीकारः

इतः परं मिश्रकव्यवहारं विचित्रकुट्टीकारं व्याख्यास्यामः । सत्यानृतसूत्रम्—
पुरुषाः सैकेष्टगुणा द्विगुणेष्टोना भवन्त्यसत्यानि । पुरुषकृतिस्तैरूना सत्यानि भवन्ति वचनानि ।२१६।

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्वर्ण के मूल्य को परखने में कुशल दो व्यापारियों ने एक दूसरे से स्वर्ण बदलने के लिये कहा । पहिले ने दूसरे से कहा, "यदि अपना आधा स्वर्ण मुझे दे दो, तो उसे मैं अपने स्वर्ण में मिलाकर कुल स्वर्ण को १० वर्ण वाला बना लूँगा ।" तब दूसरे ने कहा, "यदि मैं तुम्हारा केवल १/३ भाग स्वर्ण प्राप्त करलूँ, तो मैं पूरे स्वर्ण को दो गोलियों की सहायता से १२ वर्ण वाला बना लूँगा ।" हे गणित तत्त्वज्ञ ! यदि तुम स्वर्ण गणित में कुशल हो तो सोचविचार कर शीघ्र बतलाओ कि इनके पास कितने-कितने वर्ण वाला कितना-कितना स्वर्ण (भार में) है ? ॥२१३-२१५॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में सुवर्ण कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

विचित्र कुट्टीकार

इसके पश्चात्, हम मिश्रक व्यवहार में विचित्र कुट्टीकार की व्याख्या करेंगे ।

(ऐसी परिस्थिति में जैसी कि नीचे दी गई है, जहाँ दोनों बातें साथ ही साथ सम्भव हैं,) सत्य और असत्य वचनों की संख्या ज्ञात करने के लिये नियम—

मनुष्यों की संख्या को उनमें से चाहे गये मनुष्यों की संख्या को १ द्वारा बढ़ाने से प्राप्त संख्या द्वारा गुणित करो, और तब उसे चाहे गये मनुष्यों की संख्या की दुगुनी राशि द्वारा ह्रासित करो । जो संख्या उत्पन्न होगी वह असत्य वचनों की संख्या होगी । सब मनुष्यों का निरूपण करनेवाली संख्या का वर्ग इन असत्य वचनों की संख्या द्वारा ह्रासित होकर सत्य वचनों की संख्या उत्पन्न करता है ॥२१६॥

को पहिले बदले में १६ तक बढ़ाना पड़ता है । इन दो वर्णों ८ और १६ को, दूसरे बदले में प्रयुक्त करने से, हमें औसतवर्ण ३५/३ के बदले में ४०/३ प्राप्त होता है ।

इस प्रकार, दूसरे बदले में हम देखते हैं कि भार और वर्ण के गुणनफलों के योग में (४०-३५) अथवा ५ की बढ़ती है, जबकि पूर्व के चुने हुए वर्णों के सम्बन्ध में घटती और बढ़ती क्रमशः ९ − ८ = १ और १६ − १३ = ३ हैं ।

परन्तु दूसरे बदले में भार और वर्ण के गुणनफलों के योग में बढ़ती ३६ − ३५ = १ है । त्रैराशिक के नियम का प्रयोग करने पर हमें वर्णों में संगत घटती और बढ़ती १/६ और ३/६ प्राप्त होती हैं । इसलिये वर्ण क्रमशः ९ − १/६ या ८ ५/६ और १३ + ३/६ = १३ ३/६ हैं ।

(२१६) इस नियम का मूल आधार गाथा २१७ में दिये गये प्रश्न के निम्नलिखित बीजीय

अत्रोद्देशकः

कामुकपुरुषाः पञ्च हि वेश्यायाश्च प्रियास्त्रयस्तत्र ।
प्रत्येकं सा ब्रूते त्वमिष्ट इति कानि सत्यानि ॥२१७॥

प्रस्तारयोगभेदस्य सूत्रम्—

एकाद्येकोत्तरतः पदमूर्ध्वाधर्यतः क्रमोत्क्रमशः ।
स्थाप्य प्रतिलोमघ्नं प्रतिलोमघ्नेन भाजितं सारम् ॥२१८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पाँच कामुक व्यक्ति हैं । उनमें से तीन व्यक्ति वास्तव में वेश्या द्वारा चाहे जाते हैं । वह प्रत्येक से अलग-अलग कहती है, "मैं केवल तुम्हें चाहती हूँ ।" उसके कितने (व्यक्त और उपलक्षित) वचन सत्य हैं ? ॥२१७॥

दी हुई वस्तुओं में (सम्भव) संचयों के प्रकारों सम्बन्धी नियम—

एक से आरम्भकर, संख्याओं को, दी गई वस्तुओं की संख्या तक एक द्वारा बढ़ाकर, नियमित क्रम में और व्यस्तक्रम में (क्रमशः) एक ऊपर और एक नीचे क्षेतिजपंक्ति में लिखो । यदि ऊपर की पंक्ति में दाहिने से बाईं ओर को लिया गया (एक, दो, तीन अथवा अधिक संख्याओं का) गुणनफल, नीचे की पंक्ति में भी दाहिने से बाईं ओर को लिये गये (एक, दो, तीन अथवा अधिक संख्याओं के संगत) गुणनफल द्वारा भाजित किया जाय, तो प्रत्येक दशा में ऐसे संचय की इष्ट राशि फलस्वरूप प्राप्त होती है ॥ २१८ ॥

निरूपण से स्पष्ट हो जावेगा—

मानलो कुल मनुष्यों की संख्या अ है जिनमें से ब चाहे जाते हैं । वचनों की संख्या अ है, और प्रत्येक वचन अ मनुष्यों के बारे में है, इसलिये वचनों की कुल संख्या $अ \times अ = अ^2$ है । अब इन अ मनुष्यों में से ब मनुष्य चाहे जाते हैं, और अ − ब चाहे नहीं जाते । जब ब मनुष्यों में से प्रत्येक को यह कहा जाता है, 'केवल तुम्हीं चाहे जाते हो', तब प्रत्येक दशा में असत्य वचन ब − १ हैं ; इसलिये असत्य वचनों की ब वचनों में कुल संख्या ब (ब − १) है..................(१)

जब फिर से वही कथन अ − ब मनुष्यों में से प्रत्येक को कहा जाता है तब प्रत्येक दशा में असत्य कथनों की संख्या ब + १ है । इसलिये अ − ब वचनों में कुल असत्य वचनों की संख्या (अ − ब) (ब + १) है...(२) (१) और (२) का योग करने पर, हमें ब (ब − १) + (अ − ब) (ब + १) = अ (ब + १) − २ ब प्राप्त होता है । यह असत्य वचनों की कुल संख्या को निरूपित करती है । इसे $अ^2$ में से घटाने पर, जो कि सब सत्य और असत्य वचनों की कुल संख्या है, हमें सत्य वचनों की संख्या प्राप्त होती है ।

(२१८) यह नियम संचय (combination) के प्रश्न से सम्बन्ध रखता है । यहाँ दिया गया सूत्र यह है—

$$\frac{न(न-१)(न-२)\cdots\cdots(न-र+१)}{१\cdot २\cdot ३\cdots\cdots\cdots र}$$ और यह स्पष्ट रूप से $\frac{\underline{|न}}{\underline{|र}\ \underline{|न-र}}$ के तुल्य है ।

(२२६) नियम में दिया गया सूत्र बीजीय रूप से निम्न प्रकार है—

$$क = \frac{\frac{अदा}{२} - \sqrt{\left(\frac{अदा}{२}\right)^2 - अबद\,(दा-द)}}{दा-द}$$, जहाँ क = निकाली जाने वाली मजदूरी

अत्रोद्देशकः

वर्णाश्चापि रसानां कषायतिक्ताम्लकटुकलवणानाम् ।
मधुररसेन युतानां भेदान् कथयाधुना गणक ॥२१९॥
वज्रेन्द्रनीलमरकतविद्रुममुक्ताफलैस्तु रचितमालायाः ।
कति भेदा युतिभेदात् कथय सखे सम्यगाशु त्वम् ॥२२०॥
केतक्यशोकचम्पकनीलोत्पलकुसुमरचितमालायाः ।
कति भेदा युतिभेदात्कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥२२१॥

ज्ञाताज्ञातलाभैर्मूलानयनसूत्रम्—

लाभोनमिश्रराशेः प्रक्षेपकतः फलानि संसाध्य । तेन हृतं तल्लब्धं मूल्यं त्वज्ञातपुरुषस्य ॥२२२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणितज्ञ ! मुझे बतलाओ कि छः रस—कषायला, कडुआ, खट्टा, तीखा, खारा और मीठा दिये गये हों तो संचय के प्रकार और संचय राशियां क्या होगी ? ॥ २१९ ॥ हे मित्र ! हीरा, नील, मरकत, विद्रुम और मुक्ताफल से रची हुई अंतहीन धागे की माला के संचय में परिवर्तन होने से कितने प्रकार प्राप्त हो सकते हैं, शीघ्र बतलाओ ॥ २२० ॥ हे गणित तत्त्वज्ञ सखे ! मुझे बतलाओ कि केतकी, अशोक, चम्पक और नीलोत्पल के फूलों की माला बनाने के लिये संचयों में परिवर्तन करने पर कितने प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ?

किसी व्यापार में ज्ञात और अज्ञात लाभों की सहायता से अज्ञात मूल धन प्राप्त करने के लिये नियम—

समानुपातिक विभाजन की क्रिया द्वारा समस्त लाभों के मिश्रित योग में से ज्ञात लाभ घटाकर अज्ञात लाभों को निश्चित करते हैं। तब अज्ञात रकम लगाने वाले व्यक्ति का मूलधन, उसके लाभ को ऊपर समानुपातिक विभाजन की क्रिया में प्रयुक्त उसी साधारण गुणनखण्ड द्वारा भाजित करने पर, प्राप्त करते हैं ॥ २२२ ॥

अ = ढोया जाने वाला कुल भार, दा = कुल दूरी, द = तय की हुई (जो चली जा चुकी है ऐसी) दूरी, और ब = निश्चित की गई कुल मजदूरी है। यह आलोकनीय है कि यात्रा के दो भागों के लिये मजदूरी की दर एक सी है, यद्यपि यात्रा के प्रत्येक भाग के लिये चुकाई गई रकम पूरी यात्रा के लिए निश्चित की गई दर के अनुसार नहीं है।

प्रश्न के न्यास (data दत्त सामग्री) सहित निम्नलिखित समीकरण से सूत्र सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है— $\frac{\text{क}}{\text{अद}} = \frac{\text{ब} - \text{क}}{(\text{अ} - \text{क})\ (\text{दा} - \text{द})}$, जहाँ क अज्ञात है।

अत्रोद्देशकः

समये केचिद्वणिजस्त्रयः क्रयं विक्रयं च कुर्वीरन् ।
प्रथमस्य षट् पुराणा अष्टौ मूल्यं द्वितीयस्य ॥२२३॥
न ज्ञायते तृतीयस्य व्याप्तिस्तैर्नरैस्तु षण्णवतिः । अज्ञातस्यैव फलं चत्वारिंशद्धि तेनाप्तम् ॥२२४॥
कस्तस्य प्रक्षेपो वणिजोरुभयोर्भवेच्च को लाभः ।
प्रगणय्याचक्ष्व सखे प्रक्षेपं यदि विजानासि ॥२२५॥

भाटकानयनसूत्रम्—

भरभृतिगतगम्यहतिं त्यक्त्वा योजनदलघ्नभारकृतेः ।
तन्मूलोनं गम्यच्छिन्नं[1] गन्तव्यभाजितं सारम् ॥२२६॥

अत्रोद्देशकः

पनसानि द्वात्रिंशन्नीत्वा योजनमसौ दलोनाष्टौ ।
गृह्णात्यन्तर्भाटकमर्धे भग्नोऽस्य किं देयम् ॥२२७॥

1 M और B में यहाँ त छुटा है; छंद की दृष्टि से यह अशुद्ध है।

उदाहरणार्थ प्रश्न

समझौते के अनुसार तीन व्यापारियों ने खरीदने और बेचने की क्रिया की। उनमें से पहिले की रकम ६ पुराण, दूसरे की ८ पुराण तथा तीसरे की अज्ञात थी। इन सब तीन मनुष्यों को ९६ पुराण लाभ प्राप्त हुआ। तीसरे व्यक्ति द्वारा अज्ञात रकम पर ४० पुराण लाभ प्राप्त किया गया था। व्यापार में उसने कितनी रकम लगाई थी? अन्य दो व्यापारियों को कितना-कितना लाभ हुआ? हे मित्र! यदि समानुपातिक विभाजन की क्रिया से परिचित हो तो भलीभाँति गणना कर उत्तर दो ॥ २२३–२२५ ॥

किसी दी गई दर पर किसी निश्चित दूरी के किसी भाग तक कुछ दी गई वस्तुएँ ले जाने के किराये को निकालने के लिये नियम—

ले जाये जाने वाले भार के संख्यात्मक मान और योजन में नापी गई तय दूरी की अर्द्ध राशि के गुणनफल के वर्ग में से ले जाये जाने वाले भार के संख्यात्मक मान, तय किया गया किराया, पहुँची हुई दूरी, इन सब के संतत गुणनफल को घटाओ। तब यदि ले जाये जाने वाले भार के भिन्नीय भाग (अर्थात् यहाँ आधा भाग) को तय की गई पूरी दूरी द्वारा गुणित कर, और तब उपर्युक्त अंतर के वर्गमूल द्वारा ह्रासित कर, तय की जाने वाली (जो अभी शेष है ऐसी) दूरी के द्वारा भाजित किया जाय, तो इष्ट उत्तर प्राप्त होता है।

उदाहरणार्थ प्रश्न

यहाँ एक मनुष्य ऐसा है, जिसे ३२ पनस फलों को १ योजन दूर ले जाने पर मजदूरी में ७$\frac{1}{2}$ फल मिलते हैं। वह आधी दूर जाकर बैठ जाता है। उसे तय की गई मजदूरी में से कितनी मिलना चाहिये? ॥२२७॥

द्वितीयतृतीययोजनानयनस्यसूत्रम्—
भरभाटकसंवर्गोऽद्वितीयभृतिकृतिविवर्जितश्छेदः।
तद्भृत्यन्तरभरगतिहतेर्गतिः स्याद् द्वितीयस्य ॥२२८॥

अत्रोद्देशकः

पनसानि चतुर्विंशतिमा नीत्वा पञ्चयोजनानि नरः।
लभते तद्भृतिमिह नव षड्भृतिवियुते द्वितीयनृगतिः का ॥२२९॥

बहुपद[1] भाटकानयनस्य सूत्रम्—
संनिहितनरहृतेषु प्रागुत्तरमिश्रितेषु मार्गेषु।
व्यावृत्तनरगुणेषु प्रक्षेपकसाधितं मूल्यम् ॥२३०॥

१. B में यहाँ 'पद' छूट गया है।

जब पहिला अथवा दूसरा बोझ ढोने वाला थक कर बैठ जाता है, तब दूसरे अथवा तीसरे बोझ ढोने वाले के द्वारा योजनों में तय की गई दूरियों को निकालने के लिये नियम—

ले जाये जाने वाले कुल वजन और तय की गई मजदूरियों के मान के गुणनफल में से प्रथम ढोने वाले को दी गई मजदूरी के वर्ग को घटाओ। इस अन्तर को तय की गई मजदूरी और पहिले ही दे दी गई मजदूरी के अन्तर, ढोया जाने वाला पूरा वजन, और तय की जानेवाली पूरी दूरी के संतत गुणनफल के सम्बन्ध में भाजक के रूप में उपयोग में लाते हैं। परिणामी भजनफल दूसरे मजदूर द्वारा तय की जाने वाली दूरी होता है ॥२२८॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मनुष्य को २४ पनस फल ५ योजन दूर ले जाने के लिये ९ फल मजदूरी के रूप में प्राप्त हो सकते हैं। यदि प्रथम मनुष्य को इनमें से ६ फल मजदूरी के रूप में दिये जा चुके हों, तो दूसरे ढोने वाले को अब कितनी दूरी तय करना है, ताकि वह शेष मजदूरी प्राप्त करले? ॥२२९॥

विभिन्न दशाओं की संगत मजदूरियों के मानों को निकालने के लिये नियम, जब कि विभिन्न मजदूर उन विभिन्न दूरियों तक दिया गया बोझ ले जावें—

मनुष्यों की विभिन्न संख्याओं द्वारा तय की गई दूरियों को वहाँ ढोने का काम करने वाले मनुष्यों की संख्या द्वारा भाजित करो। प्राप्त भजनफलों को इस प्रकार संयुक्त करना पड़ता है, कि उनमें से पहिला अलग रख लिया जाता है, और तब बाद के भजनफलों (१, २, ३ आदि) को उसमें जोड़ दिया जाता है। इन परिणामी राशियों को क्रमशः विभिन्न स्थानों पर बैठ जाने वाले मनुष्यों की संख्या द्वारा गुणित करना पड़ता है। तब इन परिणामी गुणनफलों के सम्बन्ध में प्रक्षेपक क्रिया (समानुपातिक विभाजन की क्रिया) करने से विभिन्न स्थानों पर छोड़ने (बैठने) वाले मनुष्यों की मजदूरियाँ प्राप्त होती हैं ॥२३०॥

(२२८) बीजीय रूप से : $दा - द = \frac{(ब - क) अ दा}{अब - क^2}$, जो पिछले नोट के समीकरण से सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ क अज्ञात राशि है।

अत्रोद्देशकः

शिबिकां नयन्ति पुरुषा विंशतिरथ योजनद्वयं तेषाम् ।
भृतिर्दीनाराणां विंशत्यधिकं च सप्तशतम् ॥२३१॥
क्रोशद्वये निवृत्तौ द्वावुभयोः क्रोशयोस्त्रयश्चान्ये ।
पञ्च नरः शेषार्धाध्यावृताः का भृतिस्तेषाम् ॥२३२॥

इष्टगुणितपोट्टलकानयनसूत्रम्—

सैकगुणा स्वस्वेष्टं हित्वान्योन्यघ्नशेषमितिः ।
अपवर्त्य योज्य मूलं (विष्णोः) कृत्वा व्येकेन मूलेन ॥२३३॥
पूर्वापवर्तराशीन् हत्वा पूर्वापवर्तराशियुतेः ।
पृथगेव पृथक् त्यक्त्वा हस्तगताः स्वधनसंख्याः स्युः ॥२३४॥
ताः स्वस्वं हित्वैव त्वशेषयोगं पृथक् पृथक् स्थाप्य ।
स्वगुणघ्नाः स्वकरगतैरूनाः पोट्टलकसंख्याः स्युः ॥२३५॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

२० मनुष्यों को कोई पालकी २ योजन दूर ले जाने पर ७२० दीनार मिलते हैं। दो मनुष्य दो क्रोश दूर जाकर रुक जाते हैं; दो क्रोश दूर और जाने पर अन्य तीन रुक जाते हैं, तथा शेष की आधी दूरी जाने पर ५ मनुष्य रुक जाते हैं। ढोने वाले विभिन्न मजदूरों को क्या-क्या मजदूरी मिलती है? ॥२३१-२३२॥

किसी थैली में भरी हुई रकम को निकालने के लिये नियम, जो कुछ मनुष्यों में से प्रत्येक के हाथ में जितनी रकम है उसमें जोड़ी जाने पर, अन्य के हाथों में रखी हुई रकमों के योग की विशिष्ट गुणज (multiple) बन जाती है—

प्रश्न में विशिष्ट गुणज (multiple) संख्याओं में से प्रत्येक में एक जोड़कर योग राशियां प्राप्त करते हैं। इन योगों को एक दूसरे से, प्रत्येक दशा में, विशेष उल्लिखित गुणज के सम्बन्धी योग को उपेक्षित करते हुए, गुणित करते हैं। इन्हें, साधारण गुणनखंडों को हटा कर, अल्पतम पदों में प्रह्रासित (लघुकृत) करते हैं। तब इन प्रह्रासित (लघुकृत) राशियों को जोड़ा जाता है। इस परिणामी योग का वर्गमूल प्राप्त किया जाता है, जिसमें से एक घटा दिया जाता है। उपर्युक्त प्रह्रासित राशियों को इस १ द्वारा ह्रासित वर्गमूल द्वारा गुणित किया जाता है। तब इन्हें अलग-अलग उन्हीं प्रह्रासित राशियों के योग में से घटाया जाता है। इस प्रकार, कई व्यक्तियों में से प्रत्येक के हाथ की रकमें प्राप्त होती हैं। उन व्यक्तियों में से केवल एक के पास के धन के मान को प्रत्येक दशा में जोड़ से वञ्चित कर, इन सब हाथ की रकमों की राशियों को एक दूसरे में जोड़ना पड़ता है। इस प्रकार प्राप्त कई योग अलग-अलग लिखे जाते हैं। इन्हें क्रमशः उपर्युक्त उल्लिखित गुणज राशियों द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त कई गुणनफलों में से हाथ की रकमों को अलग-अलग घटाया जाता है। तब हाथ में कई रकमों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में अलग-अलग थैली की रकम का वही मान प्राप्त होता है ॥२३३-२३५॥

(२३३-२३५) गाथा २३६-२३७ में दिये गये प्रश्न में, मानलो क, ख, ग हाथ में रखी हुई तीन व्यापारियों की रकमें हैं; और थैली में य रकम है।

अत्रोद्देशकः

मार्गे त्रिभिर्वणिग्भिः पोट्टलकं दृष्टमाह तत्रैकः ।
पोट्टलकमिदं प्राप्य द्विगुणधनोऽहं भविष्यामि ॥२३६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन व्यापारियों ने सड़क पर एक थैली पड़ी हुई देखी । एक ने शेष उन से कहा, "यदि मुझे यह थैली मिल जाय, तो तुम्हारे हाथ में जितनी रकमें हैं उनके हिसाब से मैं तुम दोनों लोगों से दुगुना धनवान हो जाऊँगा ।" तब दूसरे ने कहा, "मैं तिगुना धनवान हो जाऊँगा ।" तब तीसरे ने कहा, "मैं पांच गुना धनवान हो जाऊँगा ।" थैली की रकम तथा प्रत्येक के हाथ की रकमों को अलग-अलग बतलाओ ॥२३६॥

हाथ की रकमों के मान तथा थैली की रकम निकालने के लिये नियम, जब कि थैली की रकम का विशेष उल्लिखित भिन्नीय भाग दत्त-संख्या के मनुष्यों में, प्रत्येक के हाथ की रकम में क्रमशः जोड़ने पर, प्रत्येक दशा में उनके धन की हाथ की रकम के वही गुणज (multiple) हो जावें—

तब $य + क = अ (ख + ग)$, $य + ख = ब (ग + क)$, $य + ग = स (क + ख)$, जहाँ अ, ब, स प्रश्न में गुणजों का निरूपण करते हैं ।

अब $य + क + ख + ग = (अ + १) (ख + ग)$
$= (ब + १) (ग + क)$
$= (स + १) (क + ख)$.

तब $\frac{(अ + १) (ब + १) (स + १)}{ता} \times (ख + ग) = (ब + १) (स + १) , \ldots\ldots (१)$

जहाँ $ता = य + क + ख + ग$ है ।

इसी प्रकार, $\frac{(अ + १) (ब + १) (स + १)}{ता} \times (ग + क) = (स + १) (अ + १) \ldots\ldots (२)$

और $\frac{(अ + १) (ब + १) (स + १)}{ता} \times (क + ख) = (अ + १) (ब + १) \ldots\ldots (३)$

(१), (२) और (३) को जोड़ने पर,

$$\frac{(अ + १) (ब + १) (स + १)}{ता} \times २ (क + ख + ग)$$
$$= (ब + १) (स + १) + (स + १) (अ + १) + (अ + १) (ब + १) = शा \ldots\ldots (४)$$

(१), (२) और (३) को अलग-अलग २ द्वारा गुणित करके (४) में से घटाने पर—

$$\frac{(अ + १) (ब + १) (स + १)}{ता} \times २ क = शा - २ (ब + १) (स + १),$$

$$\frac{(अ + १) (ब + १) (स + १)}{ता} \times २ ख = शा - २ (स + १) (अ + १),$$

$$\frac{(अ + १) (ब + १) (स + १)}{ता} \times २ ग = शा - २ (अ + १) (ब + १),$$

हस्तगताभ्यां युवयोस्त्रिगुणधनोऽहं द्वितीय आहेति ।
पञ्चगुणोऽहं त्वपरः पोट्टलहस्तस्थमानं किम् ॥२३७॥

सर्वतुल्यगुणकपोट्टलकानयनहस्तगतानयनसूत्रम्—

व्येकपदघ्नव्येकगुणेष्टांशवधोनितांशयुतिगुणघातः ।
हस्तगताः स्युर्भवति हि पूर्ववदिष्टांशभाजितं पोट्टलकम् ॥२३८॥

प्रश्न में दिये गये सभी उल्लिखित भिन्नों के योग के हर की उपेक्षा कर, उसे (उल्लिखित साधारण) अपवर्त्य संख्या (multiple) द्वारा गुणित किया जाता है । इस गुणनफल में से वे राशियां अलग-अलग घटाई जाती हैं, जो साधारण हर में प्रह्रासित उपर्युक्त भिन्नों में से प्रत्येक को एक कम मनुष्यों के नामकों की संख्या और उल्लिखित अपवर्त्य के गुणनफल को एक द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि द्वारा गुणित करने से प्राप्त होती हैं । परिणामी शेष, हाथ की रकमों के अलग-अलग मानों को स्थापित करते हैं । पहिले की तरह क्रियायें करने पर और तब प्रश्न में विशेष उल्लिखित भिन्नीय भाग द्वारा विभाजन करने पर थैली की रकम का मान प्राप्त हो जाता है ॥२३८॥

∴ क : ख : ग : : शा–२ (ब+१) (स+१) : शा–२ (स + १) (अ+१) : शा–२ (अ+१) (ब+१).

समानुपात के दाहिनी ओर, (यदि कोई हो तो) साधारण गुणनखंडों को हटाने से, हमें क, ख, ग के सबसे छोटे पूर्णांक मान प्राप्त होते हैं । यह समानुपात नियम में सूत्र के रूप में दिया गया है । यह देखने योग्य है कि नियम में कथित वर्गमूल केवल गाथा २३६–२३७ में दिये गये प्रश्न से सम्बन्धित है । यदि शुद्ध रूप से लिखा जाय, तो "वर्गमूल" के स्थान में '३' होना चाहिये । यह सरलता पूर्वक देखा जा सकता है कि यह प्रश्न तभी सम्भव है, जब कि $\frac{१}{अ+१}$, $\frac{१}{ब+१}$ और $\frac{१}{स+१}$ के कोई भी दो का योग तीसरे से बड़ा हो ।

(२३८) नियम में दिया गया सूत्र यह है—

क = म (अ + ब + स) – अ (२ म – १),
ख = म (अ + ब + स) – ब (२ म – १),
ग = म (अ + ब + स) – स (२ म – १),

जहाँ क, ख, ग हाथ की रकमें हैं, म साधारण गुणज (multiple) है, और अ, ब, स दिये गये उल्लिखित भिन्नीय भाग हैं ।

ये मान अगले समीकारों से सरलता पूर्वक निकाले जा सकते हैं ।

पा. अ + क = म (ख + ग),
पा. ब + ख = म (ग + क),
और पा. स + ग = म (क + ख),

जहाँ पा, थैली की रकम है ।

अत्रोद्देशकः

वैश्यैः पञ्चभिरेकं पोट्टलकं दृष्टमाह चैकैकः ।
पोट्टलकषष्ठसप्तमनवमाष्टमदशमभागमाप्त्वैव ॥२३९॥
स्वस्वकरस्थेन सह त्रिगुणं त्रिगुणं च शेषाणाम् ।
गणक त्वं मे शीघ्रं वद हस्तगतं च पोट्टलकम् ॥२४०॥

इष्टांशेष्टगुणपोट्टलकानयनसूत्रम्—

इष्टगुणाघ्नान्यांशाः सेष्टांशाः सैकनिजगुणहृता युक्ताः ।
दृनपदघ्नेष्टांशन्यूनाः सैकेष्टगुणहृता हस्तगताः ॥२४१॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पाँच व्यापारियों ने एक थैली देखी । उन्होंने (एक के बाद दूसरे से) इस प्रकार कहा कि थैली की रकम का क्रमशः १/६, १/७, १/९, १/८ और १/१० भाग पाने पर वह अपने हाथ की रकम मिलाकर अन्य व्यापारियों के कुल धन से तिगुना धनी हो जायगा । हे गणितज्ञ ! उनके हाथों की अलग-अलग रकम तथा थैली में भरी हुई रकम को शीघ्र ही बतलाओ ॥२३९–२४०॥

थैली की रकम प्राप्त करने के लिये नियम, जब कि उल्लिखित भिन्नीय भागों को, क्रमशः उन व्यक्तियों के हाथ की रकम जोड़ने पर, प्रत्येक अन्य की कुल रकमों के मान से विशिष्ट गुणा धनी बन जावे—

(इष्ट मनुष्य के भाग को छोड़कर,) शेष सभी से सम्बन्धित उल्लिखित भिन्नीय भागों को साधारण हर में प्रह्रासित कर हर को उपेक्षित कर दिया जाता है । इन्हें (अलग-अलग इष्ट मनुष्य सम्बन्धी) निर्दिष्ट अपवर्त्य (multiple) द्वारा गुणित करते हैं । इन गुणनफलों में उस इष्ट मनुष्य के भिन्नीय भाग को जोड़ते हैं । परिणामी योगों में से प्रत्येक को अलग-अलग उसके संगत उल्लिखित अपवर्त्य (multiple) से एक अधिक राशि द्वारा भाजित करते हैं । तब इन भजनफलों को भी जोड़ा जाता है । अलग-अलग दशाओं सम्बन्धी इस प्रकार प्राप्त योगों को, दो कम दशाओं की संख्या द्वारा गुणित कर, निर्दिष्ट भिन्नीय भाग द्वारा ह्रासित करते हैं । अन्तर को एक अधिक निर्दिष्ट अपवर्त्य द्वारा भाजित करते हैं । यह फल (इस विशिष्ट दशा में) हाथ की रकम है ॥२४१॥

---

(२४१) नियम में दिया गया सूत्र इस प्रकार है—

$$\text{क} = \left\{ \frac{\text{अ} + \text{मब}}{\text{न} + १} + \frac{\text{अ} + \text{मस}}{\text{य} + १} + \frac{\text{अ} + \text{मद}}{\text{र} + १} + \ldots - (\text{श} - २)\,\text{अ} \right\} \div (\text{म} + १)$$

$$\text{ख} = \left\{ \frac{\text{ब} + \text{नअ}}{\text{म} + १} + \frac{\text{ब} + \text{नस}}{\text{य} + १} + \frac{\text{ब} + \text{नद}}{\text{र} + १} + \ldots - (\text{श} - २)\,\text{अ} \right\} \div (\text{न} + १) \quad \text{इत्यादि;}$$

जहाँ क, ख,............हाथ की रकमें हैं; अ, ब, स, द भिन्नीय भाग हैं;

म, न, य, र,............विभिन्न अपवर्त्य संख्यायें हैं; और श व्यापार सम्बन्धी व्यक्तियों की संख्या है ।

अत्रोद्देशकः

द्वाभ्यां पथि पथिकाभ्यां पोट्टलकं दृष्टमाह तत्रैकः ।
अस्यार्धं संप्राप्य द्विगुणधनोऽहं भविष्यामि ॥२४२॥
अपरस्त्र्यंशद्वितयं त्रिगुणधनस्त्वत्करस्थधनात् ।
मत्करधनेन सहितं हस्तगतं किं च पोट्टलकम् ॥ २४३ ॥
दृष्टं पथि पथिकाभ्यां पोट्टलकं तद्गृहीत्वा च ।
द्विगुणमभूदाद्यस्तु स्वकरस्थधनेन चान्यस्य ॥
हस्तस्थधनादन्यस्त्रिगुणं किं करगतं च पोट्टलकम् ॥ २४४$\frac{1}{2}$ ॥
मार्गे नरैश्चतुर्भिः पोट्टलकं दृष्टमाह तत्राद्यः ।
पोट्टलकमिदं लब्ध्वा ह्यष्टगुणोऽहं भविष्यामि ॥ २४५$\frac{1}{2}$ ॥
स्वकरस्थधनेनान्यो नवसंगुणितं च शेषधनात् ।
दशगुणधनवानपरस्त्वेकादशगुणितधनवान् स्यात् ।
पोट्टलकं किं करगतधनं कियद्ब्रूहि गणकाशु ॥ २४७ ॥
मार्गे नरैः पोट्टलकं चतुर्भिर्दृष्टं हि तस्यैव तदा बभूवुः ।
पञ्चांशपादार्धतृतीयभागास्तद्द्वित्रिपञ्चप्रचतुर्गुणाश्च[1] ॥ २४८ ॥

[1] M और B में स्युः पाठ है, जो स्पष्टरूप से अनुपयुक्त है ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो यात्रियों ने सड़क पर धन से भरी हुई थैली देखी । उनमें से एक ने दूसरे से कहा, "थैली की आधी रकम प्राप्त होने पर मै तुमसे दुगुना धनी हो जाऊँगा ।" दूसरे ने कहा, "इस थैली की २/३ रकम मिल जाने पर मैं हाथ की रकम मिलाकर तुम्हारे हाथ की रकम से तिगुनी रकमवाला हो जाऊँगा ।" हाथ की अलग-अलग रकमें तथा थैली की रकम बतलाओ ॥२४२–२४३॥ दो यात्रियों ने रास्ते पर पड़ी हुई धन से भरी थैली देखी । एक ने उसे उठाया और कहा, "इस धन और हाथ के धन को मिलाकर मैं तुमसे दुगुना धनी हूँ ।" दूसरे ने थैली को लेकर कहा, "मैं इस धन और हाथ के धन को मिलाकर तुमसे तिगुना धनी हूँ ।" हाथ की रकमें और थैली की रकम अलग-अलग बतलाओ । ॥२४४–२४४$\frac{1}{2}$॥ चार मनुष्यों ने धन से भरी एक थैली रास्ते में देखी । पहिले ने कहा, "यदि मुझे यह थैली मिल जाय, तो मैं कुल धन मिलाकर तुम सभी के धन से आठगुना धनवान हो जाऊँ ।" दूसरे ने कहा, "यदि यह थैली मुझे मिल जाय तो मेरा कुलधन तुम्हारे कुलधन से ९ गुना हो जाय ।" तीसरे ने कहा, "मैं १० गुना धनी हो जाऊँगा ।" और चौथे ने कहा, "मैं ११ गुना धनी हो जाऊँगा ।" हे गणितज्ञ ! थैली की रकम और उनमें से प्रत्येक के हाथ की रकमें बतलाओ ॥२४५$\frac{1}{2}$–२४७॥ चार मनुष्यों ने रकम भरी थैली रास्ते में देखी । तब जो कुछ प्रत्येक के हाथ में था, यदि उसमें थैली का क्रमशः $\frac{1}{5}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ और $\frac{1}{3}$ भाग मिलाया जाता, तो वह दूसरों के कुलधन से क्रमशः दुगुना, तिगुना, पाँचगुना और चारगुना धन हो जाता । थैली की रकम और उनमें से प्रत्येक के हाथ की रकमें बतलाओ ॥२४८॥ तीन व्यापारियों ने रास्ते में धन से भरी हुई थैली देखी । पहिले ने (शेष) उनसे

मार्गे त्रिभिर्वणिग्भिः पोट्टलकं दृष्टमाह तत्राद्यः ।
यद्यस्य चतुर्भागं लभेऽहमित्याह स युवयोर्द्विगुणः ॥ २४९ ॥
आह त्रिभागमपरः स्वहस्तधनसहितमेव च त्रिगुणः ।
अस्यार्धं प्राप्याहं तृतीयपुरुषश्चतुर्गुणधनवान् स्याम् ।
आचक्ष्व गणक शीघ्रं किं हस्तगतं च पोट्टलकम् ॥ २५०$\frac{१}{२}$ ॥

याचितरूपैरिष्टगुणकहस्तगतानयनस्य सूत्रम्—

याचितरूपैक्यानि स्वसैकगुणवर्धितानि तैः प्राग्वत् ।
हस्तगतानां नीत्वा चेष्टगुणघ्नेति सूत्रेण ॥ २५१$\frac{१}{२}$ ॥
सदृशच्छेदं कृत्वा सैकेष्टगुणाहृतेष्टगुणयुत्या ।
रूपोनितया भक्तान् तानेव करस्थितान् विजानीयात् ॥ २५२$\frac{१}{२}$ ॥

कहा, "यदि मुझे इस थैली का $\frac{१}{४}$ धन मिल जाय, तो मैं अपने हाथ की रकम मिलाकर तुम सभी के कुलधन से दुगुने धनवाला हो जाऊँ।" दूसरे ने कहा, "यदि मुझे थैली का $\frac{१}{३}$ धन मिल जाय, तो उसे मिलाकर मैं तुम सभी के कुल धन से तिगुने धनवाला हो जाऊँ।" तीसरे ने कहा, "यदि मुझे थैली का आधा धन मिल जाय तो उसे मिलाकर मैं तुम दोनों के कुल धन से चौगुने धनवाला हो जाऊँ।" हे गणितज्ञ ! शीघ्र ही उनके हाथ की रकमें तथा थैली की रकम अलग-अलग बतलाओ ॥२४९–२५०$\frac{१}{२}$॥

हाथ की ऐसी रकम निकालने का नियम, जो दूसरे से माँगे हुए धन में मिलने पर दूसरों के हाथ की रकमों का निर्दिष्ट अपवर्त्य बन जाती है :—

माँगी हुई रकमों को अलग-अलग निज की संगत, अपवर्त्य (multiple) राशि में एक जोड़ने से प्राप्तफल द्वारा गुणित करते हैं। इन गुणनफलों की सहायता से गाथा २४१ में दिये गये नियम द्वारा हाथ की रकमों को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त इन राशियों को साधारण हरवाली बनाते हैं। प्रत्येक एक द्वारा बढ़ाई गई अपवर्त्य (multiple) राशियों द्वारा क्रमशः निर्दिष्ट अपवर्त्य राशियों को भाजित करते हैं। तब साधारण हरवाली राशियों को अलग-अलग इन प्राप्त फलों के एकोन योग द्वारा भाजित करते हैं। इन परिणामी भजनफलों को विभिन्न मनुष्यों के हाथों की रकमें समझना चाहिये ॥ २५१$\frac{१}{२}$-२५२$\frac{१}{२}$ ॥

(२५१$\frac{१}{२}$–२५२$\frac{१}{२}$) बीजीय रूप से,

$$\left[क - \left\{ \frac{(अ+ब)(म+१)+म(स+द)(न+१)}{न+१} + \frac{(अ+ब)(म+१)+म(इ+फ)(प+१)}{प+१} + \cdots\cdots + \cdots \text{इत्यादि} - (श-२)(अ+ब)(म+१) \right\} \div (म+१) \right] \div \left(\frac{म}{म+१} + \frac{न}{न+१} + \frac{प}{प+१} - १ \right)$$

इसी प्रकार ख, ग के लिये, इत्यादि। यहाँ अ, ब, स, द, इ, फ एक दूसरे से माँगी हुई रकमें हैं।

अत्रोद्देशकः

वैश्यैस्त्रिभिः परस्परहस्तगतं याचितं धनं प्रथमः ।
चत्वार्यथ द्वितीयं पञ्च तृतीयं नरं प्राप्य ॥ २५३½ ॥
द्विगुणोऽभवद्द्वितीयः प्रथमं चत्वारि षट् तृतीयमगात् ।
त्रिगुणं तृतीयपुरुषः प्रथमं पञ्च द्वितीयं च ॥ २५४½ ॥
षट् प्राप्याभूत्पञ्चकगुणः स्वहस्तस्थितानि कानि स्युः ।
कथयाशु चित्रकुट्टीमिश्रं जानासि यदि गणक ॥ २५५½ ॥
पुरुषास्त्रयोऽतिकुशलाश्चान्योन्यं याचितं धनं प्रथमः ।
स द्वादश द्वितीयं त्रयोदश प्राप्य तत्त्रिगुणः ॥ २५६½ ॥
प्रथमं दश त्रयोदश तृतीयमभ्यर्थ्य च द्वितीयोऽभूत् ।
पञ्चगुणितो द्वितीयं द्वादश दश याचयित्वाद्यम् ॥ २५७½ ॥
सप्तगुणितस्तृतीयोऽभवन्नरो वाञ्छितानि लब्धानि ।
कथय सखे विगणय्य च तेषां हस्तस्थितानि कानि स्युः ॥ २५८½ ॥

अन्त्यस्योपान्त्यतुल्यधनं दत्त्वा समधनानयनसूत्रम्—

वाञ्छाभक्तं रूपं स उपान्त्यगुणः सरूपसंयुक्तः ।
शेषाणां गुणकारः सैकोऽन्त्यः करणमेतत्स्यात् ॥ २५९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन व्यापारियों ने एक दूसरे से उनके पास की रकमों में से रकमें माँगी। पहिला व्यापारी दूसरे से ४ और तीसरे से ५ माँगकर शेष के कुल धन से दुगुना धन वाला बन गया। दूसरा पहिले से ४ और तीसरे से ६ मांग कर शेष के कुल धन से तिगुना धनवाला बन गया। तीसरा पहिले से ५ और दूसरे से ६ मांग कर उन दोनों से पाँचगुना धनवाला बन गया। हे गणितज्ञ, यदि तुम विचित्र कुट्टीकार विधि से परिचित हो, तो मुझे शीघ्र ही उनके हाथों की रकमें बतलाओ ॥२५३½-२५५½॥ तीन अति-कुशल पुरुष थे। उन्होंने एक दूसरे से रकमें मांगीं। पहिला पुरुष दूसरे से १२ और तीसरे से १३ लेकर उन दोनों से ३ गुना धनवाला बन गया। दूसरा पहिले से १० और तीसरे से १३ लेकर शेष दोनों से ५ गुना धनवाला बन गया तीसरा दूसरे से १२ और पहिले से १० लेकर शेष दोनों से ७ गुना धनवाला बन गया। उनकी वांछाएं पूर्ण हो गईं। हे मित्र ! गणना कर उनके हाथों की रकमों को बतलाओ ॥२५६½-२५८½॥

समान धन राशियों को निकालने के लिये नियम, जब कि अन्तिम मनुष्य अपने खुद के धन में से उपअन्तिम को उसी के धन के बराबर दे देता है। और फिर, यह उपांतिम मनुष्य बाद में आनेवाले मनुष्य के सम्बन्ध में यही करता है, इत्यादि—

एक के द्वारा दूसरे को दिये जानेवाले धन के सम्बन्ध में मन से चुनी हुई गुणज (multiple) राशि द्वारा १ को विभाजित करो। यह उपअंतिम मनुष्य के धन के सम्बन्ध में गुणज हो जाता है। यह गुणज एक द्वारा बढ़ाया जाकर दूसरे के हस्तगत धनों का गुणज बन जाता है। इस अन्तिम व्यक्ति के इस प्रकार प्राप्त धन में १ जोड़ा जाता है। यही रीति उपयोग में लाई जाती है ॥२५९½॥

(२५९½) गाथा २६३½ के प्रश्न को निम्नलिखित रीति से हल करने पर यह नियम स्पष्ट हो

अत्रोद्देशकः

वैश्यात्मजास्त्रयस्ते मार्गगता ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठाः ।
स्वधने ज्येष्ठो मध्यमधनमात्रं मध्यमाय ददौ ॥ २६०$\frac{1}{2}$ ॥
स तु मध्यमो जघन्यजधनमात्रं यच्छति स्मास्य ।
समधनिकाः स्युस्तेषां हस्तगतं ब्रूहि गणक संचिन्त्य ॥ २६१$\frac{1}{2}$ ॥
वैश्यात्मजाश्च पञ्च ज्येष्ठादनुजः स्वकीयधनमात्रम् ।
लेभे सर्वेऽप्येवं समवित्ताः किं तु हस्तगतम् ॥ २६२$\frac{1}{2}$ ॥
वणिजः पञ्च स्वस्वादर्धं पूर्वस्य दत्त्वा तु ।
समवित्ताः संचिन्त्य च किं तेषां ब्रूहि हस्तगतम् ॥ २६३$\frac{1}{2}$ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी व्यापारी के तीन लड़के थे । बड़ा, मँझला और छोटा, तीनों किसी रास्ते से कहीं जा रहे थे । बड़े ने अपने धन में से मँझले को उतना धन दिया जितना कि मँझले के पास था । इस मंझले ने अपने धन में से छोटे को उतना दिया जितना कि छोटे के पास था । अंत में उनके पास बराबर-बराबर धन हो गया । हे गणितज्ञ ! सोचकर बतलाओ कि आरम्भ में उनके पास (क्रमशः) कितना-कितना धन था ? ॥ २६०$\frac{1}{2}$-२६१$\frac{1}{2}$ ॥ किसी व्यापारी के पाँच लड़के थे । द्वितीय पुत्र ने बड़े से उतना धन लिया जितना कि उसका हस्तगत धन था । बाकी सभी ने ऐसा ही किया । अंत में उन सबके पास बराबर-बराबर धन हो गया । बतलाओ कि आरम्भ में उनके पास कितनी-कितनी रकम थी ? ॥ २६२$\frac{1}{2}$ ॥ पाँच व्यापारी समान धन वाले हो गये, जब कि उनमें से प्रत्येक ने अपनी खुद की रकम में से, जो उसके सामने आया, उसे उसी के धन से आधा दे दिया। सोचकर बतलाओ कि उनके पास आरम्भ में कितना-कितना धन था ? ॥ २६३$\frac{1}{2}$ ॥ ६ व्यापारी थे। बड़ों ने, जो कुछ उनके हाथ में

जावेगा—

१ ÷ $\frac{1}{2}$ या २ उपअंतिम मनुष्य के धन के सम्बन्ध में गुणज (multiple) है । यह २ एक से मिलाने पर ३ हो जाता है, जो दूसरों के धनों के संबंध में गुणज अथवा अपवर्त्य (multiple) हो जाता है ।

अब .... १, १ ।
उपअंतिम १ को २ से गुणित कर और अन्य को ३ द्वारा गुणित करने से हमें
यह प्राप्त होता है .... २, ३ ।
अन्त के अंक में १ जोड़ने पर यह प्राप्त होता है .... २, ४ ।
अब यह लिखते हैं .... २, ४, ४ ।
उपअंतिम ४ को २ द्वारा और अन्य को ३ द्वारा गुणित कर और अंत के अंक में जोड़ने पर हमें
यह प्राप्त होता है। .... ६, ८, १३ ।
पुनः .... ६, ८, १३, १३ ।
ऊपर की तरह, फिर से उन्हीं क्रियाओं को दुहराने पर हमें यह प्राप्त होता है : १८, २४, २६, ४०, ५४, ७२, ७८, ८०, १२१ ।

अंतिम पंक्ति की संख्याएँ ५ व्यापारियों की अलग-अलग हस्तगत रकमों का निरूपण करती हैं ।
बीजीय रूप से :— अ – $\frac{1}{2}$ ब = $\frac{3}{2}$ ब – $\frac{1}{2}$ स = $\frac{3}{2}$ स – $\frac{1}{2}$ द = $\frac{3}{2}$ द – $\frac{1}{2}$ इ = $\frac{3}{2}$ इ;
जहाँ अ, ब, स, द, इ पाँच व्यापारियों की हस्तगत रकमें हैं ।

वणिजः षट् स्वधनाद्द्वित्रिभागमात्रं क्रमेण तज्ज्येष्ठाः ।
स्वस्वानुजाय दत्त्वा समवित्ताः किं च हस्तगतम् ॥ २६४½ ॥

परस्परहस्तगतधनसंख्यामात्रधनं दत्त्वा समधनानयनसूत्रम्—

वाञ्छाभक्तं रूपं पदयुतमादावुपर्युपर्येतत् ।
संस्थाप्य सैकवाञ्छागुणितं रूपोनमितरेषाम् ॥२६५½॥

अत्रोद्देशकः

वणिजस्त्रयः परस्परकरस्थधनमेकतोऽन्योन्यम् ।
दत्त्वा समवित्ताः स्युः किं स्याद्धस्तस्थितं द्रव्यम् ॥ २६६½ ॥

था, अपने से छोटों को क्रमशः ½ रकम (उसकी जो उनके हाथों में अलग-अलग थी) क्रमानुसार दी । बाद में वे सब समान धन वाले हो गये । उन सबके पास अलग-अलग हाथ में कौन-कौन सी रकमें थीं । ॥ २६४½ ॥

हाथ की समान रकमों को निकालने के लिये नियम, जब कि कुछ (संख्या के) मनुष्य एक से दूसरे को आपस में ही उतना धन देते हैं, जितना कि क्रमशः उनके हाथ में तब रहता है—

प्रश्न में मन से चुनी हुई गुणज (multiple) राशि द्वारा एक को भाजित करते हैं । इसमें इस व्यापार में भाग लेनेवाले मनुष्यों की संगत संख्या जोड़ते हैं । इस प्रकार प्रथम मनुष्य के हाथ का प्रारम्भिक धन प्राप्त होता है । यह और उसके बाद के फल क्रम में लिखे जाते हैं, और उनमें से प्रत्येक को एक द्वारा बढ़ाई गई मन से चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित किया जाता है, और फल को तब एक द्वारा ह्रासित करते हैं । इस प्रकार, प्रत्येक के पास का (आरम्भ में उनके हाथ का) धन (जितना था, उतना) प्राप्त होता जाता है ॥ २६५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

३ व्यापारियों में से प्रत्येक ने दूसरों को जितना उनके पास उस समय था उतना दिया । तब वे समान धनवान् बन गये । उनमें से प्रत्येक के पास अलग-अलग आरम्भ में कितनी-कितनी रकम थी ? ॥२६६½॥ चार व्यापारी थे । उनमें से प्रत्येक ने दूसरों से उतनी रकम प्राप्त की जितनी कि उसके

(२६५½) गाथा २६६½ में दिये गये प्रश्न को निम्नरीति से हल करने पर नियम स्पष्ट हो जावेगा—

१ को मन से चुने हुए गुणज (multiple) द्वारा भाजित करते हैं । इसमें मनुष्यों की संख्या ३ जोड़ने पर ४ प्राप्त होता है । यह प्रथम व्यक्ति के हाथ की रकम है । यह ४, मन से चुने हुए गुणज १ को १ द्वारा बढ़ाने से प्राप्त २ द्वारा गुणित होकर, ८ बन जाता है । जब इसमें से १ घटाया जाता है, तो हमें ७ प्राप्त होता है, जो दूसरे आदमी के हाथ की रकम है ॥२६५½॥

यह ७ ऊपर की तरह २ द्वारा गुणित होकर, और फिर एक द्वारा ह्रासित होकर १३ होता है, जो तीसरे आदमी के हाथ की रकम है । यह हल निम्नलिखित समीकरण से सरलता पूर्वक प्राप्त हो सकता है—

$$४ (अ - ब - स) = २ \{ २ ब - (अ - ब - स) - २ स \} = ४ स - २ (अ - ब - स) - \{ २ ब - (अ - ब - स) - २ स \}$$

वणिजश्चत्वारस्तेऽप्यन्योन्यधनार्धमात्रमन्यस्मात् ।
स्वीकृत्य परस्परतः समवित्ताः स्युः कियत्करस्थधनम् ॥ २६७½ ॥

जयापजययोर्लाभानयनसूत्रम्—

स्वस्वच्छेदांशयुती स्थाप्योर्ध्वाधर्यतः क्रमोत्क्रमशः ।
अन्योन्यच्छेदांशकगुणितौ वज्रापवर्तनक्रमशः ॥ २६८½ ॥
छेदांशक्रमवत्स्थिततदन्तराभ्यां क्रमेण संभक्तौ ।
स्वांशहरघ्नान्यहरौ वाञ्छाघ्नौ व्यस्ततः करस्थामितिः ॥ २६९½ ॥

अत्रोद्देशकः

दृष्ट्वा कुक्कुटयुद्धं प्रत्येकं तौ च कुक्कुटिकौ। उक्तौ रहस्यवाक्यैर्मन्त्रौषधशक्तिमन्महापुरुषेण ॥२७०½॥

पास की आधी उस (रकम देने के) समय थी। तब वे सब समान धनवाले बन गये। आरम्भ में प्रत्येक के पास कितनी-कितनी रकम थी? ॥२६७½॥

(किसी जुए में) जीत और हार से (बराबर) लाभ निकालने के लिये नियम—

(प्रश्न में दी गई दो भिन्नीय गुणज) राशियों के अंशों और हरों के दो योगों को एक दूसरे के नीचे नियमित क्रम में लिखा जाता है, और तब व्युत्क्रम में लिखा जाता है। (दो योगों के कुलकों (sets) में से पहिले की) इन राशियों को वज्रापवर्तन क्रिया के अनुसार हर द्वारा गुणित करते हैं, और दूसरे कुलक की राशियों को उसी विधि से दूसरी संकलित (summed up) राशि की संगत भिन्नीय राशि के अंश द्वारा गुणित करते हैं। प्रथम कुलक सम्बन्धी प्राप्त फलों को हरों के रूप में लिख लिया जाता है, तथा दूसरे कुलक सम्बन्धी प्राप्त फलों को अंशों के रूप में लिख लिया जाता है। प्रत्येक कुलक के हर और अंश का अंतर भी लिख लिया जाता है। तब इन अंतरों द्वारा (प्रश्न में दिये गये प्रत्येक गुणज भिन्नों के) अंश और हर के योग को दूसरे के हर से गुणित करने से प्राप्त फलों को क्रमशः भाजित किया जाता है। ये परिणामी राशियाँ, इष्ट लाभ के मान से गुणित होने पर, (दाँव पर लगाने वाले जुआड़ियों के) हाथ की रकमों को व्युत्क्रम में उत्पन्न करती हैं ॥२६८½–२६९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मन्त्र और औषधि की शक्ति वाले किसी महापुरुष ने मुर्गों की लड़ाई होती हुई देखी, और मुर्गों के स्वामियों से अलग-अलग रहस्यमयी भाषा में मन्त्रणा की। उसने एक से कहा, "यदि तुम्हारा पक्षी जीतता है, तो तुम मुझे दाँव में लगाया हुआ धन दे देना। यदि तुम हार जाओगे, तो मैं तुम्हें दाँव में लगाये हुए धन का $\frac{2}{3}$ दे दूँगा।" वह फिर दूसरे मुर्गे के स्वामी के पास गया, जहाँ उसने

(२६८½–२६९½) बीजीय रूप से,

$$क = \frac{(स+द)\,ब}{(स+द)\,ब-(अ+ब)\,स} \times प, \text{ और } ख = \frac{(अ+ब)\,द}{(अ+ब)\,द-(स+द)\,अ} \times प,$$ जहाँ

क और ख जुआड़ियों के हाथ की रकमें हैं, और $\frac{अ}{ब}, \frac{स}{द}$, उनमें से लिये गये भिन्नीय भाग हैं, और प लाभ है। इसे समीकार से भी प्राप्त किया जा सकता है, यथा—

$$क - \frac{स}{द} ख = प = ख - \frac{अ}{ब} क,$$ जहाँ क और ख अज्ञात राशियाँ हैं।

जयति हि पक्षी ते मे देहि स्वर्णं ह्यविजयोऽसि दद्यां ते ।
तद्द्वित्र्यंशकमथेत्यपरं च पुनः स संसृत्य ॥ २७१½ ॥
त्रिचतुर्थं प्रतिवाञ्छत्युभयस्माद् द्वादशैव लाभः स्यात् ।
तत्कुक्कुटिककरस्थं ब्रूहि त्वं गणकमुखतिलक ॥ २७२½ ॥

राशिलब्धच्छेदमिश्रविभागसूत्रम्—

मिश्रादूनितसंख्या छेदः सैकेन तेन शेषस्य ।
भागं हृत्वा लब्धं लाभोनितशेष एव राशिः स्यात् ॥ २७३½ ॥

अत्रोद्देशकः

केनापि किमपि भक्तं सच्छेदो राशिमिश्रितो लाभः ।
पञ्चाशत्त्रिभिरधिका तच्छेदः किं भवेल्लब्धम् ॥ २७४½ ॥

इष्टसंख्यायोज्यत्याज्यवर्गमूलराश्यानयनसूत्रम्

योज्यत्याज्ययुतिः सरूपविषमाग्रघ्नार्धिता वर्गिता
व्यग्रा बन्धहृता च रूपसहिता त्याज्यैक्यशेषाग्रयोः ।

उन्हीं दशाओं में दाँव में लगाये गये धन का ¾ धन देने की प्रतिज्ञा की । प्रत्येक दशा में उसे दोनों से केवल १२ (स्वर्ण के टुकड़े) लाभ के रूप में मिले । हे गणक मुख तिलक ! बतलाओ कि प्रत्येक पक्षी के स्वामी के पास दाँव में लगाने के लिये हाथ में कितना-कितना धन था ? ॥२७०—२७२½॥

अज्ञात भाज्य संख्या, भजनफल और भाजक को उनके मिश्रित योग में से अलग-अलग करने के लिये नियम:—

कोई भी सुविधाजनक मनसे चुनी हुई संख्या जिसे दिये गये मिश्रित योग में से घटाना पड़ता है प्रश्न में भाजक होती है । इस भाजक को १ द्वारा बढ़ाने से प्राप्त राशि द्वारा, मन से चुनी हुई संख्या को दिये गये मिश्रित योग में से घटाने से प्राप्त शेष को, भाजित किया जाता है । इससे इष्ट भजनफल प्राप्त होता है । वही (उपर्युक्त) शेष, इस भजनफल से ह्रासित होकर, इष्ट भाज्य संख्या बन जाता है ॥२७३½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई अज्ञात राशि किसी अन्य अज्ञात राशि द्वारा भाजित होती है । यहाँ भाजक, भाज्य संख्या और भजनफल का योग ५३ है । वह भाजक क्या है, तथा भजनफल क्या है ? ॥२७४½॥

उस संख्या को निकालने के लिये नियम, जो मूल संख्या में कोई ज्ञात संख्या को जोड़ने पर, वर्गमूल बन जाती है; अथवा जो मूल संख्या में से दूसरी ज्ञात संख्या घटाई जाने पर, वर्गमूल बन जाती है—

जोड़ी जाने वाली राशि और घटाई जानेवाली राशि के योग को उस योग की निकटतम युग्म संख्या से ऊपर के अतिरेक (excess above the even number) में एक जोड़ने से प्राप्त फल द्वारा गुणित करते हैं । परिणामी गुणनफल को आधा किया जाता है, और तब वर्गित किया जाता है । इस वर्गित राशि में से उपर्युक्त सम्भव आधिक्य (योग की निकटतम युग्म संख्या से ऊपर का अतिरेक—excess) घटाते हैं । यह फल ४ द्वारा भाजित किया जाता है, और तब १ में जोड़ा जाता

शेषैक्यार्धयुतोनिता फलमिदं राशिर्भवेद्वाञ्छयो-
स्त्याज्यात्याज्यमहत्त्वयोरथ कृतेर्मूलं ददात्येव सः ॥ २७५½ ॥

अत्रोद्देशकः

राशिः कश्चिद्दशभिः संयुक्तः सप्तदशभिरपि हीनः ।
मूलं ददाति शुद्धं तं राशिं स्यान्ममाशु वद गणक ॥ २७६½ ॥
राशिः सप्तभिरूनो यः सोऽष्टादशभिरन्वितः कश्चित् ।
मूलं यच्छति शुद्धं विगणय्याचक्ष्व तं गणक ॥ २७७½ ॥
राशिर्द्वित्र्यंशोनस्त्रिसप्तभागान्वितस्स एव पुनः ।
मूलं यच्छति कोऽसौ कथय विचिन्त्याशु तं गणक ॥ २७८½ ॥

है। परिणामी राशि को क्रमशः ऐसी दो राशियों के आधे अन्तर में जोड़ा जाता है, अथवा अर्द्ध अंतर में से घटाया जाता है, जिन्हें कि अयुग्म बनानेवाली अतिरेक राशि द्वारा इन दशाओं में ह्रासित किया जाता है अथवा बढ़ाया जाता है, जब कि घटाई जानेवाली दी गई मूल राशि जोड़ी जानेवाली दी गई मूल राशि से बड़ी अथवा छोटी होती है। इस प्रकार प्राप्त फल वह संख्या होती है, जो दत्त राशियों से इच्छानुसार सम्बन्धित होकर, निश्चित रूप से वर्गमूल को उत्पन्न करती है ॥ २७५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई संख्या जब १० से बढ़ाई अथवा १७ से घटाई जाती है, तब वह यथार्थ वर्गमूल बन जाती है। यदि सम्भव हो तो, हे गणितज्ञ, मुझे शीघ्र ही वह संख्या बतलाओ ॥ २७६½ ॥ कोई राशि जब ७ द्वारा ह्रासित की जाती है अथवा १८ द्वारा बढ़ाई जाती है, तो वह यथार्थ वर्गमूल बन जाती है। हे गणक! उस संख्या को गणना के पश्चात् बतलाओ ॥ २७७½ ॥ कोई राशि $\frac{2}{3}$ द्वारा ह्रासित होकर, अथवा $\frac{3}{7}$ द्वारा बढ़ाई जाकर यथार्थ वर्गमूल उत्पन्न करती है। हे गणक, सोचकर शीघ्र ही वह सम्भव संख्या बतलाओ ॥ २७८½ ॥

(२७५½) बीजीय रूप से, मानलो निकाली जानेवाली राशि क है, और उसमें जोड़ी जानेवाली अथवा उसमें से घटाई जानेवाली राशियां क्रमशः अ, ब हैं, तब इस नियम का निरूपण करनेवाला सूत्र निम्नलिखित होगा*—

$$\left\{\frac{\{(अ+ब)\times(१+१)\div २\}^{२}-१}{४}\right\}+१\pm\frac{अ\sim ब\pm १}{२}$$; इसका मूलभूत सिद्धान्त इस प्रकार निकाला जा सकता है। $(न+१)^{२}-न^{२}=२\,न+१$ जो अयुग्म संख्या है; और $(न+२)^{२}-न^{२}=४न+४$ जो युग्म संख्या है; जहाँ 'न' कोई भी पूर्णांक है। नियम बतलाता है कि हम २न+१ और ४न+४ से किस प्रकार $न^{२}+अ$ प्राप्त कर सकते हैं, जब कि हम जानते हैं कि २न+१ अथवा ४न+४ को अ+ब के बराबर होना चाहिये।

(२७८½) गाथा २७५½ के नोट में ब और अ द्वारा निरूपित संख्यायें (जो वास्तव में $\frac{2}{3}$ और $\frac{3}{7}$ हैं), इस प्रश्न में भिन्नीय होने के कारण, यह आवश्यक है कि दिये गये नियम के अनुसार उन्हें

* इसे रंगाचार्य ने निम्न प्रकार दिया है जो नियम से नहीं मिलता है।

$$\left\{\frac{(a+b)+(1+1)\div २}{4}\right\}^{२}-1+1\pm\frac{a\sim b\pm 1}{2}$$

इष्टसंख्याहीनयुक्तवर्गमूलानयनसूत्रम्—
उद्दिष्टो यो राशिस्त्वर्धीकृतवर्गितोऽथ रूपयुतः । यच्छति मूलं स्वेष्टात्संयुक्ते चापनीते च ॥२७९½॥

अत्रोद्देशकः

दशभिः संमिश्रोऽयं दशभिस्तैर्वर्जितस्तु संशुद्धम् ।
यच्छति मूलं गणक प्रकथय संचिन्त्य राशिं मे ॥ २८०½ ॥

इष्टवर्गीकृतराशिद्वयादिष्टघ्नादन्तरमूलादिष्टानयनसूत्रम्—
सैकेष्टव्येकेष्टावर्धीकृत्याथ वर्गितौ राशी । एताविष्टघ्नावथ तद्विश्लेषस्य मूलमिष्टं स्यात् ॥२८१½॥

जो किसी ज्ञात संख्या द्वारा बढ़ाई अथवा ह्रासित की जाती है, ऐसी अज्ञात संख्या के वर्गमूल को निकालने के लिये नियम—

दी गई ज्ञात राशि को आधा करके वर्गित किया जाता है और तब इसमें एक जोड़ा जाता है। परिणामी संख्या को, जब या तो इच्छित दी हुई राशि द्वारा बढ़ाते हैं अथवा उसी दी हुई राशि द्वारा ह्रासित करते हैं, तब यथार्थ वर्गमूल प्राप्त होता है ॥ २७९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक संख्या है, जो जब १० द्वारा बढ़ाई जाती है अथवा १० द्वारा ह्रासित की जाती है, तो यथार्थ वर्गमूल को देती है। हे गणक, ठीक तरह सोच कर वह संख्या बताओ ॥ २८०½ ॥

ज्ञात संख्या द्वारा गुणित इष्ट वर्ग राशियों की सहायता से, और साथ ही इन गुणनफलों के अंतर के वर्गमूल के मान को उत्पन्न करने वाली उसी ज्ञात संख्या की सहायता से, उन्हीं दो इष्ट वर्ग राशियों को निकालने के नियमः—

दी गई संख्या को १ द्वारा बढ़ाया जाता है, और उसी दी गई संख्या को १ द्वारा ह्रासित भी किया जाता है। परिणामी राशियों को जब आधा कर वर्गित किया जाता है, तो दो इष्ट राशियाँ उत्पन्न होती हैं। यदि इन्हें अलग-अलग दी गई राशि द्वारा गुणित किया जावे, तो इन गुणनफलों के अंतर के वर्गमूल से दी हुई राशि उत्पन्न होती है ॥ २८१½ ॥

हल करने की क्रिया द्वारा हटा दिया जाय। इसके लिये वे पहिले एक से हर वाली बना ली जाती हैं और क्रमशः ²⁹⁴⁄₂₁ और ¹⁸⁹⁄₂₁ द्वारा निरूपित की जाती हैं। तब इन राशियों को $(२१)^2$ द्वारा गुणित किया जाता है, जिससे २९४ तथा १८९ अहीएँ प्राप्त होती हैं, जो प्रश्न में ब और अ मान ली गई हैं। इन मानी हुई ब और अ राशियों के द्वारा प्राप्त फल को $(२१)^2$ द्वारा भाजित किया जाता है, और भजनफल ही प्रश्न का उत्तर होता है।

(२७९½) यह गाथा २७५ में दिये गये नियम की केवल एक विशिष्ट दशा है, जहाँ अ को ब के बराबर लिया जाता है।

(२८१½) बीजीय रूप से, जब दी गई संख्या द होती है, तब $\left(\frac{द+१}{२}\right)^2$ और $\left(\frac{द-१}{२}\right)^2$ इष्ट वर्गित राशियाँ होती हैं।

अत्रोद्देशकः

यौकौचिद्वर्गीकृतराशी गुणितौ तु सैकसप्तत्या । सद्विश्लेषपदं स्यादेकोत्तरसप्ततिश्च राशी कौ ॥
विगणय्य चित्रकुट्टिकगणितं यदि वेत्सि गणक मे ब्रूहि ॥ २८३ ॥

युतहीनप्रक्षेपकगुणकारानयनसूत्रम्—

संवर्गितेष्टशेषं द्विष्ठं रूपेष्टयुतगुणाभ्यां तत् । विपरीताभ्यां विभजेत्प्रक्षेपौ तत्र हीनौ वा ॥२८४॥

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकसंवर्गः पञ्चदशाष्टादशैव चेष्टमपि । इष्टं चतुर्दशात्र प्रक्षेपः कोऽत्र हानिर्वा ॥२८५॥

विपरीतकरणानयनसूत्रम्—

प्रत्युत्पन्ने भागो भागे गुणितोऽधिके पुनः शोध्यः । वर्गे मूलं मूले वर्गो विपरीतकरणमिदम् ॥२८६॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो अज्ञात वर्गित राशियों को ७१ द्वारा गुणित किया जाता है । इन दो परिणामी गुणनफलों के अंतर का वर्गमूल भी ७१ होता है । हे गणक, यदि चित्र कुट्टीकार से परिचित हो, तो गणना कर उन दो अज्ञात राशियों को मुझे बतलाओ ॥ २८२½-२८३ ॥

किसी दिये गये गुण्य और दिये गये गुणकार (multiplier) के सम्बन्ध में इष्ट बढ़ती या घटती को निकालने के लिये नियम (ताकि दत्त गुणनफल प्राप्त हो)—

इष्ट गुणनफल और दिये गये गुण्य तथा गुणस्कार का परिणामी गुणनफल (इन दोनों गुणनफलों) के अंतर को दो स्थानों में लिखा जाता है । परिणामी गुणनफल के गुणावयवों में से किसी एक में १ जोड़ते हैं, और दूसरे में इष्ट गुणनफल जोड़ते हैं । ऊपर दो स्थानों में इच्छानुसार लिखा गया वह अंतर अलग-अलग इस प्रकार प्राप्त होने वाले योगों द्वारा व्यस्त क्रम में भाजित किया जाता है । ये उन राशियों को उत्पन्न करते हैं, जो क्रमशः दिये गये गुण्य और गुणकार अथवा क्रमशः उनमें से घटाई जाने वाली राशियों में जोड़ी जाती हैं ॥ २८४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

३ और ५ का गुणनफल १५ है । इष्ट गुणनफल १८ है, और वह १४ भी है । गुण्य और गुणकार में यहाँ कौन सी तीन राशियाँ जोड़ी जाँय अथवा उनमें से घटाई जाँय ? ॥ २८५ ॥

विपरीतकरण (working backwards) क्रिया द्वारा इष्ट फल प्राप्त करने के लिए नियम—

जहाँ गुणन है वहाँ भाजन करना, जहाँ भाजन है वहाँ गुणन करना, जहाँ जोड़ किया गया है वहाँ घटाना करना, जहाँ वर्ग किया गया है वहाँ वर्गमूल निकालना, जहाँ वर्गमूल दिया गया है वहाँ वर्ग करना—यह विपरीतकरण क्रिया है ॥ २८६ ॥

---

(२८४) जोड़ी जानेवाली और घटाई जानेवाली राशियाँ ये हैं—

$$\frac{द \sim अब}{द + ब} \text{ और } \frac{द \sim अब}{अ + १};$$

क्योंकि $\left(अ \pm \frac{द \sim अब}{द + ब}\right) \left(ब + \frac{द \sim अब}{अ + १}\right) = द$, जहाँ अ और ब दिये गये गुणनखंड हैं, और द इष्ट गुणज है ।

अत्रोद्देशकः

सप्तहृते को राशिस्त्रिगुणो वर्गीकृतः शरैर्युक्तः ।
त्रिगुणितपञ्चांशहृतस्त्वर्धितमूलं च पञ्चरूपाणि ॥ २८७ ॥

साधारणशरपरिध्यानयनसूत्रम्—

शरपरिधित्रिकमिलनं वर्गितमेतत्पुनस्त्रिभिः सहितम् ।
द्वादशहृतेऽपि लब्धं शरसंख्या स्यात्कलापकाविष्टा ॥ २८८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यह कौन सी राशि है, जो ७ द्वारा भाजित होकर, तब ३ द्वारा गुणित होकर, तब वर्गित की जाकर, तब ५ द्वारा बढ़ाई जाकर, तब $\frac{3}{5}$ द्वारा भाजित होकर; तब आधी होकर, और तब वर्गमूल निकाले जाने पर, ५ होती है ? ॥ २८७ ॥

तरकश के साधारण परिध्यान (common circumferential layer) की संरचना करनेवाले तीरों की युग्म संख्या की सहायता से किसी तरकश में रखे हुए बाणों की संख्या निकालने के लिये नियम—

परिध्यान बनाने वाली बाणों की संख्या में ३ जोड़ो, तब इस परिणामी योग को वर्गित करो, और इस वर्गित राशि में फिर से ३ जोड़ो। यदि प्राप्तफल १२ द्वारा भाजित किया जाय, तो भजनफल तरकश के तीरों की संख्या का प्रमाण बन जाता है ॥२८८॥

---

(२८८) तीरों की कुल संख्या प्राप्त करने के लिये, यहाँ दिया गया सूत्र $\frac{(न + ३)^{२} + ३}{१२}$ है; जहाँ 'न' परिध्यान शरों की संख्या है । यह सूत्र निम्नलिखित रीति से भी प्राप्त हो सकता है—

रेखागणित (ज्यामिति) से सिद्ध किया जा सकता है कि किसी वृत्त के चारों ओर केवल ६ वृत्त खींचे जा सकते हैं । ऐसे सभी वृत्त तुल्य होते हैं, तथा प्रत्येक वृत्त दो आसन्न वृत्तों को स्पर्श करता हुआ बीच के (केन्द्रीय) वृत्त को भी स्पर्श करता है । इन वृत्तों के चारों ओर फिर से उतने ही नापके १२ वृत्त उसी प्रकार खींचे जा सकते हैं, और फिर से इन वृत्तों के चारों ओर केवल ऐसे ही १८ वृत्त खींचे जाना सम्भव है, इत्यादि । इस प्रकार, प्रथम घेरे में ६ वृत्त, दूसरे में १२, तीसरे में १८ होते हैं, इत्यादि । इसलिये प वें घेरें में ६ प वृत्त होंगे । अब प घेरों में वृत्तों की कुल संख्या (केन्द्रीय वृत्त से गिनी जाकर) —

$$१ + १ \times ६ + २ \times ६ + ३ \times ६ + \ldots\ldots + प \times ६ = १ + ६ (१ + २ + ३ + \ldots\ldots + प)$$

$= १ + ६ \frac{प (प + १)}{२} = १ + ३ प (प + १)$ होगी । यदि ६ प का मान 'न' दिया गया हो, तो कुल वृत्तों की संख्या $१ + ३ \times \frac{न}{६} \left(\frac{न}{६} + १ \right)$ होगी, जो इस नोट के आरम्भ में दिये गये सूत्र रूप में प्रकाशित की जा सकती है ।

अत्रोद्देशकः

परिधिशरा अष्टादश तूणीरस्थाः शराः के स्युः ।
गणितज्ञ यदि विचित्रे कुट्टीकारे श्रमोऽस्ति ते कथय ॥ २८९ ॥

इति मिश्रकव्यवहारे विचित्रकुट्टीकारः समाप्तः ।

श्रेढीबद्धसंकलितम्

इतः परं मिश्रकगणिते श्रेढीबद्धसंकलितं व्याख्यास्यामः ।

हीनाधिकचयसंकलितधनानयनसूत्रम्—

व्येकार्धपदोनाधिकचयघातोनान्वितः पुनः प्रभवः ।
गच्छाभ्यस्तो हीनाधिकचयसमुदायसंकलितम् ॥ २९० ॥

अत्रोद्देशकः

चतुरुत्तरदश चादिर्हीनचयस्त्रीणि पञ्च गच्छः किम् ।
द्वावादिर्वृद्धिचयः षट् पदमष्टौ धनं भवेदत्र ॥ २९१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

परिध्यान शरों की संख्या १८ है । कुल मिलाकर तरकश में कितने शर हैं, हे गणितज्ञ, यदि तुमने विचित्र कुट्टीकार के सम्बन्ध में कष्ट किया है, तो इसे हल करो ॥२८९॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में विचित्र कुट्टीकार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

श्रेढीबद्ध संकलित (श्रेणियों का संकलन)

इसके पश्चात् हम गणित में श्रेणियों के संकलन की व्याख्या करेंगे ।

धनात्मक अथवा ऋणात्मक प्रचयवाली समान्तर श्रेणी के योग को निकालने के लिये नियमः—

प्रथमपद उस गुणनफल के द्वारा या तो घटाया अथवा बढ़ाया जाता है, जो ऋणात्मक या धनात्मक प्रचय में श्रेणी के एक कम पदों की संख्या की अर्द्ध राशि का गुणन करने से प्राप्त होता है । तब यह प्राप्तफल श्रेणी के पदों की संख्या से गुणित किया जाता है । इस प्रकार, धनात्मक अथवा ऋणात्मक प्रचयवाली समान्तर श्रेणी के योग को प्राप्त किया जाता है ॥२९०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथम पद १४ है; ऋणात्मक प्रचय ३ है; पदों की संख्या ५ है । प्रथमपद २ है; धनात्मक प्रचय ६ है; और पदों की संख्या ८ है । इन दशाओं में से प्रत्येक में श्रेणी का योग बतलाओ ॥२९१॥

---

(२९०) बीजीय रूप से, $\left(\frac{न-१}{२}ब \pm अ\right) न = श$, जहाँ न पदों की संख्या है, अ प्रथम पद है; ब प्रचय है, और श श्रेणीका योग है ।

अधिकहीनोत्तरसंकलितधने आद्युत्तरानयनसूत्रम्—
गच्छविभक्ते गणिते रूपोनपदार्धगुणितचयहीने।
आदिः पदहृतवित्तं चाद्यूनं व्येकपददलहृतः प्रचयः ॥ २९२ ॥

अत्रोद्देशकः

चत्वारिंशद्गणितं गच्छः पञ्च त्रयः प्रचयः। न ज्ञायतेऽधुनादिः प्रभवो द्विः प्रचयमाचक्ष्व ॥२९३॥

श्रेढीसंकलितगच्छानयनसूत्रम्—
आदिविहीनो लाभः प्रचयार्धहृतः स एव रूपयुतः।
गच्छो लाभेन गुणो गच्छः ससंकलितधनं च संभवति ॥ २९४ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रीण्युत्तरमादिर्द्वे वनिताभिश्चोत्पलानि भक्तानि।
एकस्या भागोऽष्टौ कति वनिताः कति च कुसुमानि ॥ २९५ ॥

धनात्मक अथवा ऋणात्मक प्रचयवाली समान्तर श्रेणी के योग के सम्बन्ध में प्रथमपद और प्रचय निकालने के लिये नियम—

श्रेणी के दिये गये योग को पदों की संख्या द्वारा भाजित करो, और परिणामी भजनफल में से प्रचय द्वारा गुणित एक कम पदों की संख्या की आधीराशि को घटाओ। इस प्रकार, श्रेणी का प्रथमपद प्राप्त होता है। श्रेणी के योग को पदों की संख्या द्वारा भाजित करते हैं। इस परिणामी भजनफल में से प्रथम पद घटाते हैं। शेष को जब १ कम पदों की संख्या की आधी राशि द्वारा भाजित करते हैं, तो प्रचय प्राप्त होता है ॥२९२॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

श्रेणी का योग ४० है; पदों की संख्या ५ है; प्रचय ३ है; प्रथमपद अज्ञात है। उसे निकालो। यदि प्रथमपद २ हो, तो प्रचय प्राप्त करो ॥ २९३ ॥

जो योग को पदों की अज्ञात संख्या से भाजित करने पर भजनफल के रूप में प्राप्त होता है, ऐसे ज्ञात लाभ की सहायता से समान्तर श्रेणी में योग और पदों की संख्या निकालने के लिये नियम—

लाभ को प्रथम पद (आदिपद) द्वारा ह्रासित किया जाता है, और तब प्रचय की आधी राशि द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी राशि में १ जोड़ने पर श्रेणी के पदों की संख्या प्राप्त होती है। श्रेणी के पदों की संख्या को लाभ द्वारा गुणित करने पर श्रेणी का योग प्राप्त होता है ॥ २९४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समान्तर श्रेणी के योग प्ररूपक, कोई संख्या के, उत्पल फूल लिये गये। २ प्रथमपद है, ३ प्रचय है। कोई संख्या की स्त्रियों ने आपस में ये फूल बराबर-बराबर बाँटे। प्रत्येक स्त्री को ८ फूल हिस्से में मिलें। स्त्रियाँ कितनी थीं, और फूल कितने थे ? ॥ २९५ ॥

---

(२९२) बीजीय रूप से,

$$अ = \frac{श}{न} - \frac{न-१}{२} ब; \text{ और } ब = \left(\frac{श}{न} - अ\right) \div \frac{न-१}{२}.$$

(२९४) बीजीय रूप से, $न = \frac{ल - अ}{ब/२} + १$, जहाँ $ल = \frac{श}{न}$ जो लाभ है।

(२९५) स्त्रियों की संख्या ही इस प्रश्न में पदों की संख्या है।

वर्गसंकलितानयनसूत्रम्—

सैकेष्टकृतिर्द्विघ्ना सैकेष्टोनेष्टदलगुणिता । कृतिघनचितिसंघातस्त्रिकभक्तो वर्गसंकलितम् ॥ २९६ ॥

अत्रोद्देशकः

अष्टाष्टादशविंशतिषष्ट्येकाशीतिषट्कृतीनां च ।
कृतिघनचितिसंकलितं वर्गचितिं चाशु मे कथय ॥ २९७ ॥

इष्टाद्युत्तरपदवर्गसंकलितधनानयनसूत्रम्—

द्विगुणैकोनपदोत्तरकृतिहतिषष्ठांशमुखचयहतयुतिः ।
व्येकपदघ्ना मुखकृतिसहिता पदताडितेष्टकृतिचितिका ॥ २९८ ॥

एक से आरम्भ होने वाली दी गई संख्या की प्राकृत संख्याओं के वर्गों का योग निकालने के लिये नियम —

दी गई संख्या को एक द्वारा बढ़ाते हैं, और तब वर्गित करते हैं । यह वर्गित राशि २ से गुणित की जाती है, और तब एक द्वारा बढ़ाई गई दत्त राशि द्वारा ह्रासित की जाती है । इस प्रकार प्राप्त शेष को दत्त संख्या की आधी राशी द्वारा गुणित करते हैं । यह परिणाम उस योग के तुल्य होता है जो दी गई संख्या के वर्ग, दी गई संख्या के घन और दी गई संख्या की प्राकृत संख्याओं को जोड़ने पर प्राप्त होता है । इस मिश्रित योग को ३ द्वारा भाजित करने पर (दी गई संख्या की) प्राकृत संख्याओं के वर्ग का योग प्राप्त होता है ॥ २९६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्राकृत संख्याओं वाली कुछ श्रेणियों में, प्राकृत संख्याओं की संख्या (क्रम से) ८,१८,२०,६०,८१ और ३६ है । प्रत्येक दशा में वह योगफल बतलाओ, जो दी गई संख्या का वर्ग, उसका घन, और प्राकृत संख्याओं का योग जोड़ने पर प्राप्त होता है । दी गई संख्या वाली प्राकृत संख्याओं के वर्गों का योग भी बतलाओ ॥ २९७ ॥

समान्तर श्रेणी में कुछ पदों के वर्गों का योग निकालने के लिये नियम, जहाँ प्रथमपद, प्रचय और पदों की संख्या दी गई हो —

पदों की संख्या की दुगुनी राशि १ द्वारा ह्रासित की जाती है, तब प्रचय के वर्ग द्वारा गुणित की जाती है, और तब ६ द्वारा भाजित की जाती है । प्राप्तफल में प्रथमपद और प्रचय के गुणनफल को जोड़ते हैं । परिणामी योग को एक द्वारा ह्रासित पदों की संख्या से गुणित करते हैं । इस प्रकार प्राप्त गुणनफल में प्रथमपद की वर्गित राशि को जोड़ा जाता है । प्राप्त योग को पदों की संख्या से गुणित करने पर दी गई श्रेढि के पदों के वर्गों का योग प्राप्त होता है ॥ २९८ ॥

---

(२९६) बीजीय रूप से, $\left\{ \frac{२ (न + १)^२ - (न + १)}{३} \right\} \frac{न}{२} = श_२$, जो न तक की प्राकृत संख्याओं के वर्ग का योग है ।

(२९८) $\left[\left\{ \frac{(२न - १) ब^२}{६} + अब \right\} (न - १) + अ^२ \right] न$ = समान्तर श्रेणी के पदों के वर्गों का योग ।

पुनरपि इष्टाद्युत्तरपदवर्गसंकलितानयनसूत्रम्—

द्विगुणैकोनपदोत्तरकृतिहतिरेकोनपदहताङ्गहृता ।
व्येकपदादिचयाहतिमुखकृतियुक्ता पदाहता सारम् ॥ २९९ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रीण्यादिः पञ्च चयो गच्छः पञ्चास्य कथय कृतिचितिकाम् ।
पञ्चादिस्त्रीणि चयो गच्छः सप्तास्य का च कृतिचितिका ॥ ३०० ॥

घनसंकलितानयनसूत्रम्—

गच्छार्धवर्गराशी रूपाधिकगच्छवर्गसंगुणितः ।
घनसंकलितं प्रोक्तं गणितेऽस्मिन् गणिततत्त्वज्ञैः ॥ ३०१ ॥

अत्रोद्देशकः

षण्णामष्टानामपि सप्तानां पंचविंशतीनां च ।
षट्पंचाशन्मिश्रितशतद्वयस्यापि कथय घनपिण्डम् ॥ ३०२ ॥

पुनः समान्तर श्रेणी में कोई संख्या के पदों के वर्गों का योग निकालने के लिये अन्य नियम, जहाँ प्रथम पद, प्रचय, और पदों की संख्या दी गई हो—

श्रेणी के पदों की संख्या की दुगुनी राशि एक द्वारा ह्रासित की जाती है, और तब प्रचय के वर्ग द्वारा गुणित की जाती है। प्राप्तफल एक कम पदों की संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। यह गुणनफल ६ द्वारा भाजित किया जाता है। इस परिणामी भजनफल में, प्रथम पद का वर्ग तथा एक कम पदों की संख्या का योग, प्रथम पद, और प्रचय, इन तीनों का संतत गुणनफल जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त फल, पदों की संख्या द्वारा गुणित होकर, इष्ट फल को उत्पन्न करता है ॥ २९९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समान्तर श्रेणी में प्रथम पद ३ है, प्रचय ५ है, तथा पदों की संख्या ५ है। श्रेणी के पदों के वर्गों के योग को निकालो। इसी प्रकार, दूसरी समान्तर श्रेढि में प्रथम पद ५ है, प्रचय ३ है, और पदों की संख्या ७ है। इस श्रेणी के पदों के वर्गों का योग क्या है ? ॥ ३०० ॥

किसी दी हुई संख्या को प्राकृत संख्याओं के घनों के योग को निकालने के लिये नियम—

पदों की दी गई संख्या की अर्द्धराशि के वर्ग द्वारा निरूपित राशि को १ अधिक पदों की संख्या के योग के वर्ग द्वारा गुणित करते हैं। इस गणित में, यह फल गणिततत्त्वज्ञों द्वारा (दी हुई संख्या की) प्राकृत संख्याओं के घनों का योग कहा गया है ॥ ३०१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रत्येक दशा में ६, ८, ७, २५ और २५६ पदों वाली प्राकृत संख्याओं के घनों का योग बतलाओ ॥ ३०२ ॥

---

(३०१) बीजीय रूप से, $(न/_2)^2 (न+1)^2 = शा_3$ जो न पदों तक की प्राकृत संख्याओं के घनों का योग है।

इष्टाद्युत्तरगच्छघनसंकलितानयनसूत्रम्—

चित्यादिहतिर्मुखचयशेषघ्ना प्रचयनिघ्नचितिवर्गे ।
आदौ प्रचयादूने वियुता युक्ताधिके तु घनचितिका ॥ ३०३ ॥

अत्रोद्देशकः

आदिस्त्रयश्चयो द्वौ गच्छः पञ्चास्य घनचितिका ।
पञ्चादिः सप्तचयो गच्छः षट् का भवेच्च घनचितिका ॥ ३०४ ॥

संकलितसंकलितानयनसूत्रम्—

द्विगुणैकोनपदोत्तरकृतिहतिरङ्गाहृता चयार्धयुता । आदिचयाहतियुक्ता व्येकपदघ्नादिगुणितेन ॥
सैकप्रभवेन युता पददलगुणितैव चितिचितिका ॥ ३०५½ ॥

जहाँ प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या को मन से चुना गया है, ऐसी समान्तर श्रेढि के पदों के घनों के योग को निकालने के लिये नियम—

(दी हुई श्रेढि के सरल पदों के) योग को प्रथम पद द्वारा गुणित कर, प्रथम पद और प्रचय के अंतर द्वारा गुणित करते हैं। तब श्रेढि के योग के वर्ग को प्रचय द्वारा गुणित करते हैं। यदि प्रथम पद प्रचय से छोटा हो, तो ऊपर प्राप्त गुणनफलों में से पहिले को दूसरे गुणनफल में से घटाया जाता है। यदि प्रथम पद प्रचय से बड़ा हो, तो ऊपर प्राप्त प्रथम गुणनफल को दूसरे गुणनफल में जोड़ देते हैं। इस प्रकार घनों का इष्ट योग प्राप्त होता है ॥ ३०३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

घनों का योग क्या हो सकता है, जब कि प्रथम पद ३ है, प्रचय २ है, और पदों की संख्या ५ है, अथवा प्रथम पद ५ है, प्रचय ७ है, और पदों की संख्या ६ है ? ॥ ३०४ ॥

ऐसी श्रेढि की दी हुई संख्या के पदों का योग निकालने के लिए नियम, जहाँ पद उत्तरोत्तर १ से लेकर निर्दिष्ट सीमा तक प्राकृत संख्याओं के योग हों, तथा ये सीमित संख्यायें दी हुई समान्तर श्रेढि के पद हों—

समान्तर श्रेढि में दी गई श्रेढि की पदों की संख्या की दुगुनी राशि को एक द्वारा कम करते हैं, और तब प्रचय के वर्ग द्वारा गुणित करते हैं। यह गुणनफल ६ द्वारा भाजित किया जाता है। प्राप्त फल प्रचय की अर्द्धराशि में जोड़ा जाता है, और साथ ही प्रथम पद और प्रचय के गुणनफल में भी जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग को एक कम पदों की संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। प्राप्त गुणनफल को प्रथम पद तथा १ में प्रथम पद जोड़ने से प्राप्तराशि के गुणनफल में जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्तराशि को जब श्रेढि के पदों की संख्या की अर्द्ध राशिद्वारा गुणित किया जाता है, तो ऐसी श्रेढि का इष्ट योग प्राप्त होता है, जिसके स्वपद ही निर्दिष्ट श्रेढि के योग होते हैं ॥३०५–३०५½॥

---

(३०३) बीजीय रूप से,

$\pm$ श अ (अ $\sim$ ब) + श^{२} ब = समान्तर श्रेढि के पदों के घनों का योग,

जहाँ श श्रेढि के सरल पदों का योग है। सूत्र में प्रथम पद का चिह्न यदि अ > ब हो, तो + (धन); और यदि अ < ब हो, तो – (ऋण) होता है।

अत्रोद्देशकः

आदिः षट् पञ्च चयः पदमप्यष्टादशाथ संदृष्टम् ।
एकाद्येकोत्तरचितिसंकलितं किं पदाष्टदशकस्य ॥ ३०६½ ॥

चतुस्संकलितानयनसूत्रम्—
सैकपदार्धपदाहतिरद्वैर्निहता पदोनिता त्र्याप्ता ।
सैकपदघ्ना चितिचितिचितिकृतिघनसंयुतिर्भवति ॥ ३०७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यह देखा जाता है कि किसी श्रेढि का प्रथम पद ६ है, प्रचय ५ है, और पदों की संख्या १८ है। इन १८ पदों के सम्बन्ध में, उन विभिन्न श्रेढियों के योगों के योग को बतलाओ, जो कि १ प्रथम पद वाली और १ प्रचय वाली हैं ॥३०६½॥

(नीचे निर्दिष्ट और किसी दी हुई संख्या द्वारा निरूपित) चार राशियों के योग को निकालने के लिये नियम—

दी गई संख्या १ द्वारा बढ़ाई जाकर, आधी की जाती है, और तब निज के द्वारा तथा ७ द्वारा गुणित की जाती है। इस परिणामी गुणनफल में से वही दत्त संख्या घटाई जाती है। परिणामी शेष को ३ द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल जब एक द्वारा बढ़ाई गई उसी दत्त संख्या द्वारा गुणित किया जाता है, तब चार निर्दिष्ट राशियों का इष्ट योग प्राप्त होता है। ऐसी चार निर्दिष्ट राशियाँ, क्रमशः, दी हुई संख्या तक की प्राकृत संख्याओं का योग, दी गई संख्या तक की प्राकृत संख्याओं के योगों के योग, दी गई संख्या का वर्ग और दी गई संख्या का घन होती हैं ॥३०७½॥

(३०५–३०५½) बीजीय रूप से, $\left[\left\{ \frac{(२न-१)ब^2}{६} + \frac{ब}{२} + अब \right\} (न-१) + अ(अ+१) \right] \frac{न}{२}$

यह समान्तर श्रेढि का योग है, जहाँ प्रथमपद किसी सीमित संख्या तक की प्राकृत संख्याओं वाली श्रेढि के योग का निरूपण करता है—ऐसी सीमित संख्या जो किसी समान्तर श्रेढि का ही एक पद है।

(३०७½) बीजीय रूप से, $\dfrac{\dfrac{न \times (न+१) \times ७}{२} - न}{३} \times (न+१)$

इस नियम में, निर्दिष्ट चार राशियों का योग है। यहाँ चार निर्दिष्ट राशियाँ, क्रमशः, ये हैं:— (१) 'न' प्राकृत संख्याओं का योग, (२) 'न' तक की विभिन्न प्राकृत संख्याओं द्वारा क्रमशः सीमित विभिन्न प्राकृत संख्याओं के योग, (३) 'न' का वर्ग और (४) 'न' का घन।

अत्रोद्देशकः

सप्ताष्टनवदशानां षोडशपञ्चाशदेकषष्टीनाम् ।
ब्रूहि चतुःसंकलितं सूत्राणि पृथक् पृथक् कृत्वा ॥ ३०८½ ॥

संघातसंकलितानयनसूत्रम्—

गच्छस्त्रिरूपसहितो गच्छचतुर्भागताडितः सैकः ।
सपदपदकृतिविनिघ्नो भवति हि संघातसंकलितम् ॥ ३०९½ ॥

अत्रोद्देशकः

सप्तकृतेः षट्षष्ट्यास्त्रयोदशानां चतुर्दशानां च ।
पञ्चाग्रविंशतीनां किं स्यात् संघातसंकलितम् ॥ ३१०½ ॥

भिन्नगुणसंकलितानयनसूत्रम्—

समदलविषमखरूपं गुणगुणितं वर्गताडितं द्विष्ठम् ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

दी हुई संख्याएँ ७, ८, ९, १०, १६, ५० और ६१ हैं। आवश्यक नियमों को विचारकर, प्रत्येक दशा में, चार निर्दिष्ट राशियों के योग को बतलाओ ॥३०८½॥

(पूर्व व्यवहृत चार प्रकार की श्रेढियों के) सामूहिक योग को निकालने के लिये नियम—

पदों की संख्या को ३ में जोड़ते हैं, और प्राप्तफल को पदों की संख्या के चतुर्थ भाग द्वारा गुणित करते हैं। तब इसमें एक जोड़ा जाता है। इस परिणामी राशि को जब पदों की संख्या के वर्ग को पदों की संख्या द्वारा बढ़ाने से प्राप्तराशि द्वारा गुणित किया जाता है, तब वह इष्ट सामूहिक योग को उत्पन्न करती है ॥३०९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

४९, ६६, १३, १४ और २५ द्वारा निरूपित विभिन्न श्रेढियों के सम्बन्ध में इष्ट सामूहिक योग क्या होगा ? ॥३१०½॥

गुणोत्तर श्रेढि में भिन्नों की श्रेढि के योग को निकालने के लिये नियम—

श्रेढि के पदों की संख्या को अलग-अलग स्तम्भ में, क्रमशः, शून्य तथा १ द्वारा चिह्नित (marked) कर लिया जाता है। चिह्नित करने की विधि यह है कि युग्ममान को आधा किया जाता है, और अयुग्म मान में से १ घटाया जाता है। इस विधि को तब तक जारी रखा जाता है, जब तक कि अन्ततोगत्वा शून्य प्राप्त नहीं होता। तब इस शून्य और १ द्वारा बनी हुई प्ररूपक श्रेढि को, क्रमवार, अन्तिम १ से उपयोग में लाते हैं, ताकि वह १ साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित हो। जहाँ १ अभिधानी पद (denoting item) रहता है, वहाँ इसे फिर से साधारण निष्पत्ति द्वारा गुणित करते हैं। और जहाँ शून्य अभिधानी पद होता है, वहाँ वर्ग प्राप्त करने के लिये उसे साधारण निष्पत्ति द्वारा

(३०९½) बीजीय रूप से, $\left\{ (न+३)\frac{न}{४}+१ \right\}(न^{२}+न)$ योगों का सामूहिक योग है, अर्थात् नियम २९६, ३०१ और ३०५ से ३०५½ में बतलाई गई श्रेढियों के योगों तथा 'न' तक की प्राकृत संख्याओं के योग (इन सब योगों) का सामूहिक योग है।

अंशाप्तं व्येकं फलमाद्यन्यघ्नं गुणोनरूपहृतम् ॥ ३११½ ॥

अत्रोद्देशकः

दीनारार्धं पञ्चसु नगरेषु चयस्त्रिभागोऽभूत। आदिस्त्र्यंशः पादो गुणोत्तरं सप्त भिन्नगुणचितिका।
का भवति कथय शीघ्रं यदि तेऽस्ति परिश्रमो गणिते ॥ ३१३ ॥

अधिकहीनगुणसंकलितानयनसूत्रम्—
गुणचितिरन्यादिहृता विपदाधिकहीनसंगुणा भक्ता।
व्येकगुणेनान्या फलरहिता हीनेऽधिके तु फलयुक्ता ॥ ३१४ ॥

गुणित करते हैं। इस क्रिया का फल दो स्थानों में लिखा जाता है। इस प्रकार प्राप्त, एक स्थान में रखे हुए, फल के अंश को फल द्वारा ही भाजित करते हैं। तब उसमें से १ घटाया जाता है। परिणामी राशि को श्रेढि के प्रथमपद द्वारा गुणित किया जाता है, और तब दूसरे स्थान में रखी हुई राशि द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त गुणनफल जब १ द्वारा ह्रासित साधारण निष्पत्ति द्वारा भाजित किया जाता है, तब श्रेढि का इष्ट योग उत्पन्न होता है ॥ ३११½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ नगरों के सम्बन्ध में, प्रथम पद $\frac{1}{2}$ दीनार है, और साधारण निष्पत्ति $\frac{1}{3}$ है। उन सबमें प्राप्त दीनारों के योग को निकालो। प्रथमपद $\frac{1}{3}$ है, साधारण निष्पत्ति $\frac{1}{4}$ है और पदों की संख्या ७ है। यदि तुमने गणना में परिश्रम किया हो, तो यहाँ गुणोत्तर भिन्नीय श्रेढि का योग बतलाओ ॥३१२½-३१३॥

गुणोत्तर श्रेढि का योग निकालने के लिये नियम, जहाँ किसी दी गई ज्ञात राशि द्वारा किसी निर्दिष्ट रीति से पद या तो बढ़ाये या घटाये जाते हों—

जिसके सम्बन्ध में प्रथमपद, साधारण निष्पत्ति और पदों की संख्या दी गई है ऐसी शुद्ध गुणोत्तर श्रेढि के योग को दो स्थानों में लिखा जाता है। इनमें से एक को दिये गये प्रथमपद द्वारा भाजित किया जाता है। इस परिणामी भजनफल में से पदों की दी गई संख्या को घटाया जाता है। परिणामी शेष की प्रस्तावित श्रेढि के पदों में जोड़ी जानेवाली अथवा उनमें से घटाई जानेवाली दत्त राशि द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि को १ द्वारा ह्रासित साधारण निष्पत्ति द्वारा भाजित किया जाता है। दूसरे स्थान में रखे हुए योग को इस अन्तिम परिणामी भजनफल राशि द्वारा ह्रासित किया जाता है, जब कि श्रेढि के पदों में से दी गई राशि घटाई जाती हो। पर, यदि वह जोड़ी जाती हो, तो दूसरे स्थान में रखे हुए गुणोत्तर श्रेढि के योग को उक्त परिणामी भजनफल द्वारा बढ़ाया जाता है। प्रत्येक दशा में प्राप्तफल निर्दिष्ट श्रेढि का इष्ट योग होता है ॥ ३१४ ॥

(३११½) इस नियम में, भिन्नीय साधारण निष्पत्ति का अंश हमेशा १ ले लिया जाता है। अध्याय २ की ९४ वीं गाथा तथा उसकी टिप्पणी दृष्टव्य है।

(३१४) बीजीय रूप से, $\pm \left(\frac{श}{अ} - न\right) म \div (र - १) + श$; यह निम्नलिखित रूपवाली श्रेढि का योग है—

अ, अर ± म, (अर ± म) र ± म, { (अर ± म) र ± म } र ± म,⋯⋯इत्यादि।

अत्रोद्देशकः

पञ्च गुणोत्तरमादिर्द्वौ त्रीण्यधिकं पदं हि चत्वारः।
अधिकगुणोत्तरचितिका कथय विचिन्त्याशु गणिततत्त्वज्ञ ॥ ३१५ ॥
आदिस्त्रीणि गुणोत्तरमष्टौ हीनं द्वयं च दश गच्छः।
हीनगुणोत्तरचितिका का भवति विचिन्त्य कथय गणकाशु ॥ ३१६ ॥

आद्युत्तरगच्छधनमिश्राद्युत्तरगच्छानयनसूत्रम्—

मिश्रादुद्धृत्य पदं रूपोनेच्छाधनेन सैकेन। लब्धं प्रचयः शेषः सरूपपदभाजितः प्रभवः ॥३१७॥

अत्रोद्देशकः

आद्युत्तरपदमिश्रं पञ्चाशद्धनमिहैव संदृष्टम्। गणितज्ञाचक्ष्व त्वं प्रभवोत्तरपदधनान्याशु ॥३१८॥

संकलितगतिध्रुवगतिभ्यां समानकालानयनसूत्रम्—

ध्रुवगतिरादिविहीनश्चयदलभक्तः सरूपकः कालः।

उदाहरणार्थ प्रश्न

साधारण निष्पत्ति ५ है, प्रथमपद २ है, विभिन्न पदों में जोड़ी जानेवाली राशि ३ है, और पदों की संख्या ४ है। हे गणित तत्त्वज्ञ, विचार कर शीघ्र ही (निर्दिष्ट रीति के अनुसार निर्दिष्ट राशि द्वारा बढ़ाए जाते हैं पद जिसके ऐसी) गुणोत्तर श्रेढि के योग को बतलाओ ॥ ३१५ ॥

प्रथमपद ३ है, साधारण निष्पत्ति ८ है, पदों में से घटाई जानेवाली राशि २ है, और पदों की संख्या १० है। ऐसी श्रेढि का, हे गणितज्ञ, योग निकालो ॥ ३१६ ॥

प्रथमपद, प्रचय, पदों की संख्या और किसी समान्तर श्रेढि के योग के मिश्रित योग में से प्रथम पद, प्रचय और पदों की संख्या निकालने के लिये नियम—

श्रेढि के पदों की संख्या का निरूपण करनेवाली मन से चुनी हुई संख्या को दिये गये मिश्रित योग में से घटाया जाता है। तब १ से आरम्भ होने वाली और एक कम पदों की (मन से चुनी हुई) संख्यावाली प्राकृत संख्याओं का योग १ द्वारा बढ़ाया जाता है। इस परिणामी फल को भाजक मान कर, ऊपर कथित मिश्रित योग से प्राप्त शेष को भाजित करते हैं। यह भजनफल इष्ट प्रचय होता है, और इस भाजन की क्रिया में जो शेष बचता है उसे जब एक अधिक (मन से चुनी हुई) पदों की संख्या द्वारा भाजित करते हैं, तो इष्ट प्रथमपद प्राप्त होता है ॥ ३१७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यह देखा जाता है कि किसी समान्तर श्रेढि का योग, प्रथमपद, प्रचय और पदों की संख्या में मिलाये जाने पर, ५० होता है। हे गणक, शीघ्रही प्रथमपद, प्रचय, पदों की संख्या और श्रेढि के योग को बतलाओ ॥ ३१८ ॥

सङ्कलित गति * तथा ध्रुव गति से गमन करने वाले दो व्यक्तियों (को एक साथ रवाना होने पर एक जगह फिर से मिलने) के लिये समय की समान सीमा निकालने के लिये नियम—

अपरिवर्तनशील गति को समान्तर श्रेढि वाली गतियों के प्रथम पद द्वारा ह्रासित करते हैं, और तब प्रचय की अर्द्ध राशि द्वारा भाजित करते हैं। इस परिणामी राशि में जब १ जोड़ते हैं, तब मिलने

---

(३१७) अध्याय दो की गाथाएँ ८० – ८२ तथा उनके नोट देखिये।

* समान्तर श्रेढि के पदों के रूप में प्ररूपित उत्तरोत्तर गतियों रूप गति।

द्विगुणो मार्गस्तद्गतियोगहृतो योगकालः स्यात् ॥ ३१९ ॥

अत्रोद्देशकः

कश्चिन्नरः प्रयाति त्रिभिरादा उत्तरैस्तथाष्टाभिः ।
नियतगतिरेकविंशतिरनयोः कः प्राप्तकालः स्यात् ॥ ३२० ॥

अपरार्धोदाहरणम् ।

षड् योजनानि कश्चित्पुरुषस्त्वपरः प्रयाति च त्रीणि ।
उभयोरभिमुखगत्योरष्टोत्तरशतकयोजनं गम्यम् ।
प्रत्येकं च तयोः स्यात्कालः किं गणक कथय मे शीघ्रम् ॥ ३२१½ ॥

संकलितसमागमकालयोजनानयनसूत्रम् —

उभयोराद्योः शेषश्चयशेषहृतो द्विसंगुणः सैकः ।
युगपत्प्रयाणयोः स्यान्मार्गे तु समागमः कालः ॥ ३२२½ ॥

का इष्ट समय प्राप्त होता है । (जब दो मनुष्य निश्चित गति से विरुद्ध दिशाओं में चल रहे हों, तब उनमें से किसी एक के द्वारा तय की गई औसत दूरी की दुगुनी राशि पूरी तय की जानेवाली यात्रा होती है । जब यह उनकी गतियों के योग द्वारा भाजित की जाती है, तब उनके मिलने का समय प्राप्त होता है ।) ॥ ३१९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई मनुष्य आरम्भ में ३ की गति से और उत्तरोत्तर ८ प्रचय द्वारा नियमित रूप से बढ़ाने वाली गति से जाता है । दूसरे मनुष्य की निश्चित गति २१ है । यदि वे एक ही दिशा में, एक समय, उसी स्थान से प्रस्थान करें, तो उनके मिलने का समय क्या होगा ? ॥ ३२० ॥

(ऊपर की गाथा के) उत्तरार्द्ध के लिये उदाहरणार्थ प्रश्न

एक मनुष्य ६ योजन की गति से और दूसरा ३ योजन की गति से यात्रा करता है । उनमें से किसी एक के द्वारा तय की गई औसत दूरी १०८ योजन है । हे गणक, उनके मिलने का समय निकालो ॥ ३२१–३२१½ ॥

यदि दो व्यक्ति एक ही स्थान से, एक ही समय तथा विभिन्न संकलित गतियों से प्रस्थान करें, तो उनके मिलने का समय और तय की गई दूरी निकालने के लिये नियम—

उक्त दो प्रथम पदों का अंतर जब उक्त दो प्रचयों के अंतर से भाजित होकर और तब २ से गुणित होकर १ द्वारा बढ़ाया जाय, तो युगपत् यात्रा करने वाले व्यक्तियों के मिलने का समय उत्पन्न होता है ॥ ३२२½ ॥

(३१९) बीजीय रूप से, $(व - अ) \div \frac{ब}{२} + १ = स$, जहाँ व निश्चल वेग है, ब प्रचय है, और स समय है ।

(३२१½) बीजीय रूप से, $न = \frac{अ \sim अ_१}{ब - ब_१} \times २ + १.$

अत्रोद्देशकः

चत्वार्यांद्यष्टोत्तरमेको गच्छत्यथो द्वितीयो ना ।
द्वौ प्रचयश्च दशादिः समागमे कस्तयोः कालः ॥ ३२३½ ॥

वृध्द्युत्तरहीनोत्तरयोः समागमकालानयनसूत्रम्—
शेषश्चाद्योरुभयोश्चययुतदलभक्तरूपयुतः ।
युगपत्प्रयाणकृतयोर्मार्गे संयोगकालः स्यात् ॥ ३२४½ ॥

अत्रोद्देशकः ।

पञ्चाद्यष्टोत्तरतः प्रथमो नाथ द्वितीयनरः ।
आदिः पञ्चघ्ननव प्रचयो हीनोऽष्ट योगकालः कः ॥ ३२५½ ॥

शीघ्रगतिमन्दगत्योः समागमकालानयनसूत्रम्—
मन्दगतिशीघ्रगत्योरेकाशागमनमत्र गम्यं यत् ।
तद्गत्यन्तरभक्तं लब्धदिनैस्तैः प्रयाति शीघ्रोऽल्पम् ॥३२६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक व्यक्ति ४ से आरम्भ होने वाली और उत्तरोत्तर प्रचय ८ द्वारा बढ़ने वाली गतियों से यात्रा करता है । दूसरा व्यक्ति १० से आरम्भ होने वाली और उत्तरोत्तर २ प्रचय द्वारा बढ़ने वाली गतियों से यात्रा करता है । उनके मिलने का समय क्या है ? ॥ ३२३½ ॥

एक ही स्थान से रवाना होने वाले और एक ही दिशा में समान्तर श्रेढि में बढ़नेवाली गतियों से यात्रा करने वाले दो व्यक्तियों के मिलने का समय निकालने के लिए नियम, जब कि प्रथम दशा में प्रचय धनात्मक है, और दूसरी दशा में ऋणात्मक है :—

उक्त दो प्रथम पदों के अंतर को उक्त दो दिये गये प्रचयों का प्ररूपण करनेवाली संख्याओं के योग की अर्द्ध राशि द्वारा भाजित करने के पश्चात् प्राप्त फल में १ जोड़ा जाता है । यह उन दो यात्रियों के मिलने का समय होता है ॥३२४½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

प्रथम व्यक्ति ५ से आरम्भ होने वाली और उत्तरोत्तर प्रचय ८ द्वारा बढ़नेवाली गतियों से यात्रा करता है । दूसरे व्यक्ति की आरम्भिक गति ४५ है और प्रचय ऋण ८ है । उनके मिलने का समय क्या है ? ॥३२५½॥

भिन्न समयों पर रवाना होनेवाले और क्रमशः तीव्र और मंद गति से एक ही दिशा में चलनेवाले दो मनुष्यों के मिलने का समय निकालने के लिए नियम—

मंदगति और तीव्रगति वाले दोनों एक ही दिशा में गमनशील हैं । तय की जानेवाली दूरी को यहाँ इन दो गतियों के अंतर द्वारा भाजित किया जाता है । इस भजनफल द्वारा प्ररूपित दिनों में, तीव्र गतिवाला मंदगति वाले की ओर जाता है ॥३२६½॥

(३२४½) इसकी तुलना ३२२½ वीं गाथा में दिये गये नियम से करो ।

अत्रोद्देशकः

नवयोजनानि कश्चित्प्रयाति योजनशतं गतं तेन ।
प्रतिदूतो व्रजति पुनस्त्रयोदशाप्नोति कैर्दिवसैः ॥३२७½॥

विषमबाणैस्तूणीरबाणपरिधिकरणसूत्रम्—

परिणाहस्त्रिभिरधिको दलितो वर्गीकृतस्त्रिभिर्भक्तः ।
सैकः शरास्तु परिधेरानयने तत्र विपरीतम् ॥३२८½॥

अत्रोद्देशकः

नव परिधिस्तु शराणां संख्या न ज्ञायते पुनस्तेषाम् ।
त्र्युत्तरदशबाणास्तत्परिणाहशरांश्च कथय मे गणक ॥३२९½॥

श्रेढीबद्धे इष्टकानयनसूत्रम्—

तरवर्गो रूपोनस्त्रिभिर्विभक्तस्तरेण संगुणितः ।
तरसंकलिते स्वेष्टप्रताडिते मिश्रतः सारम् ॥३३०½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई व्यक्ति ९ योजन प्रतिदिन की गति से यात्रा करता है। उसके द्वारा १०० योजन की दूरी पहिले ही तय की जा चुकी है। एक संदेशवाहक उसके पीछे १३ योजन प्रति दिन की गति से भेजा गया। वह कितने दिनों में उससे जाकर मिलेगा? ॥३२७½॥

तरकश में भरे हुए ज्ञात अयुग्म संख्या के शरों की सहायता से तरकश के शरों की परिध्यान-संख्या निकालने के लिये (तथा विलोम क्रमेण) नियम—

परिध्यान शरों की संख्या को ३ द्वारा बढ़ाकर आधा किया जाता है। इसे वर्गित किया जाता है, और तब ३ द्वारा भाजित किया जाता है। इस परिणामी राशि में १ जोड़ने पर तरकश के शरों की संख्या प्राप्त होती है। जब परिध्यान शरों की संख्या निकालनी होती है, तो विपरीत क्रिया करनी पड़ती है ॥३२८½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शरों की परिध्यान संख्या ९ है। इनकी कुल संख्या अज्ञात है। वह कौन सी है? तरकश में कुल शरों की संख्या १३ है। हे गणितज्ञ, परिध्यान शरों की संख्या बतलाओ ॥३२९½॥

किसी भवन की श्रेणीबद्ध (एक के ऊपर दूसरी) इष्टकाओं (ईंटों) की संख्या निकालने के लिये नियम—

सतहों की संख्या के वर्ग को १ द्वारा ह्रासित कर ३ द्वारा भाजित किया जाता है, और तब सतहों की संख्या द्वारा गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि में वह गुणनफल जोड़ते हैं, जो सबसे ऊपर की सतह की ईंटों को प्ररूपित करनेवाली (मन से चुनी हुई) संख्या और एक से आरंभ होकर दी गई सतहों की संख्या तक की प्राकृत संख्याओं के योग का गुणन करने से प्राप्त होता है। प्राप्तफल इष्ट उत्तर होता है ॥३३०½॥

(३३०½) बीजीय रूप से, $\frac{न^2 - १}{३} \times न + अ \times \frac{न(न+१)}{२}$, यह, बनावट की कुल ईंटों की संख्या है; जहाँ 'न' सतहों की संख्या है, और 'अ' सर्वोच्च सतह में ईंटों की मन से चुनी हुई संख्या है।

अत्रोद्देशकः

पञ्चतरैकेनाग्रं व्यवघटिता गणितविन्मिश्रे । समचतुरश्रश्रेढी कतीष्टकाः स्युर्ममाचक्ष्व ॥३३१½॥
नन्द्यावर्ताकारं चतुस्तराः षष्टिसमघटिताः । सर्वेष्टकाः कति स्युः श्रेढीबद्धं ममाचक्ष्व ॥३३२½॥

छन्दः शास्त्रोक्तषट्प्रत्ययानां सूत्राणि—

समदलविषमखरूपं द्विगुणं वर्गीकृतं च पदसंख्या ।
संख्या विषमा सैका दलतो गुरुरेव समदलतः ॥३३३½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

५ सतहवाली एक वर्गाकार बनावट तैयार की गई है। सबसे ऊपर की सतह में केवल १ ईंट है। हे प्रश्न की गणना जानने वाले मित्र, इस बनावट में कुल कितनी ईंटें हैं? ॥३३१½॥ नन्द्यावर्त के आकार की एक बनावट उत्तरोत्तर ईंटों की सतहों से तैयार की गई है। एक पंक्ति में सबसे ऊपर की ईंटों का संख्यात्मक मान ६० है, जिसके द्वारा ४ सतहें सम्मितीय बनाई गई हैं। बतलाओ इसमें कुल कितनी ईंटें लगाई गई हैं? ॥३३२½॥

छन्द (prosody) शास्त्रोक्त छः प्रत्ययों को जानने के लिये नियम—

दिये गये शब्दांशिक छन्द में शब्दांशों (अक्षरों) अथवा पदों की युग्म और अयुग्म संख्या को अलग स्तम्भ में क्रमशः ० और १ द्वारा चिन्हित किया जाता है। (चिन्हित करने की विधि इसी अध्याय के ३११½ वें सूत्र में देखिये।) वह इस प्रकार है : युग्ममान को आधा किया जाता है, और अयुग्म मान में से १ घटाया जाता है। इस विधि को तब तक जारी रखा जाता है, जब तक कि अंततोगत्वा शून्य प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार प्राप्त अंकों की श्रृङ्खला में अंकों को दुगुना कर दिया जाता है, और तब श्रृङ्खला की तली से शिखर तक की संतत गुणन क्रिया में, वे अंक, जिनके ऊपर शून्य आता है, वर्गित कर दिये जाते हैं। इस संतत गुणन का परिणामी गुणनफल छन्द के विभिन्न सम्भव श्लोकों की संख्या होता है ॥३३३½॥ इस प्रकार प्राप्त सभी प्रकार के श्लोकों में लघु और गुरु

किसी भी सतह की लम्बाई अथवा चौड़ाई पर ईंटों की संख्या, अग्रिम निम्न (नीची) सतह की ईंटों से १ कम होती है।

(३३२½) गाथा में निर्दिष्ट नन्द्यावर्त आकृति यह है— 卐

(३३३½–३३६½) गुरु और लघु शब्दांशों (syllables) के भिन्न-भिन्न विन्यास के संवादी कई विभेद उत्पन्न होते हैं, क्योंकि श्लोक (stanza) के एक चौथाई भाग को बनानेवाले पद (line) में पाया जानेवाला प्रत्येक शब्दांश या तो लघु अथवा गुरु हो सकता है। इन विभेदों के विन्यासों के लिये कोई निश्चित क्रम उपयोग में लाया जाता है। यहाँ दिये गये नियम हमें निम्नलिखित को निकालने में सहायक होते हैं, (१) निर्दिष्ट शब्दांशों की संख्या वाले छन्द में सम्भव विभेदों की संख्या, (२) इन प्रकारों में शब्दांशों के विन्यास की विधि, (३) स्वक्रमसूचक स्थिति द्वारा निर्दिष्ट किसी विभेद में शब्दांशों का विन्यास, (४) शब्दांशों के निर्दिष्ट विन्यास की क्रमसूचक स्थिति, (५) निर्दिष्ट संख्या के गुरु और लघु शब्दांशों वाले विभेदों की संख्या, और (६) किसी विशेष छन्द के विभेदों का प्रदर्शन करने के लिये उदग्र (लम्ब रूप) जगह का परिमाण।

स्याल्लघुरेवं क्रमशः प्रस्तारोऽयं विनिर्दिष्टः ।
नष्टाङ्कार्धे लघुरथ तस्यैकदले गुरुः पुनः पुनः स्थानम् ॥३३४½॥

अक्षरों (syllables) के विन्यास को इस प्रकार निकालते हैं—

१ से आरम्भ होनेवाली तथा दिये गये छन्दों में श्लोकों की महत्तम सम्भव संख्या के माप में अंत होनेवाली प्राकृत संख्याएँ लिखो जाती हैं । प्रत्येक अयुग्म संख्या में १ जोड़ा जाता है, और तब उसे आधा किया जाता है। जब यह क्रिया की जाती है, तब गुरु अक्षर (syllable) निश्चित पूर्वक सूचित होता है । जहाँ संख्या युग्म होती है वह तत्काल ही आधी कर दी जाती है, जिससे वह लघु प्रत्यय (syllable) को सूचित करती है । इस प्रकार, दशा के अनुसार (उसी समय संवादी गुरु और लघु

श्लोक ३३७½ में दिये गये प्रश्नों को निम्नलिखित रूप में हल करने पर ये नियम स्पष्ट हो जावेंगे–

(१) छन्द में ३ शब्दांश होते हैं; अब हम इस प्रकार आगे बढ़ते हैं—

३ − १	१	दाहिने हाथ की श्रृंखला के अङ्कों को २ द्वारा गुणित करने पर हमें $\overset{२}{\underset{२}{०}}$ प्राप्त
२|२	०	
१ − १	१	होता है । अध्याय २ के ९४ वें श्लोक (गाथा) की टिप्पणी में समझाये
०		अनुसार गुणन और वर्ग करने की विधि द्वारा हमें ८ प्राप्त होता है । यही विभेदों की संख्या है ।

(२) प्रत्येक विभेद में शब्दांशों के विन्यास की विधि इस प्रकार प्राप्त होती है—

प्रथम प्रकार : (विभेद) १ अयुग्म होने के कारण गुरु शब्दांश है; इसलिये प्रथम शब्दांश गुरु है । इस १ में १ जोड़ो, और योग को २ द्वारा भाजित करो । भजनफल अयुग्म है, और दूसरे गुरु शब्दांश को दर्शाता है । फिर से, इस भजनफल १ में १ जोड़ते हैं, और योग को २ द्वारा भाजित करते हैं; परिणाम फिर से अयुग्म होता है, और तीसरे गुरु शब्दांश को दर्शाता है । इस प्रकार, प्रथम प्रकार में तीन गुरु शब्दांश होते हैं, जो इस प्रकार दर्शाये जाते हैं ꠸꠸꠸

द्वितीय प्रकार : (विभेद) २ युग्म होने के कारण लघु शब्दांश सूचित करता है । जब इस २ को २ द्वारा भाजित करते हैं, तो भजनफल १ होता है जो अयुग्म होने के कारण गुरु शब्दांश को सूचित करता है । इस १ में १ जोड़ो, और योग को २ द्वारा भाजित करो; भजनफल अयुग्म होने के कारण गुरु शब्दांश को सूचित करता है । इस प्रकार, हमें यह प्राप्त होता है । ꠸꠸

इसी प्रकार अन्य विभेदों को प्राप्त करते हैं ।

(३) उदाहरण के लिये, पाँचवाँ प्रकार (विभेद) ऊपर की तरह प्राप्त किया जा सकता है ।

(४) उदाहरण के लिये, । ꠸ । प्रकार (विभेद) की क्रमसूचक स्थिति निकालने के लिये हम यह रीति अपनाते हैं—

। ꠸ ।
१ २ ४

इन शब्दांशों के नीचे, जिसकी साधारण निष्पत्ति २ है और प्रथमपद १ है ऐसी गुणोत्तर श्रेढि लिखो । लघु शब्दांशों के नीचे लिखे अंक ४ और १ जोड़ो, और योग को १ द्वारा बढ़ाओ । हमें ६ प्राप्त

रूपाद्द्विगुणोत्तरतस्तूद्दिष्टे लाङ्कसंयुतिः सैका ।
एकाद्येकोत्तरतः पदमूर्ध्वाधर्यतः क्रमोत्क्रमशः ॥३३५½॥
स्थाप्य प्रतिलोमघ्नं प्रतिलोमघ्नेन भाजितं सारम् ।
स्याल्लघुगुरुक्रियेयं संख्या द्विगुणैकवर्जिता साध्वा ॥३३६½॥

अक्षर देखते हुए), १ जोड़ने अथवा नहीं जोड़ने के साथ आधी करने की क्रिया, नियमित रूप से, तब तक जारी रखना चाहिये, जब तक कि, प्रत्येक दशा में छन्द के प्रत्ययों की यथार्थ संख्या प्राप्त नहीं हो जाती ।

यदि स्वाभाविक क्रम में किसी प्रकार के पद का प्ररूपण करनेवाली संख्या, (जहाँ अक्षरों का विन्यास ज्ञात करना होता है) युग्म हो तो वह आधी कर दी जाती है और लघु अक्षर को सूचित करती है । यदि वह अयुग्म हो, तो उसमें १ जोड़ा जाता है और तब उसे आधा किया जाता है : और वह गुरु अक्षर दर्शाती है । इस प्रकार गुरु और लघु अक्षरों को उनकी क्रमवार स्थितिमें बारबार रखना पड़ता है जब तक कि पद में अक्षरों की महत्तम संख्या प्राप्त नहीं हो जाती । यह, श्लोक (stanza) के इष्ट प्रकार में, गुरु और लघु अक्षरों के विन्यास को देता है ॥३३४½॥

जहाँ किसी विशेष प्रकार का श्लोक दिया होने पर उसकी निर्दिष्ट स्थिति (छन्द में सम्भव प्रकारों के श्लोकों में से) निकालना हो, वहाँ एक से आरम्भ होनेवाली और २ साधारण निष्पत्ति वाली गुणोत्तर श्रेढि के पदों (terms) को लिख लिया जाता है, (यहाँ श्रेढि के पदों की संख्या, दिये गये छन्दों में अक्षरों की संख्या के तुल्य होती है) । इन पदों (terms) के ऊपर संवादी गुरु या लघु अक्षर लिख लिये जाते हैं । तब लघु अक्षरों के ठीक नीचे की स्थिति वाले सभी पद (terms) जोड़े जाते हैं । इस प्रकार प्राप्त योग एक द्वारा बढ़ाया जाता है । यह इष्ट निर्दिष्ट क्रमसंख्या होती है ।

१ से आरम्भ होने वाली (और छन्द में दिये गये अक्षरों की संख्या तक जाने वाली) प्राकृत संख्याएँ, नियमित क्रम और व्युत्क्रम में, दो पंक्तियों में, एक दूसरे के नीचे लिख ली जाती हैं । पंक्ति की संख्याएँ १, २, ३ (अथवा एक ही बार में इनसे अधिक) द्वारा दाएँ से बाएँ ओर गुणित की जाती हैं । इस प्रकार प्राप्त ऊपर की पंक्ति सम्बन्धी गुणनफल नीचे की पंक्ति सम्बन्धी संवादी गुणनफलों द्वारा भाजित किये जाते हैं । तब प्राप्त भजनफल, कविता (verse) में १, २, ३ या इनसे अधिक, छोटे या बड़े अक्षरों वाले (दिये गये छन्द में) श्लोकों (stanzas) के प्रकारों की संख्या की प्ररूपणा करता है । इसे ही निकालना इष्ट होता है ।

दिये गये छन्द (metre) में श्लोकों के विभेदों की सम्भव संख्या को दो द्वारा गुणित कर एक द्वारा ह्रासित किया जाता है । यह फल अध्वान का माप देता है ।

यहाँ, छन्द के प्रत्येक दो उत्तरोत्तर विभेदों (प्रकारों) के बीच श्लोक (stanzas) के तुल्य अंतराल (interval) का होना माना जाता है ॥३३५½–३३६½॥

होता है । इसलिये ऐसा कहते हैं कि त्रि-शब्दांशिक छन्द में यह छठवाँ प्रकार (विभेद) है ।

(५) मानलो प्रश्न यह है : २ छोटे शब्दांशों वाले विभेद कितने हैं ?

प्राकृत संख्याओं को नियमित और विलोम क्रम में एक दूसरे के नीचे इस प्रकार रखो : $\begin{matrix} १ & २ & ३ \\ ३ & २ & १ \end{matrix}$

दाहिने ओर से बाईं ओर को, ऊपर से और नीचे से दो पद (terms) लेकर, हम पूर्ववर्ती गुणनफल

अत्रोद्देशकः

संख्यां प्रस्तारविधिं नष्टोद्दिष्टे लगक्रियाध्वानौ।
षट्प्रत्ययांश्च शीघ्रं त्र्यक्षरवृत्तस्य मे कथय ॥३३७½॥

इति मिश्रकव्यवहारे श्रेढीबद्धसङ्कलितं समाप्तम्।

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ मिश्रकगणितं नाम पञ्चमव्यवहारः समाप्तः॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

३ अक्षरों (syllables) वाले छन्द के सम्बन्ध में ६ प्रत्ययों को बतलाओ—

(१) छन्द के सम्भव श्लोकों (stanzas) की महत्तम संख्या, (२) उन श्लोकों में अक्षरों के विन्यास का क्रम, (३) किसी दिये गये प्रकार के श्लोकों में अक्षरों (शब्दांशों) का विन्यास, जहाँ छन्द में सम्भव प्रकारों की क्रमसूचक स्थिति ज्ञात है, (४) दिये गये श्लोक की क्रमसूचक स्थिति, (५) किसी दी गई लघु या गुरु अक्षरों (शब्दांशों) की संख्यावाले दिये गये छन्द (metre) में श्लोकों की संख्या, और (६) अध्वान नामक राशि ॥३३७½॥

इस प्रकार, मिश्रक व्यवहार में श्रेढिबद्ध संकलित नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणितशास्त्र में मिश्रक नामक पञ्चम व्यवहार समाप्त हुआ।

को उत्तरवर्ती गुणनफल द्वारा भाजित करते हैं। भजनफल ३ इष्ट उत्तर है।

(६) ऐसा कहा गया है कि छन्द के किसी भी प्रकार के गुरु और लघु शब्दांशों के निरूपण करनेवाले प्रतीक, एक अंगुल उदग्र (vertical) जगह ले लेते हैं, और कोई भी दो विभेदों के बीच का अंतराल (जगह) भी एक अंगुल होना चाहिये। इसलिये, इस छन्द के ८ प्रकारों (विभेदों) के लिये इष्ट उदग्र (vertical) जगह का परिमाण २×८−१ अथवा १५ अंगुल होता है।

७. क्षेत्रगणित व्यवहारः

सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो वरिष्ठेभ्यः कृतादरः । अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं नमस्कुर्वे पुनः पुनः ॥ १ ॥

इतः परं क्षेत्रगणितं नाम षष्ठगणितमुदाहरिष्यामः । तद्यथा—

क्षेत्रं जिनप्रणीतं फलाश्रयाद्व्यावहारिकं सूक्ष्ममिति ।
भेदाद् द्विधा विचिन्त्य व्यवहारं स्पष्टमेतदभिधास्ये ॥ २ ॥
त्रिभुजचतुर्भुजवृत्तक्षेत्राणि स्वस्वभेदभिन्नानि । गणितार्णवपारगतैराचार्यैः सम्यगुक्तानि ॥ ३ ॥
त्रिभुजं त्रिधा विभिन्नं चतुर्भुजं पञ्चधाष्टधा वृत्तम् । अवशेषक्षेत्राणि ह्येतेषां भेदभिन्नानि ॥ ४ ॥
त्रिभुजं तु समं द्विसमं विषमं चतुरश्रमपि समं भवति ।
द्विर्द्विसमं द्विसमं स्यात्त्रिसमं विषमं बुधाः प्राहुः ॥ ५ ॥
समवृत्तमर्धवृत्तं चायतवृत्तं च कम्बुकावृत्तम् । निम्नोन्नतं च वृत्तं बहिरन्तश्चक्रवालवृत्तं च ॥ ६ ॥

---

७. क्षेत्र-गणित व्यवहार (क्षेत्रफल के माप सम्बन्धी गणना)

अपने इष्ट अर्थ की सिद्धि के लिये मैं मन, वचन, काय से कृतकृत्य और सर्वोत्कृष्ट सिद्धों को बारंबार सादर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

इसके पश्चात् हम क्षेत्र गणित नामक विषय की छः प्रकार की गणना की व्याख्या करेंगे जो निम्नलिखित है—

जिन भगवान् ने क्षेत्रफल का दो प्रकार का माप प्रणीत किया है, जो फल के स्वभाव पर आधारित है; अर्थात् एक वह जो व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये अनुमानतः लिया जाता है, और दूसरा वह जो सूक्ष्म रूप से शुद्ध होता है । इसे विचार में लेकर मैं इस विषय को स्पष्ट रूप से समझाऊँगा ॥ २ ॥ गणित रूपी समुद्र के पारगामी आचार्यों ने सम्यक् (ठीक) रूप से विविध प्रकार के क्षेत्रफलों के विषय में कहा है । उन क्षेत्रफलों में त्रिभुज, चतुर्भुज और वृत्त (वक्ररेखीय) क्षेत्रों को इन्हीं क्रमवार प्रकारों में वर्णित किया है ॥ ३ ॥ त्रिभुज क्षेत्र को तीन प्रकार में, चतुर्भुज को पाँच प्रकार में, और वृत्त को आठ प्रकार में विभाजित किया गया है । शेष प्रकार के क्षेत्र वास्तव में इन्हीं विभिन्न प्रकारों के क्षेत्रों के विभिन्न भेद हैं ॥ ४ ॥ बुद्धिमान लोग कहते हैं कि त्रिभुज क्षेत्र, समत्रिभुज, द्विसम त्रिभुज (समद्विबाहु त्रिभुज) और विषम त्रिभुज हो सकता है, और चतुर्भुज क्षेत्र भी समचतुरश्र (वर्ग), द्विद्विसमचतुरश्र (आयत), द्विसमचतुरश्र (समलम्ब चतुर्भुज जिसकी दो असमानान्तर भुजायें बराबर नापकी हों), त्रिसमचतुरश्र (समलम्ब चतुर्भुज, जिसकी तीन भुजायें बराबर नापकी हों), विषम चतुरश्र (साधारण चतुर्भुज क्षेत्र) हो सकता है ॥ ५ ॥ वक्ररेख क्षेत्र, समवृत्त (वृत्त), अर्धवृत्त, आयतवृत्त (दीर्घवृत्त अथवा अंडाकार क्षेत्र), कम्बुकावृत्त (शंखाकार क्षेत्र), निम्नवृत्त (नतोदर वृत्तीय क्षेत्र), उन्नतवृत्त (उन्नतोदर वृत्तीय क्षेत्र), बहिश्चक्रवाल वृत्त (बाहर स्थित कङ्कण), एवं अंतश्चक्रवाल वृत्त (भीतर स्थित कङ्कण) हो सकता है ॥ ६ ॥

(५-६) इन गाथाओं में कथित विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ अगले पृष्ठ पर दर्शाई गई हैं—

व्यावहारिकगणितम्

त्रिभुजचतुर्भुजक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—
त्रिभुजचतुर्भुजबाहुप्रतिबाहुसमासदलहतं गणितम् ।
नेमेर्भुजयुत्यर्धं व्यासगुणं तत्फलार्धमिह बालेन्दोः ॥ ७ ॥

व्यावहारिक गणित (अनुमानतः मापसम्बन्धी गणना)

त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्रफल (अनुमानतः) निकालने के लिये नियम—

सम्मुख भुजाओं के योगों की अर्द्धराशियों का गुणनफल, त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्र-फल का माप होता है । कङ्कण सदृश आकृति के चक्र की किनार (rim) का क्षेत्रफल भीतर और
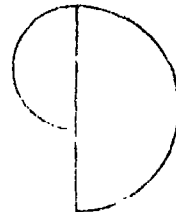
अत्रोद्देशकः

त्रिभुजक्षेत्रस्याष्टौ बाहुप्रतिबाहुभूमयो दण्डाः । तद्व्यावहारिकफलं गणयित्वाचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥८॥

बाहर की परिधियों के योग की अर्द्धराशि को कङ्कण की चौड़ाई से गुणित करने पर प्राप्त होता है। इस फल का यहाँ बालचन्द्रमा सदृश आकृति का क्षेत्रफल होता है ॥ ७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

त्रिभुज के सम्बन्ध में, भुजा, सम्मुख भुजा, और आधार का माप ८ दंड है; मुझे शीघ्र ही बतलाओ कि इसका व्यावहारिक क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ८ ॥ दो बराबर भुजाओं वाले त्रिभुज के सम्बन्ध
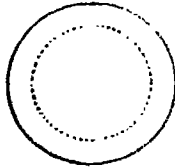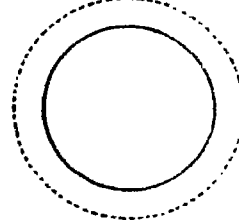
निम्नवृत्त (नतोदर वृत्तीय क्षेत्र) उन्नत वृत्त (उन्नतोदर वृत्तीय क्षेत्र) बहिश्चक्रवाल वृत्त (बाहर स्थित कङ्कण) अंतश्चक्रवालवृत्त (भीतर स्थित कङ्कण)

चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्रफल और अन्य मापों के दिये गये नियमों पर विचार करने पर ज्ञात होगा कि यहाँ कहे गये चतुर्भुज क्षेत्र चक्रीय (वृत्त में अन्तर्लिखित) हैं। इसलिये समचतुरश्र यहाँ वर्ग है, द्वि-द्विसमचतुरश्र आयत है, और द्विसमचतुरश्र तथा त्रिसमचतुरश्र की ऊपरी भुजाएँ आधार के समानान्तर हैं।

(७) यहाँ त्रिभुज को ऐसा चतुर्भुज माना गया है, जिसके आधार की सम्मुख भुजा इतनी छोटी होती है कि वह उपेक्षणीय होती है। इस दशा में त्रिभुज की बाजू की दो भुजाएँ, सम्मुख भुजाएँ बन जाती हैं, और ऊपरी भुजा मान में नहीं के बराबर ली जाती है। इसलिये नियम में त्रिभुजीय क्षेत्र के सम्बन्ध में भी सम्मुख भुजाओं का उल्लेख किया गया है; त्रिभुज दो भुजाओं के योग की अर्द्धराशि समस्त दशाओं में ऊँचाई से बड़ी होती है, इसलिये इस नियम के अनुसार प्राप्त क्षेत्रफल किसी भी उदाहरण में सूक्ष्म रूप से ठीक नहीं हो सकता।

चतुर्भुज क्षेत्रों के सम्बन्ध में इस नियम के अनुसार प्राप्त क्षेत्रफल वर्ग और आयत के विषय में ठीक हो सकता है, परन्तु अन्य दशाओं में केवल स्थूलरूपेण शुद्ध होता है। जिनका एक ही केन्द्र होता है, ऐसे दो वृत्तों की परिधियों के बीच का क्षेत्र नेमिक्षेत्र कहलाता है। यहाँ दिये गये नियम के अनुसार नेमिक्षेत्र के व्यावहारिक क्षेत्रफल का माप शुद्ध माप होता है। बालेन्दु जैसी आकृति का इस नियमानुसार प्राप्त क्षेत्रफल केवल अनुमानित ही होता है।

द्विसमत्रिभुजक्षेत्रस्यायामः सप्तसप्ततिर्दण्डाः । विस्तारो द्वाविंशतिरथ हस्ताभ्यां च संमिश्राः ॥९॥
त्रिभुजक्षेत्रस्य भुजस्त्रयोदश प्रतिभुजस्य पञ्चदश ।
भूमिश्चतुर्दशास्य हि दण्डा विषमस्य किं गणितम् ॥ १० ॥
गजदन्तक्षेत्रस्य च पृष्ठेऽष्टाशीतिरत्र संदृष्टाः । द्वासप्ततिरुदरे तन्मूलेऽपि त्रिंशदिह[1] दण्डाः ॥११॥
क्षेत्रस्य दण्डषष्टिर्बाहुप्रतिबाहुकस्य गणयित्वा । समचतुरश्रस्य त्वं कथय सखे गणितफलमाशु ॥१२॥
आयतचतुरश्रस्य व्यायामः सैकषष्टिरिह दण्डाः । विस्तारो द्वात्रिंशद्व्यवहारं गणितमाचक्ष्व ॥१३॥
दण्डास्तु सप्तषष्टिर्द्विसमचतुर्बाहुकस्य चायामः । व्यासश्चाष्टत्रिंशत् क्षेत्रस्यास्य त्रयस्त्रिंशत् ॥१४॥
क्षेत्रस्याष्टोत्तरशतदण्डा बाहुत्रये मुखे चाष्टौ ।
हस्तैस्त्रिभिर्युतास्तत्त्रिसमचतुर्बाहुकस्य वद गणक ॥ १५ ॥
विषमक्षेत्रस्याष्टत्रिंशद्दण्डाः क्षितिर्मुखे द्वात्रिंशत् ।
पञ्चाशत्प्रति[2]बाहु षष्टिस्त्वन्यः किमस्य चतुरश्रे ॥ १६ ॥
परिधोदरस्तु दण्डास्त्रिंशत्पृष्ठं शतत्रयं दृष्टम् ।
नवपञ्चगुणो व्यासो नेमिक्षेत्रस्य किं गणितम् ॥ १७ ॥

---

१. B और M दोनों में त्रिंशतिः पाठ है। छंदकी आवश्यकतानुसार इसे त्रिंशदिह रूप में शुद्ध कर रखा गया है।

२. B में "त्प्रति" के लिये "देक" पाठ है।

में दो भुजाओं द्वारा प्ररूपित लम्बाई ७७ दंड है, और आधार द्वारा नापी गई चौड़ाई २२ दंड और २ हस्त है; क्षेत्रफल निकालो ॥ ९ ॥ विषम त्रिभुज के सम्बन्ध में एक भुजा १३ दंड, सम्मुख भुजा १५ दंड, और आधार १४ दंड है। इस आकृति के क्षेत्रफल का माप क्या है? ॥ १० ॥ हाथी के दाँत के मध्य से फाड़े हुए छेद (section) की आकृति के बाहरी वक्र की लम्बाई ८८ दंड है, भीतरी वक्र की लम्बाई ७२ दंड है, और जड़ के पास की मुटाई ३० दंड है: क्षेत्रफल निकालो ॥ ११ ॥ समायत (वर्ग) के सम्बन्ध में, जिसकी भुजाओं में से प्रत्येक ६० दंड है, हे मित्र, शीघ्रही क्षेत्रफल का परिणामी नाप बतलाओ ॥ १२ ॥ आयत चतुरश्र क्षेत्र के सम्बन्ध में यहाँ लम्बाई ६१ दंड है और चौड़ाई ३२ दंड है। व्यावहारिक क्षेत्रफल बतलाओ ॥ १३ ॥ दो समान बाहुओं वाले चतुर्भुजों की प्रत्येक समान भुजा की लम्बाई ६७ दंड है, चौड़ाई (आधार पर) ३८ है और (ऊपर) ३३ दंड है। क्षेत्रफल का माप बतलाओ ॥ १४ ॥ तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की प्रत्येक समान भुजा १०८ दंड की है, और शेष (मुख अथवा ऊपरी) भुजायें ८ दंड ३ हस्त हैं। हे गणितज्ञ, इस क्षेत्र के क्षेत्रफल का माप बतलाओ ॥ १५ ॥ विषम चतुर्भुज का आधार ३८ दंड, ऊपरी मुख-भुजा ३२ दंड, बाजू की एक भुजा (प्रतिबाहु) ५० दंड और दूसरी ६० दंड की है। इस आकृति का क्षेत्रफल क्या है? ॥ १६ ॥ किसी कंकण में भीतरी वृत्ताकार सीमा ३० दंड की है, बाहरी वृत्ताकार सीमा ३०० दंड है और कङ्कण की चौड़ाई ४५ है। इस कङ्कण (नेमि क्षेत्र) का क्षेत्रफल निकालो ॥ १७ ॥ बालचाँद सदृश एक आकृति की चौड़ाई २ हस्त है। बाहरी वक्र ६८ हस्त और

(११) इस गाथा में कथित आकृति का आकार बाजू में दी गई आकृति के समान होता है। प्रयोजन यह है कि इसे त्रिभुजीय क्षेत्र के समान वर्ता जावे, और तब इसका क्षेत्रफल त्रिभुजीय क्षेत्रों सम्बन्धी नियम द्वारा निकाला जाय।

हस्तौ द्वौ विष्कम्भः पृष्ठेऽष्टाषष्टिरिह च संदृष्टाः ।
उदरे तु द्वात्रिंशद्बालेन्दोः किं फलं कथय ॥ १८ ॥

वृत्तक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—

त्रिगुणीकृतविष्कम्भः परिधिर्व्यासार्धवर्गराशिरयम् ।
त्रिगुणः फलं समेऽर्धे वृत्तेऽर्धं प्राहुराचार्याः ॥ १९ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश वृत्तस्य परिधिः कः फलं च किम् ।
व्यासोऽष्टादश वृत्तार्धे गणितं किं वदाशु मे ॥ २० ॥

आयतवृत्तक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—

व्यासार्धयुतो द्विगुणित आयतवृत्तस्य परिधिरायामः ।
विष्कम्भचतुर्भागः परिवेषहतो भवेत्सारम् ॥ २१ ॥

अत्रोद्देशकः

क्षेत्रस्यायतवृत्तस्य विष्कम्भो द्वादशैव तु । आयामस्तत्र षट्त्रिंशत् परिधिः कः फलं च किम् ॥२२॥

भीतरी वक्र ३२ हस्त है । बतलाओ की परिणामी क्षेत्रफल क्या है ? ॥ १८ ॥

वृत्त का व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

व्यास को ३ द्वारा गुणित करने से परिधि प्राप्त होती है, और व्यास (विष्कम्भ) की अर्द्ध राशि के वर्ग को ३ द्वारा गुणित करने से पूर्ण वृत्त का क्षेत्रफल प्राप्त होता है । आचार्य कहते हैं कि अर्द्धवृत्त का क्षेत्रफल और परिधि का माप इनसे आधा होता है ॥ १९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वृत्त का व्यास १८ है । उसकी परिधि और परिणामी क्षेत्रफल क्या है ? अर्द्धवृत्त का व्यास १८ है । शीघ्र कहो कि उसके क्षेत्रफल और परिधि क्या हैं ? ॥ २० ॥

आयत वृत्त (ऊनेन्द्र अथवा अंडाकार) आकृति का क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

बड़े व्यास को छोटे व्यास की अर्द्ध राशि द्वारा बढ़ाकर और तब २ द्वारा गुणित करने पर आयतवृत्त (ऊनेन्द्र) की परिधि का आयाम (लम्बाई) प्राप्त होता है । छोटे व्यास की एक चौथाई राशि को परिधि द्वारा गुणित करने पर क्षेत्रफल का माप प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऊनेन्द्र आकृति (elliptical figure) के सम्बन्ध में छोटा व्यास १२ है और बड़ा व्यास ३६ है । परिधि और परिणामी क्षेत्रफल क्या हैं ? ॥ २२ ॥

---

(१९) परिधि और क्षेत्रफल का माप यहाँ $\left(\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \pi\right)$ का मान ३ लेकर दिया गया है ।

(२१) ऊनेन्द्र (आयतवृत्त या अंडाकृति) की परिधि के लिये दिया गया सूत्र स्पष्ट रूप से कोई भिन्न प्रकार का अनुमान है । ऊनेन्द्र का क्षेत्रफल (π. अ. ब.) होता है, जहाँ अ और ब इस आयत वृत्त की क्रमशः बड़ी और छोटी अर्द्धाक्ष (semiaxes) हैं । यदि π का मान ३ लें तब π. अ. ब = ३ अ. ब होता है । परन्तु इस गाथा में दिये गये सूत्र से क्षेत्रफल का माप $\left\{\left(2\text{अ}+\frac{2\text{ब}}{2}\right)2\right\}\frac{1}{4}\; 2\text{ब} = 2\text{अब}+\text{ब}^2$ होता है ।

शङ्खाकारवृत्तस्य फलानयनसूत्रम्—
वदनार्धोनो व्यासस्त्रिगुणः परिधिस्तु कम्बुकावृत्ते ।
वलयार्धकृतित्र्यंशो मुखार्धवर्गत्रिपादयुतः ॥ २३ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश हस्ता मुखविस्तारोऽयमपि च चत्वारः ।
कः परिधिः किं गणितं कथय त्वं कम्बुकावृत्ते ॥ २४ ॥

निम्नोन्नतवृत्तयोः फलानयनसूत्रम्—
परिधेश्च चतुर्भागो विष्कम्भगुणः स विद्धि गणितफलम् ।
चत्वाले कूर्मनिभे क्षेत्रे निम्नोन्नते तस्मात् ॥ २५ ॥

शंख के आकार की वक्ररेखीय आकृति का परिणामी क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

शंख के आकार के वक्ररेखीय (curvilinear) आकृति के सम्बन्ध में, सबसे बड़ी चौड़ाई को मुख की अर्द्ध राशि द्वारा ह्रासित और ३ द्वारा गुणित करने पर परिमिति (परिधि) प्राप्त होती है । इस परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग के एक तिहाई भाग को मुख की अर्द्धराशियों के वर्ग की तीन चौथाई राशि द्वारा ह्रासित करते हैं; इस प्रकार क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

उदाहरणार्थ एक प्रश्न

शंख (कम्बुकावृत्त) की आकृति के सम्बन्ध में चौड़ाई १८ हस्त और मुख ४ हस्त है । उसकी परिमिति तथा क्षेत्रफल निकालो ॥ २४ ॥

नतोदर और उन्नतोदर वर्तुल तलों के क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

समझो कि परिधि की एक चौथाई राशि को व्यास द्वारा गुणित करने पर परिणामी क्षेत्रफल प्राप्त होता है । इस प्रकार चत्वाल और कछुवे की पीठ जैसे नतोदर और उन्नतोदर क्षेत्रों का क्षेत्रफल प्राप्त करना पड़ता है ॥ २५ ॥

---

(२३) यदि अ व्यास हो और म मुख का माप हो, तब ३ $(\text{अ} - \frac{1}{2}\text{म})$ परिधि का माप होता है और $\left\{ \frac{3 (\text{अ} - \frac{1}{2}\text{म})}{2} \right\}^2 \times \frac{1}{3} + \frac{3}{4} \times \left(\frac{\text{म}}{2} \right)^2$ क्षेत्रफल का माप होता है । दिये हुए वर्णन से आकृति का आकार स्पष्ट नहीं है । परन्तु परिधि और क्षेत्रफल के लिये दिये गये मानों से वह एक ही व्यास पर दो और भिन्न-भिन्न व्यास वाले वृत्तों को खींचकर प्राप्त हुई आकृति का आकार माना जा सकता है, जो ६ वीं गाथा के नोट में १२ वीं आकृति में बतलाया गया है ।

(२५) यहाँ निर्दिष्ट क्षेत्रफल गोलीय खंड का ज्ञात होता है । प्रतीक रूप से यह क्षेत्रफल $\left(\frac{\text{प}}{4} \times \text{व} \right)$ के बराबर है, जहाँ प छेदीय वृत्त (किनार) की परिधि है और व व्यास है । परन्तु इस प्रकार के गोलीय खंड के तल का क्षेत्रफल ($2 \times \pi \times \text{त्र} \times \text{ऊ}$) होता है, जहाँ $\pi = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$, त्र = केन्द्रीय वृत्त (किनार) की त्रिज्या, और ऊ गोलीय खंड की ऊँचाई है ।

अत्रोद्देशकः

चत्वालक्षेत्रस्य व्यासस्तु भसंख्यकः परिधिः। षट्पञ्चाशद्दृष्टं गणितं तस्यैव किं भवति ॥२६॥

कूर्मनिभस्योन्नतवृत्तस्योदाहरणम्—

विष्कम्भः पञ्चदश दृष्टः परिधिश्च षट्त्रिंशत्।
कूर्मनिभे क्षेत्रे किं तस्मिन् व्यवहारजं गणितम् ॥ २७ ॥

अन्तश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य बहिश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य च व्यवहारफलानयनसूत्रम्—

निर्गमसहितो व्यासस्त्रिगुणो निर्गमगुणो बहिर्गणितम्।
रहिताधिगमव्यासादभ्यन्तरचक्रवालवृत्तस्य ॥ २८ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश हस्ताः पुनर्बहिर्निर्गतास्त्रयस्तत्र।
व्यासोऽष्टादश हस्ताश्चान्तः पुनरधिगतास्त्रयः किं स्यात् ॥ २९ ॥

समवृत्तक्षेत्रस्य व्यावहारिकफलं च परिधिप्रमाणं च व्यासप्रमाणं च संयोज्य एतत्संयोग-संख्यामेव स्वीकृत्य तत्संयोगप्रमाण राशेः सकाशात् पृथक् परिधिव्यासफलानां संख्यानयनसूत्रम्—
गणिते द्वादशगुणिते मिश्रप्रक्षेपकं चतुःषष्टिः। तस्य च मूलं कृत्वा परिधिः प्रक्षेपकपदोनः ॥ ३० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चत्वाल (होम वेदी का अग्निकुण्ड) क्षेत्र के क्षेत्रफल के सम्बन्ध में व्यास २७ है और परिधि ५६ है। इस कुण्ड का क्षेत्रफल निकालो ॥ २६ ॥

कछुवे की पीठ की तरह उन्नतोदर वर्तुलतल के लिये उदाहरणार्थ प्रश्न

व्यास १५ है और परिधि ३६ है। कछुवे की पीठ की भाँति इस क्षेत्र का व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालो ॥ २७ ॥

भीतरी कङ्कण और बाहरी कङ्कण के क्षेत्रफल का व्यावहारिक मान निकालने के लिये नियम—

भीतरी व्यास को कङ्कणक्षेत्र की चौड़ाई द्वारा बढ़ाकर जब ३ द्वारा गुणित किया जाता है, और कङ्कणक्षेत्र की चौड़ाई द्वारा गुणित किया जाता है, तब बाहरी कङ्कण का क्षेत्रफल उत्पन्न होता है। इसी प्रकार भीतरी कङ्कण के क्षेत्रफल को कङ्कण की चौड़ाई द्वारा ह्रासित व्यास द्वारा गुणित करने से प्राप्त करते हैं ॥ २८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

व्यास १८ हस्त है, और बाहरी कङ्कण क्षेत्र की चौड़ाई ३ है; व्यास १८ हस्त है, और फिर से भीतरी कङ्कण की चौड़ाई ३ हस्त है। प्रत्येक दशा में कङ्कण का क्षेत्रफल निकालो ॥ २९ ॥

वृत्त आकृति की परिधि, व्यास और क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम, जबकि क्षेत्रफल, परिधि और व्यास का योग दिया गया हो—

१२ द्वारा गुणित उक्त तीन राशियों के मिश्रित योग में प्रक्षेपित ६४ जोड़ते हैं, और इस योग का वर्गमूल निकालते हैं। तदुपरांत इस वर्गमूल राशि को प्रक्षेपित ६४ के वर्गमूल द्वारा ह्रासित करने से परिधि का माप प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

---

(२८) अन्तश्चक्रवाल वृत्तक्षेत्र और बहिश्चक्रवाल वृत्तक्षेत्र के आकार ७ वीं गाथा के नोट में कथित नेमिक्षेत्र के आकार के समान हैं। इसलिये वह नियम जो इन सब आकृतियों के क्षेत्रफल निकालने के लिये है, व्यवहार में समान साधित होता है।

(३०) यह नियम निम्नलिखित बीजीय निरूपण से स्पष्ट हो जावेगा—

अत्रोद्देशकः

परिधिव्यासफलानां मिश्रं षोडशशतं सहस्रयुतं ।
कः परिधिः किं गणितं व्यासः को वा ममाचक्ष्व ॥ ३१ ॥

यवाकारमर्दलाकारपणवाकारवज्राकाराणां क्षेत्राणां व्यावहारिकफलानयनसूत्रम्—

यवमुरजपणवशक्रायुधसंस्थानप्रतिष्ठितानां तु ।
मुखमध्यसमासार्धं त्वायामगुणं फलं भवति ॥ ३२ ॥

अत्रोद्देशकः

यवसंस्थानक्षेत्रस्यायामोऽशीतिरस्य विष्कम्भः । मध्यश्चत्वारिंशत्फलं भवेत्किं ममाचक्ष्व ॥३३॥
आयामोऽशीतिरयं दण्डा मुखमस्य विंशतिर्मध्ये । चत्वारिंशत्क्षेत्रे मृदङ्गसंस्थानके ब्रूहि ॥ ३४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी वृत्त की परिधि, व्यास और क्षेत्रफल का योग १११६ है, उस वृत्त की परिधि, गणना किया हुआ क्षेत्रफल और व्यास के मापों को प्राप्त करो ॥ ३१ ॥

लम्बाई की ओर से फाड़ने से प्राप्त (अन्वायाम छेद के) (१) यवधान्य (२) मर्दल (३) पणव और (४) वज्र आकार की वस्तुओं के व्यावहारिक क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

यवधान्य, मुरज, पणव और वज्र के आकार के क्षेत्रफलों के सम्बन्ध में इष्ट माप वह है जो अंत और मध्य माप के योग की अर्द्धराशि को लम्बाई द्वारा गुणित करने पर प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मृदंग के आकार के क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालो जो लम्बाई में ८० दंड और अंत (मुख) में २० तथा मध्य में ४० दंड हो ॥ ३४ ॥ किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में जिसका आकार पणव समान

मानलो प वृत्त की परिधि है। चूँकि π का मान ३ लिया गया है, इसलिये व्यास $= \frac{प}{३}$ और $३ \cdot \frac{प^२}{३६}$ वृत्त का क्षेत्रफल है। यदि परिधि, व्यास और वृत्त के क्षेत्रफल, इन तीनों, का मिश्रित योग म हो, तो नियम में दिये गया सूत्र $प = \sqrt{१२ म + ६४} - \sqrt{६४}$ को समीकरण $प + \frac{प}{३} + ३\frac{प^२}{३६} = म$ द्वारा सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं।

(३२) मुरज का अर्थ मर्दल तथा मृदंग भी होता है। गाथा में कथित विभिन्न आकृतियों के आकार निम्नलिखित हैं—
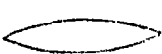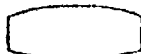
यवाकार क्षेत्र मुरजाकार क्षेत्र पणवाकार क्षेत्र वज्राकार क्षेत्र
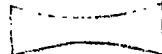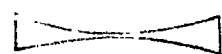
समस्त आकृतियों के क्षेत्रफल के माप इस गाथा में दिये गये नियमानुसार अनुमानतः ठीक हैं, क्योंकि नियम इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक सीमावर्ती वक्ररेखा उन सरल रेखाओं के योग के बराबर है, जो वक्रों के सिरों (छोरों अथवा अन्तों) को मध्य बिन्दु से मिलाने से प्राप्त होती हैं।

पणवाकारक्षेत्रस्यायामः सप्तसप्ततिर्दण्डाः । मुखयोर्विस्तारोऽष्टौ मध्ये दण्डास्तु चत्वारः ॥ ३५ ॥
वज्राकृतेस्तथास्य क्षेत्रस्य षडग्रनवतिरायामः ।
मध्ये सूचिर्मुखयोस्त्रयोदश त्र्यंशसंयुता दण्डाः ॥ ३६ ॥

उभयनिषेधादिक्षेत्रफलानयनसूत्रम्—

व्यासात्स्वायामगुणाद्विष्कम्भार्धघ्नदीर्घमुत्सृज्य ।
त्वं वद निषेधमुभयोस्तदर्धपरिहीणमेकस्य ॥ ३७ ॥

अत्रोद्देशकः

आयामः षट्त्रिंशद्विस्तारोऽष्टादशैव दण्डास्तु ।
उभयनिषेधे किं फलमेकनिषेधे च किं गणितम् ॥ ३८ ॥

बहुविधवज्राकाराणां क्षेत्राणां व्यावहारिकफलानयनसूत्रम्—

रज्ज्वर्धकृतित्र्यंशो बाहुविभक्तो निरेकबाहुगुणः ।
सर्वेषामश्रवतां फलं हि बिम्बान्तरे चतुर्थांशः ॥ ३९ ॥

है, लम्बाई ७७ दंड, दोनों मुखों में प्रत्येक का माप ८ दंड और मध्य का माप ४ दंड है । इसके क्षेत्रफल का माप बतलाओ ॥ ३५ ॥ इसी प्रकार, किसी वज्राकार क्षेत्र की लम्बाई ९६ दंड, मध्य में केवल मध्य बिन्दु है; और मुखों में से प्रत्येक का माप $13\frac{1}{3}$ दंड है । इसका क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ३६ ॥

उभयनिषेध क्षेत्र के क्षेत्रफल को निकालने के लिये नियम—

लम्बाई और चौड़ाई के गुणनफल में से लम्बाई और आधी चौड़ाई के गुणनफल को घटाने पर उभयनिषेध क्षेत्रफल प्राप्त होता है । जो लम्बाई और आधी चौड़ाई के गुणनफल में से उसी घटाई जाने वाली राशि की अर्द्धराशि घटाई जाने पर प्राप्त होता है, वह एकनिषेध आकृति का क्षेत्रफल होता है ॥ ३७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

लम्बाई ३६ है, चौड़ाई केवल १८ दंड है । उभयनिषेध तथा एक निषेध क्षेत्र के क्षेत्रफलों को अलग अलग निकालो ॥ ३८ ॥

बहुविधवज्र के आकार की रूपरेखा वाले क्षेत्रों के व्यावहारिक क्षेत्रफल के माप को निकालने के लिये नियम—

परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग की एक तिहाई राशि को भुजाओं की संख्या द्वारा भाजित कर, और तब एक कम भुजाओं की संख्या द्वारा गुणित करने पर, भुजाओं से बने हुए समस्त क्षेत्रों के (वज्राकार) क्षेत्रफल का माप प्राप्त होता है । इस फल का चतुर्थांश संस्पर्शी (एक दूसरे को स्पर्श करने वाले) वृत्तों द्वारा घिरे हुए क्षेत्र का क्षेत्रफल होता है ॥ ३९ ॥

(३७) इस गाथा में कथित आकृतियाँ नीचे दी गई हैं—

ये आकृतियाँ किसी चतुर्भुजक्षेत्र को उसके दो विकर्णों द्वारा चार त्रिभुजों में बाँट देने पर प्राप्त हुई दिखाई देती हैं । उभयनिषेध आकृति, इस चतुर्भुज के दो सम्मुख त्रिभुजों को हटाने पर प्राप्त होती है, और एकनिषेध आकृति ऐसे केवल एक त्रिभुज को हटाने पर प्राप्त होती है ।
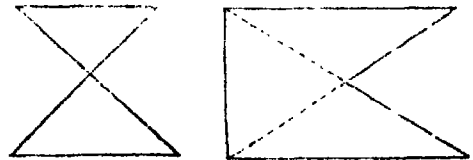
(३९) इस गाथा में कथित नियम कोई भी संख्या की भुजाओं से बनी हुई आकृतियों का

अत्रोद्देशकः

षड्बाहुकस्य बाहोर्विष्कम्भः पञ्च चान्यस्य ।
व्यासस्त्रयो भुजस्य त्वं षोडशबाहुकस्य वद ॥ ४० ॥
त्रिभुजक्षेत्रस्य भुजः पञ्च प्रतिबाहुरपि च सप्त धरा षट् ।
अन्यस्य षडश्रस्य ह्येकादिषडन्तविस्तारः ॥ ४१ ॥
मण्डलचतुष्टयस्य हि नवविष्कम्भस्य मध्यफलम् ।
षट्पञ्चचतुर्व्यासा वृत्तत्रितयस्य मध्यफलम् ॥ ४२ ॥

धनुराकारक्षेत्रस्य व्यावहारिकफलानयनसूत्रम्—

कृत्वेषुगुणसमासं बाणार्धगुणं शरासने गणितम् ।
शरवर्गात्पञ्चगुणाज्ज्यावर्गयुतात्पदं काष्ठम् ॥ ४३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

छः भुजाओं वाली आकृति की एक भुजा ५ है, और १६ भुजाओं वाली आकृति की एक भुजा ३ है। प्रत्येक दशा में क्षेत्रफल बताओ ॥ ४० ॥ त्रिभुज के सम्बन्ध में एक भुजा ५ है, सम्मुख (दूसरी) भुजा ७ है, और आधार ६ है। दूसरी छः भुजाकार आकृति में भुजाएँ क्रमवार १ से ६ तक हैं। प्रत्येक दशा में क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ४१ ॥ जिनमें से प्रत्येक का व्यास ९ है, ऐसे चार समान एक दूसरे को स्पर्श करने वाले वृत्तों द्वारा घिरे हुए क्षेत्र का क्षेत्रफल क्या है ? तीन एक दूसरे को स्पर्श करने वाले क्रमशः ६, ५ और ४ माप के व्यासवाले वृत्तों के द्वारा घिरे हुए क्षेत्र का क्षेत्रफल भी बतलाओ ॥ ४२ ॥

धनुष के आकार की रूपरेखा है जिसकी ऐसे आकार वाली आकृति का व्यवहारिक क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

बाण और ज्या (कृति या डोरी) के मापों को जोड़कर योगफल को बाण के माप की अर्द्ध राशि द्वारा गुणित करने से, धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। बाण के माप के वर्ग को ५ द्वारा गुणित कर, और तब इसमें कृति (डोरी) के वर्ग को मिलाने से प्राप्त राशि का वर्गमूल धनुष की धनुषाकार काष्ठ की लम्बाई होती है ॥ ४३ ॥

क्षेत्रफल देता है। यदि भुजाओं के मापों के योग की आधी राशि य हो, और भुजाओं की संख्या न हो,
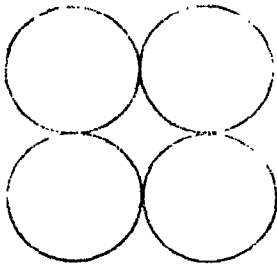
तो क्षेत्रफल $= \frac{य^2}{३} \times \frac{न - १}{न}$ होता है। यह सूत्र त्रिभुज, चतुर्भुज, षट्भुज, और वृत्त को अनन्त भुजाओं की आकृति मानकर, उनके सम्बन्ध में व्यावहारिक क्षेत्रफल का मान देता है। नियम का दूसरा भाग एक दूसरे को स्पर्श करने वाले वृत्तों के द्वारा घिरे क्षेत्र के विषय में है। इस नियमानुसार प्राप्त क्षेत्रफल भी आनुमानिक होता है। पार्श्व में दिया गया चित्र, चार संस्पर्शी वृत्तों द्वारा सीमित क्षेत्र है।

(४३) धनुषाकार क्षेत्र रूपरेखा में, वास्तव में, वृत्त की अवधा (खण्ड) जैसा होता है। यहाँ धनुष चाप है, धनुष की डोरी (ज्या) चापकर्ण है, और बाण चाप तथा डोरी के बीच की महत्तम लम्ब रूप दूरी होती है। यदि च, क और ल इन तीनों रेखाओं की लम्बाईयों को निरूपित करते हों, तो गाथा ४३ और ४५ में दिये नियमों के अनुसार यहाँ

अत्रोद्देशकः

ज्या षड्विंशतिरेषा त्रयोदशेषुश्च कार्मुकं दृष्टम् ।
किं गणितमस्य काष्ठं किं वाचक्ष्वाशु मे गणक ॥ ४४ ॥

बाणगुणप्रमाणानयनसूत्रम्—

गुणचापकृतिविशेषात् पञ्चहृतात्पदमिषुः समुद्दिष्टः ।
शरवर्गात्पञ्चगुणादूना धनुषः कृतिः पदं जीवा ॥ ४५ ॥

अत्रोद्देशकः

अस्य धनुःक्षेत्रस्य शरोऽत्र न ज्ञायते परस्यापि ।
न ज्ञायते च मौर्वी तद्द्वयमाचक्ष्व गणितज्ञ ॥ ४६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक धनुषाकार क्षेत्र की डोरी २६ है एवं बाण १३ है । हे गणक, शीघ्रही मुझे इसके क्षेत्रफल और झुके हुए काष्ठ का माप बतलाओ ॥ ४४ ॥

धनुषाकार क्षेत्र के सम्बन्ध में बाणमाप और गुण (डोरी) प्रमाण निकालने के लिये नियम—

डोरी और झुके हुए धनुष के वर्गों के अन्तर को ५ द्वारा भाजित करते हैं । परिणामी भजन फल का वर्गमूल बाण का इष्ट माप होता है । बाण के वर्ग को ५ द्वारा गुणित कर, प्राप्त गुणनफल को धनुष के चाप के वर्ग में से घटाते हैं । इस परिणामी राशि का वर्गमूल डोरी के संवादी माप को देता है ॥ ४५ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

धनुषाकार क्षेत्र के बाण का माप अज्ञात है, और दूसरे ऐसे ही क्षेत्र की डोरी का माप अज्ञात है । हे गणितज्ञ, इन दोनों मापों को निकालो ॥ ४६ ॥

धनुष क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये दिया गया सूत्र, चीन की सम्भवतः पुस्तकों को २१३ ईस्वी पूर्व में जलाये जाने की घटना से पूर्व की पुस्तक च्यु—चांग सुआन—चु (नवाध्यायी अंकगणित) में भी इसी रूप में दृष्टिगत होता है ।

$$\text{क्षेत्रफल} = (\text{क} + \text{ल}) \times \frac{\text{ल}}{२}$$

$$\text{धनुष की लम्बाई} = \sqrt{५\text{ल}^२ + \text{क}^२}$$

$$\text{बाण की लम्बाई} = \{\sqrt{\text{च}^२ - \text{क}^२}\}\ १/५$$

यहाँ च = चाप,
क = चापकर्ण,
ल = लम्ब है ।

सूक्ष्म मानों के लिये इस अध्याय की ७३½ और ७४½ वीं गाथाओं को देखिये ।

पुनः धनुष की डोरी की लम्बाई $= \sqrt{\text{च}^२ - ५\ \text{ल}^२}$

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति (६/९) में तथा त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/२५९८) में यह मान क्रमशः इस प्रकार दिया गया है—

$$\text{जीवा} = \sqrt{(\text{व्यास} - \text{बाण})\ ४\ \text{बाण}}$$

$$\text{व्यास} = \frac{४\ (\text{बाण})^२ + (\text{जीवा})^२}{४\ \text{बाण}}$$

कूलिज के अनुसार पायथेगोरस के साध्य पर आधारित इस सूत्र का उद्गम बाबुल में प्रायः २६०० ईस्वी पूर्व स्फानलिपि ग्रंथों में दृष्टि गत हुआ है । इस सम्बन्ध में तिलोय पण्णत्तिका गणित द्रष्टव्य है ।

बहिरन्तश्चतुरश्रकवृत्तस्य व्यावहारिकफलानयनसूत्रम्—
बाह्ये वृत्तस्येदं क्षेत्रस्य फलं त्रिसंगुणं दलितम् ।
अभ्यन्तरे तदर्धं विपरीते तत्र चतुरश्रे ॥ ४७ ॥

अत्रोद्देशकः

पञ्चदशबाहुकस्य क्षेत्रस्याभ्यन्तरं बहिर्गणितम् ।
चतुरश्रस्य च वृत्तव्यवहारफलं ममाचक्ष्व ॥ ४८ ॥

इति व्यावहारिकगणितं समाप्तम् ।

अथ सूक्ष्मगणितम्

इतः परं क्षेत्रगणिते सूक्ष्मगणितव्यवहार मुदाहरिष्यामः । तद्यथा[1] आबाधावलम्बकानयनसूत्रम्—
भुजकृत्यन्तरभूहृतभूसंक्रमणं त्रिबाहुकाबाधे ।
तद्भुजवर्गान्तरपदमवलम्बकमाहुराचार्याः ॥ ४९ ॥

१. इसके पश्चात् M में निम्नलिखित और जुड़ा है—
त्रिभुज क्षेत्रस्य भुजद्वयसंयोगस्थानमारभ्यअधस्स्थित भूमि संस्पृष्ट रेखाया नाम अवलम्बकः स्यात् ।

चतुर्भुज के बहिर्लिखित और अन्तर्लिखित वृत्त के क्षेत्रफल के व्यावहारिक मान को निकालने के लिये नियम--
अंतर्लिखित चतुर्भुज के क्षेत्रफल के माप की तिगुनी राशि की अर्द्धराशि ऐसे बाहरी परिगत वृत्त के क्षेत्रफल का माप होती है । उस दशा में जबकि वृत्त अन्तर्लिखित हो और चतुर्भुज बहिर्गत हो, तब ऊपर के प्राप्त माप की अर्द्धराशि इष्ट राशि होती है ॥ ४७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चतुर्भुज क्षेत्र की प्रत्येक भुजा १५ है । मुझे अंतर्गत और बहिर्गत वृत्तों के व्यावहारिक क्षेत्रफल के माप बतलाओ ॥ ४८ ॥

इस प्रकार क्षेत्रगणित व्यवहार में व्यावहारिक गणित नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

सूक्ष्म गणित

इसके पश्चात् हम गणित में क्षेत्रफलों के माप सम्बन्धी सूक्ष्म गणित नामक विषय का प्रतिपादन करेंगे । वह इस प्रकार है—
किसी दिये हुए त्रिभुज के आबाधाओं (खंड जिनमें की आधार लम्ब के द्वारा विभाजित हो जाता है) और अवलम्ब (शीर्ष से आधार पर गिराया हुआ लम्ब) के माप निकालने के लिये नियम—
भुजाओं के वर्गों को आधार द्वारा भाजित करने से प्राप्त राशि और आधार के बीच संक्रमण क्रिया करने से त्रिभुज की आबाधाओं (आधार के खंडों) के माप प्राप्त होते हैं । आचार्य कहते हैं कि इन आबाधाओं में से एक, और संवादी आसन्न भुजा के वर्गों के अंतर का वर्गमूल अवलम्ब का माप होता है ॥ ४९ ॥

(४७) यहाँ दिया गया सूत्र वर्ग के सम्बन्ध में ठीक माप देता है, परन्तु अन्य चतुर्भुजों के सम्बन्ध में जब π का मान ३ लेते हैं, तब केवल आनुमानिक मान प्राप्त होता है ।
(४९) बीजीय रूप से प्ररूपित होने पर—

सूक्ष्मगणितानयनसूत्रम्—
भुजयुत्यर्धचतुष्काद्भुजहीनाद्घातितात्पदं सूक्ष्मम् ।
अथवा मुखतलयुतिदलमवलम्बगुणं न विषमचतुरश्रे ॥ ५० ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिभुजक्षेत्रस्याष्टौ दण्डा भूर्बाहुकौ समस्य त्वम् ।
सूक्ष्मं वद गणितं मे गणितविदवलम्बकाबाधे ॥ ५१ ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे त्रयोदश स्युर्भुजद्वये दण्डाः ।
दश भूरस्याबाधे अथावलम्बं च सूक्ष्मफलम् ॥ ५२ ॥
विषमत्रिभुजस्य भुजा त्रयोदश प्रतिभुजा तु पञ्चदश ।
भूमिश्चतुर्दशास्य हि किं गणितं चावलम्बकाबाधे ॥ ५३ ॥

त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के क्षेत्रफलों के सूक्ष्म माप निकालने के लिये नियम—

क्रमशः प्रत्येक भुजा द्वारा ह्रासित भुजाओं के योग की अर्द्धराशि द्वारा निरूपित प्राप्त चार राशियाँ एक साथ गुणित की जाती हैं। इस प्रकार प्राप्त गुणनफल का वर्गमूल क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप होता है। अथवा क्षेत्रफल का माप, ऊपरी सिरे से आधार पर गिराये गये लम्ब को आधार और ऊपरी भुजा के योग की अर्द्धराशि से गुणित करने पर प्राप्त होता है। पर यह बाद का नियम विषम चतुर्भुज के सम्बन्ध में नहीं है ॥ ५० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समत्रिभुज की प्रत्येक भुजा ८ दंड है। हे गणितज्ञ, उसके क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप तथा शीर्ष से आधार पर गिराये हुए लम्ब और इस तरह प्राप्त आधार के खंडों के सूक्ष्म मानों को बतलाओ ॥ ५१ ॥ किसी समद्विबाहु त्रिभुज की बराबर भुजाओं में से प्रत्येक १३ दंड है और आधार का माप १० है। क्षेत्रफल, लम्ब और आधार की आबाधाओं के सूक्ष्म मापों को निकालो ॥ ५२ ॥ विषम त्रिभुज की एक भुजा १३, सम्मुख भुजा १५ और आधार १४ है। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल, लम्ब और आधार की आबाधाओं के सूक्ष्म मान क्या हैं? ॥ ५३ ॥

$$स_1 = \left(स + \frac{अ^2 - ब^2}{स} \right) \times \frac{1}{2};$$
$$स_2 = \left(स - \frac{अ^2 - ब^2}{स} \right) \times \frac{1}{2};$$
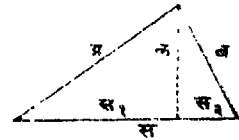
और $ल = \sqrt{अ^2 - स_1^2}$ अथवा $\sqrt{ब^2 - स_2^2}$ होता है। यहाँ अ, ब, स त्रिभुज की भुजाओं का निरूपण करते हैं; $स_1$, $स_2$ ऐसे आधार के दो खंड हैं, जिनकी कुल लम्बाई स है, ल लम्ब है।

(५०) बीजीय रूप से निरूपित करने पर,

किसी त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \sqrt{य (य - अ) (य - ब) (य - स)}$, जहाँ य भुजाओं के योग की आधी राशि है। अ, ब, स भुजाओं के माप हैं।

अथवा, क्षेत्रफल $= \frac{स}{2} \times ल$, जहाँ ल शीर्ष से आधार पर गिराये गये लम्ब का मान है।

इतः परं पञ्चप्रकाराणां चतुरश्रक्षेत्राणां कर्णानयनसूत्रम्—

क्षितिहतविपरीतभुजौ मुखगुणभुजमिश्रितौ गुणच्छेदौ ।
छेदगुणौ प्रतिभुजयोः संवर्गयुतेः पदं कर्णौ ॥ ५४ ॥

अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रस्य त्वं समन्ततः पञ्चबाहुकस्याशु ।
कर्णं च सूक्ष्मफलमपि कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥ ५५ ॥
आयतचतुरश्रस्य द्वादश बाहुश्च कोटिरपि पञ्च ।
कर्णः कः सूक्ष्मं किं गणितं चाचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥ ५६ ॥
द्विसमचतुरश्रभूमिः षट्त्रिंशद्बाहुरेकषष्टिश्च ।
सोऽन्यश्चतुर्दशास्यं कर्णः कः सूक्ष्मगणितं किम् ॥ ५७ ॥

इसके पश्चात् पाँच प्रकार के चतुर्भुजों के विकर्णों के मान निकालने के लिये नियम—

आधार को बड़ी और छोटी, दाहिनी और बाईं भुजाओं के द्वारा गुणित करने से प्राप्त राशियों को क्रमशः ऐसी दो अन्य राशियों में जोड़ते हैं, जो ऊपरी भुजा को दाहिनी और बाईं ओर की छोटी और बड़ी भुजाओं द्वारा गुणित करने से प्राप्त होती हैं। परिणामी दो योग, गुणक और भाजक तथा सम्मुख भुजाओं के गुणनफलों के योग सम्बन्धी भाजक और गुणन की संरचना करते हैं। इस प्रकार प्राप्त राशियों के वर्गमूल विकर्णों के इष्ट माप होते हैं ॥ ५४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

जिसकी चारों ओर की प्रत्येक भुजा का माप ५ है, ऐसे समभुज चतुर्भुज के सम्बन्ध में हे गणित तत्त्वज्ञ, विकर्ण तथा क्षेत्रफल के सूक्ष्म मान शीघ्र बतलाओ ॥ ५५ ॥ आयत क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षैतिज भुजा माप में १२ है, और लम्ब रूप भुजा माप में ५ है। मुझे शीघ्र बतलाओ कि विकर्ण का और क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप क्या क्या है? ॥ ५६ ॥ समद्विबाहु चतुर्भुज (समलम्ब चक्रीय चतुर्भुज) की आधार भुजा ३६ है। एक भुजा ६१ है, और दूसरी भी उतनी ही है। ऊपरी भुजा १४ है। बतलाओ कि विकर्ण और क्षेत्रफल के सूक्ष्म माप क्या हैं? ॥ ५७ ॥ समत्रिबाहु चतुर्भुज (चक्रीय समत्रिबाहु चतुर्भुज) के सम्बन्ध में १३ का वर्ग समान भुजाओं में से एक का माप होता है। आधार ४०७ है। विकर्ण का माप तथा आधार के खण्डों का माप और लम्ब तथा क्षेत्रफल के माप क्या क्या हैं? ॥ ५८ ॥ किसी विषम चतुर्भुज की दाहिनी और बाईं भुजाएँ १३ × १५ और

चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल $= \sqrt{(य - अ)(य - ब)(य - स)(य - द)}$; यहाँ य, भुजाओं के योग की अर्द्धराशि है, और अ, ब, स, द चतुर्भुज क्षेत्र की भुजाओं के माप हैं। अथवा, क्षेत्रफल $= \frac{ब + द}{२} \times ल$ (उस दशा के अपवाद को छोड़कर जबकि चतुर्भुज विषम होता है, जहाँ ल ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये गये बराबर लम्बों में से किसी एक का माप है। त्रिभुज क्षेत्रों के लिये दिये गये ये सूत्र ठीक हैं, परन्तु जो चतुर्भुज क्षेत्रों के लिये दिये गये हैं वे केवल चक्रीय चतुर्भुजों के सम्बन्ध में ठीक हैं, क्योंकि उन्हीं मापों के लिये क्षेत्रफल तथा लम्ब का मान परिवर्तनशील हो सकता है।

(५४) बीजीय रूप से निरूपित चतुर्भुज क्षेत्र के विकर्ण का माप यह है—

$\sqrt{\frac{(अस + बद)(अब + सद)}{अद + बस}}$ अथवा $\sqrt{\frac{(अस + बद)(अद + बस)}{अब + सद}}$, ये सूत्र केवल

वर्गस्त्रयोदशानां त्रिसमचतुर्बाहुके पुनर्भूमिः ।
सप्त चतुश्शतयुक्तं कर्णाबाधावलम्बगणितं किम् ॥ ५८ ॥
विषमचतुरश्रबाहू त्रयोदशाभ्यस्तपञ्चदशविंशतिकौ ।
पञ्चघनो वदनमधस्त्रिशतं कान्यत्र कर्णमुखफलानि ॥ ५९ ॥

इतः परं वृत्तक्षेत्राणां सूक्ष्म फलानयनसूत्राणि । तत्र समवृत्तक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयन सूत्रम्—

वृत्तक्षेत्रव्यासो दशपदगुणितो भवेत्परिक्षेपः ।
व्यासचतुर्भागगुणः परिधिः फलमर्धमर्धे तत् ॥ ६० ॥

अत्रोद्देशकः

समवृत्तव्यासोऽष्टादश विष्कम्भश्च षष्टिरन्यस्य ।
द्वाविंशतिरपरस्य क्षेत्रस्य हि के च परिधिफले ॥ ६१ ॥

---

१३ × २० हैं । ऊपरी भुजा $(५)^3$ है, और नीचे की भुजा ३०० है । विकर्ण से आरम्भ कर सबके मान यहाँ क्या क्या हैं ? ॥ ५९ ॥

इसके पश्चात् वक्ररेखीय क्षेत्रों के सम्बन्ध में सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम दिये जाते हैं । इनमें से समवृत्त के सम्बन्ध में सूक्ष्म मान निकालने के लिये नियम—

वृत्त का व्यास १० के वर्गमूल से गुणित होकर परिधि को उत्पन्न करता है । परिधि को एक चौथाई व्यास से गुणित करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है । अर्द्धवृत्त के सम्बन्ध में यह इसका आधा होता है ॥ ६० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी वृत्ताकार क्षेत्र के सम्बन्ध में वृत्त का व्यास १८ है; दूसरे के सम्बन्ध में ६० है; एक और अन्य के सम्बन्ध में २२ है । परिधियाँ और क्षेत्रफल क्या क्या हैं ? ॥ ६१ ॥ अर्द्धवृत्ताकार क्षेत्र

चक्रीय चतुर्भुजों के लिये ठीक हैं । लम्ब अथवा विकर्णों के मानों को पहिले से बिना जाने हुए चतुर्भुज के क्षेत्रफल को निकालने के प्रयत्न के विषय में भास्कराचार्य परिचित थे । यह उनकी लीलावती ग्रन्थ की निम्नलिखित गाथा से प्रकट होता है—

लम्बयोः कर्णयोर्वैकमनिर्दिश्यापरान् कथम् ।
पृच्छत्यनियतत्वेऽपि नियतं चापि तत्फलम् ॥
सपृच्छकः पिशाचो वा वक्ता वा नितरां ततः ।
यो न वेत्ति चतुर्बाहुक्षेत्रस्यानियतां स्थितिम् ॥

(६०) इस गाथानुसार $\pi = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ का मान $\sqrt{१०} = ३\cdot१६...$ है । इससे भी सूक्ष्म मान प्राप्त करने के लिये नवीं शताब्दी की धवला टीका ग्रंथों में निम्नलिखित रीति दी है—

$\frac{१६ (\text{व्यास}) + १६}{११३} + ३ (\text{व्यास}) = \text{परिधि}$ । इस सूत्र के वाम पक्ष के प्रथम पद में से अंश का + १६ हटा देने पर π का मान $\frac{३५५}{११३}$ अथवा ३·१४१५९२ प्राप्त होता है, जिसे चीन में ४७६ ईस्वी पश्चात् त्सु-शुंग-चिह द्वारा उपयोग में लाया गया है । वास्तव में यह सूत्र एक प्रदेश के व्यास के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ है । असंख्यात प्रदेशों वाले अंगुल आदि व्यास के माप की इकाइयों के लिये + १६ का मान नगण्य हो जाता है, और चीनी मान प्राप्त हो जाता है । आर्यभट्ट द्वारा दिया गया π का मान $\frac{६२८३२}{२००००}$ = ३·१४१६ है । भास्कराचार्य द्वारा भी यह मान ($\frac{३९२७}{१२५०}$) रूप में ह्रासित कर प्ररूपित किया गया है ।

द्वादशविष्कम्भस्य क्षेत्रस्य हि चार्धवृत्तस्य ।
षट्त्रिंशद्व्यासस्य कः परिधिः किं फलं भवति ॥ ६२ ॥

आयतवृत्तक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

व्यासकृतिःषड्गुणिता द्विसंगुणायामकृतियुता (पदं) परिधिः ।
व्यासचतुर्भागगुणश्चायतवृत्तस्य सूक्ष्मफलम् ॥ ६३ ॥

अत्रोद्देशकः

आयतवृत्तायामः षट्त्रिंशद्द्वादशास्य विष्कम्भः ।
कः परिधिः किं गणितं सूक्ष्मं विगणय्य मे कथय ॥ ६४ ॥

शङ्खाकारक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

वदनार्धोनो व्यासो दशपदगुणितो भवेत्परिक्षेपः ।
मुखदलरहितव्यासार्धवर्गमुखचरणकृतियोगः ॥ ६५ ॥
दशपदगुणितः क्षेत्रे कम्बुनिभे सूक्ष्मफलमेतत ॥ ६५½ ॥

का व्यास १२ है। दूसरे क्षेत्र का व्यास ३६ है। बतलाओ कि परिधि क्या है और क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ६२ ॥

आयतवृत्त (इलिप्स) सम्बन्धी सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम—

छोटे व्यास का वर्ग ६ द्वारा गुणित किया जाता है, और बड़े व्यास की लम्बाई की दुगुनी राशि के वर्ग को उसमें जोड़ा जाता है। इस योग का वर्गमूल परिधि का माप होता है। जब इस परिधि के माप को छोटे व्यास की एक चौथाई राशि द्वारा गुणित करते हैं, तब ऊनेन्द्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इलिप्स के सम्बन्ध में बड़े व्यास की लम्बाई ३६ और छोटे व्यास की १२ है, गणना के पश्चात् बतलाओ कि परिधि क्या है और सूक्ष्म क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ६४ ॥

शंख के आकार की आकृति के सम्बन्ध में सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम—

आकृति की सबसे बड़ी चौड़ाई (छोटे व्यास) को मुख की चौड़ाई की अर्द्धराशि द्वारा ह्रासित कर, और तब १० के वर्गमूल द्वारा गुणित करने पर परिमाप (perimeter) उत्पन्न होता है। आकृति की महत्तम चौड़ाई की अर्द्धराशि के वर्ग को मुख की आधी चौड़ाई द्वारा ह्रासित करने से प्राप्त राशि में मुख की चौड़ाई की एक चौथाई राशि के वर्ग को जोड़ते हैं। परिणामी योग को १० के वर्गमूल द्वारा गुणित करते हैं। प्राप्त राशि शंख आकृति का सूक्ष्म क्षेत्रफल होता है ॥ ६५½ ॥

---

(६३) यदि बड़ा व्यास 'अ' और छोटा व्यास 'ब' हो, तो इस नियमानुसार परिधि $\sqrt{६ब^2 + ४अ^2}$ होती है, और क्षेत्रफल : $\frac{१}{४} ब \times \sqrt{६ब^2 + ४अ^2}$ होता है। इस गाथा में (हस्तलिपि में) परिधि प्राप्त करने के लिये प्राप्त राशि के वर्गमूल निकालने का कथन मूल से छूट गया है। यहाँ दिया गया क्षेत्रफल का सूत्र केवल एक अनुमान है, और वह वृत्त के क्षेत्रफल की साम्यता पर आधारित है, जो $\pi \times व \times \frac{व}{४}$ द्वारा प्ररूपित होता है : जहाँ व व्यास है और (π व) परिधि है।

(६५½) बीजीय रूप से, परिधि = $(अ - \frac{१}{२} म) \times \sqrt{१०}$; तथा,

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश दण्डा मुखविस्तारोऽयमपि च चत्वारः।
कः परिधिः किं गणितं सूक्ष्मं तत्कम्बुकावृत्ते ॥ ६६½ ॥

बहिश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य चान्तश्चक्रवालवृत्तक्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—
निर्गमसहितो व्यासो दशपदनिर्गमगुणो बहिर्गणितम्।
रहितोऽधिगमेनासावभ्यन्तरचक्रवालवृत्तस्य ॥ ६७½ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासोऽष्टादश दण्डाः पुनर्बहिर्निर्गतास्त्रयो दण्डाः।
सूक्ष्मगणितं वद त्वं बहिरन्तश्चक्रवालवृत्तस्य ॥ ६८½ ॥
व्यासोऽष्टादश दण्डा अन्तः पुनरधिगताश्च चत्वारः।
सूक्ष्मगणितं वद त्वं चाभ्यन्तरचक्रवालवृत्तस्य ॥ ६९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंख आकृति के वक्ररेखीय क्षेत्र के संबंध में महत्तम चौड़ाई १८ दंड है, और मुख की चौड़ाई ४ दंड है। इसकी परिमिति और सूक्ष्म क्षेत्रफल के माप क्या हैं? ॥६६½॥

बाहर स्थित और भीतर स्थित (बहिश्चक्रवाल और अंतश्चक्रवाल) कंकण के संबंध में सूक्ष्म मापों को निकालने के लिये नियम —

भीतरी व्यास में चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई जोड़कर, प्राप्त राशि को १० के वर्गमूल तथा चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई द्वारा गुणित करते हैं। इससे बहिश्चक्रवाल वृत्त का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। बाहरी व्यास को चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई द्वारा ह्रासित करते हैं। प्राप्त राशि को १० के वर्गमूल तथा चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई द्वारा गुणित करने से अंतश्चक्रवाल वृत्त का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥६७½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चक्रवाल वृत्त का भीतरी अथवा बाहरी व्यास का माप १८ दंड है। चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई ३ दंड है। बहिश्चक्रवाल वृत्त तथा अंतश्चक्रवाल वृत्त का सूक्ष्म माप बतलाओ ॥ ६८½ ॥ बाहरी व्यास १८ दंड है। अंतश्चक्रवाल वृत्त की चौड़ाई ४ दंड है। अंतश्चक्रवाल वृत्त का सूक्ष्म क्षेत्रफल निकालो ॥ ६९½ ॥

क्षेत्रफल $= [\{(अ - \frac{1}{2} म) \times \frac{1}{2}\}^2 + \left(\frac{म}{४}\right)^2] \times \sqrt{१०}$; जहाँ अ महत्तम चौड़ाई का माप है और म शंख के मुख की चौड़ाई है। गाथा २३ के नोट के अनुसार यहाँ भी इस आकृति को दो असमान अर्द्धवृत्तों द्वारा संरचित किया गया है।

यवाकारक्षेत्रस्य च धनुराकारक्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—
इषुपादगुणश्च गुणो दशपदगुणितश्च भवति गणितफलम् ।
यवसंस्थानक्षेत्रे धनुराकारे च विज्ञेयम् ॥ ७०१/२ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादशदण्डायामो मुखद्वयं सूचिरपि च विस्तारः ।
चत्वारो मध्येऽपि च यवसंस्थानस्य किं तु फलम् ॥ ७११/२ ॥
धनुराकारसंस्थाने ज्या चतुर्विंशतिः पुन. ।
चत्वारोऽस्येषुरुद्दिष्टः सूक्ष्मं किं तु फलं भवेत् ॥ ७२१/२ ॥

धनुराकारक्षेत्रस्य धनुःकाष्ठबाणप्रमाणानयनसूत्रम्—
शरवर्गः षड्गुणितो ज्यावर्गसमन्वितस्तु यस्तस्य ।
मूलं धनुर्गुणेषुप्रसाधने तत्र विपरीतम् ॥ ७३१/२ ॥

यवाकार क्षेत्र तथा धनुषाकार क्षेत्र के सम्बन्ध में सूक्ष्म मानों को निकालने के लिये नियम—

धनुष की डोरी को बाण की एक चौथाई राशि द्वारा गुणित करते हैं। प्राप्त फल को १० के वर्गमूल द्वारा गुणित करने पर धनुषाकार तथा यवाकार क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्रफल का सूक्ष्म रूप से ठीक मान प्राप्त होता है ॥ ७०१/२ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यवधान्य को बीच से फाड़ने से प्राप्त क्षेत्र की आकृति की महत्तम लम्बाई १२ दंड है; दो सिरे सुई-बिन्दु हैं, और बीच में चौड़ाई ४ दंड है। क्षेत्रफल क्या है ? ॥ ७११/२ ॥ धनुषाकार रूपरेखा वाली आकृति के संबंध में डोरी २४ है तथा बाण ४ है। क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप क्या है ? ॥ ७२१/२ ॥

धनुष के वक्र काष्ठ तथा बाण को निकालने के लिये नियम, जब कि आकृति धनुषाकार है—

बाण के माप का वर्ग ६ द्वारा गुणित किया जाता है। इसमें डोरी के वर्ग को जोड़ते हैं। परिणामी योग का वर्गमूल धनुष के वक्र काष्ठ का माप होता है। डोरी का माप और बाण का माप निकालने के सम्बन्ध में इसको विपरीत क्रिया करते हैं ॥ ७३१/२ ॥

(७०१/२) धनुष के समान आकृति, वृत्त की अवधा जैसी, स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यहाँ अवधा का क्षेत्रफल $= क \times \frac{ल}{४} \times \sqrt{१०}$ है। यह शुद्ध माप नहीं है। अर्द्धवृत्त के क्षेत्रफल को प्राप्त करने के लिये जो नियम है वह उसी की साम्यता पर आधारित है। अर्द्धवृत्त का क्षेत्रफल $= \pi \times २ त्र \times \frac{त्र}{४}$ है, जहां त्र त्रिज्या है। साधारण चापकर्ण के दोनों ओर के धनुष (वृत्त की अवधायें) मिलाने से यवाकार आकृति प्राप्त होती है। स्पष्ट है कि इस दशा में बाण का माप दुगुना हो जाता है। इस प्रकार यह सूत्र इसके लिये भी प्रयोज्य है।
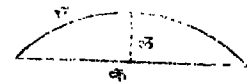
त्रिलोक प्रज्ञप्ति में (४/२३७३ भाग १, पृष्ठ ४४२ पर) अवधा का क्षेत्रफल सूत्र रूप से यह है—

$$धनुषक्षेत्र = \sqrt{(\frac{१}{२} बाण \times जीवा)^{२} \times १०}$$

विपरीतक्रियायां सूत्रम्—

गुणचापकृतिविशेषाच्चतुर्हृतात्पदमिषुः समुद्दिष्टः ।
शरवर्गात् षड्गुणितादूनं[1] धनुषः कृतेः पदं जीवा ॥ ७४½ ॥

अत्रोद्देशकः

धनुराकारक्षेत्रे ज्या द्वादश षट् शरः काष्ठम् ।
न ज्ञायते सखे त्वं का जीवा कः शरस्तस्य ॥ ७५½ ॥

---

१. B और M दोनों में उपर्युक्त पाठ है; पर इष्ट अर्थ "षड्गुणितादूनाया धनुष्कृतेः पदं जीवा" से निकलता है ।

विपरीत क्रिया के सम्बन्ध में नियम—

डोरी के वर्ग और धनुष के वक्रकाष्ठ के वर्ग के अन्तर की ¼ भाग राशि का वर्गमूल बाण का माप होता है । धनुषकाष्ठ के वर्ग में से बाण के वर्ग की ६ गुनी राशि को घटाने से प्राप्त शेष का वर्गमूल डोरी का माप होता है ॥ ७४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

धनुषाकार आकृति की डोरी १२ है, और बाण ६ है । झुकी हुई काष्ठ का माप अज्ञात है । हे मित्र, उसे निकालो । इसी आकृति के संबंध में डोरी और उसके बाण के माप को अलग-अलग किस तरह निकालोगे, जब कि आवश्यक राशियाँ ज्ञात हों ? ॥ ७५½ ॥

(७३½–७४½) बीजीय रूप से, $\text{चाप} = \sqrt{६ \text{ल}^2 + \text{क}^2}$; $\text{लम्ब} = \sqrt{\frac{\text{च}^2 - \text{क}^2}{६}}$

और $\text{चापकर्ण} = \sqrt{\text{च}^2 - ६ \text{ल}^2}$

चापकर्ण और बाण के पदों में चाप का मान समीकरण के रूप में देने के लिये अर्द्धवृत्त बनानेवाले चाप को आधार मानना पड़ता है । प्राप्त सूत्र को किसी भी अवधा (वृत्त खंड) के चाप का मान निकालने के उपयोग में लाते हैं । $\text{अर्द्धवृत्तीय चाप} = \text{त्र} \times \sqrt{१०} = \sqrt{१० \text{त्र}^2} = \sqrt{६ \text{त्र}^2 + ४ \text{त्र}^2}$ होता है, जहाँ त्र त्रिज्या अथवा अर्द्धव्यास है । इसी सिद्धान्त पर आधारित यह सूत्र किसी भी चाप के लिये है । यहाँ ल = बाण (चाप तथा चापकर्ण के बीच की महत्तम दूरी), और क = जीवा (चापकर्ण) है । जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (२/२४, ६/१०) में धनुषपृष्ठ का सूत्र महावीर के सूत्र समान है,

$$\text{धनुषपृष्ठ} = \sqrt{६ (\text{बाण}^2) + \{(\text{व्यास} - \text{बाण})\ ४\ \text{बाण}\}} = \sqrt{६ (\text{बाण})^2 + (\text{जीवा})^2}$$

त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/१८१) में सूत्र इस रूप में है,

$$\text{धनुष} = \sqrt{२ \{(\text{व्यास} + \text{बाण})^2 - (\text{व्यास})^2\}}$$

बाण निकालने के लिये जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (६/११) तथा त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/१८२) में अवतरित सूत्र द्रष्टव्य हैं ।

अत्रोद्देशकः

मृदङ्गनिभक्षेत्रस्य च पणवाकारक्षेत्रस्य च वज्राकार क्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—
मुखगुणितायामफलं स्वधनुःफलसंयुतं मृदङ्गनिभे ।
तत्पणववज्रनिभयोर्धनुःफलोनं तयोरुभयोः ॥ ७६½ ॥

अत्रोद्देशकः

चतुर्विंशतिरायामो विस्तारोऽष्टौ मुखद्वये ।
क्षेत्रे मृदङ्गसंस्थाने मध्ये षोडश किं फलम् ॥ ७७½ ॥
चतुर्विंशतिरायामस्तथाष्टौ मुखयोर्द्वयोः ।
चत्वारो मध्यविष्कम्भः किं फलं पणवाकृतौ ॥ ७८½ ॥
चतुर्विंशतिरायामस्तथाष्टौ मुखयोर्द्वयोः ।
मध्ये सूचिस्तथाचक्ष्व वज्राकारस्य किं फलम् ॥ ७९½ ॥

नेमिक्षेत्रस्य च बालेन्द्वाकार क्षेत्रस्य च इभदन्ताकारक्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—
पृष्ठोदरसंक्षेपः षड्भक्तो व्याससरूपसंगुणितः ।
दशमूलगुणो नेमेर्बालेन्द्विभदन्तयोश्च तस्यार्धम् ॥ ८०½ ॥

मृदंगाकार, पणवाकार और वज्राकार आकृतियों के संबंध में सूक्ष्म फलों को प्राप्त करने के लिये नियम—

जो महत्तम लम्बाई को मुख की चौड़ाई द्वारा गुणित करने पर प्राप्त होता है ऐसे परिणामी क्षेत्रफल में संबंधित धनुषाकृतियों के क्षेत्रफलों के मान को जोड़ते हैं। यह परिणामी योग मृदंग के आकार की आकृति के क्षेत्रफल का माप होता है। पणव और वज्र की आकृति के क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिये महत्तम लम्बाई और मुख की चौड़ाई के गुणनफल से प्राप्त क्षेत्रफल को धनुषाकृति संबंधी क्षेत्रफलों के माप द्वारा ह्रासित करते हैं। शेषफल इष्ट क्षेत्रफल होता है ॥ ७६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

मृदंगाकार आकृति के संबंध में महत्तम लम्बाई २४ है। दो मुखों में से प्रत्येक के मुख की चौड़ाई ८ है। बीच में महत्तम चौड़ाई १६ है। क्षेत्रफल क्या है? ॥ ७७½ ॥ पणवाकृति के संबंध में महत्तम लम्बाई २४ है। इसी प्रकार प्रत्येक मुख की चौड़ाई ८ और केन्द्रीय चौड़ाई ४ है। क्षेत्रफल क्या है? ॥ ७८½ ॥ वज्र के आकार की आकृति के संबंध में महत्तम लम्बाई २४ है। दो मुखों में से प्रत्येक की चौड़ाई ८ है। केन्द्र केवल एक बिन्दु है। क्षेत्रफल निकालो ॥ ७९½ ॥

नेमिक्षेत्र और बालेन्दु समान क्षेत्र (हाथी की खीस के अन्वायाम छेदाकृति) के सूक्ष्म क्षेत्रफलों को निकालने के लिये नियम—

नेमिक्षेत्र के संबंध में भीतरी और बाहरी वक्रों के मापों के योग को ६ द्वारा भाजित करते हैं। इसे कंकण की चौड़ाई से गुणित कर फिर से १० के वर्गमूल द्वारा गुणित करते हैं। परिणामी फल इष्ट क्षेत्रफल होता है। इसका आधा बालेन्दु का क्षेत्रफल अथवा हाथी की खीस की अन्वायाम छेदाकृति (इभदन्ताकार क्षेत्र) का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ ८०½ ॥

(७६½) इस नियम का मूल आधार ३२ वीं गाथा में नोट में दिये गये चित्रों से स्पष्ट हो जावेगा।

(८०½) नेमिक्षेत्र के लिये दिया गया नियम यदि बीजीय रूप से प्ररूपित किया जाय, तो वह इस रूप में आता है— $\frac{प_1 + प_2}{६} \times ल \times \sqrt{१०}$, जहाँ $प_1$, $प_2$ दो परिधियों के माप हैं, और ल नेमिक्षेत्र

अत्रोद्देशकः

पृष्ठं चतुर्दशोदरमष्टौ नेम्याकृतौ भूमौ ।
मध्ये चत्वारि च तद्बालेन्दोः किमिभदन्तस्य ॥ ८१½ ॥

चतुर्मण्डलमध्यस्थितक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

विष्कम्भवर्गराशेर्वृत्तस्यैकस्य सूक्ष्मफलम् ।
त्यक्त्वा समवृत्तानामन्तरजफलं चतुर्णां स्यात् ॥ ८२½ ॥

अत्रोद्देशकः

गोलकचतुष्टयस्य हि परस्परस्पर्शकस्य मध्यस्य ।
सूक्ष्मं गणितं किं स्याच्चतुष्कविष्कम्भयुक्तस्य ॥ ८३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

नेमिक्षेत्र के संबंध में बाहरी वक्र १४ है और भीतरी ८ है। बीच में चौड़ाई ४ है। क्षेत्रफल क्या है? बालेन्दु क्षेत्र तथा इभदन्ताकार क्षेत्र की आकृतियों का क्षेत्रफल भी क्या होगा? ॥ ८१½ ॥

चार, एक दूसरे को स्पर्श करने वाले, वृत्तों के बीच के क्षेत्र (चतुर्मण्डल मध्यस्थित क्षेत्र) के सूक्ष्म क्षेत्रफल को निकालने के लिये नियम—

किसी भी एक वृत्त के क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप यदि उस वृत्त के व्यास को वर्गित करने से प्राप्त राशि में से घटाया जाय, तो पूर्वोक्त क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ ८२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

चार एक दूसरे को स्पर्श करने वाले वृत्तों के बीच का क्षेत्रफल निकालो (जब कि प्रत्येक वृत्त का व्यास ४ है) ॥८३½॥

(कंकण) की चौड़ाई है। इस नेमिक्षेत्र के क्षेत्रफल की तुलना गाथा ७ में दिये गये नोट में वर्णित आनुमानिक मान से की जाय, तो स्पष्ट होगा कि यह सूत्र शुद्ध मान नहीं देता। गाथा ७ में दिया गया मान शुद्ध मान है। यह गलती, एक गलत विचार से उदित हुई मालूम होती है। इस क्षेत्रफल के मान को निकालने के लिये, π का उपयोग $प_1$ और $प_2$ के मानों में अपेक्षाकृत उलटा किया गया है। इसके सम्बन्ध में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (१०/९१) और त्रिलोक प्रज्ञप्ति (४/२५२१–२५२२) में दिये गये सूत्र द्रष्टव्य हैं।

(८२½) निम्नलिखित आकृति से इस नियम का मूल कारण स्पष्ट हो जावेगा।

(८४½) इसी प्रकार, यह आकृति भी नियम के कारण को शीघ्र ही स्पष्ट करती है।
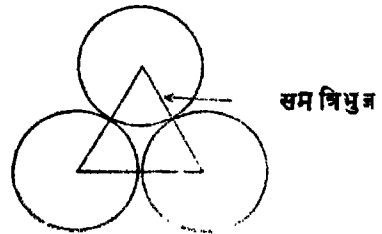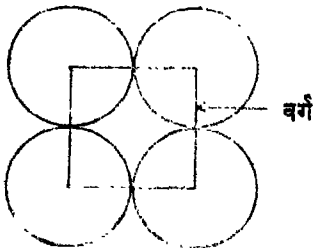
वृत्तक्षेत्रत्रयस्यान्योऽन्यस्पर्शनाज्जातस्यान्तरस्थितक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

विष्कम्भमानसमकत्रिभुजक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलम् ।
वृत्तफलार्धविहीनं फलमन्तरजं त्रयाणां स्यात् ॥ ८४½ ॥

अत्रोद्देशकः

विष्कम्भचतुष्काणां वृत्तक्षेत्रत्रयाणां च । अन्योऽन्यस्पृष्टानामन्तरजक्षेत्रगणितं किम् ॥ ८५½ ॥

षडश्रक्षेत्रस्य कर्णावलम्बकसूक्ष्मफलानयनसूत्रम्—

भुजभुजकृतिकृतिवर्गा द्वित्रित्रिगुणा यथाक्रमेणैव ।
श्रुत्यवलम्बककृतिधनकृतयश्च षडश्रके क्षेत्रे ॥ ८६½ ॥

अत्रोद्देशकः

भुजषट्कक्षेत्रे द्वौ द्वौ दण्डौ प्रतिभुजं स्याताम् ।
अस्मिन् श्रुत्यवलम्बकसूक्ष्मफलानां च वर्गाः के ॥ ८७½ ॥

तीन समान परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करनेवाले वृत्तीय क्षेत्रों के बीच के क्षेत्र का सूक्ष्म रूप से शुद्ध क्षेत्रफल निकालने के लिये नियम—

जिसकी प्रत्येक भुजा व्यास के बराबर होती है ऐसे सम त्रिभुज का सूक्ष्म क्षेत्रफल इन तीन में से किसी भी एक के क्षेत्रफल की अर्द्धराशि द्वारा ह्रासित किया जाता है। शेष ही इष्ट क्षेत्रफल होता है ॥८४½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

परस्पर एक दूसरे को स्पर्श करने वाले तथा माप में ४० व्यास वाले तीन वृत्तों की परिधियों से घिरे हुए क्षेत्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल क्या है ? ॥८५½॥

नियमित षट्भुज क्षेत्र के संबंध में कर्ण, अवलम्ब (लम्ब) और क्षेत्रफल के सूक्ष्म रूप से शुद्ध मानों को निकालने के नियम—

षट्भुज क्षेत्र के संबंध में भुजा के माप को, इस भुजा के वर्ग को तथा इसी भुजा के वर्ग के वर्ग को क्रमशः २, ३ और ३ द्वारा गुणित करने पर उसी क्रम से कर्ण, लम्ब का वर्ग और क्षेत्रफल के माप का वर्ग प्राप्त होता है ॥८६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

नियमित षट्भुजाकार आकृति के संबंध में प्रत्येक भुजा २ दण्ड है। इस आकृति के कर्ण का वर्ग, लम्ब का वर्ग और सूक्ष्म क्षेत्रफल के माप का वर्ग बतलाओ ॥८७½॥

(८६½) यह नियम नियमित षट्भुज आकृति के लिये लिखा गया ज्ञात होता है। यह सूत्र षट्भुज के क्षेत्रफल का मान $\sqrt{३अ^४}$ देता है, जहाँ किसी भी एक भुजा की लम्बाई अ है। तथापि शुद्ध सूत्र यह है— $अ^२ \times \frac{३\sqrt{३}}{२}$

वर्गस्वरूपकरणिराशीनां युतिसंख्यानयनस्य च तेषां वर्गस्वरूपकरणिराशीनां यथाक्रमेण परस्परवियुतितः शेषसंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

केनाप्यपवर्तितफलपदयोगवियोगकृतिहताच्छेदात्।
मूलं पदयुतिवियुती राशीनां विद्धि करणिगणितमिदम् ॥ ८८½ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशषट्त्रिंशच्छतकरणीनां वर्गमूलपिण्डं मे। अथ चैतत्पदशेषं कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥८९½॥

इति सूक्ष्मगणितं समाप्तम्।

कुछ वर्गमूल राशियों के योग के संख्यात्मक मान तथा एक दूसरे में से स्वाभाविक क्रम में कुछ वर्गमूल राशियों को घटाने के पश्चात् शेषफल निकालने के लिये नियम—

समस्त वर्गमूल राशियाँ एक ऐसे साधारण गुणनखंड द्वारा भाजित की जाती हैं, जो ऐसे भजनफलों को उत्पन्न करता है जो वर्गराशियाँ होती हैं। इस प्रकार प्राप्त वर्गराशियों के वर्गमूलों को जोड़ा जाता है, अथवा इन्हें स्वाभाविक क्रम में एक को दूसरे में से घटाया जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग और शेषफल दोनों को वर्गित किया जाता है, और तब अलग अलग (पहिले उपयोग में लाए हुए) भाजक गुणनखंड द्वारा गुणित किया जाता है। इन परिणामी गुणनफलों के वर्गमूल, प्रश्न में दी गई राशियों के योग और अंतिम अंतर को उत्पन्न करते हैं। समस्त प्रकार की वर्गमूल राशियों के गणित के संबंध में यह नियम जानना चाहिये ॥८८½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणिततत्त्वज्ञ सखे, मुझे १६, ३६ और १०० राशियों के वर्गमूलों के योग को बतलाओ, और तब इन्हीं राशियों के वर्गमूलों के संबंध में अंतिम शेष भी बतलाओ। इस प्रकार, क्षेत्र गणित व्यवहार में सूक्ष्म गणित नामक प्रकरण समाप्त हुआ ॥८९½॥

(८८½) यहाँ आया हुआ "करणी" शब्द कोई भी ऐसी राशि दर्शाता है जिसका वर्गमूल निकालना होता है, और जैसी दशा हो उसके अनुसार वह मूल परिमेय (rational, धनराशि जो करणीरहित हो) अथवा अपरिमेय होता है। गाथा ८९½ में दिये गये प्रश्न को निम्न प्रकार से हल करने पर यह नियम स्पष्ट हो जावेगा—

$\sqrt{१६}+\sqrt{३६}+\sqrt{१००}$ और $(\sqrt{१००})-(\sqrt{३६}-\sqrt{१६})$ के मान निकालना हैं। इन्हें $\sqrt{४}\ (\sqrt{४}+\sqrt{९}+\sqrt{२५})$; $\sqrt{४}\{\sqrt{२५}-(\sqrt{९}-\sqrt{४})\}$ द्वारा प्ररूपित किया जा सकता है।

साधित करने पर,

पूर्व राशि		अपर राशि	
	$=\sqrt{४}(२+३+५)$;		$=\sqrt{४}\{५-(३-२)\}$
	$=\sqrt{४}(१०)$	”	$=\sqrt{४}(४)$
	$=\sqrt{४}\times\sqrt{१००}$	”	$=\sqrt{४}\times\sqrt{१६}$
	$=\sqrt{४००}$	”	$=\sqrt{६४}$
	$=२०$	”	$=८$

जन्यव्यवहारः

इतः परं क्षेत्रगणिते जन्यव्यवहारमुदाहरिष्यामः । इष्टसंख्याबीजाभ्यामायतचतुरश्रक्षेत्रानयनसूत्रम्—

वर्गविशेषः कोटिः संवर्गो द्विगुणितो भवेद्बाहुः । वर्गसमासः कर्णश्चायतचतुरश्रजन्यस्य ॥ ९०½ ॥

अत्रोद्देशकः

एकद्विके तु बीजे क्षेत्रे जन्ये तु संस्थाप्य । कथय विगणय्य शीघ्रं कोटिभुजाकर्णमानानि ॥९१½॥

बीजे द्वे त्रीणि सखे क्षेत्रे जन्ये तु संस्थाप्य । कथय विगणय्य शीघ्रं कोटिभुजाकर्णमानानि ॥९२½॥

पुनरपि बीजसंज्ञाभ्यामायतचतुरश्रक्षेत्रकल्पनायाः सूत्रम्—

बीजयुतिवियुतिघातः कोटिस्तद्वर्गयोश्च संक्रमणे ।
बाहुश्रुती भवेतां जन्यविधौ करणमेतदपि ॥ ९३½ ॥

जन्य व्यवहार

इसके पश्चात् हम क्षेत्रफल माप सम्बन्धी गणित में जन्य क्रिया का वर्णन करेंगे । मन से चुनी हुई संख्याओं को बीजों के समान लेकर उनकी सहायता से आयत क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

मन से प्राप्त आयत क्षेत्र के संबंध में बीज संख्याओं के वर्गों का अंतर लंब भुजा की संरचना करता है । बीज संख्याओं का गुणनफल २ द्वारा गुणित होकर दूसरी भुजा हो जाता है, और बीज संख्याओं के वर्गों का योग कर्ण बन जाता है ॥९०½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ज्यामितीय आकृति के संबंध में (जिसे मन के अनुसार प्राप्त करना है) १ और २ लिखे जानेवाले बीज हैं । गणना के पश्चात् मुझे लम्ब भुजा, दूसरी भुजा और कर्ण के मापों को शीघ्र बतलाओ ॥९१½॥

हे मित्र, २ और ३ को, मन के अनुसार किसी आकृति को प्राप्त करने के संबंध में, बीज लेकर गणना के पश्चात् लम्ब भुजा, अन्य भुजा और कर्ण शीघ्र बतलाओ ॥९२½॥

पुनः बीजों द्वारा निरूपित संख्याओं की सहायता से आयत चतुरश्र क्षेत्र की रचना करने के लिये दूसरा नियम—

बीजों के योग और अंतर का गुणनफल लम्बमाप होता है । बीजों के योग और अंतर के वर्गों का संक्रमण अन्य भुजा तथा कर्ण को उत्पन्न करता है । यह क्रिया जन्य क्षेत्र को (दिये हुए बीजों से) प्राप्त करने के उपयोग में भी लाई जाती है ॥९३½॥

(९०½) "जन्य" का शाब्दिक अर्थ "में से उत्पन्न" अथवा "में से व्युत्पादित" होता है, इसलिये यह ऐसे त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों के विषय में है जो दिये गये न्यास (दत्त दशाओं) से प्राप्त किये जा सकते हैं । त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों की भुजाओं की लम्बाई निकालने को जन्य क्रिया कहते हैं ।

बीज, जैसा कि यहाँ वर्णित है, साधारणतः धनात्मक पूर्णांक होता है । त्रिभुज और चतुर्भुज क्षेत्रों को प्राप्त करने के लिये दो ऐसे बीज अपरिवर्तनीय ढंग से दिये गये होते हैं ।

इस नियम का मूल आधार निम्नलिखित बीजीय निरूपण से स्पष्ट हो जावेगा—

यदि "अ" और "ब" बीज संख्यायें हों, तो $अ^2 - ब^2$ लम्ब का माप होता है । २ अ ब दूसरी भुजा का माप होता है और $अ^2 + ब^2$ कर्ण का माप होता है, जब कि चतुर्भुज क्षेत्र आयत हो । इससे स्पष्ट है कि बीज ऐसी संख्याएँ होती हैं जिनके गुणनफल और वर्गों की सहायता से प्राप्त भुजाओं के मापों द्वारा समकोण त्रिभुज की रचना की जा सकती है ।

(९३½) यहाँ दिये गये नियम में $अ^2 - ब^2$, २ अ ब और $अ^2 + ब^2$ को (अ + ब) (अ − ब),

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकबीजाभ्यां जन्यक्षेत्रं सखे समुत्थाप्य ।
कोटिभुजाश्रुतिसंख्याः कथय विचिन्त्याशु गणिततत्त्वज्ञ ॥ ९४½ ॥

इष्टजन्यक्षेत्राद्बीजसंज्ञसंख्ययोरानयनसूत्रम्—

कोटिच्छेदावाप्त्योः संक्रमणे बाहुदलफलच्छेदौ ।
बीजे श्रुतीष्टकृत्योर्योगवियोगार्धमूले ते ॥ ९५½ ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि क्षेत्रस्य च षोडश कोटिश्च बीजे के ।
त्रिंशद्यथवान्यबाहुर्बीजे के ते श्रुतिश्चतुस्त्रिंशत् ॥ ९६½ ॥

कोटिसंख्यां ज्ञात्वा भुजाकर्णसंख्यानयनस्य च भुजसंख्यां ज्ञात्वा कोटिकर्णसंख्यानयनस्य च कर्णसंख्यां ज्ञात्वा कोटिभुजासंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

कोटिकृतेश्छेदाप्त्योः संक्रमणे श्रुतिभुजौ भुजकृतेर्वा ।
अथवा श्रुतीष्टकृत्योरन्तरपदमिष्टमपि च कोटिभुजे ॥ ९७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणिततत्त्वज्ञ मित्र, ३ और ५ को बीज लेकर उनकी सहायता से जन्य क्षेत्र की रचना करो, और तब सोच विचार कर शीघ्र ही लम्ब भुजा, अन्य भुजा और कर्ण के मापों को बतलाओ ॥९४½॥

बीजों से प्राप्त करने योग्य किसी दी गई आकृति संबंधी बीज संख्याओं को निकालने के लिये नियम—

लम्ब भुजा के मन से चुने हुए यथार्थ भाजक और परिणामी भजनफल में संक्रमण क्रिया करने से इष्ट बीज उत्पन्न होते हैं। अन्य भुजा की अर्द्धराशि के मन से चुने हुए यथार्थ भाजक और परिणामी भजनफल भी इष्ट बीज होते हैं। वे बीज क्रमशः कर्ण और मन से चुनी हुई संख्या की वर्णित राशि के योग की अर्द्धराशि के वर्गमूल तथा अंतर की अर्द्धराशि के वर्गमूल होते हैं ॥९५½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी रैखिकीय आकृति के संबंध में लम्ब १६ है, बतलाओ बीज क्या-क्या हैं? अथवा यदि अन्य भुजा ३० हो, तो बीजों को बतलाओ। यदि कर्ण ३४ हो, तो वे बीज कौनकौन हैं? ॥९६½॥

अन्य भुजा और कर्ण के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम, जब कि लम्ब भुजा ज्ञात हो; लम्ब भुजा और कर्ण को निकालने के लिये नियम, जब कि अन्य भुजा ज्ञात हो; और लम्ब भुजा तथा अन्य भुजा को निकालने के लिये नियम, जब कि कर्ण का संख्यात्मक माप ज्ञात हो—

लम्ब भुजा के वर्ग के मन से चुना हुए यथार्थ भाजक और परिणामी भजनफल के बीच संक्रमण क्रिया करने पर क्रमशः कर्ण और अन्य भुजा उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार अन्य भुजा के वर्ग के संबंध में वही संक्रमण क्रिया करने से लम्ब भुजा और कर्ण के माप उत्पन्न होते हैं। अथवा, कर्ण के वर्ग और किसी मन से चुनी हुई संख्या के वर्ग के अंतर की वर्गमूल राशि तथा वह चुनी हुई संख्या क्रमशः लम्ब भुजा और अन्य भुजा होती हैं ॥९७½॥

$\frac{(अ+ब)^2-(अ-ब)^2}{2}$ और $\frac{(अ+ब)^2+(अ-ब)^2}{2}$ के द्वारा प्ररूपित किया गया है।

(९५½) इस नियम में कथित क्रियाएँ गाथा ९०½ में कथित क्रियाओं से विपरीत हैं।

(९७½) यह नियम निम्नलिखित सर्वसमिकाओं (identities) पर निर्भर है—

अत्रोद्देशकः

कस्यापि कोटिरेकादश बाहुः षष्टिरन्यस्यः। श्रुतिरेकषष्टिरन्यास्यानुक्तान्यत्र मे कथय ॥ ९८½ ॥

द्विसमचतुरश्रक्षेत्रस्यानयनप्रकारस्य सूत्रम्—

जन्यक्षेत्रभुजार्धहारफलजप्रागजन्यकोट्योर्युति-
र्भूरास्यं वियुतिर्भुजा श्रुतिरथाल्पाल्पा हि कोटिर्भवेत्।
आबाधा महती श्रुतिः श्रुतिरभूज्ज्येष्ठं फलं स्यात्फलं
बाहुः स्यादवलम्बको द्विसमकक्षेत्रे चतुर्बाहुके ॥ ९९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी आकृति के संबंध में, लम्ब भुजा ११ है, दूसरी आकृति के संबंध में अन्य (दूसरी) भुजा ६० है, और तीसरी आकृति के संबंध में कर्ण ६१ है। इन तीन दशाओं में अज्ञात भुजाओं के मापों को बतलाओ ॥ ९८½ ॥

दिये गये बीजों की सहायता से दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र को प्राप्त करने की रीति के संबंध में नियम—

दिये गये बीजों की सहायता से प्राप्त प्रथम आयत की लम्ब भुजा को दूसरी आकृति (जिसे मूलतः प्राप्त आकृति के आधार की अर्द्धराशि के मन से चुने हुए दो गुणनखंडों को बीज मानकर प्राप्त किया गया है ऐसी आकृति) की लम्ब भुजा में जोड़नेपर दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र का आधार उत्पन्न होता है। इन दो लम्बों के मापों के अन्तर से चतुर्भुज की ऊपरी भुजा उत्पन्न होती है। पूर्व कथित दो प्राप्त आकृतियों का छोटा कर्ण दो बराबर भुजाओं में से किसी एक का माप होता है। उन दो प्राप्त आकृतियों के सम्बन्ध में दो लम्ब भुजाओं में से छोटी भुजा, आधार के उस छोटे खंड का माप होती है जो ऊपरी भुजा के अंतों में से किसी एक से आधार पर लम्ब गिराने से बनता है। उन दो प्राप्त आकृतियों के सम्बन्ध में बड़ा कर्ण इष्ट कर्ण का माप होता है। उन दो प्राप्त आकृतियों में से बड़े का क्षेत्रफल इष्ट आकृति का क्षेत्रफल होता है; और उन दो आकृतियों में से किसी एक का आधार, ऊपरी भुजा के अंतों में से किसी एक से आधार पर गिराये गये लम्ब का माप होता है ॥ ९९½ ॥

---

१) $\left\{ \frac{(अ^2 - ब^2)^2}{(अ - ब)^2} \pm (अ - ब)^2 \right\} \div २ = अ^2 + ब^2$ अथवा २ अ ब (दशानुसार)

२) $\left\{ \frac{(२ \text{ अ ब})^2}{२ ब^2} \pm २ ब^2 \right\} \div २ = अ^2 + ब^2$ अथवा $अ^2 - ब^2$

३) $\sqrt{(अ^2 + ब^2)^2 - (२ \text{ अ ब})^2} = अ^2 - ब^2$

९९½) इस गाथा में कथित नियम के अनुसार साधन किया जाने वाला प्रश्न यह है कि दो दिये गये बीजों की सहायता से दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की रचना किस प्रकार करना चाहिये। भुजाओं, कर्णों और ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये गये लम्बों तथा लम्ब के कारण उत्पन्न हुए खंडों की लम्बाइयाँ दिये गये बीजों की सहायता से संरचित दो आयतों में से निकालना पड़ती है। इनमें से प्रथम आयत क्षेत्र ऊपर गाथा ९०½ में दिये गये नियमानुसार बनाया जाता है। प्रथम आयत के आधार की लम्बाई की अर्द्धराशि के मन से चुने हुए दो गुणनखंडों में से उसी नियम के अनुसार दूसरा आयत क्षेत्र बनता है। (उन दो गुणनखंडों को बीज मान लेते हैं।) इसलिये अब हम प्रथम आयत को, दूसरे आयत क्षेत्र से अलग पहिचानने के लिये, प्राथमिक आकृति कहेंगे।

अत्रोद्देशकः

चतुरश्रक्षेत्रस्य द्विसमस्य च पञ्चषट्कबीजस्य ।
मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानि वद ॥ १००½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो बराबर भुजाओं वाले तथा ५ और ६ को बीज मानकर उनकी सहायता से रचित चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध से ऊपरी भुजा, आधार, दो बराबर भुजाओं में से एक, ऊपरी भुजा से आधार पर गिराया गया लंब, कर्ण और आधार का छोटा खंड तथा क्षेत्रफल के मापों को बतलाओ ॥१००½॥

इस नियम का मूल आधार गाथा १००½ में दिये गये प्रश्न के हल को चित्रित करने वाली निम्नलिखित आकृतियों से स्पष्ट हो जावेगा। यहाँ दिये गये बीज ५ और ६ हैं। प्रथम आयत अथवा बीजों से प्राप्त प्राथमिक आकृति अ ब स द है—

[नोट—ये आकृतियाँ पैमाने रहित हैं।] इस आकृति में आधार की लम्बाई की अर्द्धराशि ३० है। इसके दो गुणनखंड ३ और १० चुने जा सकते हैं। इन संख्याओं की सहायता से (उन्हें बीज मानकर) संरचित आयत क्षेत्र इ फ ग ह है—
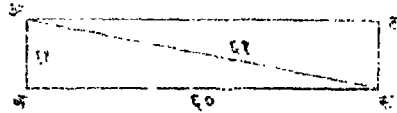
दो बराबर भुजाओं वाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र की रचना के लिये अपने कर्ण द्वारा विभाजित प्रथम आयत के दो त्रिभुजों में से एक को दूसरे आयत की ओर, और वैसे ही दूसरे त्रिभुज के बराबर क्षेत्र को दूसरे आयत की दूसरी ओर से हटा देते हैं जैसा की आकृति इ अ′ फ स′ से स्पष्ट है।
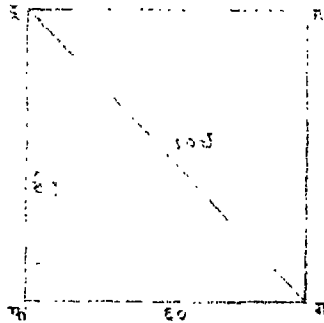
यह क्रिया आकृतियों की तुलना से स्पष्ट हो जावेगी। इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र इ अ′ फ स′ का क्षेत्रफल = दूसरे आयत इ फ ग ह का क्षेत्रफल।

आधार अ′ फ = प्रथम आयत की लम्ब भुजा धन दूसरे आयत की लम्ब भुजा = अ ब + इ फ

ऊपरी भुजा इ स′ = दूसरे आयत की लम्ब भुजा ऋण प्रथम आयत की लम्ब भुजा = ग इ − स द

कर्ण इ फ = दूसरे आयत का कर्ण

त्रिसमचतुरश्रक्षेत्रस्य मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानयनसूत्रम्—
भुजपदहृतबीजान्तरहृतजन्यधनाप्तभागहाराभ्याम् ।
तद्भुजकोटिभ्यां च द्विसम इव त्रिसमचतुरश्रे ॥ १०१½ ॥

अत्रोद्देशकः

चतुरश्रक्षेत्रस्य त्रिसमस्यास्य द्विकत्रिकस्वबीजस्य ।
मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानि वद ॥ १०२½ ॥

दिये गये बीजों की सहायता से तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा, आधार, कोई भी एक बराबर भुजा, ऊपर से आधार पर गिराया गया लम्ब, कर्ण, आधार का छोटा खंड और क्षेत्रफल के मापों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये बीजों का अंतर, उन बीजों की सहायता से तत्काल प्राप्त चतुर्भुज क्षेत्र के आधार के वर्गमूल द्वारा गुणित किया जाता है। इस तत्काल प्राप्त प्राथमिक चतुर्भुज के क्षेत्रफल को इस प्रकार प्राप्त गुणनफल द्वारा भाजित किया जाता है। तब क्रिया में बीजों की तरह उपयोग में लाये गये परिणामी भजनफल और भाजक की सहायता से प्राप्त दूसरा चतुर्भुज क्षेत्र रचा जाता है। तीसरा चतुर्भुज, तत्काल प्राप्त चतुर्भुज के आधार और लम्ब भुजा को बीज मानकर, बनाया जाता है। तब इन दो अंत में प्राप्त चतुर्भुजों की सहायता से तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की उपर्युक्त भुजाओं आदि के मापों को दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज में प्रयुक्त विधि अनुसार प्राप्त किया जाता है ॥१०१½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

तीन बराबर भुजाओं वाले, तथा २ और ३ बीज हैं जिसके ऐसे, चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा, आधार, तीन बराबर भुजाओं में से एक, ऊपरी भुजा से आधार पर गिराया गया लम्ब, कर्ण, आधार का छोटा खंड और क्षेत्रफलों के मापों को बतलाओ ॥१०२½॥

आधार का छोटा खंड अर्थात् अ′ इ = प्रथम आयत की लंब भुजा
= अ ब

लम्ब ह इ = दूसरे अथवा प्रथम आयत का आधार = ब स = फ ग

बाजू की प्रत्येक बराबर भुजा अ′ ह अथवा फ स′ = प्रथम आयत का कर्ण, अर्थात्, अ स

(१०१½) यदि दिये गये बीज अ और ब द्वारा निरूपित हों, तो तत्काल प्राप्त चतुर्भुज की भुजाओं के माप ये होंगे : लम्ब भुजा = $अ^2 - ब^2$, आधार = २ अ ब, कर्ण = $अ^2 + ब^2$, क्षेत्रफल = $२ अ ब \times (अ^2 - ब^2)$।

जैसा कि दो बराबर भुजाओं वाले क्षेत्रफल की रचना के संबंध में गाथा ९९½ का नियम उपयोग कहा गया है, उसी तरह यह नियम, दो प्राप्त आयतों की सहायता से, तीन बराबर भुजाओं वाले इस चतुर्भुज क्षेत्र की संरचना में सहायक होता है। इन आयतों में प्रथम संबंधी बीज ये हैं—

$$\frac{२ अ ब \times (अ^2 - ब^2)}{\sqrt{२ अ ब} \times (अ ब \mp)}, \text{ अर्थात् } \sqrt{२ अ ब} \times (अ + ब) \text{ और } \sqrt{२ अ ब} \times (अ - ब)$$

गाथा ९०½ का नियम यहाँ प्रयुक्त करने पर हमें प्रथम आयत के लिये निम्नलिखित मान प्राप्त होते हैं—

लम्ब भुजा = $(अ + ब)^2 \times २ अ ब - (अ - ब)^2 \times २ अ ब$ अथवा $८ अ^2 ब^2$

विषमचतुरश्रक्षेत्रस्य मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानयनसूत्रम्—

ज्येष्ठाल्पान्योन्यहीनश्रुतिहतभुजकोटी भुजे भूमुखे ते
कोट्योरन्योन्यदोर्भ्यां हतयुतिरथ दोर्घातयुक्कोटिघातः ।
कर्णावल्पश्रुतिघ्नावनधिकभुजकोट्याहतौ लम्बकौ ता-
वाबाधे कोटिदोर्घ्नाववनिविवरके कर्णघातार्धमर्थः ॥ १०३½ ॥

विषम चतुर्भुज के संबंध में, ऊपरी भुजा, आधार, बाजू की भुजाओं, ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये गये लम्बों, कर्णों, आधार के खंडों और क्षेत्रफल के मापों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये बीजों के दो कुलकों (sets) संबंधी दो आयताकार प्राप्त चतुर्भुज क्षेत्रों के बड़े और छोटे कर्णों से आधार और (उन्हीं प्राप्त छोटी और बड़ी आकृतियों की) लम्ब भुजा क्रमशः गुणित की जाती हैं। परिणामी गुणनफल इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र की दो असमान भुजाओं, आधार और ऊपरी भुजा के मापों को देते हैं। प्राप्त आकृतियों की लम्ब भुजाएँ एक दूसरे के आधार द्वारा गुणित की जाती हैं। इस प्रकार प्राप्त दो गुणनफल जोड़े जाते हैं। तब उन आकृतियों संबंधी दो लम्ब भुजाओं के गुणनफल में उन्हीं आकृतियों के आधारों का गुणनफल जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त दो योग, जब उन दो आकृतियों के दो कर्णों में से छोटे कर्ण के द्वारा गुणित किये जाते हैं, तब वे इष्ट कर्णों को उत्पन्न करते हैं। वे ही योग, जब छोटी आकृति के आधार और लम्ब भुजा द्वारा क्रमशः गुणित किये जाते हैं, तब वे कर्णों के अंतों से गिराये गये लम्बों के मापों को उत्पन्न करते हैं; और जब वे उसी आकृति की लम्ब भुजा और आधार द्वारा गुणित होते हैं, तब वे लम्बों द्वारा उत्पन्न आधार के खंडों के मापों को उत्पन्न करते हैं। इन खंडों के माप जब आधार के माप में से घटाये जाते हैं, तब अन्य खंडों के मान प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त प्राप्त हुई आकृति के कर्णों के गुणनफल की अर्द्धराशि, इष्ट आकृति के क्षेत्रफल का माप होती है ॥१०३½॥

आधार = २ × $\sqrt{\text{२अ ब}}$ × (अ + ब) × $\sqrt{\text{२अ ब}}$ × (अ − ब) अथवा ४अ ब (अ^2 − ब^2)

कर्ण = (अ + ब)^2 × २अ ब + (अ − ब)^2 × २अ ब अथवा ४ अ ब (अ^2 + ब^2)

दूसरे आयत क्षेत्र के संबंध में बीज अ^2 − ब^2 और २अ ब हैं।

इस आयत के संबंध में :

लम्ब भुजा = ४अ^2 ब^2 − (अ^2 − ब^2)^2; आधार = ४अ ब (अ^2 − ब^2);

कर्ण = ४अ^2 ब^2 + (अ^2 − ब^2) अथवा (अ^2 + ब^2)^2

इन दो आयतों की सहायता से, इष्ट क्षेत्रफल की भुजाओं, कर्णों, आदि के मापों को गाथा ९१½ के नियमानुसार प्राप्त किया जाता है। वे ये हैं—

आधार = लम्ब भुजाओं का योग = ८अ^2 ब^2 + ४अ^2 ब^2 − (अ^2 − ब^2)^2

ऊपरी भुजा = बड़ी लम्ब भुजा − छोटी लम्ब भुजा = ८अ^2 ब^2 − {४अ^2 ब^2 − (अ^2 − ब^2)^2}
　　= (अ^2 + ब^2)^2

बाजू की कोई एक भुजा = छोटा कर्ण = (अ^2 + ब^2)^2

आधार का छोटा खंड = छोटी लम्ब भुजा = ४अ^2 ब^2 − (अ^2 − ब^2)^2

लम्ब = दो कर्णों में से बड़ा कर्ण = ४अ ब (अ^2 + ब^2)

क्षेत्रफल = बड़े आयत का क्षेत्रफल = ८अ^2 ब^2 × ४अ ब (अ^2 − ब^2)

यहाँ देखा सकता है कि ऊपरी भुजा का माप बाजू की भुजाओं में से कोई भी एक के बराबर है। इस प्रकार, तीन भुजाओं वाला इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र प्राप्त होता है।

(१०३½) निम्नलिखित बीजीय निरूपण से नियम स्पष्ट हो जावेगा—

अत्रोद्देशकः

एकद्विकद्विकत्रिकजन्ये चोत्थाप्य विषमचतुरश्रे ।
मुखभूभुजावलम्बककर्णाबाधाधनानि वद ॥ १०४½ ॥

पुनरपि विषमचतुरश्रानयनसूत्रम्—

ह्रस्वश्रुतिकृतिगुणितो ज्येष्ठभुजः कोटिरपि धरा वदनम् ।
कर्णाभ्यां संगुणितावुभयभुजावल्पभुजकोटी ॥ १०५½ ॥
ज्येष्ठभुजकोटिवियुतिर्द्विधाल्पभुजकोटिताडिता युक्ता ।
ह्रस्वभुजकोटियुतिगुणपृथुकोट्याल्पश्रुतिघ्नकौ कर्णौ ॥ १०६½ ॥
अल्पश्रुतिहृतकर्णाल्पकोटिभुजसंहती पृथग्लम्बौ ।
तद्भुजयुतिवियुतिगुणात्पदमाबाधे फलं श्रुतिगुणार्धम् ॥ १०७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१ और २ तथा २ और ३ बीजों को लेकर, दो आकृतियाँ प्राप्त कर, विषम चतुर्भुज के संबंध में ऊपर की भुजा, आधार, बाजू की भुजाओं, लम्बों, कर्णों, आधार के खंडों और क्षेत्रफल के मापों को बतलाओ ॥१०४½॥

विषम चतुर्भुज के संबंध में भुजाओं के माप आदि को प्राप्त करने के लिए दूसरा नियम—

दो प्राप्त आयतों में छोटी आकृति के कर्ण के वर्ग को, अलग-अलग, आधार और बड़े आयत की लंब भुजा द्वारा गुणित करने से विषम इष्ट चतुर्भुज के आधार और ऊपरी भुजा के माप उत्पन्न होते हैं। छोटे आयत का आधार और लम्ब भुजा, प्रत्येक उत्तरोत्तर, उपरोक्त आयत क्षेत्रों के प्रत्येक के कर्ण द्वारा गुणित होकर क्रमशः इष्ट चतुर्भुज की दो पार्श्व भुजाओं को उत्पन्न करते हैं। बड़ी आकृति (आयत) के आधार और लम्ब भुजा का अंतर, अलग-अलग दो स्थानों में रखा जाकर, छोटी आकृति के आधार और लम्ब भुजा द्वारा गुणित किया जाता है। इस क्रिया के दो परिणामी गुणनफल अलग-अलग उस गुणनफल में जोड़े जाते हैं, जो छोटे आयत के आधार और लंब भुजा के योग को बड़े आयतको लम्ब भुजा से गुणित करने पर प्राप्त होता है। इस प्रकारप्राप्त दो योग जब छोटे आयत के कर्ण द्वारा गुणित किये जाते हैं, तो इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के दो कर्णों के माप प्राप्त होते हैं। इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के कर्णों को अलग-अलग छोटे आयत के कर्ण द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफलों को क्रमशः छोटे आयत की लम्ब भुजा और आधार द्वारा गुणित किया जाता है। परिणामी गुणनफल इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के लंबों के मापों को उत्पन्न करते हैं। इन दो लंबों में (आधार और ऊपरी भुजा छोड़कर) उपर्युक्त दो भुजाओं के मानों को अलग-अलग जोड़ा जाता है। बड़ी भुजा, बड़े लम्ब में और छोटी भुजा छोटे लंब में। इन लंबों और भुजाओं के अंतर भी इसी क्रम में प्राप्त किये जाते हैं। उपर्युक्त योग क्रमशः इन अंतरों द्वारा गुणित किये जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों के वर्गमूल इष्ट चतुर्भुज संबंधी आधार के खंडों के मानों को उत्पन्न करते हैं। इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के कर्णों के गुणनफल की आधी राशि उसका क्षेत्रफल होती है ॥१०५½–१०७½॥

मानलो दिये गये बीजों के दो कुलक (sets) अ, ब और स, द हैं। तब विभिन्न इष्ट तत्व निम्नलिखित होंगे—

बाजू की भुजाएँ = २ अ ब (स² + द²) (अ² + ब²) और (अ² − ब²) (स² + द²) (अ² + ब²)
आधार = २ स द (अ² + ब²) (अ² + ब²)

एकस्माज्जन्यायतचतुरश्रादि्द्वसमत्रिभुजानयनसूत्रम्—
कर्णौ भुजद्वयं स्याद्बाहुर्द्विगुणीकृतो भवेद्भूमिः।
कोटिरवलम्बकोऽयं द्विसमत्रिभुजे धनं गणितम् ॥ १०८½ ॥

केवल एक जन्य आयत क्षेत्र की सहायता से समद्विबाहु त्रिभुज प्राप्त करने के लिये नियम—

दिये गये बीजों की सहायता से संरचित आयत के दो कर्ण इष्ट समद्विबाहु त्रिभुज की दो बराबर भुजाएँ हो जाते हैं। आयत का आधार दो द्वारा गुणित होकर इष्ट त्रिभुज का आधार बन जाता है। आयत की लंब भुजा, इष्ट त्रिभुज का शीर्ष से आधार पर गिराया हुआ लम्ब होती है। उस आयत का क्षेत्रफल, इष्ट त्रिभुज का क्षेत्रफल होता है ॥१०८½॥

ऊपरी भुजा $= (\text{स}^2 - \text{द}^2)(\text{अ}^2 + \text{ब}^2)(\text{अ}^2 + \text{ब}^2)$

कर्ण $= \{(\text{अ}^2 - \text{ब}^2) \times २\,\text{स}\,\text{द} + (\text{स}^2 - \text{द}^2)\,२\,\text{अ}\,\text{ब}\} \times (\text{अ}^2 + \text{ब}^2)$; और

$\{(\text{अ}^2 - \text{ब}^2)(\text{स}^2 - \text{द}^2) + ४\,\text{अ}\,\text{ब}\,\text{स}\,\text{द}\} \times (\text{अ}^2 + \text{ब}^2)$

लम्ब $= \{(\text{अ}^2 - \text{ब}^2) \times २\,\text{स}\,\text{द} + (\text{स}^2 - \text{द}^2)\,२\,\text{अ}\,\text{ब}\} \times २\,\text{अ}\,\text{ब}$; और

$\{(\text{अ}^2 - \text{ब}^2)(\text{स}^2 - \text{द}^2) + ४\,\text{अ}\,\text{ब}\,\text{स}\,\text{द}\} \times (\text{अ}^2 - \text{ब}^2)$

खंड अवधाएँ $= \{(\text{अ}^2 - \text{ब}^2) \times २\,\text{स}\,\text{द} + (\text{स}^2 - \text{द}^2) \times २\,\text{अ}\,\text{ब}\}(\text{अ}^2 - \text{ब}^2)$; और

$\{(\text{अ}^2 - \text{ब}^2)(\text{स}^2 - \text{द}^2) + ४\,\text{अ}\,\text{ब}\,\text{स}\,\text{द}\} \times २\,\text{अ}\,\text{ब}.$

(१०५½–१०७½) गाथा १०३½ के नोट में कथित मान यहाँ भी भुजाओं आदि के लिये दिये गये हैं; केवल वे कुछ भिन्न विधि से कहे गये हैं। १०३½ वीं गाथा के ही प्रतीक लेकर—

कर्ण $= [\{२\,\text{स}\,\text{द} - (\text{स}^2 - \text{द}^2)\}\,२\,\text{अ}\,\text{ब} + \{२\,\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^2 - \text{ब}^2)\}(\text{स}^2 - \text{द}^2)] \times (\text{अ}^2 + \text{ब}^2)$;

और $[\{२\,\text{स}\,\text{द} - (\text{स}^2 - \text{द}^2)\}(\text{अ}^2 - \text{ब}^2) + \{२\,\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^2 - \text{ब}^2)\}(\text{स}^2 - \text{द}^2)] \times (\text{अ}^2 + \text{ब}^2)$।

$$\text{लम्ब} = \frac{[\{२\,\text{स}\text{द} - (\text{स}^2 - \text{द}^2)\} \times २\,\text{अ}\,\text{ब} + \{२\,\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^2 - \text{ब}^2)\}(\text{स}^2 - \text{द}^2)](\text{अ}^2 + \text{ब}^2)}{(\text{अ}^2 + \text{ब}^2)} \times (\text{अ}^2 - \text{ब}^2);$$

$$\text{और} \quad \frac{[\{२\text{स}\,\text{द} - (\text{स}^2 - \text{द}^2)\}(\text{अ}^2 - \text{ब}^2) + \{२\text{अ}\,\text{ब} + (\text{अ}^2 - \text{ब}^2)\}(\text{स}^2 - \text{द}^2)](\text{अ}^2 + \text{ब}^2)}{(\text{अ}^2 + \text{ब}^2)} \times २\,\text{अ}\,\text{ब}।$$

उपर्युक्त चार बीजवाक्य १०३½ वीं गाथा में दिये गये कर्णों और लंबों के मापों के रूप में प्रह्रासित किये जा सकते हैं। यहाँ आधार के खंडों के माप, खंड की संवादी भुजा और लंब के वर्गों के अन्तर के वर्गमूल को निकालने पर प्राप्त किये जा सकते हैं।

(१०८½) इस नियम का मूल आधार इस प्रकार निकाला जा सकता है:—मानलो अ ब स द एक आयत है और अ द, इ तक बढ़ाई जाती है ताकि अ द = द इ। इ स को जोड़ो। अ स इ एक समद्विबाहु त्रिभुज है जिसकी भुजाएँ आयत के कर्णों के माप के बराबर हैं, और जिसका क्षेत्रफल आयत के क्षेत्रफल के बराबर है।
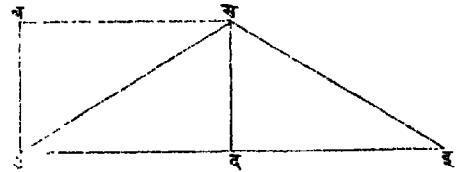
पार्श्व आकृति से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जावेगा।

अत्रोद्देशकः

त्रिकपञ्चकबीजोत्थद्विसमत्रिभुजस्य गणक बाहू द्वौ ।
भूमिमवलम्बकं च प्रगणय्याचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥ १०९½ ॥

विषमत्रिभुजक्षेत्रस्य कल्पनाप्रकारस्य सूत्रम्—

जन्यभुजार्धं छित्त्वा केनापिच्छेदलब्धजं चाभ्याम् ।
कोटियुतिर्भूः कर्णौ भुजौ भुजा लम्बका विषमे ॥ ११०½ ॥

अत्रोद्देशकः

हे द्वित्रिबीजकस्य क्षेत्रभुजार्धेन चान्यमुत्थाप्य ।
तस्माद्विषमत्रिभुजे भुजभूम्यवलम्बकं ब्रूहि ॥ १११½ ॥

इति जन्यव्यवहारः समाप्तः ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणितज्ञ, ३ और ५ को बीज लेकर उनकी सहायता से प्राप्त समद्विबाहु त्रिभुज के संबंध में दो बराबर भुजाओं, आधार और लंब के मापों को शीघ्र ही गणना कर बताओ ॥१०९½॥

विषम त्रिभुज की रचना करने की विधि के लिये नियम—

दिये गये बीजों से प्राप्त आयत के आधार को आधी राशि को मन से चुने हुए गुणनखंड द्वारा भाजित करते हैं। भाजक और भजनफल की इस क्रिया में बीज मानकर दूसरा आयत प्राप्त करते हैं। इन दो आयतों की लम्ब भुजाओं का योग इष्ट विषम त्रिभुज के आधार का माप होता है। उन दो आयतों के दो कर्ण इष्टत्रिभुज की दो भुजाओं के माप होते हैं। इन दो आयतों में से किसी एक का आधार इष्ट त्रिभुज के लंब का माप होता है ॥११०½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

२ और ३ को बीज लेकर उनसे प्राप्त आयत तथा उस आयत के आधे आधार से प्राप्त दूसरा आयत संरचित कर, मुझे इस क्रिया की सहायता से विषम त्रिभुज की भुजाओं, आधार और लंब के मापों को बतलाओ ॥१११½॥

इस प्रकार, क्षेत्र गणित व्यवहार में जन्य व्यवहार नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

(११०½) पार्श्वलिखित रचना से नियम स्पष्ट हो जावेगा—

मानलो अ ब स द और इ फ ग ह दो ऐसे जन्य आयत हैं कि आधार अ द = आधार इ ह। ब अ को क तक इतना बढ़ाओ कि अ क = इ फ हो। यह सरलता पूर्वक दिखाया जा सकता है कि द क = ह ग और त्रिभुज ब द क का आधार ब क = ब अ + इ फ, जो आयतों की लंब भुजायें कहलाती हैं। त्रिभुज की भुजायें उन्हीं आयतों के कर्णों के बराबर होती हैं।
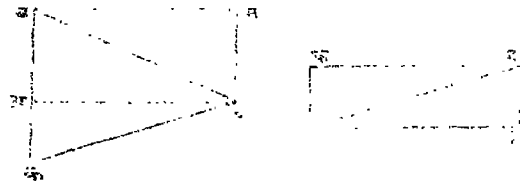
पैशाचिकव्यवहारः

इतः परं पैशाचिकव्यवहारमुदाहरिष्यामः ।

समचतुरश्रक्षेत्रे वा आयतचतुरश्रक्षेत्रे वा क्षेत्रफले रज्जुसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले बाहुसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले कर्णसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले रज्ज्वर्धसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले बाहोस्तृतीयांशसंख्यया समे सति, क्षेत्रफले कर्णसंख्यायाश्चतुर्थांशसंख्यया समे सति, द्विगुणितकर्णस्य त्रिगुणितबाहोश्च चतुर्गुणितकोटेश्च रज्जोस्संयोगसंख्यां द्विगुणीकृत्य तद्द्विगुणितसंख्यया क्षेत्रफले समाने सति, इत्येवमादीनां क्षेत्राणां कोटिभुजाकर्णक्षेत्रफलरज्जुषु इष्टराशिद्वयसाम्यस्य चेष्टराशिद्वयस्यान्योन्यमिष्टगुणकारगुणितफलवत्क्षेत्रस्य भुजाकोटिसंख्यानयनस्य सूत्रम्—

स्वगुणेष्टेन विभक्ताः स्वेष्टानां गणक गणितगुणितेन ।
गुणिता भुजा भुजाः स्युः समचतुरश्रादिजन्यानाम् ॥ ११२½ ॥

पैशाचिक व्यवहार (अत्यन्त जटिल प्रश्न)

इसके पश्चात् हम पैशाचिक विषय का प्रतिपादन करेंगे ।

समायत (वर्ग) अथवा आयत के संबंध में आधार और लंब भुजा का संख्यात्मक मान निकालने के लिये नियम जब कि लंब भुजा, आधार, कर्ण, क्षेत्रफल और परिमिति में कोई भी दो मन से समान चुन लिये जाते हैं, अथवा जब क्षेत्र का क्षेत्रफल वह गुणनफल होता है जो मन से चुने हुए गुणकों (multipliers) द्वारा क्रमशः उपर्युक्त तत्वों में से कोई भी दो राशियों को गुणित करने पर प्राप्त होता है : अर्थात्—समायत (वर्ग) अथवा आयत के सम्बन्ध में आधार और लंब भुजा का संख्यात्मक मान निकालने के लिए नियम जब कि क्षेत्र का क्षेत्रफल मान में परिमिति के तुल्य होता है; अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) आधार के बराबर होता है, अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) परिमिति के मापकी अर्द्धराशियों के तुल्य होता है; अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) आधार की एक तिहाई राशि के बराबर होता है; अथवा जब (क्षेत्र का क्षेत्रफल) उस द्विगुणित राशि के तुल्य होता है जो उस राशि को दुगुनी करने पर प्राप्त होती है, और जिसे कर्ण की दुगुनी राशि, आधार की तिगुनी राशि, लब भुजा की चौगुनी राशि और परिमिति इत्यादि को जोड़ने पर परिणाम स्वरूप प्राप्त करते हैं —

किसी मन से चुनी हुई इष्ट आकृति के आधार के माप को (परिणामी) चुने हुए ऐसे गुणनखंड द्वारा भाजित करने पर, जिसका गुणा आधार से करने पर मन से चुनी हुई इष्ट आकृति का क्षेत्रफल उत्पन्न होता है), अथवा ऐसी मन से चुनी हुई इष्ट आकृति के आधार को ऐसे गुणनखंड से गुणित करने पर, (कि जिसके दिये गये क्षेत्र के क्षेत्रफल में गुणा करने पर इष्ट प्रकार का परिणाम प्राप्त होता है) इष्ट समभुज चतुरश्र तथा अन्य प्रकार की प्राप्त आकृतियों के आधारों के माप उत्पन्न होते हैं ॥११२½॥

(११२½) गाथा ११३½ में दिया गया प्रथम प्रश्न हल करने पर नियम स्पष्ट हो जावेगा—
यहाँ प्रश्न में वर्ग की भुजा का माप तथा क्षेत्रफल का मान निकालना है, जब कि क्षेत्रफल परिमिति के बराबर है। मानलो ५ है भुजा जिसकी ऐसा वर्ग लिया जावे तो परिमिति २० होगी और क्षेत्रफल २५ होगा। वह गुणनखंड जिससे परिमिति के माप २० को गुणित करने पर क्षेत्रफल २५ हो जावे $\frac{5}{4}$ है। यदि ५, वर्ग की मन से चुनी हुई भुजा $\frac{5}{4}$ द्वारा भाजित की जावे, तो इष्ट चतुर्भुज की भुजा उत्पन्न होती है।

अत्रोद्देशकः

रज्जुर्गणितेन समा समचतुरश्रस्य का तु भुजसंख्या ।
अपरस्य बाहुसदृशं गणितं तस्यापि मे कथय ॥ ११३½ ॥
कर्णो गणितेन समः समचतुरश्रस्य को भवेद्बाहुः ।
रज्जुर्द्विगुणोऽन्यस्य क्षेत्रस्य धनाच्च मे कथय ॥ ११४½ ॥
आयतचतुरश्रस्य क्षेत्रस्य च रज्जुतुल्यमिह गणितम् ।
गणितं कर्णेन समं क्षेत्रस्यान्यस्य को बाहुः ॥ ११५½ ॥
कस्यापि क्षेत्रस्य त्रिगुणो बाहुर्धनाच्च को बाहुः ।
कर्णश्चतुर्गुणोऽन्यः समचतुरश्रस्य गणितफलात् ॥ ११६½ ॥
आयतचतुरश्रस्य श्रवणं द्विगुणं त्रिसंगुणो बाहुः ।
कोटिश्चतुर्गुणा तै रज्जुयुतैर्द्विगुणितं गणितम् ॥ ११७½ ॥
आयतचतुरश्रस्य क्षेत्रस्य च रज्जुरत्र रूपसमः ।
कोटिः को बाहुर्वा शीघ्रं विगणय्य मे कथय ॥ ११८½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वर्ग क्षेत्र के संबंध में परिमिति का संख्यात्मक माप क्षेत्रफल के माप के बराबर है । आधार का संख्यात्मक माप क्या है ? उसी प्रकार की दूसरी आकृति के संबंध में क्षेत्रफल का माप आधार के माप के बराबर है । उस आकृति के संबंध में आधार का माप बतलाओ ॥ ११३½ ॥ किसी समायत (वर्ग) क्षेत्र के संबंध में कर्ण का माप क्षेत्रफल के माप के बराबर है । आधार का माप क्या हो सकता है ? दूसरी उसी प्रकार की आकृति के संबंध में परिमिति का माप, क्षेत्रफल के माप का दुगुना है । आधार का माप बतलाओ ॥ ११४½ ॥ आयत क्षेत्र के संबंध में यहाँ क्षेत्रफल का माप परिमिति के माप के तुल्य है, और दूसरे उसी प्रकार के क्षेत्र के संबंध में क्षेत्रफल का संख्यात्मक माप कर्ण के माप के बराबर है । प्रत्येक दशा में आधार का माप क्या है ? ॥ ११५½ ॥ किसी वर्ग क्षेत्र के संबंध में आधार का संख्यात्मक मान क्षेत्रफल के माप से तिगुना है । दूसरे वर्ग क्षेत्र के संबंध में कर्ण का संख्यात्मक मान क्षेत्रफल के माप से चौगुना है । इनमें से प्रत्येक दशा में आधार का माप क्या है ? ॥ ११६½ ॥ किसी आयत क्षेत्र में कर्ण के माप से दुगुनी राशि, आधार से तिगुनी राशि तथा लंब भुजा से चौगुनी राशि लेकर उन में परिमिति का माप जोड़ा जाता है । इस प्राप्त योगफल से दुगुनी राशि क्षेत्रफल का संख्यात्मक माप होती है । आधार का माप बतलाओ ॥ ११७½ ॥ आयत क्षेत्र के संबंध में परिमिति का संख्यात्मक मान १ है । गणना के पश्चात्

यह नियम दूसरी रीति भी निर्दिष्ट करता है जो व्यावहारिक रूप में उसी प्रकार है । वह गुणनखंड जिससे क्षेत्रफल २५ को गुणित किया जाता है, ताकि वह परिमिति के माप २० के बराबर हो जावे, ⅘ है । यदि मन से चुनी हुई आकृति की भुजा (जो माप में ५ मान ली गई है) को इस गुणनखंड ⅘ से गुणित किया जावे तो इष्ट आकृति की भुजा का माप प्राप्त होता है ।

कर्णो द्विगुणो बाहुस्त्रिगुणः कोटिश्चतुर्गुणा मिश्रः।
रज्ज्वा सह तत्क्षेत्रस्यायतचतुरश्रकस्य रूपसमः॥ ११९½॥

पुनरपि जन्यायतचतुरश्रक्षेत्रस्य बीजसंख्यानयने करणसूत्रम्—

कोट्यूनकर्णदलतत्कर्णान्तरमुभययोश्च पदे।
आयतचतुरश्रस्य क्षेत्रस्येयं क्रिया जन्ये॥ १२०½॥

अत्रोद्देशकः

आयतचतुरश्रस्य च कोटिः पञ्चाशदधिकपञ्च भुजा।
साष्टाचत्वारिंशत्त्रिसप्ततिः श्रुतिरथात्र के बीजे॥ १२१½॥

इष्टकल्पितसङ्ख्याप्रमाणवत्कर्णसहितक्षेत्रानयनसूत्रम्—

यद्यत्क्षेत्रं जातं बीजैः संस्थाप्य तस्य कर्णेन।
इष्टं कर्णं विभजेल्लाभगुणाः कोटिदोः कर्णाः॥ १२२½॥

मुझे शीघ्र बतलाओ कि लम्ब भुजा और आधार के माप क्या-क्या हैं? ॥ ११८½ ॥ आयत क्षेत्र के संबंध में कर्ण से दुगुनी राशि, आधार से तिगुनी राशि और लंब से चौगुनी राशि, इन सबको जोड़ कर, जब परिमिति के माप में जोड़ते हैं, तो योग फल १ हो जाता है। आधार का माप बतलाओ ॥११९½॥

प्राप्त आयत क्षेत्र के संबंध में बीजों का निरूपण करने वाली संख्या को निकालने की रीति संबंधी नियम—

आयत क्षेत्र के संबंध में, उत्पन्न करने वाले बीजों को निकालने की क्रिया में, (१) लंब द्वारा ह्रासित कर्ण की अर्द्ध राशि तथा (२) इस राशि और कर्ण का अंतर, इनके द्वारा निरूपित दो राशियों का वर्गमूल निकालना पड़ता है॥ १२०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

आयत क्षेत्र के संबंध में लंब भुजा ५५ है, आधार ४८ है, और कर्ण ७३ है। यहाँ बीज क्या-क्या हैं? ॥१२१½॥

इष्ट कल्पित संख्यात्मक प्रमाण के कर्ण वाले आयत क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

दिये गये बीजों की सहायता से प्राप्त विभिन्न आकृतियों में से प्रत्येक लिख लिये (स्थापित किये) जाते हैं, और उसके कर्ण के माप के द्वारा दिया गया कर्ण का माप भाजित किया जाता है। इस आकृति की लंब भुजा, आधार और कर्ण, यहाँ प्राप्त हुए भजनफल द्वारा गुणित होकर, इष्ट क्षेत्र की लंब भुजा, आधार और कर्ण को उत्पन्न करते हैं।

(१२०½) इस अध्याय की ९५½ वीं गाथा का नियम आयत क्षेत्र के कर्ण अथवा लंब अथवा आधार से बीजों को प्राप्त करने की रीति प्रदर्शित करता है। परन्तु इस गाथा का नियम आयत के लंब और कर्ण से बीजों को प्राप्त करने के विषय में रीति निरूपित करता है। वर्णित की हुई रीति निम्नलिखित सर्वसमिका (identity) पर आधारित है—

$$\sqrt{\frac{अ^2+ब^2-(अ^2-ब^2)}{2}} = ब; \text{ और } \sqrt{अ^2+ब^2-\frac{अ^2+ब^2-(अ^2-ब^2)}{2}} = अ,$$

जहाँ $अ^2+ब^2$ कर्ण का माप है, $अ^2-ब^2$ आयत की लम्ब-भुजा का माप है। अ और ब इष्ट बीज हैं।

(१२२½) यह नियम इस सिद्धान्त पर आधारित है कि समकोण त्रिभुज की भुजाएं कर्ण की अनुपाती होती हैं। यहाँ कर्ण के उसी मापके लिये भुजाओं के मानों के विभिन्न कुलक (sets) हो सकते हैं।

अत्रोद्देशकः

एकद्विकद्विकत्रिकचतुष्कसप्तैकसाष्टकानां च ।
गणक चतुर्णां शीघ्रं बीजैरुत्थाप्य कोटिभुजाः ॥ १२३½ ॥
आयतचतुरश्राणां क्षेत्राणां विषमबाहुकानां च ।
कर्णोऽत्र पञ्चषष्टिः क्षेत्राण्याचक्ष्व कानि स्युः ॥ १२४½ ॥

इष्टजन्यायतचतुरश्रक्षेत्रस्य रज्जुसंख्यां च कर्णसंख्यां च ज्ञात्वा तज्जन्यायतचतुरश्रक्षेत्रस्य भुजकोटिसंख्यानयनसूत्रम्—

कर्णकृतौ द्विगुणायां रज्ज्वर्धकृतिं विशोध्य तन्मूलम् ।
रज्ज्वर्धे संक्रमणीकृते भुजा कोटिरपि भवति ॥ १२५½ ॥

अत्रोद्देशकः

परिधिः स चतुस्त्रिंशत् कर्णश्चात्र त्रयोदशो दृष्टः ।
जन्यक्षेत्रस्यास्य प्रगणय्याचक्ष्व कोटिभुजौ ॥ १२६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

हे गणितज्ञ, दिये गये बीजों की सहायता से, ऐसे चार आयत क्षेत्रों की लंब भुजाएँ और आधारों के मानों को शीघ्र बतलाओ, जिनके क्रमशः १ और २, २ और ३, ४ और ७, तथा १ और ८ बीज हैं, तथा जिनके आधार भिन्न भिन्न हैं। (इस प्रश्न में) यहाँ कर्ण का मान ६५ है। इस दशामें, इष्ट क्षेत्रों के मापों को बतलाओ ॥ १२३½–१२४½ ॥

जिसकी परिमिति का माप और कर्ण का माप ज्ञात है ऐसे जन्य आयत क्षेत्र के आधार और उसकी लम्ब भुजा के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

कर्ण के वर्ग को २ से गुणित करो। परिणामी गुणनफल में से परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग को घटाओ। तब परिणामी अंतर के वर्गमूल को प्राप्त करो। यदि यह वर्गमूल आधी परिमिति के साथ संक्रमण क्रिया में लाया जाय, तो इष्ट आधार और लम्ब भुजा भी उत्पन्न होती हैं ॥ १२५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस दशामें परिमिति ३४ है, और कर्ण १३ है। इस जन्य आकृति के संबंध में लंब भुजा और आधार के मापों को गणना के बाद बतलाओ ॥ १२६½ ॥

(१२५½) यदि किसी आयत की भुजाएं अ और ब द्वारा प्ररूपित हों, तो $\sqrt{\text{अ}^2 + \text{ब}^2}$ कर्ण का माप होता है और परिमिति का माप २अ + २ब होता है। यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि

$$\left\{ \frac{२\text{अ} + २\text{ब}}{२} + \sqrt{२\left(\sqrt{\text{अ}^2 + \text{ब}^2}\right)^2 - \left(\frac{२\text{अ} + २\text{ब}}{२}\right)^2} \right\} \div २ = \text{अ}; \text{ और}$$

$$\left\{ \frac{२\text{अ} + २\text{ब}}{२} - \sqrt{२\left(\sqrt{\text{अ}^2 + \text{ब}^2}\right)^2 - \left(\frac{२\text{अ} + २\text{ब}}{२}\right)^2} \right\} \div २ = \text{ब}।$$

ये दो सूत्र वर्णित रीति का यहां बीजीय रूप से निरूपण करते हैं।

क्षेत्रफलं कर्णसंख्यां च ज्ञात्वा भुजकोटिसंख्यानयनसूत्रम्—

कर्णकृतौ द्विगुणीकृतगणितं हीनाधिकं कृत्वा ।
मूलं कोटिभुजौ हि ज्येष्ठे ह्रस्वेन संक्रमणे ॥ १२७½ ॥

अत्रोद्देशकः

आयतचतुरश्रस्य हि गणितं षष्टिस्त्रयोदशास्यापि ।
कर्णस्तु कोटिभुजयोः परिमाणे श्रोतुमिच्छामि ॥ १२८½ ॥

क्षेत्रफलसंख्यां रज्जुसंख्यां च ज्ञात्वा आयतचतुरश्रस्य भुजकोटिसंख्यानयनसूत्रम्—

रज्ज्वर्धवर्गराशेर्गणितं चतुराहतं विशोध्याथ ।
मूलेन हि रज्ज्वर्धे संक्रमणे सति भुजाकोटी ॥ १२९½ ॥

अत्रोद्देशकः

सप्ततिशतं तु रज्जुः पञ्चशतोत्तरसहस्रमिष्टधनम् ।
जन्यायतचतुरश्रे कोटिभुजौ मे समाचक्ष्व ॥ १३०½ ॥

जब आकृति का क्षेत्रफल और कर्ण का मान ज्ञात हो, तब आधार और लम्ब भुजा के संख्यात्मक मानों को प्राप्त करने के लिये नियम—

क्षेत्रफल के माप से दुगनी राशि कर्ण के वर्ग में से घटाई जाती है। वह कर्ण के वर्ग में जोड़ी भी जाती है। इस प्रकार प्राप्त अंतर और योग के वर्गमूलों से इष्ट लंब भुजा और आधार के माप प्राप्त हो सकते हैं, जब कि वर्गमूलों में से बड़ी राशि के साथ छोटी (वर्गमूल राशि) के संबंध में संक्रमण क्रिया की जावे ॥१२७½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी आयतक्षेत्र के संबंध में क्षेत्रफलका माप ६० है, और कर्ण का माप १३ है। मैं तुमसे लम्ब भुजा और आधार के मापों को सुनने का इच्छुक हूँ ॥१२८½॥

जब आयत क्षेत्र के क्षेत्रफल का तथा परिमिति का संख्यात्मक माप दिया गया हो, तब उस आकृति के संबंध में आधार और लम्ब भुजा के संख्यात्मक मानों को प्राप्त करने के लिये नियम—

परिमिति की अर्द्धराशि के वर्ग में से ४ द्वारा गुणित क्षेत्रफल का माप घटाया जाता है। तब इस परिणामी अंतर के वर्गमूल के साथ परिमिति की अर्द्धराशि के सम्बन्ध में संक्रमण क्रिया करने से इष्ट आधार और लंबभुजा सचमुच में प्राप्त होती है। ॥१२९½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी प्राप्त आयत क्षेत्र में परिमिति का माप १७० है। दिये गये क्षेत्र का माप १५०० है। लंब भुजा और आधार के मानों को बतलाओ ॥१३०½॥

(१२७½) गाथा १२५½ वीं के नोट के समान ही प्रतीक लेकर यहाँ दिया गया नियम निम्नलिखित रूप में निरूपित होता है:—दशानुसार

$$\left\{\sqrt{(\sqrt{अ^2+ब^2})^2+२\,अ\,ब} \pm \sqrt{(\sqrt{अ^2+ब^2})^2-२\,अ\,ब}\right\} \div २ = अ \text{ अथवा } ब$$

(१२९½) यहाँ भी, $\left\{\frac{२\,अ+२\,ब}{२} \pm \sqrt{\left(\frac{२\,अ+२\,ब}{२}\right)^2 - ४\,अ\,ब}\right\} \div २ = अ$ अथवा ब, जैसी दशा हो।

आयतचतुरश्रक्षेत्रद्वये रज्जुसंख्यायां सदृक्षायां सत्यां द्वितीयक्षेत्रफलात् प्रथमक्षेत्रफले द्विगुणिते सति, अथवा क्षेत्रद्वयेऽपि क्षेत्रफले सदृशे सति प्रथमक्षेत्रस्य रज्जुसंख्याया अपि द्वितीयक्षेत्ररज्जुसंख्यायां द्विगुणायां सत्याम्, अथवा क्षेत्रद्वये प्रथमक्षेत्ररज्जुसंख्याया अपि द्वितीयक्षेत्रस्य रज्जुसंख्यायां द्विगुणायां सत्यां द्वितीयक्षेत्रफलादपि प्रथमक्षेत्रफले द्विगुणे सति, तत्तत्क्षेत्रद्वयस्यानयनसूत्रम्—

स्वाल्पहृतरज्जुधनहृतकृतिरिष्टघ्नैव कोटिःस्यात्।
व्येका दोस्तुल्यफलेऽन्यत्राधिकगणितगुणितेष्टम् ॥ १३१½ ॥
व्येकं तदूनकोटिः त्रिगुणा दोः स्यादथान्यस्य ।
रज्ज्वर्धवर्गराशेरिति पूर्वोक्तेन सूत्रेण ।
तद्गणितरज्जुमितितः समानयेत्तद्भुजाकोटी ॥ १३३ ॥

इष्ट आयत क्षेत्रों के क्रमिक युग्मों को प्राप्त करने के लिये नियम (१) जब कि परिमिति के संख्यात्मक माप बराबर हैं, और प्रथम आकृति का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है; अथवा (२) जब कि दोनों आकृतियों के क्षेत्रफल बराबर हैं, और दूसरी आकृति की परिमिति का संख्यात्मक माप प्रथम आकृति की परिमिति से दुगना है; अथवा (३) जब कि दो क्षेत्रों के संबंध में दूसरी आकृति की परिमिति का संख्यात्मक माप, प्रथम आकृति की परिमिति से दुगुना है, और प्रथम आकृतिका क्षेत्रफल दूसरी आकृति के क्षेत्रफल से दुगुना है—

दो इष्ट आयत क्षेत्रों संबंधी परिमितियों तथा क्षेत्रफलों की दी गई निष्पत्तियों में बड़ी संख्याओं को उनकी संवादी छोटी संख्याओं द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी भजनफलों को एक दूसरे से परस्पर गुणित कर वर्गित किया जाता है। यही राशि जब दिये गये मन से चुने गुणकार (multiplier) द्वारा गुणित की जाती है, तब लंबभुजा का मान उत्पन्न होता है। और उस दशा में जब कि दो इष्ट आकृतियों के क्षेत्रफल बराबर हों, यह लंब भुजा का माप एक द्वारा ह्रासित होकर, आधार का माप बन जाता है। परंतु दूसरी दशा में जब कि इष्ट आकृतियों के क्षेत्रफल बराबर नहीं होते, तब बड़ी निष्पत्ति संख्या जो क्षेत्रफलों से संबंधित होती है, दिये गये मन से चुने गुणकार द्वारा गुणित की जाती है और परिणामी गुणनफल १ द्वारा ह्रासित किया जाता है। ऊपर प्राप्त लंब भुजा इस परिणामी राशि द्वारा ह्रासित की जाती है, और तब ३ द्वारा गुणित की जाती है। इस प्रकार आधार का माप प्राप्त होता है। तत्पश्चात् दो इष्ट चतुर्भुज क्षेत्रों में से दूसरे चतुर्भुज के माप को प्राप्त करने के लिए, ज्ञात क्षेत्रफल और परिमिति की सहायता से, गाथा १२९½ में दिये गये नियमानुसार उसका आधार तथा लंब निकालना पड़ते हैं ॥१३१½–१३३॥

(१३१½–१३३) यदि प्रथम आयत की दो आसन्न भुजाएँ क और ख हों, तथा दूसरे आयत की दो आसन्न भुजाएँ अ और ब हों, तो इस नियम में दी गई तीन प्रकार की समस्याओं में कथित दशाओं को इस प्रकार से प्ररूपित किया जा सकता है—

(१) क + ख = अ + ब; क ख = २ अ ब

(२) २ (क + ख) = अ + ब; क ख = अ ब

(३) २ (क + ख) = अ + ब; क ख = २ अ ब

इस नियम में दिया गया हल केवल १३४–१३६ गाथाओं में दिये गये प्रश्नों की विशेष दशाओं के लिये ही उपयुक्त दिखाई देता है।

अत्रोद्देशकः

असमन्यासायामक्षेत्रे द्वे द्वावथेष्टगुणकारः ।
प्रथमं गणितं द्विगुणं रज्जू तुल्ये किमत्र कोटिभुजे ॥ १३४ ॥
आयतचतुरश्रे द्वे क्षेत्रे द्वयमेवगुणकारः । गणितं सदृशं रज्जुर्द्विगुणा प्रथमात् द्वितीयस्य ॥१३५॥
आयतचतुरश्रे द्वे क्षेत्रे प्रथमस्य धनमिह द्विगुणम् ।
द्विगुणा द्वितीयरज्जुस्तयोर्भुजां कोटिमपि कथय ॥ १३६ ॥

द्विसमत्रिभुजक्षेत्रयोः परस्पररज्जुधनसमानसंख्ययोरिष्टगुणकगुणितरज्जुधनवतोर्वा द्विसमत्रिभुजक्षेत्रद्वयानयनसूत्रम्—
रज्जुकृतिघ्नान्योन्यधनाल्पाप्तं षड्द्विघ्नमल्पमेकोनम् ।
तच्छेषं द्विगुणाल्पं बीजे तज्जन्ययोर्भुजादयः प्राग्वत् ॥ १३७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो चतुर्भुज क्षेत्र हैं जिनमें से प्रत्येक असमान लंबाई और चौड़ाई वाला है। दिया गया गुणकार २ है। प्रथम क्षेत्र का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है, और दोनों में परिमितियाँ बराबर हैं। इस प्रश्न में लंब भुजाएँ और आधार क्या-क्या हैं ?॥१३४॥ दो आयत क्षेत्र हैं और दिया गया गुणकार भी २ है। उनके क्षेत्रफल बराबर हैं परंतु दूसरे क्षेत्र की परिमिति पहिले की परिमिति से दुगुनी है। उनकी लंब भुजाएँ और आधारों को निकालो ॥१३५॥ दो आयत क्षेत्र दिये गये हैं। प्रथम का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है। दूसरी आकृति की परिमिति पहिले की परिमिति से दुगुनी है। उनके आधारों और लंब भुजाओं के मानों को प्राप्त करो ॥ १३६ ॥

ऐसे समद्विबाहु त्रिभुजों के युग्म को प्राप्त करने के लिये नियम, जिनकी परिमितियाँ और क्षेत्रफल आपस में बराबर हों अथवा एक दूसरे के अपवर्त्य हों—

इष्ट समद्विबाहु त्रिभुजों की परिमितियों के निष्पत्तिरूप मानों के वर्गों में इन त्रिभुजों के क्षेत्रफल के निष्पत्तिरूप मानों द्वारा एकान्तर गुणन किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त दो गुणनफलों में से बड़ा छोटे के द्वारा विभाजित किया जाता है। तथा अलग से दो के द्वारा भी गुणित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों में से छोटा गुणनफल १ के द्वारा ह्रासित किया जाता है। बड़ा गुणनफल और ह्रासित छोटा गुणनफल ऐसे आयतक्षेत्र के संबंध में दो बीजों की संरचना करते हैं, जिनसे इष्ट त्रिभुजों में से एक प्राप्त किया जाता है। उपर्युक्त इन दो बीजों के अंतर और इन बीजों में छोटे की दुगुनी राशि : ये दोनों ऐसे आयत क्षेत्र के संबंध में बीजों की संरचना करते हैं, जिनसे दूसरा इष्ट त्रिभुज प्राप्त किया जाता है। अपने क्रमवार बीजों की सहायता से बनी हुई दो आयताकार आकृतियों में से, इष्ट त्रिभुजों संबंधी भुजाएँ और अन्य बातें ऊपर समझाये अनुसार प्राप्त की जाती हैं ॥१३७॥

---

(१३७) दो समद्विबाहु त्रिभुजों की परिमितियों की निष्पत्ति अ : ब हो, और उनके क्षेत्रफलों की निष्पत्ति स : द हो, तब नियमानुसार, $\frac{६ब^२ स}{अ^२ द}$ और $\frac{२ब^२ स}{अ^२ द} - १$ तथा $\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} + १$ और $\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} - २$; ये बीजों के दो कुलक (sets) हैं, जिनकी सहायता से दो समद्विबाहु त्रिभुजों के विभिन्न

अत्रोद्देशकः

द्विसमत्रिभुजक्षेत्रद्वयं तयोः क्षेत्रयोःसमं गणितम् ।
रज्जू समे तयोःस्यात् को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १३८ ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे प्रथमस्य धनं द्विसंगुणितम् ।
रज्जुः समा द्वयोरपि को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १३९ ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे द्वे रज्जुर्द्विगुणिता द्वितीयस्य ।
गणिते द्वयोःसमाने को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १४० ॥
द्विसमत्रिभुजक्षेत्रे प्रथमस्य धनं द्विसंगुणितम् ।
द्विगुणा द्वितीयरज्जुः को बाहुः का भवेद्भूमिः ॥ १४१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो समद्विबाहु त्रिभुज हैं । उनका क्षेत्रफल एक सा है । उनकी परिमितियाँ भी बराबर हैं । भुजाओं और आधारों के मान क्या क्या हैं ? ॥ १३८ ॥ दो समत्रिबाहु त्रिभुज हैं । पहिले का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है । उन दोनों की परिमितियाँ एक सी हैं । भुजाओं और आधारों के मान क्या क्या हैं ? ॥ १३९ ॥ दो समद्विबाहु त्रिभुज हैं । दूसरे त्रिभुज की परिमिति पहिले त्रिभुज की परिमिति से दुगुनी है । उन दो त्रिभुजों के क्षेत्रफल बराबर हैं । भुजाओं और आधारों के माप क्या क्या हैं ? ॥ १४० ॥ दो समद्विबाहु त्रिभुज दिये गये हैं । प्रथम त्रिभुज का क्षेत्रफल दूसरे के क्षेत्रफल से दुगुना है, और दूसरे की परिमिति पहिले की परिमिति से दुगुनी है । भुजाओं और आधारों के माप क्या क्या हैं ? ॥ १४१ ॥

इष्ट तत्त्वों को प्राप्त कर सकते हैं । इस अध्याय की १०८½ वीं गाथा के अनुसार, इन बीजों से निकाली गई भुजाओं और ऊँचाइयों के मापों को जब क्रमशः परिमितियों की निष्पत्ति में पाई जाने वाली राशियों अ और ब द्वारा गुणित करते हैं, तब दो समद्विबाहु त्रिभुजों की इष्ट भुजाओ और ऊँचाइयों के माप प्राप्त होते हैं । वे निम्नलिखित हैं—

$$(१)\ \text{बराबर भुजा} = अ \times \left\{ \left(\frac{६ब^२ स}{अ^२ द}\right)^२ + \left(\frac{२ब^२ स}{अ^२ द} - १\right)^२ \right\} \quad \ldots\ldots,$$

$$\text{आधार} = अ \times २ \times २ \times \frac{६ब^२ स}{अ^२ द} \times \left(\frac{२ब^२ स}{अ^२ द} - १\right) \quad \ldots\ldots,$$

$$\text{ऊँचाई} = अ \times \left\{ \left(\frac{६ब^२ स}{अ^२ द}\right)^२ - \left(\frac{२ब^२ स}{अ^२ द} - १\right) \right\} \quad \ldots\ldots।$$

$$(२)\ \text{बराबर भुजा} = ब \times \left\{ \left(\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} + १\right)^२ + \left(\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} - २\right)^२ \right\} \quad \ldots\ldots,$$

$$\text{आधार} = ब \times २ \times २ \times \left(\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} + १\right) \times \left(\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} - २\right) \quad \ldots\ldots,$$

$$\text{ऊँचाई} = ब \times \left\{ \left(\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} + १\right)^२ - \left(\frac{४ब^२ स}{अ^२ द} - २\right)^२ \right\} \quad \ldots\ldots।$$

अब इन अर्हाओं (मानों) से सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि परिमितियों की निष्पत्ति अ : ब और क्षेत्रफलों की निष्पत्ति स : द है, जैसा कि आरम्भ में ले लिया गया था ।

एकद्वयादिगणनातीतसंख्यासु इष्टसंख्यामिष्टवस्तुनो भागसंख्यां परिकल्प्य तदिष्टवस्तुभागसंख्यायाः सकाशात् समचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च समवृत्तक्षेत्रानयनस्य च समत्रिभुजक्षेत्रानयनस्य चायतचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च सूत्रम् –

स्वसमीकृतावधृतिहृतधनं चतुर्घ्नं हि वृत्तसमचतुरश्रव्यासः ।
षड्गुणितं त्रिभुजायतचतुरश्रभुजार्धमपि कोटिः ॥ १४२ ॥

वर्ग, अथवा समवृत्त क्षेत्र, अथवा समत्रिभुज क्षेत्र, अथवा आयत को इनमें से किसी उपयुक्त आकृति के अनुपाती भाग के संख्यात्मक मान की सहायता से प्राप्त करने के लिये नियम, जब कि १, २ आदि से प्रारम्भ होने वाली प्राकृत संख्याओं में से कोई मन से चुनी हुई संख्या द्वारा उस दी गई उपर्युक्त आकृति के अनुपाती भाग के संख्यात्मक मान को उत्पन्न कराया जाता है—

(अनुपाती भाग के) क्षेत्रफल (का दिया गया माप हस्त में) लिए गए (समुचित रूप से) अनुरूपित (similarised) माप द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल यदि ४ के द्वारा गुणित किया जाय, तो वर्ग तथा वृत्त की भी चौड़ाई का माप उत्पन्न होता है। वही भजनफल, यदि ६ द्वारा गुणित किया जाय, तो समत्रिभुज तथा आयत क्षेत्र के आधार का माप भी उत्पन्न होता है। इसकी अर्द्धराशि आयत क्षेत्र की लंब भुजा का माप होती है ॥१४२॥

---

(१४२) इस नियम के अन्तर्गत दिये गये प्रश्नों के प्रकार में, वृत्त, या वर्ग, या समद्विबाहु त्रिभुज, या आयत मन चाहे समान भागों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक भाग, एक ओर परिमिति के किसी विशिष्ट भाग द्वारा सीमित होता है। जो अनुपात परिमिति के उस विशिष्ट भाग और पूरी परिमिति में होता है वही अनुपात उस सीमित भाग और आकृति के पूर्ण क्षेत्रफल में रहना चाहिए। वृत्त के संबंध में प्रत्येक खंड, त्रैत्रिज्य (sector) होता है; वर्गाकार आकृति होने पर और आयताकार आकृति होने पर वह भाग आयताकार होता है, तथा समत्रिभुज आकृति होने पर वह त्रिभुज होता है। प्रत्येक भाग का क्षेत्रफल और मूल परिमिति की लम्बाई दोनों दत्त महत्ता की होती हैं। यह गाथा, वृत्त के व्यास, वर्ग की भुजाओं, अथवा समत्रिभुज या आयत की भुजाओं का माप निकालने के लिये नियम का कथन करती है। यदि प्रत्येक भाग का क्षेत्रफल 'म' हो और संपूर्ण परिमिति की लम्बाई का कोई भाग 'न' हो तो नियम में दिये गये सूत्र ये हैं—

$\frac{म}{न} \times ४ =$ वृत्त का व्यास, अथवा वर्ग की भुजा;

और $\frac{म}{न} \times ६ =$ समत्रिभुज या आयत की भुजा;

और $\frac{म}{न} \times ६$ का अर्द्धभाग = आयत की लंब भुजा की लम्बाई।

अगले पृष्ठ पर दिये गये समीकारों से मूल आधार स्पष्ट हो जावेगा, जहाँ प्रत्येक आकृति के विभाजित खंडों की संख्या 'क' है। वृत्त की त्रिज्या अथवा अन्य आकृति संबंधी भुजा 'अ' है, और आयत की लंब भुजा 'ब' है।

अत्रोद्देशकः

स्वान्तःपुरे नरेन्द्रः प्रासादतले निजाङ्गनामध्ये ।
दिव्यं स रत्नकम्बलमपीपतत्तच्च समवृत्तम् ॥ १४३ ॥
ताभिर्देवीभिर्धृतमेभिर्भुजयोश्च मुष्टिभिर्लब्धम् ।
पञ्चदशैकस्याः स्युः कति वनिताः कोऽत्र विष्कम्भः ॥ १४४ ॥
समचतुरश्रभुजाः के समत्रिबाहौ भुजाश्चात्र ।
आयतचतुरश्रस्य हि तत्कोटिभुजौ सखे कथय ॥ १४५ ॥

क्षेत्रफलसंख्यां ज्ञात्वा समचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य चायतचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च सूत्रम्—

सूक्ष्मगणितस्य मूलं समचतुरश्रस्य बाहुरिष्टहृतम् ।
धनमिष्टफले स्यातामायतचतुरश्रकोटिभुजौ ॥ १४६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी राजा ने अपने अंतःपुर के प्रासाद में अपनी रानियों के बीच में ऊपर से फर्श पर समवृत्त आकार वाला उत्कृष्ट रत्नकंबल नीचे गिराया। वह उन देवियों द्वारा हाथ में ग्रहण कर लिया गया। उनमें से प्रत्येक ने अपनी दोनों भुजाओं की मुट्ठियों में पंद्रह, पंद्रह दंड क्षेत्रफल का कंबल ग्रहण कर रखा। यहाँ बतलाओ कि इस नरेन्द्र की वनितायें कितनी हैं, और वृत्ताकार कंबल का व्यास (विष्कंभ) कितना है ? यदि यह कंबल वर्गाकार हो, तो इसकी प्रत्येक भुजा कितने माप की होगी ? यदि वह समत्रिभुजाकार हो तो उसकी भुजा कितनी होगी ? हे मित्र, मुझे बतलाओ कि यदि कंबल आयताकार हो, तो उसकी लंब भुजा और आधार का माप क्या होगा ? ॥१४३–१४५॥

वर्गाकार आकृति अथवा आयताकार आकृति प्राप्त करने के लिये नियम, जबकि आकृति के क्षेत्रफल का संख्यात्मक मान ज्ञात हो—

दिये गये क्षेत्रफल के शुद्ध माप का वर्गमूल इष्ट वर्गाकार आकृति की भुजा का माप होता है। दिये गये क्षेत्रफल को मन से चुनी हुई (केवल क्षेत्रफल के वर्गमूल को छोड़कर) कोई भी राशि द्वारा भाजित करने पर परिणामी भजनफल और वह मन से चुनी हुई राशि आयत क्षेत्र के संबंध में क्रमशः आधार और लंब भुजा की रचना करती हैं ॥१४६॥

वृत्त की दशा में, $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{\pi\ अ^2}{२\pi\ अ}$, जहाँ $\pi = \frac{परिधि}{व्यास}$;

वर्ग की दशा में, $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{अ^2}{४अ}$;

समत्रिभुज की दशा में, $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{अ^2/_२}{३अ}$

आयत की दशा में, $\frac{क \times म}{क \times न} = \frac{अ \times ब}{२(अ + ब)}$, जहाँ $ब = \frac{अ}{२}$ लिया गया है।

अध्याय की ७ वीं गाथा में दिये गये नियम के अनुसार समभुजत्रिभुज के क्षेत्रफल का व्यावहारिक मान यहाँ उपयोग में लाया गया है। अन्यथा, इस नियम में दिया गया सूत्र ठीक सिद्ध नहीं होता।

(१४३–१४५) इस प्रश्न में मुट्ठीभर का अर्थ चार अंगुल प्रमाण होता है।

अत्रोद्देशकः

कस्य हि समचतुरश्रक्षेत्रस्य फलं चतुष्षष्टिः ।
फलमायतस्य सूक्ष्मं षष्टिः के वात्र कोटिभुजे ॥ १४७ ॥

इष्टद्विसमचतुरश्रक्षेत्रस्य सूक्ष्मफलसंख्यां ज्ञात्वा, इष्टसंख्यां गुणकं परिकल्प्य, इष्टसंख्याक्षुबीजाभ्यां जन्यायतचतुरश्रक्षेत्रं परिकल्प्य, तदिष्टद्विसमचतुरश्रक्षेत्रफलवदिष्टद्विसमचतुरश्रानयनसूत्रम्—

तद्धनगुणितेष्टकृतिर्जन्यधनोना भुजाहृता मुखं कोटिः ।
द्विगुणा समुखा भूर्दोर्लम्बः कर्णौ भुजे तदिष्टहृताः ॥ १४८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

६४ क्षेत्रफल वाली वर्गाकार आकृति वास्तव में कौन सी है ? आयत क्षेत्र के क्षेत्रफल का शुद्ध मान ६० है । बतलाओ कि यहाँ लंब भुजा और आधार के मान क्या क्या हैं ? ॥१४७॥

दो बराबर भुजाओं वाले ऐसे चतुर्भुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम, जिसे बीजों की सहायता से आयत क्षेत्र को प्राप्त करने पर और साथ ही किसी दी हुई संख्या को इष्ट गुणकार की तरह उपयोग में लाकर प्राप्त करते हैं, तथा जब (दो बराबर भुजाओंवाले) ऐसे चतुर्भुज क्षेत्र के क्षेत्रफल के बराबर ज्ञात सूक्ष्म क्षेत्रफल वाले चतुर्भुज का क्षेत्रफल होता है—

दिये गये गुणकार का वर्ग दिये गये क्षेत्रफल द्वारा गुणित किया जाता है । परिणामी गुणनफल, दिये गये बीजों से प्राप्त आयत के क्षेत्रफल द्वारा ह्रासित किया जाता है । शेषफल जब इस आयत के आधार द्वारा भाजित किया जाता है, तब ऊपरी भुजा का माप उत्पन्न होता है । प्राप्त आयत की लंब भुजा का मान, जब २ द्वारा गुणित होकर (पहिले ही) प्राप्त ऊपरी भुजा के मान में जोड़ा जाता है, तब आधार का मान उत्पन्न होता है । इस आयत क्षेत्र के आधार का मान ऊपरी भुजा के अंतरों से आधार पर गिराये गये लंब के समान होता है, तथा व्युत्पादित आयत क्षेत्र के कर्णों का मान भुजाओं के मान के समान होता है । इस प्रकार प्राप्त दो समान भुजाओं वाले चतुर्भुज के ये तत्त्व दिये गये गुणकार द्वारा भाजित किये जाते हैं, ताकि दो समान भुजाओं वाला इष्ट चतुर्भुज प्राप्त हो ॥१४८॥

---

(१४८) यहाँ दिये गये क्षेत्रफल और दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज की रचना संबंधी प्रश्न का विवेचन किया गया है । इस हेतु मन से कोई संख्या चुनी जाती है । दो बीजों का एक कुलक (set) भी दिया गया रहता है । इस नियम में वर्णित रीति दूसरी गाथा में दिये गये प्रश्न में प्रयुक्त करने पर स्पष्ट हो जावेगी । उल्लिखित बीज यहाँ २ और ३ हैं । दिया गया क्षेत्रफल ७ है, तथा मन से चुनी हुई संख्या ३ है ।

अत्रोद्देशकः

सूक्ष्मधनं सप्तेष्टं त्रिकं हि बीजे द्विके त्रिके दृष्टे ।
द्विसमचतुरश्रबाहु मुखभूम्यवलम्बकान् ब्रूहि ॥ १४९ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिये गये क्षेत्रफल का ठीक माप ७ है, मन से चुना हुआ गुणकार ३ है, और दत्त बीज २ और ३ हैं। दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की बराबर भुजाओं, ऊपरी भुजा, आधार और लंब के मानों को प्राप्त करो ॥१४९॥

नोट—आकृतियों के माप अनुमाप (scale) रहित हैं ।

सबसे पहिले इस अध्याय की ९०½ वीं गाथानुसार दिये गये बीजों की सहायता से आयत की रचना करते हैं। उस आयत की छोटी भुजा का माप ५ और बड़ी भुजा का माप १२ तथा कर्ण का माप १३ होता है। उसका क्षेत्रफल मान में ६० होता है। अब इस प्रश्न में दिये गये क्षेत्रफल को प्रश्न में दी गई मन से चुनी हुई संख्या के वर्ग द्वारा गुणित करते हैं, जिससे हमें $७ \times ३^२ = ६३$ प्राप्त होता है। इस ६३ में से हमें दिये गये बीजों से संरचित आयत का क्षेत्रफल ६० घटाना पड़ता है, जिससे ३ शेष प्राप्त होता है। ३ क्षेत्रफल वाला एक आयत बनाना पड़ता है, जिसकी एक भुजा बीजों से प्राप्त आयत की बड़ी भुजा के बराबर होती है। यह बड़ी भुजा माप में १२ है, इसलिये इस आयत की छोटी भुजा आकृति में दिखलाये अनुसार ¼ माप की होती है। बीजों से प्राप्त आयत के दो भाग कर्ण द्वारा प्राप्त करते हैं, जो दो त्रिभुज होते हैं। इन दो त्रिभुजों को, आकृति में दिखाये अनुसार, ¼ × १२ क्षेत्रफल वाले आयत के दोनों ओर जमाते हैं, ताकि लंबी भुजाएँ संपाती हों।

इस प्रकार अंत में हमें दो बराबर १३ मापवाली भुजाओं का चतुर्भुज प्राप्त होता है, जिसकी ऊपरी भुजा ¼ और आधार १०¼ होता है। इसकी सहायता से प्रश्न में इष्ट चतुर्भुज की भुजाओं के माप, मन से चुनी हुई संख्या ३ द्वारा, भुजाओं के माप १३, ¼, १३ और १०¼ को भाजित कर, प्राप्त कर सकते हैं।
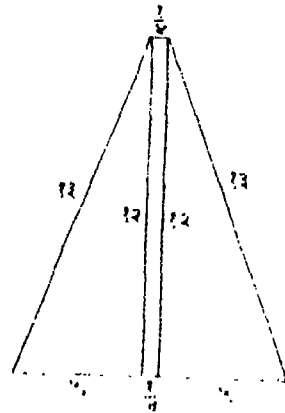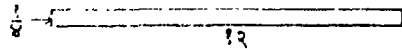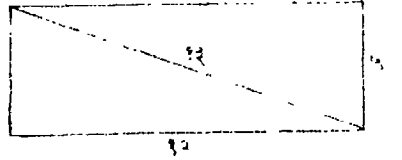
इष्टसूक्ष्मगणितफलवत्त्रिसमचतुरश्रक्षेत्रानयनसूत्रम्—

इष्टधनभक्तधनकृतिरिष्टयुतार्धं भुजा द्विगुणितेष्टम् ।
विभुजं मुखमिष्टाप्तं गणितं ह्यवलम्बकं त्रिसमजन्ये ॥ १५० ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि क्षेत्रस्य त्रिसमचतुर्बाहुकस्य सूक्ष्मधनम् ।
षण्णवतिरिष्टमष्टौ भूबाहुमुखावलम्बकानि वद ॥ १५१ ॥

तीन बराबर भुजाओं वाले ज्ञात क्षेत्रफल के चतुर्भुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम जब कि गुणक (multiplier) दिया गया हो—

दिये गये क्षेत्रफल के वर्ग को दिये गये गुणक के घन द्वारा भाजित किया जाता है। तब दिये गये गुणकार को परिणामी भजनफल में जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग की अर्द्धराशि बराबर भुजाओं में से किसी एक का माप देती है। दिया गया गुणक २ से गुणित होकर, और तब प्राप्त बराबर भुजा (जो अभी प्राप्त हुई है ऐसी समान भुजा) द्वारा ह्रासित होकर, ऊपरी भुजा का माप देता है। दिया गया क्षेत्रफल दिये गये गुणक द्वारा भाजित होकर, तीन बराबर भुजाओं वाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये गये समान लंबों में से किसी एक का मान देता है ॥१५०॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी ३ बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में क्षेत्रफल का शुद्ध मान ९६ है। दिया गया गुणक ८ है। आधार, भुजाओं, ऊपरी भुजा और लंब के मापों को बतलाओ ॥ १५१ ॥

---

(१५०) नियम में कथन है कि दिये गये क्षेत्रफल को मन से चुनी हुई दत्त संख्या द्वारा भाजित करने पर इष्ट आकृति संबंधी लंब प्राप्त होता है। क्षेत्रफल का मान, आधार और ऊपरी भुजा के योग की अर्द्धराशि तथा लंब के गुणनफल के बराबर होता है। इसलिये दी गई चुनी हुई संख्या ऊपरी भुजा और आधार के योग की अर्द्धराशि का निरूपण करती है। यदि अ ब स द तीन बराबर भुजाओं वाला चतुर्भुज है, और स इ, स से अ द पर गिराया गया लंब है, तो अ इ, अ द और ब स के योग की आधी होती है, और दी गई चुनी हुई संख्या के बराबर होती है। यह सरलता पूर्वक दिखाया जा सकता है कि $२ अ द \times अ इ = (स इ)^२ + (अ इ)^२$ ।

$$\therefore अ द = \frac{(स इ)^२ + (अ इ)^२}{२ अ इ} = \frac{(स इ)^२}{२ अ इ} + \frac{अ इ}{२} = \frac{\frac{(स इ^२ \times अ इ^२)}{(अ इ^३)}}{२} + अ इ$$

$$= \frac{\frac{(स इ \times अ इ)^२}{(अ इ)^३} + अ इ}{२}$$
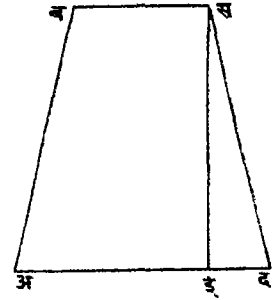
यहाँ स इ × अ इ = चतुर्भुज का दिया गया क्षेत्रफल है। यह अंतिम सूत्र, प्रश्न में तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज की कोई भी एक बराबर भुजा का मान निकालने के लिये दिया गया है।

सूक्ष्मफलसंख्यां ज्ञात्वा चतुर्भिरिष्टच्छेदैश्च विषमचतुरश्रक्षेत्रस्यमुखभूभुजाप्रमाणसंख्यानयनसूत्रम्—
धनकृतिरिष्टच्छेदैश्चतुर्भिराप्तैव लब्धानाम् ।
युतिदलचतुष्टयं तैरूना विषमाख्यचतुरश्रभुजसंख्या ॥ १५२ ॥

अत्रोद्देशकः

नवतिर्हि सूक्ष्मगणितं छेदः पञ्चैव नवगुणः ।
दशधृतिविंशतिषट्कृतिहतः क्रमाद्विषमचतुरश्रे ॥
मुखभूमिभुजासंख्या विगणय्य ममाशु संकथय ॥ १५३½ ॥

---

४ दिये गये भाजकों की सहायता से, जब कि इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल ज्ञात है, विषम चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा, आधार और अन्य भुजाओं के संख्यात्मक मान निकालने के लिये नियम—

दिया गया क्षेत्रफल का वर्ग अलग अलग चार दिये गये भाजकों द्वारा भाजित किया जाता है, और चार परिणामी भजनफलों को अलग-अलग लिखा जाता है। इन भजनफलों के योग की अर्द्धराशि को चार स्थानों में लिखा जाता है, और क्रम से ऊपर लिखे हुए भजनफलों द्वारा क्रमशः ह्रासित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त शेष, विषम चतुर्भुज की असमान नामक भुजाओं के संख्यात्मक मान को उत्पन्न करते हैं ॥ १५२ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

विषम चतुर्भुज के संबंध में क्षेत्रफल का शुद्ध माप ९० है। ५ को क्रमशः ९, १०, १८, २० और ३६ द्वारा गुणित करने पर चार दिये गये भाजकों की उत्पत्ति होती है। गणना के पश्चात् ऊपरी भुजा, आधार और अन्य भुजाओं के संख्यात्मक मानों को शीघ्र बतलाओ ॥ १५३-१५३½ ॥

---

(१५२) असमान भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्रफल पहिले ही बताया जा चुका है : $\sqrt{य (य-अ) (य-ब) (य-स) (य-द)}$ = चतुर्भुज का क्षेत्रफल, जहाँ य = परिमिति की अर्द्धराशि है, और अ, ब, स और द भुजाओं के माप हैं (इसी अध्याय की ५० वीं गाथा देखिये)। इस नियम के अनुसार क्षेत्रफल के मान को वर्गित कर, और तब चार मन से चुने हुए भाजकों द्वारा अलग-अलग भाजित करते हैं। यदि (य − अ) (य − ब) (य − स) (य − द) को ऐसे चार उपयुक्त चुने हुए भाजकों द्वारा भाजित किया जाय कि य − अ, य − ब, य − स और य − द भजनफल प्राप्त हों, तो इन भजनफलों को जोड़कर, और उनके योग को आधा करने पर, य प्राप्त होता है। यदि य को क्रम से य − अ, य − ब, य − स और य − द ह्रासित किया जाय, तो शेष क्रमशः विषम चतुर्भुज की भुजाओं के मानों की प्ररूपणा करते हैं।

सूक्ष्मगणितफलं ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलवत्समत्रिबाहुक्षेत्रस्य बाहुसंख्यानयनसूत्रम्—
गणितं तु चतुर्गुणितं वर्गीकृत्वा[1] भजेत् त्रिभिर्लब्धम् ।
त्रिभुजस्य क्षेत्रस्य च समस्य बाहोः कृतेर्वर्गम् ॥ १५४½ ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि समत्र्यश्रक्षेत्रस्य च गणितमुद्दिष्टम् ।
रूपाणि त्रीण्येव ब्रूहि प्रगणय्य मे बाहुम् ॥ १५५½ ॥

सूक्ष्मगणितफलसंख्यां ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलवद्द्विसमत्रिबाहुक्षेत्रस्य भुजभूम्यवलम्बकसंख्यानयनसूत्रम् —
इच्छाप्तधनेच्छाकृतियुतिमूलं दोः क्षितिर्द्विगुणितेच्छा ।
इच्छाप्तधनं लम्बः क्षेत्रे द्विसमत्रिबाहुजन्ये स्यात् ॥ १५६½ ॥

---

1. वर्गीकृत्वा के स्थान में वर्गीकृत्य होना चाहिए; पर इस रूप में वह छंद के उपयुक्त नहीं होता है।

सूक्ष्म रूप से ज्ञात क्षेत्रफल वाले समभुज त्रिभुज की भुजाओं के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये क्षेत्रफल की चौगुनी राशि वर्गित की जाती है। परिणामी राशि ३ द्वारा भाजित की जाती है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल समत्रिभुज की किसी एक भुजा के मान के वर्ग का वर्ग होता है ॥ १५४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समत्रिबाहु त्रिभुज के संबंध में दिया गया क्षेत्रफल केवल ३ है। उसकी भुजा का माप गणना कर बतलाओ ॥ १५५½ ॥

किसी दिये गये क्षेत्रफल के शुद्ध संख्यात्मक माप को ज्ञात कर, उसी शुद्ध क्षेत्रफल की त्रिभुजाकार आकृति की भुजाओं, आधार और लंब को निकालने के लिये नियम—

इस प्रकार से रचित होने वाले समद्विबाहु त्रिभुज के संबंध में, दिये गये क्षेत्रफल को मन से चुनी हुई राशि द्वारा भाजित करने से प्राप्त भजनफल के वर्ग में, मन से चुनी हुई राशि के वर्ग को जोड़ते हैं। योग का जब वर्गमूल निकाला जाता है, तब भुजा का मान उत्पन्न होता है; चुनी हुई राशि की दुगनी राशि आधार का माप देती है, और मन से चुनी हुई राशि द्वारा भाजित क्षेत्रफल लंब का माप उत्पन्न करता है ॥ १५६½ ॥

(१५४½) समत्रिभुज के क्षेत्रफल के लिये सूत्र यह है : क्षेत्रफल $= अ^2\sqrt{\frac{3}{16}}$, जहाँ भुजा का माप अ है। इसके द्वारा यहाँ दिया गया नियम प्राप्त किया जा सकता है।

(१५६½) इस प्रकार के दिये गये प्रश्नों में समद्विबाहु त्रिभुज के क्षेत्रफल की अर्हा (मान) और मन से चुने हुए आधार की आधी राशि दी गई रहती हैं। इन ज्ञात राशियों से लंब और भुजा के माप सरलतापूर्वक प्राप्त किये जा सकते हैं।

अत्रोद्देशकः

कस्यापि क्षेत्रस्य द्विसमत्रिभुजस्य सूक्ष्मगणितमिनाः।
श्रोणीच्छा कथय सखे भुजभूम्यवलम्बकानाशु ॥ १५७½ ॥

सूक्ष्मगणितफलसंख्यां ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलवद्विषमत्रिभुजानयनस्य सूत्रम्—
अष्टगुणितेष्टकृतियुतघनमिष्टपदहृदिष्टार्धम्।
भूः स्याद्भूनं द्विपदाहृतेष्टवर्गे भुजे च संक्रमणम् ॥ १५८½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समद्विबाहु त्रिभुज के संबंध में क्षेत्रफल का शुद्ध माप १२ है। मन से चुनी हुई राशि ३ है। हे मित्र, भुजाओं, आधार और लंब के मानों को शीघ्र बतलाओ ॥ १५७½ ॥

विषम भुजाओं वाले तथा दत्त शुद्ध माप के क्षेत्रफल वाले त्रिभुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

दिया गया क्षेत्रफल ८ द्वारा गुणित किया जाता है, और परिणामी गुणनफल में मन से चुनी हुई राशि की वर्गित राशि जोड़ी जाती है। इस प्रकार प्राप्त परिणामी योग के वर्गमूल को प्राप्त करते हैं। इस वर्गमूल का घन, मन से चुनी हुई संख्या तथा ऊपर प्राप्त वर्गमूल द्वारा भाजित किया जाता है। मन से चुनी हुई राशि की आधी राशि इष्ट त्रिभुज के आधार का माप होती है। पिछली क्रिया में प्राप्त भजनफल इस आधार के माप द्वारा ह्रासित किया जाता है। परिणामी राशि को, उपर्युक्त वर्गमूल, तथा २ द्वारा तथा भाजित (मन से चुनी हुई राशि के) वर्ग के संबंध में, संक्रमण क्रिया करने के उपयोग में लाते हैं। इस प्रकार भुजाओं के मान प्राप्त होते हैं ॥ १५८½ ॥

(१५८½) यदि त्रिभुजका क्षेत्रफल क्ष हो, और द मन से चुनी हुई संख्या हो, तो इस नियम के अनुसार इष्ट मानों को निम्न प्रकार प्राप्त करते हैं—

$$\frac{द}{२} = \text{आधार; और } \frac{(\sqrt{८क्ष + द^२})^३}{द\sqrt{८क्ष + द^२}} - \frac{द}{२} \pm \frac{द^२}{\sqrt{८क्ष + द^२}} = २(\text{भुजाएँ})।$$

जब किसी त्रिभुज का क्षेत्रफल और आधार दिये गये रहते हैं, तब शीर्ष का बिन्दुपथ आधार के समानान्तर रेखा होती है, और भुजाओं के मानों के अनेक कुलक (sets) हो सकते हैं। भुजाओं के किसी विशिष्ट कुलक के मानों को प्राप्त करने के लिए, यहाँ स्पष्टतः कल्पना कर ली गई है कि दो भुजाओं का योग आधार और दुगुनी ऊँचाई के योग के तुल्य होता है, अर्थात् $\frac{द}{२} + २\frac{क्ष}{द \div ४}$ होता है। इस कल्पना से इस अध्याय की ५० वीं गाथा में दिये गये साधारण सूत्र, { किसी त्रिभुज का क्षेत्रफल $= \sqrt{य(य-अ)(य-ब)(य-स)}$ }, से भुजाओं के माप के लिये ऊपर दिया गया सूत्र प्राप्त किया जा सकता है।

अत्रोद्देशकः

कस्यापि विषमबाहोस्त्र्यश्रक्षेत्रस्य सूक्ष्मगणितमिदम् ।
द्वे रूपे निर्दिष्टे त्रीणीष्टं भूमिबाहवः के स्युः ॥ १५९½ ॥

पुनरपि सूक्ष्मगणितफलसंख्यां ज्ञात्वा तत्फलवद्विषमत्रिभुजानयनसूत्रम्—

स्वाष्टहतात्सेष्टकृतेः कृतिमूलं चेष्टमितरदितरहृतम् ।
ज्येष्ठं स्वाल्पार्धोनं स्वल्पार्धं तत्पदेन चेष्टेन ॥ १६०½ ॥
क्रमशो हत्वा च तयोः संक्रमणे भूभुजौ भवतः ।
इष्टार्धमितरदोः स्याद्विषमत्रैकोणके क्षेत्रे ॥ १६१½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वे रूपे सूक्ष्मफलं विषमत्रिभुजस्य रूपाणि ।
त्रीणीष्टं भूदोषौ कथय सखे गणिततत्त्वज्ञ ॥ १६२½ ॥

सूक्ष्मगणितफलं ज्ञात्वा तत्सूक्ष्मगणितफलवत्समवृत्तक्षेत्रानयनसूत्रम्—

गणितं चतुरभ्यस्तं दशपदभक्तं पदं भवेद्व्यासः ।
सूक्ष्मं समवृत्तस्य क्षेत्रस्य च पूर्ववत्फलं परिधिः ॥ १६३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी असमान भुजाओं वाली त्रिभुजाकार आकृति के संबंध में यह बतलाया गया है कि शुद्ध क्षेत्रफल का माप २ है, और मन से चुनी हुई राशि ३ है। आधार का मान तथा भुजाओं का मान क्या है? ॥ १५९½ ॥

पुनः, विषम भुजाओं वाले तथा दत्त शुद्ध माप क्षेत्रफल वाले त्रिभुज क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये दूसरा नियम—

दिये गये क्षेत्रफल के माप में ८ का गुणा कर, और तब इसमें मन से चुनी हुई राशि के वर्ग को जोड़कर, प्राप्त योगफल का वर्गमूल प्राप्त किया जाता है। यह और मन से चुनी हुई राशि एक दूसरे के द्वारा भाजित की जाती हैं। इन भजनफलों में से बड़ा, छोटे भजनफल की अर्द्धराशि द्वारा ह्रासित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त शेष राशि और यह छोटे भजनफल की अर्द्धराशि क्रमशः ऊपर लिखित वर्गमूल और मन से चुनी हुई संख्या द्वारा गुणित की जाती हैं। इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों के संबंध में संक्रमण क्रिया करने पर आधार और भुजाओं में से किसी एक का मान प्राप्त होता है। मन से चुनी हुई राशि की आधी राशि विषम त्रिभुज की दूसरी भुजा की माप होती है ॥ १६०-१६१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

विषम त्रिभुज के संबंध में क्षेत्रफल का शुद्ध माप ३ है। हे गणितज्ञ सखे, आधार तथा भुजाओं के माप बतलाओ ॥ १६२½ ॥

दत्त सूक्ष्म क्षेत्रफल वाले, किसी समवृत्त क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये नियम—

सूक्ष्म क्षेत्रफल का माप ४ द्वारा गुणित कर, १० के वर्गमूल द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार परिणामी भजनफल के वर्गमूल को प्राप्त करने से व्यास का मान प्राप्त होता है। समवृत्त क्षेत्र के संबंध में, ऊपर समझाये अनुसार, क्षेत्रफल और परिधि का माप प्राप्त किया जाता है ॥ १६३½ ॥

(१६३½) इस गाथा में दिया गया नियम सूत्र, क्षेत्रफल $= \frac{द^२}{४} \times \sqrt{१०}$, जहाँ द वृत्त का व्यास है, से प्राप्त किया गया है।

अत्रोद्देशकः

समवृत्तक्षेत्रस्य च सूक्ष्मफलं पञ्च निर्दिष्टम् ।
विष्कम्भः को वास्य प्रगणय्य ममाशु तं कथय ॥ १६४½ ॥

व्यावहारिकगणितफलं च सूक्ष्मफलं च ज्ञात्वा तद्व्यावहारिकफलवत्तत्सूक्ष्मगणितफलवद्द्विसमचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य त्रिसमचतुरश्रक्षेत्रानयनस्य च सूत्रम्—
धनवर्गान्तरपदयुतिवियुतीष्टं भूमुखे भुजे स्थूलम् ।
द्विसमे सपदस्थूलात्पदयुतिवियुतीष्टपदहृतं त्रिसमे ॥ १६५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समवृत्त क्षेत्र के संबंध में क्षेत्रफल का शुद्ध माप ५ है । वृत्त का व्यास गणना कर शीघ्र बतलाओ ॥ १६४½ ॥

किसी क्षेत्रफल के व्यावहारिक तथा सूक्ष्म माप ज्ञात होने पर, दो समान भुजाओं वाले तथा तीन समान भुजाओं वाले उन क्षेत्रफलों के माप के चतुर्भुज क्षेत्रों को प्राप्त करने के लिये नियम—

दो समान भुजाओंवाले क्षेत्रफल के संबंध में, क्षेत्रफल के सन्निकट और सूक्ष्म मापों के वर्गों के अन्तर के वर्गमूल को प्राप्त करते हैं । इस वर्गमूल को मन से चुनी हुई राशि में जोड़ते हैं, तथा उसी मन से चुनी हुई राशि में से वही वर्गमूल घटाते हैं । आधार और ऊपरी भुजा को प्राप्त करने के लिये इस प्रकार प्राप्त राशियों को मन से चुनी हुई राशि के वर्गमूल से भाजित करना पड़ता है । इसी प्रकार, सन्निकट क्षेत्रफल में मन से चुनी हुई राशि का भाग देने पर समान भुजाओं का मान प्राप्त होता है ॥ १६५½ ॥

(१६५½) यदि 'रा' किसी दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के सन्निकट क्षेत्रफल को, और 'र' सूक्ष्म मान को प्ररूपित करते हों, और प मन से चुनी हुई संख्या हो, तो

$$\text{आधार} = \frac{\sqrt{\text{रा}^2 - \text{र}^2} + \text{प}}{\sqrt{\text{प}}}\text{; ऊपरी भुजा} = \frac{\text{प} - \sqrt{\text{रा}^2 - \text{र}^2}}{\sqrt{\text{प}}};$$

और प्रत्येक बराबर भुजाओं का मान $= \frac{\text{रा}}{\sqrt{\text{प}}}$ ।

यदि दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की भुजाओं के माप क्रमशः अ, ब, स, द हों, तो

$$\text{रा} = \frac{\text{अ}(\text{ब}+\text{द})}{2}\text{; प} = \left(\frac{\text{ब}+\text{द}}{2}\right)^2;$$

$$\text{और र} = \frac{\text{ब}+\text{द}}{2} \times \sqrt{\text{अ}^2 - \frac{(\text{ब}-\text{द})^2}{4}} \text{ ।}$$

आधार और ऊपरी भुजा के लिये ऊपर दिये गये सूत्र रा, र और प के इन मानों का प्रतिस्थापन करने पर सरलतापूर्वक संस्थापित किये जा सकते हैं । इसी प्रकार तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के संबंध में भी यह नियम ठीक सिद्ध होता है ।
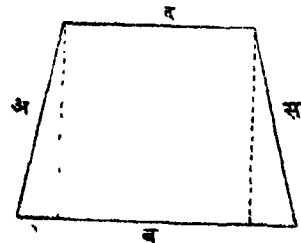
अत्रोद्देशकः

गणितं सूक्ष्मं पञ्च त्रयोदश व्यावहारिकं गणितम्।
द्विसमचतुरश्रभूमुखदोषः के षोडशेच्छा च ॥ १६६½ ॥

त्रिसमचतुरश्रस्योदाहरणम्।

गणितं सूक्ष्मं पञ्च त्रयोदश व्यावहारिकं गणितम्।
त्रिसमचतुरश्रबाहून् संचिन्त्य सखे ममाचक्ष्व ॥ १६७½ ॥

व्यावहारिकस्थूलफलं सूक्ष्मफलं च ज्ञात्वा तद्व्यावहारिकस्थूलफलवत् सूक्ष्मगणितफलवत्सम-त्रिभुजानयनस्य च समवृत्तक्षेत्रव्यासानयनस्य च सूत्रम्—

घनवर्गान्तरमूलं यत्तन्मूलाद्द्विसंगुणितम्।
बाहुस्त्रिसमत्रिभुजे समस्य वृत्तस्य विष्कम्भः ॥ १६८½ ॥

सन्निकट क्षेत्रफल का माप, मन से चुनी हुई राशि द्वारा भाजित होकर, भुजाओं के मान को उत्पन्न करता है।

तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की दशा में, ऊपर बतलाये हुए दो क्षेत्रफलों के वर्गों के अंतर के वर्गमूल को क्षेत्रफल के सन्निकट माप में जोड़ते हैं। इस परिणामी योग को विकल्पित राशि मानकर उसमें ऊपर बतलाये हुए वर्गमूल को जोड़ते हैं। पुनः, उसी विकल्पित राशि में से उक्त वर्गमूल को घटाते हैं। इस प्रकार प्राप्त राशियों में वर्गमूल का भाग अलग-अलग देकर, आधार और ऊपरी भुजा प्राप्त करते हैं। यहाँ भी क्षेत्रफल के व्यावहारिक माप को इस विकल्पित राशि के वर्गमूल द्वारा भाजित करने पर अन्य भुजाओं के माप प्राप्त होते हैं।

उदाहरणार्थ प्रश्न

सूक्ष्म क्षेत्रफल का माप ५ है, क्षेत्रफल का सन्निकट माप १३ है, और मन से चुनी हुई राशि १६ है। दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में आधार, ऊपरी भुजा और अन्य भुजा के मान क्या-क्या हैं? ॥ १६६½ ॥

तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र संबंधी एक उदाहरण—

क्षेत्रफल का सूक्ष्म रूप से शुद्ध माप ५ है, और क्षेत्रफल का व्यावहारिक माप १३ है। हे मित्र, सोचकर मुझे बतलाओ कि तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की भुजाओं के माप क्या-क्या हैं? ॥ १६७½ ॥

समत्रिबाहु त्रिभुज और समवृत्त के व्यास को प्राप्त करने के लिये नियम, जब कि उनके व्याव-हारिक और सूक्ष्म क्षेत्रफल के माप ज्ञात हों—

क्षेत्रफल के सन्निकट और सूक्ष्म रूप से ठीक मापों के वर्गों के अंतर के वर्गमूल के वर्गमूल को २ द्वारा गुणित किया जाता है। परिणाम, इष्ट समत्रिभुज की भुजा का माप होता है। वह, इष्ट वृत्त के व्यास का माप भी होता है ॥ १६८½ ॥

(१६८½) किसी समबाहुत्रिभुज के व्यावहारिक और सूक्ष्म क्षेत्रफल के मानों के लिये इस अध्याय की गाथा ७ और ५० के नियमों को देखिये।

अत्रोद्देशकः

स्थूलं धनमष्टादश सूक्ष्मं त्रिघनो नवाहतः करणिः ।
विगणय्य सखे कथय त्रिसमत्रिभुजप्रमाणं मे ॥ १६९½ ॥
पञ्चकृतेर्वर्गो दशगुणितः करणिर्भवेदिदं सूक्ष्मम् ।
स्थूलमपि पञ्चसप्ततिरेतत्को वृत्तविष्कम्भः ॥ १७०½ ॥

व्यावहारिकस्थूलफलं च सूक्ष्मगणितफलं च ज्ञात्वा तद्व्यावहारिकफलवत्तत्सूक्ष्मफलवद्द्विसमत्रिभुजक्षेत्रस्य भभुजाप्रमाणसंख्ययोरानयनस्य सूत्रम्—

फलवर्गान्तरमूलं द्विगुणं भूर्व्यावहारिकं बाहुः ।
भूम्यर्धमूलभक्ते द्विसमत्रिभुजस्य करणमिदम् ॥ १७१½ ॥

अत्रोद्देशकः

सूक्ष्मधनं षष्टिरिह स्थूलधनं पञ्चषष्टिरुद्दिष्टम् ।
गणयित्वा ब्रूहि सखे द्विसमत्रिभुजस्य भुजसंख्याम् ॥ १७२½ ॥

इष्टसंख्यावद्द्विसमचतुरश्रक्षेत्रं ज्ञात्वा तद्द्विसमचतुरश्रक्षेत्रस्य सूक्ष्मगणितफलसमानसूक्ष्मफलवदन्यद्द्विसमचतुरश्रक्षेत्रस्य भूभुजमुखसंख्यानयनसूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

व्यावहारिक क्षेत्रफल १८ है। क्षेत्रफल का सूक्ष्म रूप से शुद्ध माप $(३)^३$ को ९ से गुणित करने से प्राप्त राशि का वर्गमूल है। हे सखे, मुझे गणना के पश्चात् बतलाओ कि इष्ट समत्रिभुज की भुजा का माप क्या है? ॥ १६९½ ॥ क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप ६२५० का वर्गमूल है। क्षेत्रफल का सन्निकट माप ७५ है। ऐसे क्षेत्रफलों वाले समवृत्त के व्यास का माप बतलाओ ॥ १७०½ ॥

जब किसी क्षेत्रफल के व्यावहारिक और सूक्ष्म माप ज्ञात हों, तब ऐसे क्षेत्रफल के मापोंवाले समद्विबाहु त्रिभुज के आधार और भुजा के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

क्षेत्रफल के व्यावहारिक और सूक्ष्म मापों के वर्गों के अंतर के वर्गमूल की दुगुनी राशि को किसी समद्विबाहु त्रिभुज का आधार मान लेते हैं। दत्त व्यावहारिक क्षेत्रफल का माप बराबर भुजाओं में से किसी एक का माप मान लिया जाता है। आधार तथा भुजा के इन मानों को आधार के प्राप्त मान की अर्द्धराशि के वर्गमूल द्वारा भाजित करते हैं। तब इष्ट समद्विबाहु त्रिभुज का आधार और भुजा के इष्ट माप प्राप्त होते हैं। यह नियम समद्विबाहु त्रिभुज के संबंध में है ॥ १७१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यहाँ क्षेत्रफल का सूक्ष्म रूप से ठीक माप ६० है, और व्यावहारिक माप ६५ है। हे मित्र, गणना के पश्चात् बतलाओ कि इष्ट समद्विबाहु त्रिभुज की भुजाओं के संख्यात्मक माप क्या-क्या हैं ॥ १७२½ ॥

जब चुनी हुई संख्या और दो बराबर भुजाओं वाला चतुर्भुज क्षेत्र दिया गया हो, तब किसी ऐसे दूसरे दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र का आधार, ऊपरी भुजा और अन्य भुजाओं को निकालने के लिये नियम, जिसका सूक्ष्म क्षेत्रफल दिये गये दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के सूक्ष्म क्षेत्रफल के तुल्य हो—

लम्बकृताविष्टेनासमसंक्रमणीकृते भुजा ज्येष्ठा ।
ह्रस्वयुतिवियुति मुखभूयुतिदलितं तन्मुखे द्विसमचतुरश्रे ॥ १७३½ ॥

अत्रोद्देशकः

भूरिन्द्रा दोर्विश्वे वक्त्रं गतयोऽवलम्बको रवयः ।
इष्टं दिक् सूक्ष्मं तत्फलवद्द्विसमचतुरश्रमन्यत् किम् ॥ १७४½ ॥

यदि दिये गये दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के लंब का वर्ग दत्त विकल्पित संख्या के साथ विषम संक्रमण क्रिया करने के उपयोग में लाया जाता है, तो प्राप्त दो फलों में से बड़ा मान दो बराबर भुजाओंवाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र की बराबर भुजाओं में से किसी एक का मान होता है। दो बराबर भुजाओं वाले दिये गये चतुर्भुज की ऊपरी भुजा और आधार के मानों के योग की अर्द्धराशि को, क्रमशः, उपर्युक्त विषम संक्रमण में प्राप्त दो फलों में से छोटे फल द्वारा बढ़ाकर और ह्रासित करने पर दो बराबर भुजाओं वाले इष्ट चतुर्भुज क्षेत्र के आधार और ऊपरी भुजा के माप उत्पन्न होते हैं ॥ १७३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिये गये चतुर्भुज क्षेत्र का आधार १४ है, दो बराबर भुजाओं में से प्रत्येक का माप १३ है, ऊपरी भुजा ४ है, लम्ब १२ है, और दत्त विकल्पित संख्या १० है। दो बराबर भुजाओं वाला ऐसा कौन सा चतुर्भुज है, जिसके सूक्ष्म क्षेत्रफल का माप दिये गये चतुर्भुज के क्षेत्रफल के बराबर है? ॥ १७४½ ॥

(१७३½) इस नियम में ऐसे प्रश्न पर विचार किया गया है, जिसमें ऐसे दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र की रचना करना है, जिसका क्षेत्रफल किसी दूसरे दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के तुल्य हो, और जिसकी ऊपरी भुजा से आधार तक की लम्ब दूरी भी उसी के समान हो। मान लो दिये गये चतुर्भुज की बराबर भुजाएँ अ और स हैं, और ऊपरी भुजा तथा आधार क्रमशः ब और द हैं। यह भी मान लो कि लंब दूरी प है। यदि इष्ट चतुर्भुज की संवादी भुजाएँ $अ_1$, $ब_1$, $स_1$, $द_1$ हों, तो क्षेत्रफल और लम्ब दूरी, दोनों चतुर्भुजों के संबंध में बराबर होने से हमें यह प्राप्त होता है—

$$द_1 + ब_1 = द + ब \quad \ldots\ldots\ldots (1);$$

$$\text{और } अ_1^2 - \left(\frac{द_1 - ब_1}{2}\right)^2 = प^2 \ldots\ldots\ldots (2);$$

$$\text{अर्थात् } \left(अ_1 + \frac{द_1 - ब_1}{2}\right)\left(अ_1 - \frac{द_1 - ब_1}{2}\right) = प^2 ।$$

$$\text{मानलो } अ_1 - \frac{द_1 - ब_1}{2} = ना; \text{ तब } अ_1 + \frac{द_1 - ब_1}{2} = \frac{प^2}{ना},$$

$$\text{और } \left(अ_1 \times \frac{द_1 - ब_1}{2}\right) + \left(अ_1 - \frac{द_1 - ब_1}{2}\right) = \frac{प^2}{ना} + ना ।$$

$$\therefore \frac{\frac{प^2}{ना} + ना}{2} = अ_1, \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

द्विसमचतुरश्रक्षेत्रव्यावहारिकस्थूलफलसंख्यां ज्ञात्वा तद्व्यावहारिकस्थूलफले इष्टसंख्याविभागे कृते सति तद्द्विसमचतुरश्रक्षेत्रमध्ये तत्तद्भागस्य भूमिसंख्यानयनेऽपि तत्तत्स्थानावलम्बकसंख्यानयनेऽपि सूत्रम्—

खण्डयुतिभक्ततलमुखकृत्यन्तरगुणितखण्डमुखवर्गयुतम् ।
मूलमधस्तलमुखयुतदलहृतलब्धं च लम्बकः क्रमशः ॥१७५$\frac{1}{2}$ ॥

जब कोई दत्त व्यावहारिक माप वाला क्षेत्रफल किसी दी गई संख्या के भागों में विभाजित किया जाय, तब दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के उन विभिन्न भागों से आधारों के संख्यात्मक मानों तथा विभिन्न विभाजन बिन्दुओं से मापी गई भुजाओं के संख्यात्मक माप को निकालने के लिये नियम, जब कि दो भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के व्यावहारिक क्षेत्रफल का संख्यात्मक माप दिया गया हो—

दो बराबर भुजाओं वाले दिये गये चतुर्भुज क्षेत्र के आधार और ऊपरी भुजा के संख्यात्मक मानों के वर्गों के अंतर को इष्ट अनुपाती भागों के कुल मान द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल के द्वारा विभिन्न भागों के निष्पत्तियों के मान क्रमशः गुणित किये जाते हैं। प्राप्त गुणनफलों में से प्रत्येक में दिये गये चतुर्भुज की ऊपरी भुजा के माप का वर्ग जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग का वर्गमूल, प्रत्येक भाग के आधार के मान को उत्पन्न करता है। प्रत्येक भाग का क्षेत्रफल, आधार और ऊपरी भुजा के योग की अर्द्धराशि द्वारा भाजित होकर, इष्ट क्रम में लंब का माप उत्पन्न करता है, जो सन्निकट माप के लिये भुजा की तरह वर्ता जाता है ॥ १७५$\frac{1}{2}$ ॥

और $$\frac{\text{द}+\text{ब}}{2} \pm \frac{\frac{\text{प}^2}{\text{ना}} - \text{ना}}{2} = \frac{\text{द}_1 + \text{ब}_1}{2} \pm \left\{ \frac{\left(\text{अ}_1 + \frac{\text{द}_1 - \text{ब}_1}{2}\right) - \left(\text{अ}_1 - \frac{\text{द}_1 - \text{ब}_1}{2}\right)}{2} \right\}$$
$$= \text{द}_1 \text{ अथवा } \text{ब}_1 \ldots\ldots\ldots\ldots (४)$$

यहाँ 'ना' इष्ट अथवा दत्त विकल्पित संख्या है। तीसरे और चौथे सूत्र वे हैं, जो प्रश्न का साधन करने के नियम में दिये गये हैं।

(१७५$\frac{1}{2}$) यदि च छ ज झ दो बराबर भुजाओं वाला चतुर्भुज हो, और इफ, गह और कल चतुर्भुज को इस तरह विभाजित करते हों कि विभाजित भाग क्षेत्रफल के संबंध में क्रमशः म, न, प, ल के अनुपात में हों, तो इस नियम के अनुसार,

जब भुजा च छ=अ, छ ज=द, ज झ=स और झ च=ब है, तब

$$\text{इफ} = \sqrt{\frac{\text{द}^2 - \text{ब}^2}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}} \times \text{म} + \text{ब}^2} \;;$$

$$\text{गह} = \sqrt{\frac{\text{द}^2 - \text{ब}^2}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}} \times (\text{म}+\text{न}) + \text{ब}^2} \;;$$

$$\text{कल} = \sqrt{\frac{\text{द}^2 - \text{ब}^2}{\text{म}+\text{न}+\text{प}+\text{ख}} \times (\text{म}+\text{न}+\text{प}) + \text{ब}^2} \;;$$

इत्यादि ।

इसी प्रकार,
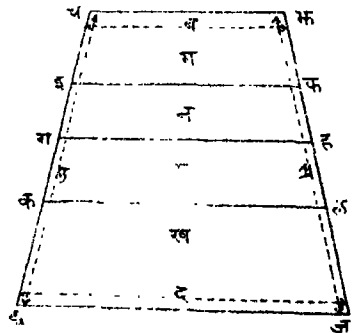
अत्रोद्देशकः

वदनं सप्तोक्तमधः क्षितिरेकाविंशतिः पुनस्त्रिंशत् ।
बाहू द्वाभ्यां भक्तं चैकैकं लब्धमत्र का भूमिः ॥ १७६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऊपरी-भुजा का माप ७ है, नीचे आधार का माप २१ है, और शेष भुजाओं में से प्रत्येक का माप ३० है। ऐसे क्षेत्र में अंतराविष्ट क्षेत्रफल ऐसे दो भागों में विभाजित किया जाता है कि प्रत्येक को एक (हिस्सा) प्राप्त होता है। यहाँ निकाले जाने वाले आधार का मान क्या है ? ॥ १७६½ ॥

$$चइ = \frac{\left(अ \times \frac{द+ब}{२} \right) \times \frac{म}{म+न+प+ख}}{\frac{इफ + चझ}{२}};$$

$$इग = \frac{\left(अ \times \frac{द+ब}{२} \right) \times \frac{न}{म+न+प+ख}}{\frac{गह + इफ}{२}};$$

$$गक = \frac{\left(अ \times \frac{द+ब}{२} \right) \times \frac{प}{म+न+प+ख}}{\frac{कल + गह}{२}};$$

इत्यादि।

यह सरलतापूर्वक दिखाया जा सकता है कि $\frac{चछ}{चइ} = \frac{छज - चझ}{इफ - चझ}$,

$$\therefore \frac{चछ (छज + चझ)}{चइ (इफ + चझ)} = \frac{(छज)^{२} - (चझ)^{२}}{(इफ)^{२} - (चझ)^{२}};$$

परन्तु, $\frac{चछ (छज + चझ)}{चइ (इफ + चझ)} = \frac{म+न+प+ख}{म}$;

$$\therefore \frac{(छज)^{२} - (चझ)^{२}}{(इफ)^{२} - (चझ)^{२}} = \frac{म+न+प+ख}{म};$$

$$\therefore (इफ)^{२} = \frac{म (\overline{छज}^{२} - \overline{चझ}^{२})}{म+न+प+ख} + (चझ)^{२} = \frac{द^{२} - ब^{२}}{म+न+प+ख} \times म + ब^{२};$$

और $इफ = \sqrt{\frac{द^{२} - ब^{२}}{म+न+प+ख} \times म + ब^{२}}$ । इसी प्रकार अन्य सूत्र सत्यापित किये जा सकते हैं।

यद्यपि इस पुस्तक में ग्रंथकार ने केवल यह कहा है कि भजनफल को भागों के मानों से गुणित करना पड़ता है, तथापि वास्तव में भजनफल को प्रत्येक दशा में भागों के मानों से ऊपरी भुजा तक की प्ररूपण करने वाली संख्या के द्वारा गुणित करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, पिछले पृष्ठ की आकृति में

भूमिर्द्विषष्टिशतमथ चाष्टादश वदनमत्र संदृष्टम् ।
लम्बश्चतुरशतीदं क्षेत्रं भक्तं नरैश्चतुर्भिश्च ॥ १७७½ ॥
एकद्विकत्रिकचतुःखण्डान्येकैकपुरुषलब्धानि ।
प्रक्षेपतया गणितं तलमप्यवलम्बकं ब्रूहि ॥ १७८½ ॥
भूमिरशीतिर्वदनं चत्वारिंशच्चतुर्गुणा षष्टिः ।
अवलम्बकप्रमाणं त्रीण्यष्टौ पञ्च खण्डानि ॥ १७९½ ॥

स्तम्भद्वयप्रमाणसंख्यां ज्ञात्वा तत्स्तम्भद्वयाग्रे सूत्रद्वयं बद्ध्वा तत्सूत्रद्वयं कर्णाकारेण इतरेतरस्तम्भमूलं वा तत्स्तम्भमूलमतिक्रम्य वा संस्पृश्य तत्कर्णाकारसूत्रद्वयस्पर्शनस्थानादारभ्य अधःस्थितभूमिपर्यन्तं तन्मध्ये एकं सूत्रं प्रसार्य तत्सूत्रप्रमाणसंख्यैव अन्तरावलम्बकसंज्ञा भवति । अन्तरावलम्बकस्पर्शनस्थानादारभ्य तस्यां भूम्यामुभयपार्श्वयोः कर्णाकारसूत्रद्वयस्पर्शनपर्यन्तमाबाधासंज्ञा स्यात् । तदन्तरावलम्बकसंख्यानयनस्य आबाधासंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

स्तम्भौ रज्ज्वन्तरभूहृतौ स्वयोगाहृतौ च भूगुणितौ ।
आबाधे ते वामप्रक्षेपगुणोऽन्तरवलम्बः ॥ १८०½ ॥

दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के आधार का माप १६२ है, और ऊपरी भुजा का माप १८ है। दो भुजाओं में से प्रत्येक का मान ४०० हैं। इस प्रकार, इस आकृति से घिरा हुआ क्षेत्रफल, ४ मनुष्यों में विभाजित किया जाता है। मनुष्यों को प्राप्त भाग क्रमशः १, २, ३, और ४ के अनुपात में हैं। इस अनुपाती विभाजन के अनुसार प्रत्येक दशा में क्षेत्रफल, आधार और दो बराबर भुजाओं में से एक के मानों को बतलाओ ॥ १७७½–१७८½ ॥ दिये गये चतुर्भुज क्षेत्र के आधार का माप ८० है, ऊपरी भुजा ४० है, तथा दो बराबर भुजाओं में से प्रत्येक ४ × ६० है। हिस्से क्रमशः ३, ८ और ५ के अनुपात में हैं। इष्ट भागों के क्षेत्रफल, आधारों और भुजाओं के मानों को निकालो ॥ १७९½ ॥

ज्ञात ऊँचाई वाले दो स्तंभों में से प्रत्येक के ऊपरी सिरे में दो धागे (सूत्र) बँधे हुए हैं। इन दो धागों में से प्रत्येक इस तरह फैला हुआ है कि वह सम्मुख स्तंभ के मूल भाग को कर्ण के रूप में स्पर्श करता है, अथवा दूसरे स्तंभ के पार जाकर भूमि को स्पर्श करता है। उस बिन्दु से, जहाँ दो कर्णाकार धागे मिलते हैं, एक और दूसरा धागा इस तरह लटकाया जाता है, कि वह लंब रूप होकर भूमि को स्पर्श करता है। इस अंतिम धागे के माप का नाम अंतरावलम्बक या भीतरी लंब होता है। जहाँ पर यह लंबरूप धागा भूमि को स्पर्श करता है, उस बिन्दु से किसी भी ओर प्रस्थान करने वाली रेखा उन बिन्दुओं तक जाकर (जहाँ कर्ण धागे भूमि को स्पर्श करते हैं) आबाधा अथवा आधार का खंड कहलाती है। ऐसे लम्ब तथा आबाधों के मानों को प्राप्त करने के नियम—

प्रत्येक स्तम्भ के माप को स्तम्भ के मूल से लेकर कर्ण धागे के भूमि स्पर्श बिन्दु तक के बीच की लम्बाई वाले आधार को माप द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त प्रत्येक भजनफल, भजनफलों के योग द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी भजनफलों को संपूर्ण आधार के माप द्वारा गुणित करने पर क्रम से आबाधाओं के माप प्राप्त होते हैं। ये आबाधाओं के माप, क्रमशः विलोम क्रम में, ऊपर दिये गये प्रथम बार में प्राप्त भजनफलों द्वारा गुणित होने पर, प्रत्येक दशा में अंतरावलंबक (भीतरी लम्ब) को उत्पन्न करते हैं ॥ १८०½ ॥

ग ह का मान निकालने के लिये $\frac{द^2 - ब^2}{म + न + प + ल}$ को

· केवल 'न' से ही नहीं वरन् म + न से भी गुणित करना पड़ता है।

अत्रोद्देशकः

षोडशहस्तोच्छ्रायौ स्तम्भाववनिश्च षोडशोद्दिष्टौ ।
आबाधान्तरसंख्यामत्राप्यवलम्बकं ब्रूहि ॥ १८१½ ॥
स्तम्भैकस्योच्छ्रायः षट्त्रिंशद्विंशतिर्द्वितीयस्य ।
भूमिर्द्वादश हस्ताः काबाधा कोऽयमवलम्बः ॥ १८२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दिये गये स्तंभ की ऊँचाई १६ हस्त है। उस आधार की लम्बाई जो उन दो बिन्दुओं के बीच की होती है, जहाँ धागे भूमि को स्पर्श करते हैं, १६ हस्त देखी गई है। इस दशा में आधार के खंडों (आबाधाओं) और अंतरावलम्बक के संख्यात्मक मानों को निकालो ॥ १८१½ ॥ एक स्तंभ की ऊँचाई ३६ हस्त है, दूसरे की २० हस्त है। आधार रेखा की लम्बाई १२ हस्त है। आबाधाओं और अंतरावलम्बक के माप क्या-क्या हैं ? ॥ १८२½ ॥ दो स्तंभ क्रमशः १२ और १५ हस्त हैं, उन दो

(१८०½) आकृति में यदि अ और ब स्तम्भों की ऊँचाईयाँ हों, स स्तंभों के बीच का अंतर हो, और म और न क्रमशः एक स्तम्भ के मूल से लेकर, भूमि को स्पर्श करने वाले, दूसरे स्तम्भ के अग्र से फैले हुए धागे के भूमिस्पर्श बिन्दु तक की लम्बाईयाँ हों, तो नियमानुसार,
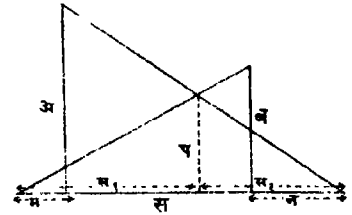
$$स_1 = \left\{ \frac{अ}{स+न} \div \frac{अ(स+म)+ब(स+न)}{(स+म)(स+न)} \right\} \times (स+म+न) ;$$

$$स_2 = \left\{ \frac{ब}{स+म} \div \frac{अ(स+म)+ब(स+न)}{(स+म)(स+न)} \right\} \times (स+म+न) ;$$ जहाँ $स_1$ और $स_2$ सम्पूर्ण आधार के खण्ड हैं।

और $प = स_1 \times \frac{ब}{स+म}$, अथवा $स_2 \times \frac{अ}{स+न}$, जहाँ प अन्तरावलम्बक है। इस आकृति में सजातीय त्रिभुजों पर विचार करने पर यह ज्ञात होगा कि—

$$\frac{स_2}{प} = \frac{स+न}{अ} \text{ और } \frac{स_1}{प} = \frac{स+म}{ब} ।$$

इन निष्पत्तियों से हमें $\frac{स_1}{स_2} = \frac{अ(स+म)}{ब(स+न)}$ प्राप्त होता है;

$$\therefore \frac{स_1}{स_1+स_2} = \frac{अ(स+म)}{अ(स+म)+ब(स+न)}, \quad \therefore स_1 = \frac{अ(स+म)(स+म+न)}{अ(स+म)+ब(स+न)},$$

क्योंकि $स_1 + स_2 = स+म+न$;

इसी प्रकार, $स_2 = \frac{ब(स+न)(स+म+न)}{अ(स+म)+ब(स+न)}$ $\therefore$ और $प = स_2 \times \frac{अ}{स+न} = स_1 \times \frac{ब}{स+म}$ ।

द्वादश च पञ्चदश च स्तम्भान्तरभूमिरपि च चत्वारः।
द्वादशकस्तम्भाग्राद्रज्जुः पतितान्यतो मूलात् ॥ १८३१/२ ॥
आक्रम्य चतुर्हस्तात्परस्य मूलं तथैकहस्ताच्च।
पतिताग्रात्काबाधा कोऽस्मिन्नवलम्बको भवति ॥ १८४१/२ ॥
बाहुप्रतिबाहू द्वौ त्रयोदशावनिरियं चतुर्दश च।
वदनेऽपि चतुर्हस्ताः काबाधा कोऽन्तरावलम्बश्च ॥ १८५१/२ ॥
क्षेत्रमिदं मुखभूम्योरेकैकोनं परस्पराग्राच्च।
रज्जुः पतिता मूलात्त्वं ब्रूह्यवलम्बकाबाधे ॥ १८६१/२ ॥
बाहुस्त्रयोदशैकः पञ्चदश प्रतिभुजा मुखं सप्त।
भूमिरियमेकविंशतिरस्मिन्नवलम्बकाबाधे ॥ १८७१/२ ॥

स्तंभों के बीच का अंतराल (अंतर) ४ हस्त है। १२ हस्त वाले स्तंभ के ऊपरी अग्र से एक धागा सूत्र आधार रेखा पर दूसरे स्तंभ के मूल से ४ हस्त आगे तक फैलाया जाता है। इस दूसरे स्तंभ (जो १५ हस्त ऊँचा है) के अग्र से एक धागा उसी प्रकार आधार रेखा पर पहिले स्तंभ के मूल से १ हस्त आगे तक फैलाया जाता है। यहाँ आबाधाओं और अंतरावलम्बक के माप को बतलाओ ॥ १८४१/२ ॥ दो बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में दो भुजाओं में से प्रत्येक १३ हस्त है। यहाँ आधार १४ हस्त, और ऊपरी भुजा ४ हस्त है। अंतरावलम्बक द्वारा बनाये गये आधार के खंडों (आबाधाओं) के माप क्या हैं, और अंतरावलम्बक का माप क्या ? है ॥ १८५१/२ ॥ उपर्युक्त चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में ऊपरी भुजा और आधार प्रत्येक १ हस्त कम हैं। दो लंबों में से प्रत्येक के ऊपरी अग्र से एक धागा दूसरे लंब के मूल तक पहुंचने के लिये फैलाया जाता है। अंतरावलम्बक और उत्पन्न आबाधाओं के माप क्या हैं ? ॥ १८६१/२ ॥ असमान भुजाओं वाले चतुर्भुज के संबंध में एक भुजा १३ हस्त, सम्मुख भुजा १५ हस्त, ऊपरी भुजा ७ हस्त और आधार २१ हस्त है। अंतरावलम्बक तथा उससे उत्पन्न हुए आबाधाओं के मान क्या-क्या हैं ? ॥१८७१/२॥ एक समबाहु

(१८५१/२) यहाँ दो बराबर भुजाओं वाला चतुर्भुज क्षेत्र दिया गया है; दूसरी गाथा में तीन बराबर भुजाओं वाला तथा और अगली गाथा में विषमबाहु चतुर्भुज दिये गये हैं। इन सब दशाओं में चतुर्भुज के कर्ण सबसे पहिले गाथा ५४ अध्याय ७ के नियमानुसार प्राप्त किये जाते हैं। तब ऊपरी भुजा के अंतों से आधार पर गिराये हुए लंबों के मापों और उन लंबों द्वारा उत्पन्न आधार के खंडों (आबाधाओं) को (अध्याय ७ की ४९वीं गाथा में दिये गये नियम का प्रयोग कर) प्राप्त करते हैं। तब लंबों के मापों को हस्त मानकर, ऊपर १८०१/२ वीं गाथा के नियम को प्रयुक्त कर, अंतरावलम्बक तथा उससे उत्पन्न आबाधाओं को प्राप्त करते हैं। १८७१/२ वीं गाथा में दिया गया प्रश्न कन्नड़ी टीका में कुछ भिन्न विधि से किया गया है। ऊपरी भुजा आधार के समानान्तर मान ली जाती है, और लंब तथा उससे उत्पन्न आबाधाओं के माप ऐसे त्रिभुज की रचना करके प्राप्त करते हैं, जिसकी भुजाएँ उक्त चतुर्भुज की भुजाओं के बराबर होती हैं, और जिसका आधार चतुर्भुज के आधार और ऊपरी भुजा के अन्तर के बराबर होता है।

समचतुरश्रक्षेत्रं विंशतिहस्तायतं तस्य ।
कोणेभ्योऽथ चतुर्भ्यो विनिर्गता रज्जवस्तत्र ॥ १८८½ ॥
भुजमध्यं द्वियुगभुजे[1] रज्जुः का स्यात्सुसंवीता ।
को वावलम्बकः स्यादाबाधे केऽन्तरे[2] तस्मिन् ॥ १८९½ ॥

१. हस्तलिपि में अशुद्ध पाठ भुजचतुर्थं च है ।

२. केऽन्तरे में संधि का प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है; पर २०४½ वें श्लोक के समान यहाँ ग्रंथकार का प्रयोजन छंद हेतु स्वर सम्बन्धी मिलान है ।

चतुर्भुज की प्रत्येक भुजा २० हस्त है । उस आकृति के चारों कोण बिन्दुओं से, धागे सम्मुख भुजा के मध्य बिन्दु तक ले जाये जाते हैं, यह चारों भुजाओं के लिये किया जाता है । इस प्रकार प्रसारित धागों में प्रत्येक की लम्बाई का माप क्या है ? ऐसे चतुर्भुज क्षेत्र के भीतर अंतरावलम्बक और उससे उत्पन्न आबाधाओं के माप क्या हो सकते हैं ? ॥ १८८½–१८९½॥

स्तंभ की ऊँचाई का माप ज्ञात है । किसी कारणवश स्तंभ भग्न हो जाता है, और भग्न स्तंभ का ऊपरी भाग भूमि पर गिरता है । (भग्न स्तंभ का) निम्न भाग उन्नत भाग के ऊपरी भाग पर अवलम्बित रहता है । तब स्तंभ के मूल से गिरे हुए ऊपरी अग्र (जो अब भूमि को स्पर्श करता है) की पैठिक (आधारीय) दूरी ज्ञात की जाती है । स्तंभ के मूल भाग से लेकर शेष उन्नत भाग के माप

(१८८½–१८९½) इस प्रश्न के अनुसार दी गई आकृति इस प्रकार है:—

यहाँ भीतरी लम्ब ग ह और क ल हैं । इन्हें प्राप्त करने के लिये पहिले फ इ को प्राप्त करते हैं । टीकानुसार

$$\text{फ इ का माप} = \sqrt{\frac{(\text{सम})^2}{१} - \left\{ (\text{दम})^2 + (\text{दइ}^2) + \frac{१}{२}\ \text{दम})^2 \right\}}$$

है । अ ब, फ इ और ब स अथवा अ द को स्तंभ मानकर संकेत में कथित नियम प्रयोग में लाया जा सकता है ।

(१९०½) यदि अ ब स समकोण त्रिभुज है और यदि अस का माप और अ ब तथा ब स के योग का माप दिया गया हो तब, अ ब और ब स के माप इस समीकरण द्वारा निकाले जा सकते हैं कि

$$\text{ब स} = (\text{अ ब})^2 + (\text{अ स})^2;$$ नियम दिया गया सूत्र यह है :—

$$\text{अ ब} = \frac{(\text{अ ब} + \text{ब स})^2 - (\text{अ स})^2}{२(\text{अ ब} + (\text{ब स})}$$; यह अहाँ उपर्युक्त समीकरण से सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है ।
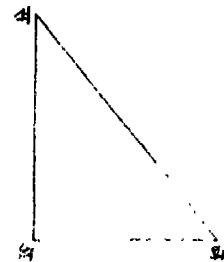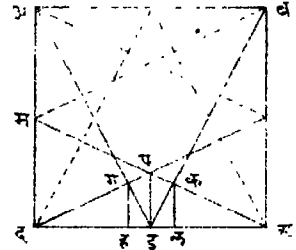
स्तम्भस्योन्नतप्रमाणसंख्यां ज्ञात्वा तस्मिन् स्तम्भे येनकेनचित्कारणेन भग्ने पतिते सति तत्स्तम्भाग्रमूलयोर्मध्ये स्थितौ भूसंख्यां ज्ञात्वा तत्स्तम्भमूलादारभ्य स्थितपरिमाणसंख्यानयनस्य सूत्रम्—

निर्गमवर्गान्तरमितिवर्गविशेषस्य यद्भवेदर्धम् ।
निर्गमनेन विभक्तं तावत्स्थित्वाथ भग्नः स्यात् ॥ १९०½ ॥

अत्रोद्देशकः

स्तम्भस्य पञ्चविंशतिरुच्छ्रायः कश्चिदन्तरे भग्नः ।
स्तम्भाग्रमूलमध्ये पञ्च स गत्वा कियान् भग्नः ॥ १९१½ ॥
वेणूच्छ्राये हस्ताः सप्तकृतिः कश्चिदन्तरे भग्नः ।
भूमिश्च सैकविंशतिरस्य स गत्वा कियान् भग्नः ॥ १९२½ ॥
वृक्षोच्छ्रायो विंशतिरग्रस्थः कोऽपि तत्फलं पुरुषः ।
कर्णाकृत्या व्यक्षिपदथ तरुमूलस्थितः पुरुषः ॥ १९३½ ॥
तस्य फलस्याभिमुखं प्रतिभुजरूपेण गत्वा च ।
फलमग्रहीच्च तत्फलनरयोर्गतियोगसंख्यैव ॥ १९४½ ॥
पञ्चाशदभूत्तत्फलगतिरूपा कर्णसंख्या का ।
तद्वृक्षमूलगतनरगतिरूपा प्रतिभुजापि कियती स्यात् ॥ १९५½ ॥

का संख्यात्मक मान निकालने के लिये यह नियम है—

संपूर्ण ऊँचाई के वर्ग और ज्ञात आधारीय (basal) दूरी के वर्ग के अंतर की अर्द्ध राशि जब संपूर्ण ऊँचाई द्वारा भाजित होती है, तब शेष उन्नत भाग का माप उत्पन्न होता है। जो अब संपूर्ण ऊँचाई का शेष बचता है वह भग्न भाग का माप होता है ॥ १९०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

स्तंभ की ऊँचाई २५ हस्त है। वह मूल और अग्र के बीच कहीं टूटा है। फर्श पर गिरे हुए अग्र (ऊपरी भाग) और स्तंभ के मूल के बीच की दूरी ५ हस्त है। बताओ कि टूटने का स्थान बिन्दु मूल से कितनी दूर है? ॥ १९१ ॥ (उगने वाले) बाँस की ऊँचाई का माप ४९ हस्त है। वह मूल और अग्र के बीच कहीं भग्न हुआ है। आधारीय दूरी २१ हस्त है। वह मूल से कितनी दूरी पर टूटा है ॥ १९२½ ॥ किसी वृक्ष की ऊँचाई २० हस्त है। कोई मनुष्य उसके ऊपरी भाग (चोटी) पर बैठकर कर्णरूप पथ में फल को नीचे फेंकता है (अर्थात् वह फल सरल रेखा में गिरकर, समकोण त्रिभुज का कर्ण बनाता है)। तब दूसरा मनुष्य जो वृक्ष के नीचे बैठा हुआ है, फल तक सरल रेखा में पहुँचता है (यह पथ त्रिभुज की दूरी भुजा का निर्माण करता है), और उस फल को ले लेता है। फल तथा इस मनुष्य द्वारा तय की गई दूरियों का योग ५० हस्त है। फल द्वारा तय किये गये पथ द्वारा निरूपित कर्ण का संख्यात्मक मान क्या है? मनुष्य द्वारा तय किये गये पथ द्वारा निरूपित अन्य भुजा का माप क्या हो सकता है? ॥ १९३½–१९५½ ॥

ज्येष्ठस्तम्भसंख्यां च अल्पस्तम्भसंख्यां च ज्ञात्वा उभयस्तम्भान्तरभूमिसंख्यां ज्ञात्वा तज्ज्येष्ठसंख्ये भग्ने सति ज्येष्ठस्तम्भाग्रे अल्पस्तम्भाग्रं स्पृशति सति ज्येष्ठस्तम्भस्य भग्नसंख्यानयनस्य स्थितशेषसंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

ज्येष्ठस्तम्भस्य कृतेर्ह्रस्वावनिवर्गयुतिमपोह्यार्धम् ।
स्तम्भविशेषेण हृतं लब्धं भग्नोन्नतिर्भवति ॥ १९६½ ॥

अत्रोद्देशकः

स्तम्भः पञ्चोच्छ्रायः परस्त्रयोविंशतिस्तथा ज्येष्ठः ।
मध्यं द्वादश भग्नज्येष्ठाग्रं पतितमितराग्रे ॥ १९७½ ॥

आयतचतुरश्रक्षेत्रकोटिसंख्यायास्तृतीयांशद्वयं पर्वतोत्सेधं परिकल्प्य तत्पर्वतोत्सेधसंख्यायाः सकाशात् तदायतचतुरश्रक्षेत्रस्य भुजसंख्यानयनस्य कर्णसंख्यानयनस्य च सूत्रम्—

गिर्युत्सेधो द्विगुणो गिरिपुरमध्यक्षितिर्गिरेरर्धम् ।
गगने तत्रोत्पतितं गिर्यर्धव्याससंयुतिः कर्णः ॥ १९८½ ॥

ऊँचाई में बड़े (ज्येष्ठ) स्तंभ की ऊँचाई का संख्यात्मक मान तथा ऊँचाई में छोटे (अल्प) स्तंभ की ऊँचाई का संख्यात्मक मान ज्ञात है। इन दो स्तंभों के बीच की दूरी का संख्यात्मक मान भी ज्ञात है। ज्येष्ठ स्तंभ भग्न होकर इस प्रकार गिरता है, कि उसका ऊपरी अग्र अल्प स्तंभ के ऊपरी अग्र पर अवलम्बित होता है, और भग्न भाग का निम्न भाग, शेष भाग के ऊपरी भाग पर स्थित रहता है। इस दशा में ज्येष्ठ स्तंभ के भग्न भाग की लम्बाई का संख्यात्मक मान तथा उसी ज्येष्ठ स्तंभ के शेष भाग की ऊँचाई के संख्यात्मक मान को प्राप्त करने के लिये नियम—

ज्येष्ठ स्तंभ के संख्यात्मक माप के वर्ग में से, अल्प स्तंभ के माप के वर्ग और आधार के माप के वर्ग के योग को घटाते हैं। परिणामी शेष की अर्द्ध राशि को दो स्तंभों के मापों के अंतर द्वारा भाजित करते हैं। प्राप्त भजनफल भग्न स्तंभ के उन्नत भाग की ऊँचाई होता है। ॥१९६½॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक स्तंभ ऊँचाई में ५ हस्त है, उसी प्रकार दूसरे ज्येष्ठ स्तंभ ऊँचाई में २३ हस्त है। उनके बीच की दूरी १२ हस्त है। भग्न ज्येष्ठ स्तंभ का ऊपरी अग्र अल्प स्तंभ के ऊपरी अग्र पर गिरता है। भग्न ज्येष्ठ स्तंभ के उन्नत भाग की ऊँचाई निकालो ॥ १९७½ ॥

आयत क्षेत्र की ऊर्ध्वाधर (लंब रूप) भुजा के संख्यात्मक मान की दो तिहाई राशि को पर्वत की ऊँचाई मानकर, उस पर्वत की ऊँचाई की सहायता से उक्त आयत के कर्ण और क्षैतिज भुजा (आधार) के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

पर्वत की दुगुनी ऊँचाई, पर्वत के मूल से वहाँ के शहर के बीच की दूरी का माप होती है। पर्वत की आधी ऊँचाई गगन में ऊपर की ओर की उड़ान की दूरी (उड्डयन) का माप है। पर्वत की आधी ऊँचाई में, (पर्वत के मूल से) शहर की दूरी का माप जोड़ने से कर्ण प्राप्त होता है ॥ १९८½ ॥

(१९६½) यदि ज्येष्ठ स्तम्भ की ऊँचाई अ और अल्प स्तम्भ की ब द्वारा निरूपित हो; उनके बीच की दूरी स हो, और $अ_१$ भग्न स्तम्भ के उन्नत भाग की ऊँचाई हो, तो नियमानुसार,

$$अ_१ = \frac{अ^२ - (ब^२ + स^२)}{२(अ - ब)} ।$$
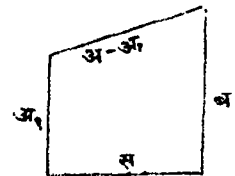
अत्रोद्देशकः

षड्योजनोर्ध्वशिखरिणि यतीश्वरौ तिष्ठतस्तत्र।
एकोऽङ्घ्रिचर्यया गात्तत्राप्याकाशचार्यपरः ॥ १९९½ ॥
श्रुतिवशमुत्पत्य पुरं गिरिशिखरान्मूलमवरुह्यान्यः।
समगतिकौ संजातौ नगरन्यासः किमुत्पतितम् ॥ २००½ ॥

डोलाकारक्षेत्रे स्तम्भद्वयस्य वा गिरिद्वयस्य वा उत्सेधपरिमाणसंख्यामेव आयतचतुरश्रभुजद्वयं क्षेत्रद्वये परिकल्प्य तद्गिरिद्वयान्तरभूम्यां वा तत्स्तम्भद्वयान्तरभूम्यां वा आबाधाद्वयं परिकल्प्य तदाबाधाद्वयं व्युत्क्रमेण निक्षिप्य तद्व्युत्क्रमं न्यस्ताबाधाद्वयमेव आयतचतुरश्रक्षेत्रद्वये कोटिद्वयं परिकल्प्य तत्कर्णद्वयस्य समानसंख्यानयनसूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

६ योजन ऊँचाई वाले किसी पर्वत पर २ यतीश्वर तिष्ठे थे। उनमें से एक ने पैदल गमन किया। दूसरे आकाश में गमन कर सकते थे। ये दूसरे यतीश्वर ऊपर की ओर उड़े, और तब शहर में कर्ण मार्ग से उतरे। प्रथम यतीश्वर शिखर से पर्वत के मूल तक सीधे नीचे की ओर उदग्र दिशा में उतरे, और पैदल शहर की ओर चले। यह ज्ञात हुआ कि दोनों ने समान दूरियाँ तय कीं। पर्वत के मूल से शहर तक की दूरी क्या है, और ऊपरी उड़ान की ऊँचाई कितनी है? ॥ १९९½–२००½ ॥

लटकन (डोल) और उसके दो भूमि पर आधारित लंबरूप अवलंबों द्वारा निरूपित क्षेत्र में, दो स्तंभों अथवा दो पर्वत शिखरों की ऊँचाइयों के माप दो आयत चतुरश्र क्षेत्रों की क्षैतिज (क्षितिज के समानान्तर) भुजाओं के माप मान लिये जाते हैं। तब, इन ज्ञात क्षैतिज भुजाओं की सहायता से, और (दशानुसार) दो पर्वत अथवा दो स्तंभ के बीच की आधार रेखा के संबंध में लंब के मिलन बिन्दु द्वारा उत्पन्न आबाधाओं (खंडों) के मानों को प्राप्त करते हैं। इन दो आबाधाओं को विलोम क्रम में लिखते हैं। इस प्रकार विलोम क्रम में लिखे गये (दो आबाधाओं के) मानों की दो आयताकार चतुर्भुज क्षेत्रों की दो लंब भुजाओं के माप मान लेते हैं। (ऐसी दशा में) इन दो आयतों के कर्णों के समान संख्यात्मक मान को प्राप्त करने के लिये नियम —

(१९९½–२००½) आकृति में यदि पर्वत की ऊँचाई 'अ' द्वारा निरूपित है, शहर से पर्वत के मूल की दूरी 'ब' है, और कर्ण मार्ग की लम्बाई 'स' है, तो गाथा १९८½ के नियम की पृष्ठभूमि में की गई कल्पना के अनुसार 'अ' भुजा आ बा की $^2/_3$ है। इसलिये ऊर्ध्व दिशा की उड़ान दा बा अर्थात् $\frac{1}{2}$ अ है............(१)

चूँकि दो साधुओं की उड़ानें बराबर हैं, ∴ स + $\frac{1}{2}$ अ = अ + ब;

∴ स = $\frac{1}{2}$ अ + ब..................(२)

∴ स^2 = $\frac{1}{4}$ अ^2 + ब^2 + अ ब, परन्तु स^2 = $\frac{9}{4}$ अ^2 + ब^2;

∴ अ ब = २ अ^2;

∴ ब = २ अ..................(३)

दिये गये नियम में ये ही तीन सूत्र (१), (२) और (३) वर्णित हैं।
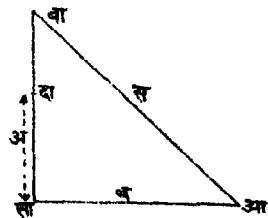
डोलाकारक्षेत्रस्तम्भद्वितयोर्ध्वसंख्ये वा ।
शिखरिद्वयोर्ध्वसंख्ये परिकल्प्य भुजद्वयं त्रिकोणस्य ॥ २०१½ ॥
तद्दोर्द्वितयान्तरगतभूसंख्यायास्तदाबाधे ।
आनीय प्राग्वत्ते व्युत्क्रमतः स्थाप्य ते कोटी ॥ २०२½ ॥
स्यातांतस्मिन्नायतचतुरश्रक्षेत्रयोश्च तद्दोर्भ्याम् ।
कोटिभ्यां कर्णौ द्वौ प्राग्वत्स्यातां समानसंख्यौ तौ ॥ २०३½ ॥

डोल तथा उसके दो लंबरूप अवलंबों द्वारा निरूपित आकृति के संबंध में, दो स्तंभों की अथवा दो पर्वतों की ऊँचाइयों के मापों को त्रिभुज की दो भुजाओं के माप मान लेते हैं। तब, दिये गये स्तंभों अथवा पर्वतों की बीच की आधार रेखा के मान के तुल्य इन दो भुजाओं के बीच की आधार रेखा के संबंध में, शीर्ष से आधार पर गिराये गये लंब से उत्पन्न आबाधाओं के मान पहिले दिये गये नियमानुसार प्राप्त करते हैं। यदि इन आबाधाओं (खंडों) के मानों को विलोम क्रम में लिखा जावे, तो वे इष्ट क्रिया में दो आयतों की दो लंब भुजाओं के मान बन जाते हैं। अब, पहिले दिये गये नियमानुसार दो आयतों के कर्णों के मानों को उपर्युक्त त्रिभुज की दो भुजाओं (जो यहाँ आयत की दो क्षैतिज भुजाएँ ली गई हैं) तथा उन दो लंब भुजाओं की सहायता से प्राप्त करते हैं। ये कर्ण समान संख्यात्मक मान के होते हैं ॥ २०१½–२०३½ ॥

(२०१½–२०३½) इस नियम में वर्णित चतुर्भुजों में, मानलो, लंब भुजाएँ अ, ब द्वारा निरूपित हैं, आधार स है; $स_1$, $स_2$ उसके खंड (आबाधायें) हैं, और रज्जु (रस्से) के प्रत्येक समान भाग की लंबाई ल है।

अब, $अ^2 + स_1^2 = ब^2 + स_2^2$ ।

$\therefore (स_2 + स_1)(स_2 - स_1) = अ^2 - ब^2$; और $स_1 + स_2 = स$;

$$\therefore स_2 = \frac{\frac{अ^2 - ब^2}{स} + स}{२} \text{ और } स_1 = \frac{स - \frac{अ^2 - ब^2}{स}}{२} ।$$
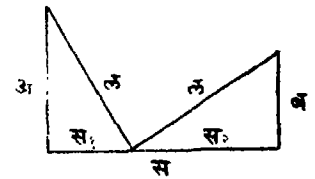
ये मान, अ और ब भुजाओंवाले त्रिभुज के 'स' माप वाले आधार के खंडों के हैं। आधार के खंड शीर्ष से लंब गिराने से उत्पन्न हुए हैं। नियम में यही कथित है। गाथा ४९ का नियम भी देखिये।

(२१०½) यहाँ बतलाया हुआ पथ समकोण त्रिभुज की भुजाओं में से होकर जाता है। इस नियम में दिये गये सूत्र का बीजीय निरूपण यह है—

$क = \frac{ब^2 + अ^2}{ब^2 - अ^2} \times द$, जहाँ क कर्णपथ से जाने पर व्यतीत हुए दिनों की संख्या है, अ और ब क्रमशः दो मनुष्यों की गतियाँ हैं, और द उत्तर दिशा से जानेपर व्यतीत हुए दिनों की संख्या है। इस प्रश्न में दत्त व्यास पर आधारित निम्नलिखित समीकरण से यह स्पष्ट है—

$$ब^2 क^2 = द^2 ब^2 + (क + द)^2 \times अ^2$$

अत्रोद्देशकः

स्तम्भस्रयोदशैकः पञ्चदशान्यश्चतुर्दशान्तरितः ।
रज्जुर्बद्धा शिखरे भूमीपतिता क[1] आबाधे ॥ २०४ ॥
ते रज्जू समसंख्ये स्यातां तद्रज्जुमानमपि कथय ॥ २०५ ॥
द्वाविंशतिरुत्सेधो[1] गिरेस्तथाष्टादशान्यशैलस्य ।
विंशतिरुभयोर्मध्ये तयोश्च शिखयोःस्थितौ साधू ॥ २०६ ॥
आकाशचारिणौ तौ समागतौ नगरमत्र भिक्षायै ।
समगतिकौ संजातौ तत्राबाधे कियत्संख्ये ॥
समगतिसंख्या कियती डोलाकारेऽत्र गणितज्ञ ॥ २०७½ ॥
विंशतिरेकस्योन्नतिरद्रेश्च जिनास्तथान्यस्य ।
तन्मध्यं द्वाविंशतिरनयोरद्र्योश्च शृङ्गयोः स्थित्वा ॥ २०८½ ॥
आकाशचारिणौ द्वौ तन्मध्यपुरं समायातौ ।
भिक्षायै समगतिकौ स्यातां तन्मध्यशिखरिमध्यं किम् ॥ २०९½ ॥

विषमत्रिकोणक्षेत्ररूपेण हीनाधिकगतिमतोर्नरयोः समागमदिनसंख्यानयनसूत्रम्—

---

१. क आबाधे व्याकरणरूपेण अशुद्ध है, क्योंकि द्विवाचक संख्या 'क' और 'आबाधे' के मध्य कोई संधि नहीं हो सकती है । १८९½ वें श्लोक की टिप्पणी से मिलान करिये ।

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक स्तंभ ऊँचाई में १३ हस्त है। दूसरा ऊँचाई में १५ हस्त है। इनके बीच की दूरी १४ हस्त है। इन दो स्तंभों के ऊपरी सिरों पर बँधा हुआ एक रस्सा (रज्जु) इस तरह नीचे लटकता है, कि वह इन दो स्तंभों के बीच की दूरी को स्पर्श करता है। स्तंभों के बीच की आधार रेखा के इस प्रकार उत्पन्न खंडों के मान क्या-क्या हैं ? रज्जु के दो लटकते हुए भाग लम्बाई में समान संख्यात्मक मान के हैं। रज्जु का माप भी बतलाओ ॥ २०४½–२०५½ ॥ किसी एक पर्वत की ऊँचाई २२ योजन है। दूसरे पर्वत की १८ योजन है। उन दो पर्वतों के बीच की दूरी २० योजन है। पर्वत के शिखर पर तिष्ठे हुए दो साधु आकाश में गमन कर सकते हैं। भिक्षा के लिये वे आकाश मार्ग से नीचे आते हैं, और उन पर्वतों के बीच बसे हुए नगर में मिलते हैं। यह ज्ञात है कि वे आकाश मार्ग से समान दूरियाँ तय कर आये हैं। इन दशाओं में दो पर्वतों के बीच की आधारीय रेखा के खंडों के संख्यात्मक मान क्या-क्या हैं ? हे गणितज्ञ, इस डोलाकार क्षेत्र में तय की गई समान राशियों का संख्यात्मक मान क्या है ? ॥ २०६–२०७½ ॥ एक पर्वत की ऊँचाई २० योजन है, और इसी प्रकार दूसरे पर्वत की ऊँचाई २४ योजन है। उनके बीच की दूरी २२ योजन है। दो साधु, जो अलग अलग पर्वत के शृङ्ग पर स्थित थे और आकाश में गमन कर सकते थे, उन दो पर्वतों के बीच में बसे हुए नगर में भिक्षा के लिये उतरे। वे आकाश में बराबर दूरियाँ तय करते हुए देखे गये। उस मध्य में बसे हुए नगर और पर्वतों के बीच की दूरी का माप क्या है ? ॥ २०८½–२०९½ ॥

विषम त्रिभुज की सीमाद्वारा निरूपित मार्ग पर असमान गति से चलने वाले दो मनुष्यों का समागम होने के लिये इष्ट दिनों की संख्या का मान निकालने के लिए नियम—

दिनगतिकृतिसंयोगं दिनगतिकृत्यन्तरेण हृत्वाथ ।
हत्वोदग्गतिदिवसैस्तल्लब्धदिने समागमः स्यान्त्रोः ॥ २१०½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वे योजने प्रयाति हि पूर्वगतिस्त्रीणि योजनान्यपरः ।
उत्तरतो गच्छति यो गत्वासौ तद्दिनानि पञ्चाथ ॥ २११½ ॥
गच्छन् कर्णाकृत्या कतिभिर्दिवसैर्नरं समाप्नोति ।
उभयोर्युगपद्गमनं प्रस्थानदिनानि सदृशानि ॥ २१२½ ॥

पञ्चविधचतुरश्रक्षेत्राणां च त्रिविधत्रिकोणक्षेत्राणां चेत्यष्टविधबाह्यवृत्तव्याससंख्यानयनसूत्रम्—

श्रुतिरवलम्बकभक्ता पार्श्वभुजघ्ना चतुर्भुजे त्रिभुजे ।
भुजघातो लम्बहृतो भवेद्बहिर्वृत्तविष्कम्भः ॥ २१३½ ॥

दो मनुष्यों की दैनिक गतियों के संख्यात्मक मानों के वर्गों के योग को उन्हीं दैनिक गतियों के मानों के वर्गों के अंतर द्वारा भाजित किया जाता है । इस प्रकार प्राप्त भजनफल को उनमें से किसी एक के द्वारा उत्तर में यात्रा करते हुए (अन्य मनुष्य से मिलने हेतु दक्षिण पूर्व में जाने के पहिले) व्यतीत हुए दिनों की संख्या द्वारा गुणित करते हैं, इन दो मनुष्यों का समागम इस गुणनफल द्वारा मापे गये दिनों की संख्या के अंत में होता है ॥ २१०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पूर्व की ओर यात्रा करनेवाला मनुष्य २ योजन प्रतिदिन की गति से चलता है, और उत्तर की ओर यात्रा करने वाला दूसरा मनुष्य ३ योजन प्रतिदिन की गति से चलता है । यह दूसरा मनुष्य ५ दिनों तक (इस प्रकार) चलने के पश्चात् कर्ण पर चलने के लिये मुड़ता है । वह पहिले मनुष्य से कितने दिन पश्चात् मिलेगा ? दोनों एक ही समय प्रस्थान करते हैं, और यात्रा में दोनों को समान समय लगता है ॥ २११½–२१२½ ॥

पाँच प्रकार के चतुर्भुज क्षेत्रों तथा तीन प्रकार के त्रिभुज क्षेत्रोंवाली आठ प्रकार की आकृतियों के परिगत वृत्तों के व्यासों के संख्यात्मक मान को निकालने के लिये नियम—

चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में, कर्ण के मान को लंब के मान द्वारा भाजित कर, और तब बाजू की भुजा के मान द्वारा गुणित करने पर, परिगत वृत्त के व्यास का मान उत्पन्न होता है । त्रिभुज क्षेत्र के संबंध में आधार को छोड़कर, शेष दो भुजाओं के मानों के गुणनफल को लंब के मान द्वारा भाजित करने पर, परिगत वृत्त का इष्ट व्यास उत्पन्न होता है ॥ २१३½ ॥

(२१३½) मानलो कि त्रिभुज अ ब स किसी वृत्त में अंतर्लिखित है । अद व्यास है और बइ, अस पर लंब है । बद को जोड़ो । अब त्रिभुज अ ब द और ब इ स के कोण क्रमशः आपस में बराबर हैं (अर्थात् ये त्रिभुज सजातीय [similar] हैं)

$\therefore$ अब : अद = बइ : बस, $\therefore$ अद = $\frac{\text{अब} \times \text{बस}}{\text{बइ}}$ ।

यह सूत्र नियम में चतुर्भुज त्रिभुज के परिगत वृत्त के व्यास को प्राप्त करने के लिये दिया गया है ।
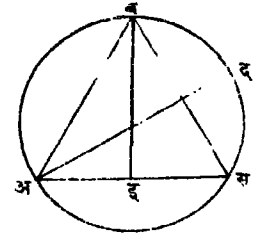
अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रस्य त्रिकबाहुप्रतिबाहुकस्य चान्यस्य।
कोटिः पञ्च द्वादश भुजास्य किं वा बहिर्वृत्तम्॥ २१४½ ॥
बाहू त्रयोदश मुखं चत्वारि धरा चतुर्दश प्रोक्ता।
द्विसमचतुरश्रबाहिरविष्कम्भः को भवेदत्र॥ २१५½ ॥
पञ्चकृतिर्वदनभुजाश्चत्वारिंशच्च भूमिरेकोना।
त्रिसमचतुरश्रबाहिरवृत्तव्यासं ममाचक्ष्व॥ २१६½ ॥
त्र्येका चत्वारिंशद्बाहुः प्रतिबाहुको द्विपञ्चाशत्।
षष्टिर्भूमिर्वदनं पञ्चकृतिः कोऽत्र विष्कम्भः॥ २१७½ ॥
त्रिसमस्य च षड् बाहुस्त्रयोदश द्विसमबाहुकस्यापि।
भूमिर्दश विष्कम्भावनयोः कौ बाह्यवृत्तयोः कथय॥ २१८½ ॥
बाहू पञ्चत्र्युत्तरदशकौ भूमिश्चतुर्दशो विषमे।
त्रिभुजक्षेत्रे बाहिरवृत्तव्यासं ममाचक्ष्व॥ २१९½ ॥
द्विकबाहुषडश्रस्य क्षेत्रस्य भवेद्विचिन्त्य कथय त्वम्।
बाहिरविष्कम्भं मे पैशाचिकमत्र यदि वेत्सि॥ २२०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

(समबाहु चतुर्भुज) वर्गाकृति के संबंध में, जिसकी प्रत्येक भुजा ३ है, और अन्य चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में, जिसकी लंब भुजा ५ और क्षैतिज भुजा १२ है, बतलाओ कि परिगत वृत्त के व्यास के माप क्या-क्या हैं ? ॥ २१४½ ॥ दो पार्श्व भुजाओं में से प्रत्येक माप में १३ है, ऊपरी भुजा ४ है, और आधार माप में १४ है। इस दशा में ऐसे दो समान भुजाओं वाले चतुर्भुज क्षेत्र के परिगत वृत्त के व्यास का माप बतलाओ ॥ २१५½ ॥ ऊपरी भुजा और दो बाजू की भुजाओं में से प्रत्येक माप में २५ है। आधार माप में ३९ है। यहाँ बतलाओ की ऐसे तीन बराबर भुजाओं वाले चतुर्भुज के परिगत वृत्त के व्यास का माप क्या है ? ॥ २१६½ ॥ पार्श्व भुजाओं में से किसी एक का माप ३९ है; दूसरी का माप ५२ है; आधार का माप ६० और ऊपरी भुजा का माप २५ है। इस चतुर्भुज क्षेत्र के संबंध में परिगत वृत्त का व्यास क्या है ? ॥ २१७½ ॥ किसी समभुज त्रिभुज की भुजा का माप ६ है, और समद्विबाहु त्रिभुज की भुजा का माप १३ है। इस दशा में आधार का माप १० है। इन त्रिभुजों के परिगत वृत्तों के व्यासों के मान निकालो ॥ २१८½ ॥ विषम त्रिभुज के संबंध में दो भुजाएँ माप में १५ और १३ हैं; आधार का माप १४ है। उसके परिगत वृत्त के व्यास का मान मुझे बतलाओ ॥ २१९½ ॥यदि तुम गणित की पैशाचिक विधियाँ जानते हो, तो ठीक तरह सोचकर बतलाओ कि जिसकी प्रत्येक भुजा का माप २ है ऐसे नियमित षट्भुजाकार आकृतिवाले क्षेत्र के परिगत वृत्त के व्यास का मान क्या होगा ? ॥ २२०½ ॥

(२२०½) इस गाथा पर लिखी गई कन्नड़ी टीका में प्रश्न को यह सूचित कर हल किया है कि नियमित षट्भुज का विकर्ण परिगत वृत्त के व्यास के तुल्य होता है।

इष्टसंख्याव्यासवत्समवृत्तक्षेत्रमध्ये समचतुरश्राद्यष्टक्षेत्राणां मुखभूभुजसंख्यानयनसूत्रम्—
लब्धव्यासेनेष्टव्यासो वृत्तस्य तस्य भक्तश्च।
लब्धेन भुजा गुणयेद्बुद्ध्वैवं जातस्य भुजसंख्या ॥ २२१½ ॥

अत्रोद्देशकः

वृत्तक्षेत्रव्यासस्त्रयोदशाभ्यन्तरेऽत्र संचिन्त्य।
समचतुरश्राद्यष्टक्षेत्राणि सखे ममाचक्ष्व ॥ २२२½ ॥

आयतचतुरश्रं विना पूर्वकल्पितचतुरश्रादिक्षेत्राणां सूक्ष्मगणितं च रज्जुसंख्यां च ज्ञात्वा तत्तत्क्षेत्राभ्यन्तरावस्थितवृत्तक्षेत्रविष्कम्भानयनसूत्रम्—
परिधेः पादेन भजेदनायतक्षेत्रसूक्ष्मगणितं तत्।
क्षेत्राभ्यन्तरवृत्ते विष्कम्भोऽयं विनिर्दिष्टः ॥ २२३½ ॥

व्यास के ज्ञात संख्यात्मक मान वाले समवृत्त क्षेत्र में अंतर्लिखित वर्ग से प्रारंभ होने वाली आठ प्रकार की आकृतियों के आधार, ऊपरी भुजा और अन्य भुजाओं के संख्यात्मक मानों को निकालने के लिये नियम—

दिये गये वृत्त के व्यास के मान को व्यास से प्राप्त ऐसे वृत्त के व्यास द्वारा भाजित किया जाता है, जो निर्दिष्ट प्रकार की विकल्प से चुनी हुई आकृति के परितः खींचा जाता है। इस मन से चुनी हुई आकृति के भुजाओं के मानों को उपर्युक्त परिणामी भजनफलों द्वारा गुणित करना चाहिए। इस प्रकार, दिये गये वृत्त में उत्पन्न आकृति की भुजाओं के संख्यात्मक मानों को प्राप्त करते हैं ॥ २२१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समवृत्त आकृति का व्यास १३ है। हे मित्र, ठीक तरह विचार कर मुझे बतलाओ कि इस वृत्त में अंतर्लिखित वर्गादि आठ प्रकार की विभिन्न आकृतियों के संबंध में विभिन्न माप क्या-क्या हैं ॥ २२२½ ॥

केवल आयत क्षेत्र को छोड़कर पूर्वकथित विभिन्न प्रकार के चतुर्भुज और त्रिभुज क्षेत्रों के अंतर्गत वृत्तों के व्यास का मान निकालने के लिये नियम, जब कि इन्हीं चतुर्भुज और अन्य आकृतियों के संबंध में क्षेत्रफल का सूक्ष्म माप और परिमिति का संख्यात्मक मान ज्ञात हो—

(आयत क्षेत्र को छोड़कर अन्य किसी भी) आकृति के सूक्ष्म ज्ञात क्षेत्रफल को (उस आकृति की) परिमिति की एक चौथाई राशि द्वारा भाजित करना चाहिये। वह परिणाम उस आकृति के अंतर्गत वृत्त के व्यास का माप होता है ॥ २२३½ ॥

(२२१½) इष्ट और मन से चुनी हुई आकृतियों की सजातीयता (similiarity) से यह नियम स्वमेव प्राप्त हो जाता है।

(२२३½) यदि सब भुजाओं का योग 'य' हो, अंतर्गत वृत्त का व्यास 'व' हो, और संबंधित चतुर्भुज या त्रिभुजक्षेत्र का क्षेत्रफल 'क्ष' हो, तो

$$\frac{व}{२} \times \frac{य}{२} = क्ष \text{ होता है।}$$

इसलिये नियम में दिया गया सूत्र, $व = क्ष \div \frac{य}{४}$, है।

अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रादीनां क्षेत्राणां पूर्वकल्पितानां च ।
कृत्वाभ्यन्तरवृत्तं ब्रूह्यधुना गणिततत्त्वज्ञ ॥ २२४½ ॥

समवृत्तव्याससंख्यायामिष्टसंख्यां बाणं परिकल्प्य तद्बाणपरिमाणस्य ज्यासंख्यानयनसूत्रम्—

व्यासाधिगमोनस्स च चतुर्गुणिताधिगमेन संगुणितः ।
यत्तस्य वर्गमूलं ज्यारूपं निर्दिशेत्प्राज्ञः ॥ २२५½ ॥

अत्रोद्देशकः

व्यासो दश वृत्तस्य द्वाभ्यां छिन्नो हि रूपाभ्याम् ।
छिन्नस्य ज्या का स्यात्प्रगणय्याचक्ष्व तां गणक ॥ २२६½ ॥

समवृत्तक्षेत्रव्यासस्य च मौर्व्याश्च संख्यां ज्ञात्वा बाणसंख्यानयनसूत्रम्—

व्यासज्यारूपकयोर्वर्गविशेषस्य भवति यन्मूलम् ।
तद्विष्कम्भाच्छोध्यं शेषार्धमिषुं विजानीयात् ॥ २२७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वर्गादि पूर्वोल्लेखित आकृतियों के संबंध में अंतर्गत वृत्त खींचकर, हे गणित तत्त्वज्ञ, प्रत्येक ऐसे अंतर्गत वृत्त के व्यास का मान बतलाओ ॥ २२४½ ॥

किसी समवृत्त के व्यास के ज्ञात संख्यात्मक मान के भीतर (सीमान्तः) बाण के माप की ज्ञात संख्या लेकर, ऐसे धनुष के धागे के संख्यात्मक मान को प्राप्त करने के लिये नियम जिसका बाण उसी दिये गये माप के तुल्य है—

दिये गये व्यास के मान और बाण के ज्ञात मान के अंतर को बाण के मान की चौगुनी राशि द्वारा गुणित किया जाता है। परिणामी गुणनफल का जितना भी वर्गमूल आता है, उसे विद्वान पुरुष को धनुष की डोरी का इष्ट माप बतलाना चाहिये ॥ २२५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वृत्त का व्यास १० है। उसका २ द्वारा अपकर्तन किया जाता है। हे गणितज्ञ, ठीक गणना के पश्चात् दिये गये व्यास के कटे हुए भाग के संबंध में धनुष की डोरी का माप बतलाओ ॥ २२६½ ॥

जब किसी दिये गये वृत्त के व्यास का संख्यात्मक मान और उस वृत्त संबंधी धनुष डोरी (जीवा) का मान ज्ञात हो, तब बाण का संख्यात्मक मान निकालने के लिये नियम—

दिये गये वृत्त के संबंध में व्यास और जीवा (धनुष-डोरी रेखा) के ज्ञात मानों के वर्गों के अंतर का जो वर्गमूल होता है उसे व्यास के मान में से घटाया जाता है। परिणामी शेष की अर्द्धराशि बाण (रेखा) का इष्ट मान होती है ॥ २२७½ ॥

(२२५½) गाथा २२५½, २२७½, २२९½ और २३१½ में दिये गये सभी नियम इस यथार्थता पर आधारित हैं कि किसी वृत्त में प्रतिच्छेदन करने वाले (intersecting) चाप कर्णों की आबाधाओं (खंडों) के गुणनफल समान होते हैं।

अत्रोद्देशकः

दश वृत्तस्य विष्कम्भः शिञ्जिन्यभ्यन्तरे सखे।
दृष्टाष्टौ हि पुनस्तस्याः कः स्यादधिगमो वद ॥ २२८½ ॥

ज्यासंख्यां च बाणसंख्यां च ज्ञात्वा समवृत्तक्षेत्रस्य मध्यव्याससंख्यानयनसूत्रम्—
भक्तश्चतुर्गुणेन च शरेण गुणवर्गराशिरिषुसहितः।
समवृत्तमध्यमस्थितविष्कम्भोऽयं विनिर्दिष्टः ॥ २२९½ ॥

अत्रोद्देशकः

कस्यापि च समवृत्तक्षेत्रस्याभ्यन्तराधिगमनं द्वे।
ज्या दृष्टाष्टौ दण्डा मध्यव्यासो भवेत्कोऽत्र ॥ २३०½ ॥

समवृत्तद्वयसंयोगे एका मत्स्याकृतिर्भवति। तन्मत्स्यस्य मुखपुच्छविनिर्गतरेखा कर्तव्या। तया रेखया अन्योन्याभिमुखधनुर्द्वयाकृतिर्भवति। तन्मुखपुच्छविनिर्गतरेखैव तद्धनुर्द्वयस्यापि ज्याकृतिर्भवति। तद्धनुर्द्वयस्य शरद्वयमेव वृत्तपरस्परसंपातशरौ ज्ञेयौ। समवृत्तद्वयसंयोगे तयोः संपातशरयोरानयनस्य सूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी दिये गये वृत्त के व्यास का माप १० है। साथ ही ज्ञात है कि भीतरी धनुष-डोरी का माप ८ है। हे मित्र, उस धनुष डोरी के संबंध में बाण रेखा का मान निकालो ॥ २२८½ ॥

जब धनुष-डोरी और बाण के संख्यात्मक मान ज्ञात हों, तब दिये गये वृत्त के व्यास के संख्यात्मक मान को निकालने के लिये नियम—

धनुष-डोरी के मान के वर्ग का निरूपण करने वाली संख्या, ४ द्वारा गुणित बाण के मान के द्वारा भाजित की जाती है। तब परिणामी भजनफल में बाण का मान जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि नियमित वृत्त की, केन्द्र से होकर मापी गई, चौड़ाई का माप होती है ॥ २२९½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समवृत्त क्षेत्र के संबंध में, बाण रेखा २ दंड, और धनुष डोरी ८ दंड है। इस वृत्त के संबंध में व्यास का मान क्या हो सकता है? ॥ २३०½ ॥

जब दो वृत्त परस्पर एक दूसरे को काटते हैं, तब मछली के आकार की आकृति उत्पन्न होती है। इस मत्स्याकृति के संबंध में मुख से पुच्छ को मिलानेवाली रेखा खींची जाती है। इस सरल रेखा की सहायता से एक दूसरे के सम्मुख दो धनुषों की उत्पत्ति होती है। मुख से पुच्छ को मिलाने वाली सरल रेखा इन दोनों धनुषों की धनुष-डोरी होती है। इन दो धनुषों के संबंध में दो बाण रेखाएँ पारस्परिक अतिछादी (overlapping) वृत्तों से संबंधित दो बाण रेखाओं को बनाने वाली समझी जाती हैं। जब दो समवृत्त परस्पर एक दूसरे को काटते हैं, तब अतिछादी (overlapping) भाग से संबंधित बाण रेखाओं के मानों को निकालने के लिये नियम—

ग्रासोनव्यासाभ्यां ग्रासे प्रक्षेपकः प्रकर्तव्यः ।
वृत्ते च परस्परतः संपातशरौ विनिर्दिष्टौ ॥ २३१½ ॥

अत्रोद्देशकः

समवृत्तयोर्द्वयोर्हि द्वात्रिंशदशीतिहस्तविस्तृतयोः ।
ग्रासेऽष्टौ कौ बाणावन्योन्यभवौ समाचक्ष्व ॥ २३२½ ॥

इति पैशाचिकव्यवहारः समाप्तः ॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ क्षेत्रगणितं नाम षष्ठव्यवहारः समाप्तः ।

प्रतिच्छेदित होने वाले वृत्तों के ऐसे दो व्यासों के दो मानों की सहायता से, जिन्हें वृत्तों के अतिछादी (overlapping) भाग की सबसे अधिक चौड़ाई के मान द्वारा ह्रासित करते हैं वृत्तों के अतिछादी भाग की महत्तम चौड़ाई के इस ज्ञात मान के संबंध में प्रक्षेपक क्रिया करना चाहिये । ऐसे वृत्तों के संबंध में इस प्रकार प्राप्त दो परिणामों में से, प्रत्येक दूसरे का, अतिछादी वृत्तों संबंधी दो बाणों का माप होता है ॥ २३१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दो वृत्तों के संबंध में, जिनके विस्तार-व्यास क्रमशः ३२ और ८० हस्त हैं । साधारण अतिछादी भाग की महत्तम चौड़ाई ८ हस्त है । यहाँ उन दो वृत्तों के संबंध में बाण रेखाओं के मानों को बतलाओ ॥ २३२½ ॥

इस प्रकार, क्षेत्र गणित व्यवहार में पैशाचिक व्यवहार नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सार संग्रह नामक गणित शास्त्र में क्षेत्रगणित नामक षष्ठम् व्यवहार समाप्त हुआ ।

(२३१½) इस नियम में अनुध्यानित प्रश्न आर्यभट्ट द्वारा भी साधित किया गया है । उनके द्वारा दिया गया नियम इस नियम के समान है ।

८. खातव्यवहारः

सर्वामरेन्द्रमुकुटार्चितपादपीठं सर्वज्ञमव्ययमचिन्त्यमनन्तरूपम् ।
भव्यप्रजासरसिजाकरबालभानुं भक्त्या नमामि शिरसा जिनवर्धमानम् ॥ १ ॥
क्षेत्राणि यानि विविधानि पुरोदितानि तेषां फलानि गुणितान्यवगाहनानि (नेन) ।
कर्मान्तिकौण्ड्रफलसूक्ष्मविकल्पितानि वक्ष्यामि सप्तममिदं व्यवहारखातम् ॥ २ ॥

सूक्ष्मगणितम्

अत्र परिभाषाश्लोकः—
हस्तघने पांसूनां द्वात्रिंशत्पलशतानि पूर्याणि । उत्कीर्यन्ते तस्मात् षट्त्रिंशत्पलशतानीह ॥ ३ ॥

---

८. खात व्यवहार (खोह अथवा गढ़ा संबंधी गणनाएँ)

मैं सिर झुकाकर उन वर्धमान जिनेन्द्र को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ, जिनका पादपीठ (पैर रखने की चौकी) सभी अमरेन्द्रों के मुकुटों द्वारा अर्चित होता है, जो सर्वज्ञ हैं, अव्यय हैं, अचिन्त्य और अनन्तरूप हैं, तथा जो भव्य जीवों रूपी कमल समूह को विकसित करने के लिये बालभानु (अभिनव सूर्य) हैं ॥ १ ॥ अब मैं खात के संबंध में (विभिन्न प्रकार के) कर्मांतिक, औण्ड्रफल और सूक्ष्म फल का वर्णन करूँगा । ये समस्त प्रकार, उन उपर्युक्त विभिन्न प्रकार की रैखिकीय आकृतियों से गहराई मापने वाली राशियों द्वारा घटित गुणन क्रिया के परिणाम स्वरूप प्राप्त किये जाते हैं । यह सातवाँ व्यवहार, खात व्यवहार है ॥ २ ॥

सूक्ष्म गणित

परिभाषा के लिये एक श्लोक (व्यावहारिक कल्पना के लिये एक गाथा)—

किसी एक घन हस्त माप की खोह को भरने के लिये ३,२०० पल मात्रा की मिट्टी लगती है । उसी घन आयतन वाली खोह में ३,६०० पल मात्रा की मिट्टी निकाली जा सकती है ॥ ३ ॥

---

(२) औण्ड्रफल शब्द में 'औण्ड्र' पद विचित्र संस्कृत शब्द मालूम पड़ता है, और कदाचित् वह हिन्दी शब्द औण्ड से संबंधित है, जिसका अर्थ "गहरा" होता है ।

(३) इस धारणा का अभिप्राय स्पष्ट रूप से यह है कि एक घन हस्त दबी हुई मिट्टी का भार ३,६०० पल होता है, और इतनी जगह को शिथिलता से भरने के लिये ३,२०० पल भार की मिट्टी पर्याप्त होती है ।

खातगणितफलानयनसूत्रम्—
क्षेत्रफलं वेधगुणं समखाते व्यावहारिकं गणितम् ।
मुखतलयुतिदलमथ सत्संख्याप्तं स्यात्समीकरणम् ॥ ४ ॥

अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रस्याष्टौ बाहुः प्रतिबाहुकश्च वेधश्च । क्षेत्रस्य खातगणितं समखाते किं भवेदत्र ॥ ५ ॥
त्रिभुजस्य क्षेत्रस्य द्वात्रिंशद्बाहुकस्य वेधे तु । षट्त्रिंशद्दृष्टास्ते षडङ्गुलान्यस्य किं गणितम् ॥ ६ ॥
साष्टशतव्यासस्य क्षेत्रस्य हि पञ्चषष्टिसहितशतम् ।
वेधो वृत्तस्य त्वं समखाते किं फलं कथय ॥ ७ ॥
आयतचतुरश्रस्य व्यासः पञ्चाग्रविंशतिर्बाहुः । षष्टिर्वेधोऽष्टशतं कथयाशु समस्य खातस्य ॥ ८ ॥

अस्मिन् खातगणिते कर्मान्तिकसंज्ञफलं च औण्ड्रसंज्ञफलं च ज्ञात्वा ताभ्यां कर्मान्तिकौण्ड्रसंज्ञफलाभ्याम् सूक्ष्मखातफलानयनसूत्रम्—

गढ़ों की घनाकार समाई (अंतर्वस्तु) को निकालने के लिये नियम—

गहराई द्वारा गुणित क्षेत्रफल, नियमित (regular) खात (गढ़े) की घनाकार समाई का व्यावहारिक मान उत्पन्न करता है। सभी विभिन्न मुख (ऊपरी) विस्तारों के तथा उनके संवादी नितल (bottom) विस्तारों के योगों को आधा किया जाता है । तब (उन्हीं अर्द्धित राशियों के) योग को कथित अर्द्धित राशियों की संख्या द्वारा भाजित किया जाता है । औसत समाई को प्राप्त करने के लिये यह क्रिया है ॥ ४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

नियमित खात के छेद के प्रतिरूपक, समान भुजाओंवाले चतुर्भुज क्षेत्र, के संबंध में भुजाएँ तथा गहराई प्रत्येक माप में ८ हस्त है। इस नियमित गढ़े (खात) में घनाकार समाई का मान क्या है ? ॥ ५ ॥ किसी नियमित खात के छेद का निरूपण करनेवाले समत्रिभुज क्षेत्र के संबंध में प्रत्येक भुजा ३२ हस्त हैं, और गहराई ३६ हस्त ६ अंगुल है । यहाँ समाई कितनी है ? ॥ ६ ॥ किसी नियमित खात के छेद (section) का निरूपण करनेवाले समवृत्त क्षेत्र के संबंध में व्यास १०८ हस्त है, और खात की गहराई १६५ हस्त हैं। बतलाओ कि इस दशा में घनफल क्या है ? ॥ ७ ॥ किसी नियमित खात (गढ़े) के छेद का निरूपण करनेवाले आयत चतुर्भुज क्षेत्र की चौड़ाई २५ हस्त है, लंबाई ६० हस्त है और खात की गहराई १०८ हस्त है । इस नियमित खात की घनाकार समाई शीघ्र बतलाओ ॥ ८ ॥

परिणाम के रूप में प्राप्त कर्मान्तिक तथा औण्ड्र को ज्ञात कर उनकी सहायता से, खात संबंधी गणना में घनाकार समाई का सूक्ष्म रूप से ठीक मान निकालने के लिये नियम—

(४) इस श्लोक का उत्तरार्द्ध स्पष्टतः उस विधि का वर्णन करता है, जिसके द्वारा हम किसी दिये गये अनियमित खात के समुचित रूप से तुल्य नियमित खात के विस्तारों को प्राप्त कर सकते हैं ।

बाह्याभ्यन्तरसंस्थिततत्तत्क्षेत्रस्थबाहुकोटिभुवः ।
स्वप्रतिबाहुसमेता भक्तास्तत्क्षेत्रगणनयान्योन्यम् ॥ ९ ॥
गुणिताश्च वेधगुणिताः कर्मान्तिकसंज्ञगणितं स्यात् ।
तद्बाह्यान्तरसंस्थिततत्तत्क्षेत्रे फलं समानीय ॥ १० ॥
संयोज्य संख्ययाप्तं क्षेत्राणां वेधगुणितं च । औण्ड्रफलं तत्फलयोर्विशेषकस्य त्रिभागेन ॥
संयुक्तं कर्मान्तिकफलमेव हि भवति सूक्ष्मफलम् ॥ ११½ ॥

ऊपरी छेद्रीय (sectional) क्षेत्र का निरूपण करनेवाली आकृति के आधार और अन्य भुजाओं के मानों को क्रमशः तली के छेद्रीय क्षेत्र का निरूपण करनेवाली आकृति के आधार और संवादी भुजाओं के मानों में जोड़ते हैं । इस प्रकार प्राप्त कई योग प्रश्न में विचाराधीन छेद्रीय क्षेत्रों की संख्या द्वारा भाजित किये जाते हैं । तब भुजाएँ ज्ञात रहने पर, क्षेत्रफल निकालने के नियमानुसार, परिणामी राशियाँ एक दूसरे के साथ गुणित की जाती हैं । तब कर्मान्तिक का घनफल उत्पन्न होता है । ऊपरी छेद्रीय क्षेत्र और नितल छेद्रीय क्षेत्र द्वारा निरूपित उन्हीं आकृतियों के संबंध में, इनमें से प्रत्येक क्षेत्र का क्षेत्रफल अलग-अलग प्राप्त किया जाता है । इस प्रकार प्राप्त क्षेत्रफलों को आपस में जोड़ा जाता है, और तब योगफल विचाराधीन छेद्रीय क्षेत्रों की संख्या द्वारा भाजित किया जाता है ॥ ९–११½ ॥

इस प्रकार प्राप्त भजनफल गहराई के मान द्वारा गुणित किया जाता है । यह औण्ड्र नामक घनफल माप को उत्पन्न करता है । यदि इन दो फलों के अन्तर की एक तिहाई राशि कर्मान्तिक फल में जोड़ दी जाय तो इष्ट घनफल का सूक्ष्म रूप में ठीक मान निश्चय रूप से प्राप्त होता है ।

(९–११½) दी गई आकृति में अ ब स द नियमित खात (गढ़े) का ऊपरी छेद्रीय क्षेत्र (मुख) है, और इ फ ग ह नितल छेद्रीय क्षेत्र है ।

इस नियम में व्यवहार में लाई गई आकृतियाँ या तो विपाटित (काटे गये) स्तूप (pyramids) हैं, जिनके आधार आयत अथवा त्रिभुज होते हैं, अथवा विपाटित शंक्वाकार (शंकु के आकार की) वस्तुएँ हैं । इस नियम में खातों की घनाकार समाई के तीन प्रकार के मापों का वर्णन है । इसमें से दो, जैसे कर्मांतिक और औण्ड्र माप, समाइयों के व्यावहारिक मानों को देते हैं । इन मानों की सहायता से सूक्ष्म माप की गणना की जाती है । यदि का कर्मांतिक फल और आ औण्ड्र फल का निरूपण करते हों, तो सूक्ष्म रूप से ठीक माप $\left(\frac{\text{आ} - \text{का}}{३} + \text{का}\right)$ अर्थात् (⅔ का + ⅓ आ) होता है ।

यदि काटे गये तथा वर्ग आधारवाले स्तूप के ऊपरी तथा निम्न तल की भुजाओं का माप क्रमशः 'अ' और 'ब' हो तो घनाकार समाई का सूक्ष्म रूप से ठीक माप ⅓ क (अ'² + ब'² + २ अ' ब') के बराबर बतलाया जा सकता है, जहाँ
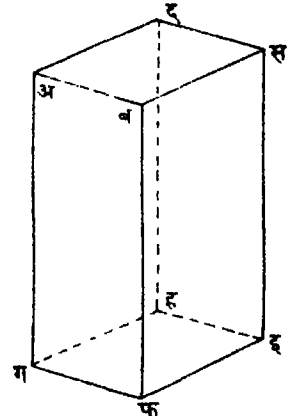
अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रा वापी विंशतिरुपरीह षोडशैव तले ।
वेधो नव किं गणितं गणितविदाचक्ष्व मे शीघ्रम् ॥ १२½ ॥
वापी समत्रिबाहुर्विंशतिरुपरीह षोडशैव तले ।
वेधो नव किं गणितं कर्मान्तिकमौण्ड्रमपि च सूक्ष्मफलम् ॥ १३½ ॥
समवृत्तासौ वापी विंशतिरुपरीह षोडशैव तले ।
वेधो द्वादश दण्डाः किं स्यात्कर्मान्तिकौण्ड्रसूक्ष्मफलम् ॥ १४½ ॥
आयतचतुरश्रस्यत्वायामःषष्टिरेव विस्तारः। द्वादश मुखे तलेऽर्धं वेधोऽष्टौ किं फलं भवति ॥१५½॥
नवतिरशीतिः सप्ततिरायामश्चोर्ध्वमध्यमूलेषु ।
विस्तारो द्वात्रिंशत् षोडश दश सप्त वेधोऽयम् ॥ १६½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक ऐसा कूप है जिसका छेदीय (sectional) क्षेत्र समभुज चतुर्भुज है । ऊपरी (मुख) छेदीय क्षेत्र की भुजाओं में से प्रत्येक का मान २० हस्त है और नितल (bottom) छेदीय क्षेत्र की प्रत्येक भुजा १६ हस्त की है । गहराई (वेध) ९ हस्त है । हे गणितज्ञ, घनफल का माप शीघ्र बतलाओ ॥ १२½ ॥

समभुज त्रिभुजीय अनुप्रस्थ छेदवाले कूप के ऊपरी छेदीय क्षेत्र की भुजाओं में से प्रत्येक २० हस्त की और नितल छेदीय क्षेत्र की भुजाओं में से प्रत्येक १६ हस्त की है; गहराई ९ हस्त है । कर्मान्तिक घनफल, औण्ड्र घनफल और सूक्ष्म रूप से ठीक घनफल क्या-क्या हैं ? ॥ १३½ ॥

समवृत्त आकार के छेदीय क्षेत्रवाले कूप के ऊपरी छेदीय क्षेत्र का व्यास २० दंड और निम्न छेदीय क्षेत्र का व्यास १६ दंड है । गहराई १२ दंड है । कर्मांतिक, औण्ड्र और सूक्ष्म घनफल क्या हो सकते हैं ? ॥ १४½ ॥

आयताकार छेदीय क्षेत्र वाले खात के ऊपरी छेदीय क्षेत्र की लंबाई ६० हस्त और चौड़ाई १२ हस्त है, तथा निम्न छेदीय क्षेत्र की लम्बाई ऊपर के छेदीय क्षेत्र की आधी है, और चौड़ाई भी आधी है । गहराई ९ हस्त है । यहाँ घनफल क्या है ? ॥ १५½ ॥

इसी प्रकार के एक और दूसरे कूप के ऊपरी छेदीय क्षेत्र, बीच के छेदीय क्षेत्र और निम्न छेदीय क्षेत्र की लम्बाईयाँ क्रमशः ९०, ८० और ७० हस्त हैं, तथा चौड़ाईयाँ क्रमशः ३२, १६ और १० हस्त हैं । यह गहराई में ७ हस्त है । इष्ट घनफल का माप दो ? ॥ १६½ ॥

'ऊ' विपाटित स्तूप की ऊँचाई है । घनाकार समाई के सूक्ष्म माप के लिये दिये गये इस सूत्र का सत्यापन कर्मांतिक और औण्ड्र फलों के निम्नलिखित मानों की सहायता से किया जाता है ।

$$\text{का} = \left(\frac{\text{अ}' + \text{ब}'}{२}\right)^२ \times \text{ऊ}, \quad \text{आ} = \frac{(\text{अ}')^२ + (\text{ब}')^२}{२} \times \text{ऊ}$$
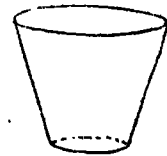
इसी प्रकार, सम त्रिभुजाकार एवं आयताकार आधारवाले तिर्यक् छिन्न (truncated) स्तूप तथा सम वृत्ताकार आधार वाले तिर्यक् छिन्न शंकुओं के संबंध में भी सत्यापन किया जा सकता है ।

व्यासः षष्टिर्वदने मध्ये त्रिंशत्तले तु पञ्चदश ।
समवृत्तस्य च वेधः षोडश किं तस्य गणितफलम् ॥ १७½ ॥
त्रिभुजस्य मुखेऽशीतिः षष्टिर्मध्ये तले च पञ्चाशत् ।
बाहुत्रयेऽपि वेधो नव किं तस्यापि भवति गणितफलम् ॥ १८½ ॥

खातिकायाः खातगणितफलानयनस्य च खातिकाया मध्ये सूचीमुखाकारवत् उत्सेधे सति खातगणितफलानयनस्य च सूत्रम्—
परिखामुखेन सहितो विष्कम्भस्त्रिभुजवृत्तयोस्त्रिगुणात् ।
आयामश्चतुरश्रे चतुर्गुणो व्याससंगुणितः ॥ १९½ ॥

समवृत्त आकार के छेदीय क्षेत्र वाले खात के संबंध में मुख व्यास ६० हस्त है, मध्य व्यास ३० हस्त और तल व्यास १५ हस्त है। गहराई १६ हस्त है। घनफल का माप देने वाला गणित फल क्या है ? ॥ १७½ ॥

त्रिभुजाकार के छेदीय क्षेत्रवाले खात के सम्बन्ध में, प्रत्येक भुजा का माप ऊपर ८० हस्त, मध्य में ६० हस्त और तली में ५० हस्त है। गहराई ९ हस्त है। (घनाकार समाई देनेवाला) घनफल क्या है ? ॥ १७½ ॥

किसी खात की घनाकार समाई के मान, तथा मध्य में सूची मुखाकार के समान उत्सेध सहित (ठोस मिट्टी का गोपुच्छवत् एक अंत की ओर घटने वाले प्रक्षेप projetion) सहितखात की घनाकार समाई के मान को निकालने के लिये नियम—

केन्द्रीय पुंज की चौड़ाई को वेष्टित खात की ऊपरी चौड़ाई द्वारा बढ़ाकर, और तब तीन द्वारा गुणित करने पर, त्रिभुजाकार और वृत्ताकार खातों की इष्ट परिमिति का मान उत्पन्न होता है। चतुर्भुजाकार खात के सम्बन्ध में, इष्ट परिमिति के उसी मान को, पूर्वोक्त विधि के अनुसार, चौड़ाई को चार द्वारा गुणित करने से प्राप्त करते हैं ॥ १९½ ॥

(१९½–२०½) ये श्लोक किसी भी आकार के केन्द्रीय पुंज के चारों ओर खोदी गई खाईयों या खातों के घनाकार समाई के माप विषयक हैं। केन्द्रीय पुंज के छेद का आकार वर्ग, आयत, समभुज त्रिभुज अथवा वृत्त सदृश हो सकता है। खात (तली में और ऊपर) दोनों जगह समान चौड़ाई का हो सकता है, अथवा घटनेवाली या बढ़नेवाली चौड़ाई का हो सकता है। यह नियम, इन सभी तीन दशाओं में, खात की कुछ लम्बाई निकालने में सहायक होता है।

(१) जब खात की चौड़ाई समांग (ऊपर नीचे एक सी) हो, तब खात की लंबाई $=($ द $+$ ब $)\times$ ३ होती है, जब कि सम त्रिभुजाकार अथवा वृत्ताकार छेद हो। यहाँ 'द' केन्द्रीय पुंज की भुजा का माप अथवा व्यास का माप है, और 'ब' खात की चौड़ाई है। परन्तु यह लंबाई $=($ द $+$ ब $)\times$ ४ होती है, जब कि छेद वर्गाकार तथा केन्द्रीय पुंजवाला वर्गाकार खात होता है।

(२) यदि खात तली में या ऊपर जाकर बिन्दु रूप हो जाता हो, तो कर्मांतिक फल निकालने के लिये, लंबाई $=\left(\text{द}+\frac{\text{ब}}{२}\right)\times$ ३ अथवा $\left(\text{द}+\frac{\text{ब}}{२}\right)\times$ ४ होती है, जब केन्द्रीय पुञ्ज का छेद (section) (१) त्रिभुजाकार या वृत्ताकार अथवा (२) वर्गाकार होता है। औंड्र फल प्राप्त करने के लिए खात की लम्बाई क्रमशः (द + ब) × ३ और (द + ब) × ४ लेते हैं।

घनफलों निकालने के लिए, इन बीज वाक्यों को खात की आधी चौड़ाई और गहराई से गुणा

सूचीमुखवद्वेधे परिखा मध्ये तु परिखार्धम् ।
मुखसहितमथो करणं प्राग्वत्तलसूचिवेधे च ॥ २०½ ॥

अत्रोद्देशकः

त्रिभुजचतुर्भुजवृत्तं पुरोदितं परिखया परिक्षिप्तम् ।
दण्डाशीत्या व्यासः परिखाश्चतुरुर्विकास्त्रिवेधाः स्युः ॥ २१½ ॥
आयतचतुरायामो विंशत्युत्तरशतं पुनर्व्यासः ।
चत्वारिंशत् परिखा चतुरुर्वीका त्रिवेधा स्यात् ॥ २२½ ॥

ऊपर की ओर घटने वाले अथवा बढ़ने वाले अंतोंसहित केन्द्रीय पुंज के (ऐसे खातों के संबंध में) कर्मांतिक को प्राप्त करने के लिये खात की आधी चौड़ाई को केन्द्रीय पुंज की चौड़ाई में जोड़ते हैं। औण्ड्रफल को प्राप्त करने करने के लिये खात की चौड़ाई के मान को केन्द्रीय पुंज की चौड़ाई में जोड़ते हैं। तत्पश्चात् पूर्वोक्त विधि उपयोग में लाते हैं ॥ २०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पूर्व कथित त्रिभुजाकार, चतुर्भुजाकार और वृत्ताकार क्षेत्रों के चारोंओर खाइयाँ खोदी जाती हैं। चौड़ाई ८० दंड है, और खाईयाँ ४ दंड चौड़ी और ३ दंड गहरी हैं। घनाकार समाई बतलाओ ॥ २१½ ॥ आयत की लंबाई १२० दंड और चौड़ाई ४० दंड है। आसपास की खाई चौड़ाई में ४ दंड और गहराई में ३ दंड है। घनाकार समाई बतलाओ ॥ २२½ ॥

करना पड़ता है। त्रिभुजाकार और वृत्ताकार छेद वाले खातों के संबंध में उपर्युक्त सूत्र केवल सन्निकट फलों को देते हैं। इस प्रकार प्राप्त खात की कुल लम्बाई की सहायता से, नतितल वाली खातों के संबंध में गाथा ९ से ११½ में दिये गये नियम का प्रयोगकर, घन फलों (घनाकार समाई) का मान निकालते हैं।

(२२½) मिट्टी का केन्द्रीय पुंज का छेद आयताकार हो, तो वेष्टित खात की कुल लंबाई को निकालने के लिये भुजाओं के मापों को खात की चौड़ाई अथवा आधी चौड़ाई द्वारा बढ़ाकर, जोड़ने से (क्रमशः कर्मान्तिक अथवा औण्ड्र) इष्ट फल प्राप्त करते हैं।

इस श्लोक में वर्णित किये गये प्रश्न ये हैं : (अ) उठाये गये स्तूप या शंकु (cone) की कुल ऊँचाई निकालना, (ब) जब किसी काटे गये स्तूप या शंकु की ऊँचाई और ऊपरी तथा नीचे के तलों का विस्तार दिया गया होता है, तब इष्ट गहराई पर छेद (section) के विस्तार को निकालना। तुलनात्मक अध्ययन के लिये त्रिलोक प्रज्ञप्ति (१/१९४, ४/१७९७) तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (११२७, २८) देखिये। यदि वर्गाकार आधारवाले दंडित (काटे गये) स्तूप में आधार की भुजा का माप 'अ', ऊपरी तल की भुजा का माप 'ब' और ऊँचाई 'उ' हो, तो यहाँ दिये गये नियमानुसार, कुल स्तूप की ऊँचाई ऊ लेकर

$$ऊ = \frac{अ \times उ}{अ - ब},$$

और किसी दी गई ऊँचाई $उ_1$ पर स्तूप के छेद की भुजा का माप $= \frac{अ(ऊ - उ_1)}{ऊ}$ होता है। ये सूत्र शंकु के लिये भी प्रयोज्य होते हैं। स्तूप के बिन्दुरूपी भाग को बनानेवाले छेद की भुजा का माप, नियमानुसार, दूसरे सूत्र के हर ऊ में जोड़ा जाता है, क्योंकि कुछ दशाओं में स्तूप वास्तव में बिन्दु में प्रह्रासित नहीं होता। जहाँ वह बिन्दु में प्रह्रासित होता है, वहाँ इस भुजा का माप शून्य लेना पड़ता है।

उत्सेधे बहुप्रकारवति सति खातफलानयनस्य च, यस्य कस्यचित् खातफलं ज्ञात्वा तत्खात-फलात् अन्यक्षेत्रस्य खातफलानयनस्य च सूत्रम्—

वेधयुतिः स्थानहृता वेधो मुखफलगुणः स्वखातफलं ।
त्रिचतुर्भुजवृत्तानां फलमन्यक्षेत्रफलहृतं वेधः ॥ २३½ ॥

अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रक्षेत्रे भूमिचतुर्हस्तमात्रविस्तारे ।
तत्रैकद्वित्रिचतुर्हस्तनिखाते कियान् हि समवेधः ॥ २४½ ॥
समचतुरश्राष्टादशहस्तभुजा वापिका चतुर्वेधा ।
वापी तज्जलपूर्णान्या नवबाह्वात्र को वेधः ॥ २५½ ॥

यस्य कस्यचित्खातस्य ऊर्ध्वस्थितभुजासंख्यां च अधःस्थितभुजासंख्यां च उत्सेधप्रमाणं च ज्ञात्वा, तत्खाते इष्टोत्सेधसंख्यायाः भुजासंख्यानयनस्य, अधःसूचिवेधस्य च संख्यानयनस्य सूत्रम्—

किसी खात की घनाकार समाई निकालने के लिये नियम, जबकि विभिन्न बिन्दुओं पर खात की गहराई बदलती है, अथवा जबकि घनाकार समाई समान करने के लिये दूसरे ज्ञात क्षेत्रफल के संबंध में आवश्यक खुदाई की गहराई पर खात की घनाकार समाई ज्ञात है—

विभिन्न स्थानों में मापी गई गहराइयों के योग को उन स्थानों की संख्या द्वारा भाजित किया जाता है; इससे औसत गहराई प्राप्त होती है। इसे खात के ऊपरी क्षेत्रफल से गुणित करने पर त्रिभुजाकार, चतुर्भुजाकार अथवा वृत्ताकार छेद वाले क्षेत्रफल सम्बन्धी खात की घनाकार समाई उत्पन्न होती है। दिये गये खात की घनाकार समाई, जब दूसरे ज्ञात क्षेत्रफल के मान द्वारा भाजित की जाती है, तब वह गहराई प्राप्त होती है, जहाँ तक खुदाई होने पर परिणामी घनाकार समाई एक-सी हो जाती हो ॥ २३½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी समभुज चतुर्भुज क्षेत्र में, जिसके द्वारा वेष्टित मैदान विस्तार में (लंबाई और चौड़ाई में) ४ हस्त माप का है, खातें चार भिन्न दशाओं में क्रमशः १, २, ३ और ४ हस्त गहरी हैं। खातों की औसत गहराई का माप क्या है ? ॥ २४½ ॥

समभुज चतुर्भुज क्षेत्र जिसका छेद है, ऐसे कूप की भुजाएँ माप में १८ हस्त हैं। उसकी गहराई ४ हस्त है। इस कूप के पानी से दूसरा कूप, जिसके छेद की प्रत्येक भुजा ९ हस्त की है, पूरी तरह भरा जाता है। इस दूसरे कूप की गहराई क्या है ? ॥ २५½ ॥

जब किसी दिये गये खात के संबंध में ऊपरी छेदीय क्षेत्र की भुजाओं के माप तथा निम्न छेदीय क्षेत्र की भुजाओं के माप ज्ञात हों, और जब गहराई का माप भी ज्ञात हो, तब किसी चुनी हुई गहराई पर परिणामी निम्न छेद की भुजाओं के मान को प्राप्त करने के लिये, तथा यदि तली केवल एक बिन्दु में घटकर रह जाती हो, तब खात की परिणामी गहराई को प्राप्त करने के लिये नियम—

मुखगुणवेधो मुखतलशेषहृतोऽत्रैव सूचिवेधः स्यात् ।
विपरीतवेधगुणमुखतलयुत्यवलम्बहृद्व्यासः ॥ २६$\frac{1}{2}$ ॥

अत्रोद्देशकः

समचतुरश्रा वापी विंशतिरूर्ध्वे चतुर्दशाधाश्च ।
वेधो मुखे नवाधस्त्रयो भुजाः केऽत्र सूचिवेधः कः ॥ २७$\frac{1}{2}$ ॥

गोलकाकारक्षेत्रस्य फलानयनसूत्रम्—

ऊपर की भुजा के दिये गये माप के साथ दी गई गहराई का गुणा करने पर परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाला गुणनफल जब ऊपरी भुजा और तली की भुजा के मापों के अंतर द्वारा भाजित किया जाता है, तब तली बिन्दु (अर्थात् जब तली अंत से बिन्दु रूप रह जाती हो) की दशा में इष्ट गहराई उत्पन्न होती है। बिन्दुरूप तली से ऊपर की ओर इष्ट स्थिति तक मापी गई गहराई को ऊपर की भुजा के माप द्वारा गुणित करते हैं। तब प्राप्तफल को बिन्दुरूप तली की (यदि हो तो) भुजा के माप तथा (ऊपर से लेकर बिन्दुरूप तली तक की) कुल गहराई के योग द्वारा भाजित करने से खात की इष्ट गहराई पर भुजा का माप उत्पन्न होता है ॥ २६$\frac{1}{2}$ ॥

उदाहरणार्थ एक प्रश्न

समभुज चतुर्भुजाकार आकृति के छेदवाली एक वापिका है। ऊपरी भुजा का माप २० है, और तली में भुजा का माप १४ है। आरंभ में गहराई ९ है। यह गहराई नीचे की ओर ३ और बढ़ाई जाने पर तली की भुजा का माप क्या होगा? यदि तली अंत में बिन्दु रूप हो जाती हो, तो गहराई का माप क्या होगा? ॥ २७$\frac{1}{2}$ ॥

गोलाकार क्षेत्र से वेष्टित जगह की घनाकार समाई का मान निकालने के लिये नियम—

(२६$\frac{1}{2}$) इस श्लोक में वर्णित किये गये प्रश्न ये हैं (अ) उल्टाये गये स्तूप या शंकु (cone) की कुल ऊँचाई निकालना, (ब) जब किसी काटे गये स्तूप या शंकु की ऊँचाई और ऊपरी तथा नीचे के तलों का विस्तार दिया गया होता है, तब किसी इष्ट गहराई पर छेद (section) के विस्तार को निकालना। तुलनात्मक अध्ययन के लिये त्रिलोक प्रज्ञप्ति (१/१९४, ४/१७९४) तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (१, १७, २९) देखिये यदि वर्गाकार आधारवाले खंडित (काटे गये) स्तूप में आधार की भुजा का माप 'अ' ऊपरी तल की भुजा का माप 'ब' ऊँचाई 'उ' हो तो यहाँ दिये गये नियमानुसार, कुल स्तूप की ऊँचाई ऊ लेकर $ऊ = \frac{अ \times उ}{अ - ब}$ और किसी दी गई ऊँचाई $उ_1$ पर स्तूप के छेद की भुजा का माप $= \frac{अ (ऊ - उ_1)}{ऊ}$ होता है। ये सूत्र शंकु के लिये भी प्रयोज्य होते हैं। स्तूप के बिन्दुरूपी भाग को बनानेवाली छेद की भुजा का माप नियमानुसार, दूसरे सूत्र के हर ऊ में जोड़ा जाता है, क्योंकि कुछ दशाओं में स्तूप निश्चय रूप से बिन्दु में प्रह्रासित नहीं होता। जहाँ वह बिन्दु में प्रह्रासित नहीं होता वहाँ इस भुजा का माप शून्य लेना पड़ता है।

व्यासार्धघनार्धगुणा नव गोलव्यावहारिकं गणितम् ।
तद्दशमांशं नवगुणमशेषसूक्ष्मं फलं भवति ॥ २८½ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडशविष्कम्भस्य च गोलकवृत्तस्य विगणय्य ।
किं व्यावहारिकफलं सूक्ष्मफलं चापि मे कथय ॥ २९½ ॥

शृंगाटकक्षेत्रस्य खातव्यावहारिकफलस्य खातसूक्ष्मफलस्य च सूत्रम्—
भुजकृतिदलघनगुणदशपदनवहृद्व्यावहारिकं गणितम् ।
त्रिगुणं दशपदभक्तं शृङ्गाटकसूक्ष्मघनगणितम् ॥ ३०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

अर्द्ध व्यास के घन की अर्द्धराशि, ९ द्वारा गुणित होकर, गोलाकार क्षेत्र से वेष्टित जगह की घनाकार समाई का सन्निकट मान उत्पन्न करती है। यह सन्निकट मान ९ द्वारा गुणित होकर और १० द्वारा भाजित होकर, शेषफल की उपेक्षा करने पर, घनफल का सूक्ष्म माप उत्पन्न करता है ॥ २८½ ॥

किसी १६ व्यास वाले गोल के संबंध में उसके घनफल का सन्निकट मान तथा सूक्ष्म मान गणना कर बतलाओ ॥ २९½ ॥

शृङ्गाटक क्षेत्र (त्रिभुजाकार स्तूप) के आकार के खात की घनाकार समाई के व्यावहारिक एवं सूक्ष्म मान को निकालने के लिये नियम, जबकि स्तूप की ऊँचाई आधार निर्मित करने वाले समत्रिभुज की भुजाओं में से एक की लंबाई के समान होती है—

आधारीय समभुज त्रिभुज की भुजा के वर्ग की अर्द्धराशि के घन को १० द्वारा गुणित किया जाता है। परिणामी गुणनफल के वर्गमूल को ९ द्वारा भाजित किया जाता है। यह सन्निकट इष्ट मान को उत्पन्न करता है। यह सन्निकट मान, जब ३ द्वारा गुणित होकर १० के वर्गमूल द्वारा भाजित किया जाता है, तब स्तूप खात की घनाकार समाई का सूक्ष्म रूप से ठीक माप उत्पन्न होता है ॥ ३०½ ॥

(२८½) यहाँ दिये गये नियमानुसार गोल का आयतन (१) सन्निकट रूप से $\left(\frac{द}{२}\right)^3 \times \frac{९}{२}$ होता है और (२) सूक्ष्म रूप से $\left(\frac{द}{२}\right)^3 \times \frac{९}{२} \times \frac{९}{१०}$ होता है। किसी गोल के आयतन के घनफल का शुद्ध सूत्र $\frac{४}{३}\pi$ (त्रिज्या)^3 है। यह ऊपर दिये गये मान से तुलनायोग्य तब बनता है, जबकि π अर्थात् $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ का अनुपात $\sqrt{१०}$ लिया जावे। दोनों हस्तलिपियों में 'तन्नवमांश दशं गुणं' लिखा है, जिससे स्पष्ट होता है कि सूक्ष्म मान, सन्निकट मान का $\frac{१०}{९}$ गुणा होता है। परन्तु यहाँ ग्रंथ में तद्दशमांशं नव गुणं लिया गया है, जो सूक्ष्म मान को, सन्निकट का $\frac{९}{१०}$ बतलाता है। यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि यह गोल की घनाकार समाई के माप के संबंध में सूक्ष्मतर माप देता है, जितना की और कोई भी माप नहीं देता।

(३०½) इस नियमानुसार त्रिभुजाकार स्तूप की घनाकार समाई के व्यावहारिक मान को बीजीय रूप से निरूपित करने पर $\frac{अ^3}{१८} \times \sqrt{५}$ अर्थात् $\frac{अ^3}{१२} \times \sqrt{\frac{२०}{९}}$ प्राप्त होता है, और सूक्ष्म मान

अत्रोद्देशकः

त्र्यश्रस्य च श्रृङ्गाटकषड्बाहुघनस्य गणयित्वा ।
किं व्यावहारिकफलं गणितं सूक्ष्मं भवेत्कथय ॥ ३१½ ॥

वापीप्रणालिकानां विमोचने तत्तदिष्टप्रणालिकासंयोगे तज्जलेन वाप्यां पूर्णायां सत्यां तत्तत्कालानयमसूत्रम् —

वापीप्रणालिकाः स्वस्वकालभक्ताः सवर्णविच्छेदाः ।
तद्युतिभक्तं रूपं दिनांशकः स्यात्प्रणालिकयुत्या ॥
तद्दिनभागहतास्ते तज्जलगतयो भवन्ति तद्वाप्याम् ॥ ३३ ॥

अत्रोद्देशकः

चतस्रः प्रणालिकाः स्युस्तत्रैकैका प्रपूरयति वापीम् ।
द्वित्रिचतुःपञ्चांशैर्दिनस्य कतिभिर्दिनांशैस्ताः ॥ ३४ ॥

त्रैराशिकाख्यचतुर्थगणितव्यवहारे सूचनामात्रोदाहरणमेव; अत्र सम्यग्विस्तार्य प्रवक्ष्यते–

उदाहरणार्थ प्रश्न

६ जिसकी लंबाई है ऐसे आधारीय त्रिभुज के त्रिभुजाकार स्तूप के घनफल का व्यावहारिक और सूक्ष्म मान गणना कर बतलाओ ॥ ३१½ ॥

जब किसी कूप में जाने वाले सभी नल खुले हुए हों, तब कूप को पानी से पूरी तरह भर जाने का समय प्राप्त करने के लिये नियम, जबकि कोई मन से चुनी हुई संख्या की प्रणालिकाएँ वापिका को भरने के लिये लगाई गई हों—

प्रत्येक नल को निरूपित करने वाली संख्या 'एक', अलग-अलग, नलों से प्रत्येक के संवादी समय द्वारा भाजित की जाती है। भिन्नों द्वारा निरूपित परिणामी भजनफलों को समान हर वाले भिन्नों में परिणत कर लिया जाता है। एक को समान हर वाले भिन्नों के योग द्वारा भाजित करने पर, एक दिन का वह भिन्नीय भाग उत्पन्न होता है, जिसमें कि सब नलिकाओं के खुले रहने पर वापिका पूरी भर जाती है। उन समान हर वाले भिन्नों को दिन के इस परिणामी भिन्नीय भाग द्वारा गुणित करने पर उस वापिका में लगे हुए विभिन्न नलों में से प्रत्येक के पानी के बहाव का अलग-अलग माप उत्पन्न होता है ॥ ३२½–३३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी वापिका के भीतर जानेवाली ४ नलिकाएँ हैं। इनमें से प्रत्येक, वापिका को क्रमशः दिन के $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{5}$ भाग में पूरी तरह भर देती है। कितने दिनांश में वे सब नलिकाएँ एक साथ खुलकर पूरी वापिका को भर सकेंगी, और प्रत्येक कितना-कितना भाग भरेगी ? ॥ ३४ ॥

इस प्रकार का एक प्रश्न पहिले ही सूचनार्थ त्रैराशिक नामक चौथे व्यवहार में दिया गया है; इस प्रश्न का विषय यहाँ विस्तार पूर्वक दिया गया है।

$\frac{अ^3}{12} \times \sqrt{2}$ प्राप्त होता है। यहाँ स्तूप की ऊँचाई तथा आधारीय समत्रिभुज की एक भुजा का माप अ है। यह सरलता पूर्वक देखा जा सकता है कि ये दोनों मान शुद्ध मान नहीं हैं। यहाँ दिया गया व्यावहारिक मान, सूक्ष्म मान की अपेक्षा विशुद्ध मान के निकटतर है।

समचतुरश्रा वापी नवहस्तघना नगस्य तले ।
तच्छिखराज्जलधारा चतुरश्राङ्गुलसमानविष्कम्भा ॥ ३५ ॥
पतिताग्रे विच्छिन्ना तया घना सान्तरालजलपूर्णा ।
शैलोत्सेधं वाप्यां जलप्रमाणं च मे ब्रूहि ॥ ३६ ॥
वापी समचतुरश्रा नवहस्तघना नगस्य तले ।
अङ्गुलसमवृत्तघना जलधारा निपतिता च तच्छिखरात् ॥ ३७ ॥
अग्रे विच्छिन्नाभूत्तस्या वाप्या मुखं प्रविष्टा हि ।
सा पूर्णान्तरगतजलधारोत्सेधेन शैलस्य ।
उत्सेधं कथय सखे जलप्रमाणं च विगणय्य ॥ ३८½ ॥
समचतुरश्रा वापी नवहस्तघना नगस्य तले ।
तच्छिखराज्जलधारा पतिताङ्गुलघनत्रिकोणा सा ॥ ३९½ ॥
वापीमुखप्रविष्टा साग्रे छिन्नान्तरालजलपूर्णा ।
कथय सखे विगणय्य च गिर्युत्सेधं जलप्रमाणं च ॥ ४०½ ॥

किसी पर्वत के तल में एक वापिका, समभुज चतुर्भुज छेद वाली है, जिसका प्रत्येक विमिति (dimension) में माप ९ हस्त है । पर्वत के शिखर से समांग समभुज भुजावाले १ अंगुल चतुर्भुज छेदवाली एक जलधारा बहती है । ज्योंही जलधारा वापिका में गिरती है, त्योंही शिखर से जलधारा टूट जाती है । तिस पर भी, उसके द्वारा वह वापिका पानी से पूरी तरह भर जाती है । पर्वत की ऊँचाई तथा वापिका में पानी का माप बतलाओ ॥ ३५–३६ ॥

पर्वत की तली में समचतुरश्र छेदवाली वापिका है, जिसका (तीन में से) प्रत्येक विमिति में विस्तार ९ हस्त है । पर्वत के शिखर से, १ अंगुल व्यास वाले समवृत्त छेद वाली जलधारा बहती है । ज्योंही जलधारा वापिका में गिरना प्रारंभ करती है, त्योंही शिखर से जलधारा टूट जाती है । उतनी जलधारा से वह वापिका पूरी भर जाती है । हे मित्र, मुझे बतलाओ कि पर्वत की ऊँचाई क्या है, और पानी का माप क्या है ? ॥ ३७–३८½ ॥

किसी पर्वत की तली में समचतुरश्र छेदवाली वापिका है जिसका (तीनों में से) प्रत्येक विमिति में विस्तार ९ हस्त है । पर्वत के शिखर से, प्रत्येक भुजा १ अंगुल है जिसकी ऐसे समत्रिभुजाकार छेदवाली जलधारा बहती है । ज्योंही जलधारा वापिका में गिरना प्रारंभ करती है, त्योंही शिखर से जलधारा टूट जाती है । उतनी जलधारा से वह वापिका पूरी भर जाती है । हे मित्र, गणना कर मुझे बतलाओ कि पर्वत की ऊँचाई क्या है और पानी का माप क्या है ? ॥ ३९½–४०½ ॥

(३५–४२½) यहाँ अध्याय ५ के १५-१६ श्लोक में दिया गया प्रश्न तथा उसके नोट का प्रसंग दिया गया है । पानी का आयतन कदाचित् वाहों में व्यक्त किया गया है । (प्रथम अध्याय के ३६ से लेकर ३८ तक के श्लोकों में दिये गये इस प्रकार के आयतन माप के संबंध में सूची देखिये) । कन्नड़ी टीका में यह दिया गया है कि १ घन अंगुल पानी, १ कर्ष के तुल्य होता है । प्रथम अध्याय के ४१ वें श्लोक में दी गई सूची के अनुसार, ४ कर्ष मिलकर एक पल होता है । उसी अध्याय के ४४वें श्लोक के अनुसार १२½ पल मिलकर एक प्रस्थ होता है, और उसी के ३६-३७ श्लोक के अनुसार प्रस्थ और वाह का संबंध ज्ञात होता है ।

समचतुरश्रा वापा नवहस्तघना नगस्य तले ।
अङ्गुलविस्ताराङ्गुलखाताङ्गुलयुगलदीर्घजलधारा ॥ ४१½ ॥
पतिताग्रे विच्छिन्ना वापीमुखसंस्थितान्तरालजलैः ।
सम्पूर्णा स्याद्वापी गिर्युत्सेधो जलप्रमाणं किम् ॥ ४२½ ॥

इति खातव्यवहारे सूक्ष्मगणितम् संपूर्णम् ।

चितिगणितम्

इतः परं खातव्यवहारे चितिगणितमुदाहरिष्यामः । अत्र परिभाषा—
हस्तो दीर्घो व्यासस्तदर्धमङ्गुलचतुष्कमुत्सेधः ।
इष्टस्तथेष्टकायास्ताभिः कर्माणि कार्याणि ॥ ४३½ ॥

इष्टक्षेत्रस्य खातफलानयने च तस्य खातफलस्य इष्टकानयने च सूत्रम्—
मुखफलमुदयेन गुणं तदिष्टकागणितभक्तलब्धं यत् ।
चितिगणितं तद्विद्यात्तदेव भवतीष्टकासंख्या ॥ ४४½ ॥

किसी पर्वत की तली में समभुज चतुर्भुज छेदवाला एक ऐसा कुआँ है जिसका तीनों विमितियों में विस्तार ९ हस्त है । पर्वत के शिखर से एक ऐसी जलधारा बहती है, जो समांग रूप से तली में १ अंगुल चौड़ी, १ अंगुल ढालू खात तलों पर, और दो अंगुल लंबाई में शिखर पर रहती है । ज्योंही जलधारा कुएँ में गिरना प्रारंभ करती है, त्योंही शिखर पर जलधारा टूट जाती है । उतनी जलधार से वह कुआँ पूरी तरह भर जाता है । पर्वत की ऊँचाई क्या है ? और पानी का प्रमाण क्या है ? ॥ ४१½–४२½ ॥

इस प्रकार खात व्यवहार में सूक्ष्म गणित नामक प्रकरण समाप्त हुआ ।

चिति गणित (ईंटों के ढेर संबंधी गणित)

इसके पश्चात् हम खात व्यवहार में चिति गणित का वर्णन करेंगे । यहाँ इष्टका (ईंट) के एकक (इकाई) संबंधी परिभाषा यह है—

(एकक) ईंट, लंबाई में एक हस्त, चौड़ाई में उसकी आधी, और मुटाई में ४ अंगुल होती है । ऐसी ईंटों के साथ समस्त क्रियाएँ की जाती हैं ॥ ४३½ ॥

किसी क्षेत्र में दिये गये खात की घनाकार समाई, तथा उक्त घनाकार समाई की संवादी ईंटों की संख्या निकालने के लिये नियम—

खात के मुख का क्षेत्रफल, गहराई द्वारा गुणित किया जाता है । परिणामी गुणनफल को इकाई ईंट के घनफल द्वारा भाजित किया जाता है । इस प्रकार प्राप्त भजनफल, ईंट के ढेर का (घनफल) माप समझा जाता है । वही भजनफल ईंटों की संख्या का माप होता है ॥ ४४½ ॥

(४४½) यहाँ ईंट के ढेर का घनफल माप स्पष्टतः इकाई ईंट के पदों में दिया गया है ।

अत्रोद्देशकः

वेदिः समचतुरश्रा साष्टभुजा हस्तनवकमुत्सेधः ।
घटिता तदिष्टकाभिः कतीष्टकाः कथय गणितज्ञ ॥ ४५½ ॥
अष्टकरसमत्रिकोणनवहस्तोत्सेधवेदिका रचिता ।
पूर्वेष्टकाभिरस्यां कतीष्टकाः कथय विगणय्य ॥ ४६½ ॥
समवृत्ताकृतिवेदिर्नवहस्तोर्ध्वा कराष्टकव्यासा
घटितेष्टकाभिरस्यां कतीष्टकाः कथय गणितज्ञ ॥ ४७½ ॥
आयतचतुरश्रस्य त्वायामः षष्टिरेव विस्तारः ।
पञ्चकृतिः षड् वेधस्तदिष्टकाचितिमिहाचक्ष्व ॥ ४८½ ॥
प्राकारस्य व्यासः सप्त चतुर्विंशतिस्तदायामः ।
घटितेष्टकाः कति स्युश्चोच्छ्रायो विंशतिस्तस्य ॥ ४९½ ॥
व्यासः प्राकारस्योर्ध्वे षडधोऽथाष्ट तीर्थका दीर्घः ।
घटितेष्टकाः कति स्युश्चोच्छ्रायो विंशतिस्तस्य ॥ ५०½ ॥
द्वादश षोडश विंशतिरुत्सेधाः सप्त षट् च पञ्चाधः ।
व्यासा मुखे चतुस्त्रिद्विकाश्चतुर्विंशतिर्दीर्घः ॥ ५१½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

समचतुरश्र छेदवाली एक उठी हुई वेदी है, जिसकी भुजा का माप ८ हस्त और ऊँचाई ९ हस्त है। वह वेदी ईंटों की बनी हुई है। हे गणितज्ञ, बतलाओ कि उसमें कितनी इष्टकाएँ हैं ? ॥ ४५½ ॥

समभुज त्रिभुज छेदवाली किसी वेदी की भुजा का माप ८ हस्त और ऊँचाई ९ हस्त है। यह उपर्युक्त ईंटों द्वारा बनाई गई है। गणनाकर बतलाओ कि इस संरचना में कितनी इष्टकाएँ हैं ? ॥४६½॥

वृत्ताकार छेदवाली एक वेदी जिसका व्यास ८ हस्त और ऊँचाई ९ हस्त है, उन्हीं ईंटों की बनी है। हे गणितज्ञ, बतलाओ कि उसमें कितनी ईंटें हैं ? ॥ ४७½ ॥

आयताकार छेदवाली किसी वेदी के संबंध में लंबाई ६० हस्त, चौड़ाई २५ हस्त और ऊँचाई ६ हस्त है। उस ईंट के ढेर का माप बतलाओ ॥ ४८½ ॥

एक सीमारूप दीवाल मोटाई (व्यास) में ७ हस्त, लंबाई (आयाम) में २४ हस्त, ऊँचाई (उच्छ्राय) में २० हस्त है। उसे बनाने में कितनी इष्टकाओं की आवश्यकता होगी ? ॥ ४९½ ॥

किसी सीमारूप दीवाल की मुटाई शिखर पर ६ हस्त और तली में ८ हस्त है। उसकी लंबाई २४ हस्त और ऊँचाई २० हस्त है। उसे बनाने में कितनी इष्टकाओं की आवश्यकता होगी ? ॥ ५०½ ॥

किसी प्रवण (उतारवाली) वेदी के संबंध में ऊँचाइयाँ तीन स्थानों में क्रमशः १२, १६ और २० हस्त हैं; तली में चौड़ाई के माप क्रमशः ७, ६ और ५ तथा ऊपर ४, ३ और २ हस्त हैं; लंबाई २४ हस्त है। ढेर में इष्टकाओं की संख्या बतलाओ ॥५१½॥

(५०½–५१½) दीवाल की घनाकार समाई प्राप्त करने के लिये उपर्युक्त ४ थे श्लोक के उत्तरार्द्ध में दिये गये नियमानुसार परिगणित औसत चौड़ाई को उपयोग में लाते हैं, इसलिये यहाँ कर्मान्तिक फल का मान विचाराधीन हो जाता है।

(५१½) यह प्रवण वेदी दो अंतों (ends) में दो ऊर्ध्वाधर (लंबरूप) समतलों द्वारा सीमित है।

इष्टवेदिकायां पतितायां सत्यां स्थितस्थाने इष्टकासंख्यानयनस्य च पतितस्थाने इष्टका-संख्यानयनस्य च सूत्रम् –

मुखतलशेष पतितोत्सेधगुणः सकलवेधहृत्समुखः ।
मुखभूम्योर्भूमिमुखे पूर्वोक्तं करणमवशिष्टम् ॥ ५२½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादश दैर्घ्यं व्यासः पञ्चाधश्चोर्ध्वमेकमुत्सेधः ।
दश तस्मिन् पञ्च करा भग्नास्तत्रेष्टकाः कति स्युस्ताः ॥ ५३½ ॥

प्राकारे कर्णाकारेण भग्ने सति स्थितेष्टकानयनस्य च पतितेष्टकानयनस्य च सूत्रम्—

किसी पतित (भग्न होकर गिरी हुई) वेदी के संबंध में स्थित भाग में (शेष अपतित भाग में) तथा पतित-भाग में ईंटों की संख्या अलग अलग निकालने के लिये नियम —

ऊपरी चौड़ाई और तली की चौड़ाई के अंतर को पतित भाग की ऊँचाई द्वारा गुणित करते हैं, और पूर्ण ऊँचाई द्वारा भाजित करते हैं । इस परिणामी भजनफल में ऊपरी चौड़ाई का मान जोड़ दिया जाता है । यह पतित भाग के संबंध में आधारीय चौड़ाई का माप तथा अपतित भाग के संबंध में ऊपरी चौड़ाई का माप उत्पन्न करता है। शेष क्रिया पहले वर्णित कर दी गई है ॥ ५२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

वेदी के संबंध में लंबाई १२ हस्त है, तली में चौड़ाई ५ हस्त है; ऊपरी चौड़ाई १ हस्त है, ऊपरी चौड़ाई १ हस्त है, और ऊँचाई सर्वत्र १० हस्त है । ५ हस्त ऊँचाई का भाग टूट कर गिर जाता है । उस पतित और अपतित भाग में अलग-अलग कितनी ऐष्टिक इष्टकाएँ हैं ? ॥ ५३½ ॥

जब किले की दीवाल तिर्यक् रूप से टूटी हो, तब स्थित भाग में तथा पतित भाग में इष्टकाओं की संख्या निकालने के लिये नियम—

शिखर और पार्श्व तल प्रवण (ढालू) हैं । ऊपरी अभिनत तल के उठे हुए अंत पर चौड़ाई २ हस्त है, और दूसरे अंत पर चौड़ाई ४ हस्त है (चित्र देखिये) ।

(५२½) स्थित अपतित भाग की ऊपरी चौड़ाई का माप जो वेदी के पतित भाग की नितल चौड़ाई के समान है, बीजीय रूप से $\frac{(अ-ब) द}{उ} + ब$ है, जहाँ तली की चौड़ाई 'अ' और ऊपरी चौड़ाई 'ब' है, संपूर्ण ऊँचाई 'उ' है, और 'द' वेदी के पतित भाग की ऊँचाई है । यह सूत्र समरूप त्रिभुजों के गुणों द्वारा भी सरलतापूर्वक शुद्ध सिद्ध किया जा सकता है । नियम में कथित क्रिया ऊपर गाथा ४ में पहिले ही वर्णित की जा चुकी है ।
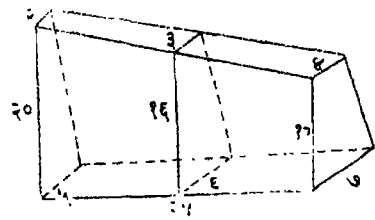
भूमिमुखे द्विगुणे मुखभूमियुतेऽभग्नभूदययुतोने ।
दैर्घ्योदयषष्ठांशघ्ने स्थितपतितेष्टकाः क्रमेण स्युः ॥ ५४½ ॥

अत्रोद्देशकः

प्राकारोऽयं मूलान्मध्यावर्तेन चैकहस्तं गत्वा ।
कर्णीकृत्या भग्नः कतीष्टकाः स्युः स्थिताश्च पतिताः काः ॥ ५६½ ॥

तली की चौड़ाई और ऊपरी चौड़ाई में से प्रत्येक को दुगना किया जाता है । इनमें क्रमशः ऊपर की चौड़ाई और तली की चौड़ाई जोड़ी जाती है । परिणामी राशियाँ, क्रमशः, अपतित भाग की दीवाल को जमीन से ऊपर की ऊँचाई द्वारा बढ़ाई व घटाई जाती है; और इस प्रकार प्राप्त राशियाँ लंबाई द्वारा तथा संपूर्ण ऊँचाई के $\frac{1}{6}$ भाग द्वारा गुणित की जाती हैं । इस प्रकार शेष अपतित भाग तथा पतित भाग में क्रम से ईंटों की संख्याएँ प्राप्त होती हैं ॥ ५४½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

पूर्वोक्त माप वाली यह किले की दीवाल चक्रवात वायु से टकराई जाकर तली से तिर्यक् रूप से विकर्ण छेद पर टूट जाती है । इसके संबंध में, स्थित और पतित भाग की ईंटों की संख्याएँ क्या-क्या हैं ? ॥ ५५½ ॥ वही ऊंची दीवाल चक्रवात वायु द्वारा तली से एक हस्त ऊपर से तिर्यक् रूप से टूटी है । स्थित और पतित भाग को ईंटों की संख्याएं कौन-कौन हैं ॥ ५६½ ॥

(५४½) यदि तली की चौड़ाई 'अ' हो, ऊपर की चौड़ाई 'ब' हो, 'ऊ' कुल ऊँचाई हो और दीवाल की लंबाई 'ल' हो, तथा 'द' जमीन से नापी गई अपतित दीवाल की ऊँचाई हो; तो $\frac{\text{ल ऊ}}{6}$ (२अ + ब + द) और $\frac{\text{ल ऊ}}{6}$ (२ब + अ – द) राशियाँ स्थित भाग और पतित भाग में ईंटों की संख्याओं का निरूपण करती हैं । इस सूत्र से मिलता जुलता प्रतिपादन चीनी ग्रंथ च्यु–चांग सुआन–चु में है, जिसके विषय में कूलिज की अभ्युक्ति है, "यह विचित्र रूप से वर्णित ठोस (solid) त्रिभुजाकार लंब समपार्श्व (traingular right prism) का समच्छिन्नक है, और हमें यह सूत्र प्राप्त होता है कि यह घनफल समपार्श्व के आधार पर स्थित उन स्तूपों के योग के तुल्य होता है, जिनके शिखर सम्मुख फलक (face) में होते हैं । यह सबसे अधिक हृदय भंजक साध्यों में से एक है, जिन्हें हम प्रारम्भिक ठोस ज्यामिति में पढ़ाते हैं । इसके आविष्कार का श्रेय लेजान्ड्र (Legendre) को दिया गया है"—J. L. Coolidge, A History of Geometrical Methods, p. 22, Oxford, (1940). दी गई आकृति गाथा (श्लोक) ५६½ में कथित दीवाल को दर्शाती है; और क ख ग घ वह समतल है जिस पर से दीवाल टूटते समय भग्न होती है ।
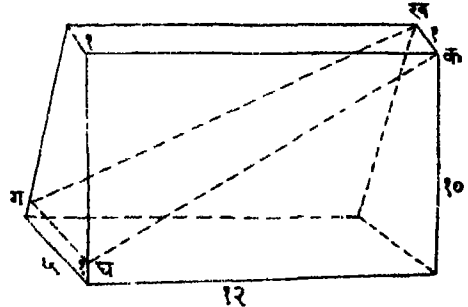
प्राकारमध्यप्रदेशोत्सेधे तरवृद्ध्यानयनस्य प्राकारस्य उभयपार्श्वयोः तरहानेरानयनस्य च सूत्रम्—

इष्टेष्टकोदयहृतो वेधश्च तरप्रमाणमेकोनम् ।
मुखतलशेषेण हृतं फलमेव हि भवति तरहानिः ॥ ५७½ ॥

अत्रोद्देशकः

प्राकारस्य व्यासः सप्त तले विंशतिस्तदुत्सेधः ।
एकेनाग्रे घटितस्तरवृद्ध्यूने करोदयेष्टकया ॥ ५८½ ॥
समवृत्तायां वाप्यां व्यासचतुष्केऽर्धयुक्तकरभूमिः ।
घटितेष्टकाभिरभितस्तस्यां वेधस्त्रयः काः स्युः ।
घटितेष्टकाः सर्वे मे विगणय्य ब्रूहि यदि वेत्सि ॥ ६० ॥

इष्टकाघटितस्थले अधस्तलव्यासे सति ऊर्ध्वतलव्यासे सति च गणितन्यायसूत्रम्—

द्विगुणनिवेशो व्यासायामयुतो द्विगुणितस्तदायामः ।
आयतचतुरश्रे स्यादुत्सेधव्याससंगुणितः ॥ ६१ ॥

किले की दीवाल की केन्द्रीय ऊँचाई के संबंध में (ईंटों के) तलों की बढ़ती हुई संख्या को निकालने के लिए नियम, और नीचे से ऊपर की ओर जाते समय दीवाल की दोनों पार्श्वों की चौड़ाई में कमी होने से तलों की घटती (की दर) निकालने के लिए नियम—

केन्द्रीय छेद की ऊँचाई, दी गई इष्टका (ईंट) की ऊँचाई द्वारा भाजित होकर, इष्टकाओं की तली का इष्ट माप उत्पन्न करती है। यह संख्या, एक द्वारा ह्रासित होकर और तब ऊपरी चौड़ाई तथा नीचे की चौड़ाई के अंतर द्वारा भाजित होकर, तलों के मान में (in terms of layers) मापी गई चौड़ाई की घटती की दर (rate) के मान को उत्पन्न करती है ॥ ५७½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी ऊँची किले की दीवाल की तली में चौड़ाई ७ हस्त है। इसकी ऊँचाई २० हस्त है। वह इस तरह से बनी हुई है कि ऊपर चौड़ाई १ हस्त रहे। १ हस्त ऊँची इष्टकाओं की सहायता से केन्द्रीय (तलों) की वृद्धि तथा चौड़ाई की घटती (की दर) का माप बतलाओ ॥ ५८½ ॥

किसी समवृत्ताकार ४ हस्त व्यास वाली वापिका के चारों ओर १½ हस्त मोटी दीवाल पूर्वोक्त ईंटों द्वारा बनाई जाती है। वापिका की गहराई ३ हस्त है। यदि तुम जानते हो, तो हे मित्र, बतलाओ कि बनाने में कितनी ईंटें लगेंगी ? ॥ ५९½–६० ॥

किसी स्थान के चारों ओर बनी हुई संरचना की घनाकार समाई का मान निकालने के लिए नियम, जब कि संरचना का अधस्तल व्यास और ऊर्ध्वतल व्यास दिया गया हो—

संरचना की औसत मुटाई की दुगनी राशि में दत्त व्यासायाम (लंबाई एवं चौड़ाई) का माप जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग दुगना किया जाता है। परिणामी राशि संरचना की कुल लंबाई होती है, जबकि वह आयताकार रूप में होती है। यह परिणामी राशि, दी गई ऊँचाई और पूर्वोक्त औसत मुटाई से गुणित होकर, इष्ट घनफल का माप उत्पन्न करती है ॥ ६१ ॥

(५९½–६०) यहाँ पूर्वोक्त श्लोक ४३½ में कथित एकक इष्टका मानी गई है। यह प्रश्न श्लोक ५७½ में दिये गये नियम को निदर्शित नहीं करता है। उसे इस अध्याय के १९½–२०½ और ४४½ वें श्लोकों के नियमानुसार साधित किया जाता है।

अत्रोद्देशकः

विद्याधरनगरस्य व्यासोऽष्टौ द्वादशैव चायामः ।
पञ्च प्राकारतले मुखे तदेकं दशोत्सेधः ॥ ६२ ॥
इति खातव्यवहारे चितिगणितं समाप्तम् ।

क्रकचिकाव्यवहारः

इतः परं क्रकचिकाव्यवहारमुदाहरिष्यामः । तत्र परिभाषा—
हस्तद्वयं षडङ्गुलहीनं किष्काह्वयं भवति ।
इष्टाद्यन्तच्छेदनसंख्यैव हि मार्गसंज्ञा स्यात् ॥ ६३ ॥
अथ शाकाख्यद्व्यादिद्रुमसमुदायेषु वक्ष्यमाणेषु ।
व्यासोदयमार्गाणामङ्गुलसंख्या परस्परघ्नाप्ता ॥ ६४ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

विद्याधर नगर के नाम से ज्ञात स्थान के संबंध में चौड़ाई ८ है, और लंबाई १२ है। प्राकार दीवाल की तली की मुटाई ५ और मुख में (ऊपर को) मुटाई १ है। उसकी ऊँचाई १० है। इस दीवाल का घनफल क्या है ? ॥ ६२ ॥

इस प्रकार खात व्यवहार में चिति गणित नामक प्रकरण समाप्त हुआ।

क्रकचिका व्यवहार

इसके पश्चात् हम क्रकचिका व्यवहार (लकड़ी चीरने वाले आरे से किए गये कर्म संबंधी क्रियाओं) का वर्णन करेंगे। पारिभाषिक शब्दों की परिभाषाः—

६ अंगुल से हीन दो हस्त, किष्कु कहलाता है। किसी दी गई लकड़ी को आरम्भ से लेकर अंत तक छेदन (काटने के रास्तों के माप) की संख्या को मार्ग संज्ञा दी गई है ॥ ६३ ॥

तब कम से कम दो प्रकार की शाक (teak) आदि (प्रकारों वाली) लकड़ियों के ढेर के संबंध में चौड़ाई मापने वाली अंगुलों की संख्या और लंबाई नापने वाली संख्या, तथा मार्गों को नापने वाली संख्या, इन तीनों को आपस में गुणित किया जाता है। परिणामी गुणनफल हस्त अंगुलों की संख्या के वर्ग द्वारा भाजित किया जाता है। क्रकचिका व्यवहार में यह पट्टिका नामक कार्य के माप को उत्पन्न करता है। शाक (teak-wood) आदि (प्रकारवाली) लकड़ियों के संबंध में चौड़ाई तथा लंबाई नापनेवाली हस्तो की संख्याएँ आपस में गुणित की जाती हैं। परिणामी गुणनफल राशि मार्गों की संख्या द्वारा गुणित की जाती है, और तब ऊपर निकाली गई पट्टिकाओं की संख्या द्वारा भाजित की जाती है। यह आरे के द्वारा किये गये कर्म का संख्यात्मक माप होता है ॥ ६४–६६ ॥

(६३–६७½) १ किष्कु = १¾ हस्त। किसी लकड़ी के टुकड़े को चीरने में किसी इष्ट रास्ते अथवा रेखा का नाम मार्ग दिया गया है। किसी लकड़ी के टुकड़े में काटे गये तल का विस्तार, सामान्यतः उसे चीरने में किये गये काम का माप होता है, जब कि किसी विशिष्ट कठोरतावाली (जिसे कठोरता का एकक मान लिया हो ऐसी) लकड़ी दी गई हो। काटे गये तल का यह विस्तार क्षेत्रफल के

हस्ताङ्गुलवर्गेण क्राकचिके पट्टिकाप्रमाण स्यात् ।
शाकाह्वयद्रुमादिद्रुमेषु परिणाहदैर्घ्यहस्तानाम् ॥ ६५ ॥
संख्या परस्परघ्ना मार्गाणां संख्यया गुणिता ।
सत्पट्टिकासमाप्ता क्रकचकृता कर्मसंख्या स्यात् ॥ ६६ ॥
शाकार्जुनाम्लवेतससरलासितसर्जदुण्डुकाख्येषु ।
श्रीपर्णीप्लक्षाख्यद्रुमेष्वमीष्वेकमार्गस्य ।
षण्णवतिरङ्गुलानामायामः किष्कुरेव विस्तारः ॥ ६७$\frac{1}{2}$ ॥

अत्रोद्देशकः

शाकाख्यतरौ दीर्घः षोडश हस्ताश्च विस्तारः ।
सार्धत्रयश्च मार्गाश्चाष्टौ कान्यत्र कर्माणि ॥ ६८$\frac{1}{2}$ ॥

इति खातव्यवहारे क्रकचिकाव्यवहारः समाप्तः ।

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ सप्तमः खातव्यहारः समाप्तः ॥
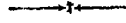
पट्टिका के माप को प्राप्त करने के लिए, निम्नलिखित नाम वाले वृक्षों से प्राप्त लकड़ियों के संबंध में प्रत्येक दशा में मार्ग १ होता है, लंबाई ९६ अंगुल होती है, और चौड़ाई १ किष्कु होती है; उन वृक्षों के नाम ये हैं—शाक, अर्जुन, अम्लवेतस, सरल, असित, सर्ज और दुण्डुको, तथा श्रीपर्णी और प्लक्ष ॥ ६७–६७$\frac{1}{2}$ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी शाक लकड़ी के टुकड़े के संबंध में लंबाई १६ हस्त है, चौड़ाई ३$\frac{1}{2}$ हस्त है और मार्ग (अर्थात् चीरने वाले आरे के रास्तों की) संख्या ८ है। यहाँ आरे के काम के कितने एकक (इकाइयाँ) कर्म (कार्य) पूर्ण हुआ है ? ॥ ६८$\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार खात व्यवहार में क्रकचिका व्यवहार नामक प्रकरण समाप्त हुआ। इस प्रकार महावीराचार्य की कृति सारसंग्रह नामक गणितशास्त्र में खातव्यवहार नामक सप्तम व्यवहार समाप्त हुआ।

विशेष एकक (इकाई) द्वारा मापा जाता है। यह एकक पट्टिका कहलाता है। पट्टिका लंबाई में ९६ अंगुल और चौड़ाई में १ किष्कु अथवा ४२ अंगुल होती है। यह सरलता पूर्वक देखा जा सकता है कि इस प्रकार पट्टिका ७ वर्ग हाथ के बराबर होती है।

९. छायाव्यवहारः

शान्तिर्जिनः शान्तिकरः प्रजानां जगत्प्रभुर्ज्ञातसमस्तभावः[1] ।
यः प्रातिहार्याष्टविवर्धमानो नमामि तं निर्जितशत्रुसंघम् ॥ १ ॥

आदौ प्राच्याद्यष्टदिक्साधनं प्रवक्ष्यामः—

सलिलोपरितलवत्स्थितसमभूमितले लिखेद्वृत्तम् ।
बिम्बं स्वेच्छाशङ्कुद्विगुणितपरिणाहसूत्रेण ॥ २ ॥
तद्वृत्तमध्यस्थतदिष्टशङ्कोश्छाया दिनादौ च दिनान्तकाले ।
तद्वृत्तरेखां स्पृशति क्रमेण पश्चात्पुरस्ताच्च ककुप् प्रदिष्टा ॥ ३ ॥
तद्दिग्द्वयान्तर्गततन्तुना लिखेन्मत्स्याकृतिं याम्यकुबेरदिक्स्थाम् ।
तत्कोणमध्ये विदिशः प्रसाध्याश्छायैव याम्योत्तरदिग्दशार्धजाः ॥ ४ ॥

1. M में तत्वः पाठ है ।

९. छाया व्यवहार (छाया संबंधी गणित)

जो प्रजा को शांति कारक हैं (शांति देने वाले हैं), जगत्प्रभु हैं, समस्त पदार्थों को जाननेवाले हैं, और अपने आठ प्रातिहार्यों द्वारा (सदा) वर्धमान (महनीय) अवस्था को प्राप्त हैं—ऐसे (कर्म) शत्रु संघ के विजेता श्री शांतिनाथ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

आदि में, हम प्राची (पूर्व) दिशा को आदि लेकर, आठ दिशाओं के साधन करने के लिए उपाय बतलाते हैं—

पानी के ऊपरी सतह की भाँति, क्षैतिज समतल वाली समतल भूमि पर केन्द्र में स्थित स्वेच्छा से चुनी हुई लंबाई वाली शंकु लेकर, उसकी लंबाई की द्विगुणित राशि की लंबाई वाले धागे के फन्दे (loop) की सहायता से एक वृत्त खींचना चाहिये ॥ २ ॥

इस केन्द्र में स्थित इष्ट शंकु की छाया दिन के आदि में तथा दिन के अन्त समय में उस वृत्त की परिधि को स्पर्श करती है । इसके द्वारा, क्रम से, पश्चिम दिशा और पूर्व दिशा सूचित होती है ॥३॥

इन दो निश्चित की गई दिशाओं की रेखा में धागे को रखकर, उसके द्वारा उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत मत्स्याकार (संतरे की कली के समान) आकृति खींचना चाहिए । इस मत्स्याकृति के कोणों के मध्य से जाने वाली सरल रेखा उत्तर और दक्षिण दिशाओं को सूचित करती है । इन दिशाओं के मध्य में (स्थित जगह में) विदिशायें प्रसाधित की जाती हैं ॥ ४ ॥

(४) वह धागा जिसकी सहायता से मत्स्याकार आकृति खींची जाती है, गाथा २ में दिये

अजघटरविसंक्रमणद्युदलजभैक्यार्धमेव विषुवद्भा ॥ ४½ ॥
लङ्कायां यवकोट्यां सिद्धपुरीरोमकापुर्योः ।
विषुवद्भा नास्त्येव त्रिंशद्घटिकं दिनं भवेत्तस्मात् ॥ ५½ ॥
देशेष्वितरेषु दिनं त्रिंशन्नाड्याधिकोनं स्यात् ।
मेषघटायनदिनयोस्त्रिंशद्घटिकं दिनं हि सर्वत्र ॥ ६½ ॥
दिनमानं दिनदलभां ज्योतिश्शास्त्रोक्तमार्गेण ।
ज्ञात्वा छायागणितं विद्यादिह वक्ष्यमाणसूत्रौघैः ॥ ७½ ॥

विषुवच्छाया यत्रयत्र देशे नास्ति तत्रतत्र देशे इष्टशङ्कोरिष्टकालच्छायां ज्ञात्वा तत्कालानयनसूत्रम्—

छाया सैका द्विगुणा तया हृतं दिनमितं च पूर्वाह्णे ।
अपराह्णे तच्छेषं विज्ञेयं सारसंग्रहे गणिते ॥ ८½ ॥

विषुवद्भा (अर्थात् जब दिन और रात दोनों बराबर होते हैं, उस समय पड़ने वाली छाया) वास्तव में उन दिनों के मध्याह्न (दोपहर) समय प्राप्त छाया के मापों के योग की आधी होती है, जब कि सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है, तथा जब वह तुला राशि में भी प्रवेश करता है ॥ ४½ ॥

लंका, यवकोटि, सिद्धपुरी और रोमकपुरी में ऐसा विषुवद्भा (equinoctial shadow) बिलकुल होता ही नहीं है; और इसलिए दिन ३० घटी का होता है ॥ ५½ ॥

अन्य प्रदेशों में दिन मान ३० घटी से अधिक या कम रहता है। जब सूर्य मेष राशि और तुला (घटायन) राशि में प्रवेश करता है, तब सभी जगह दिन मान ३० घटी का होता है ॥ ६½ ॥

ज्योतिष शास्त्र में वर्णित विधि के अनुसार दिन का माप तथा दिन की मध्याह्न छाया का माप समझ लेने के पश्चात्, छाया संबंधी गणित निम्नलिखित नियमों द्वारा सीखना चाहिए ॥ ७½ ॥

ऐसे स्थान के संबंध में दिन का वह समय निकालने के लिए नियम, जहाँ विषुवच्छाया नहीं होती हो, तथा किसी दिये गये समय पर (दोपहर के पहिले अथवा पश्चात्) किसी दिये गये शंकु की छाया का माप ज्ञात हो—

किसी वस्तु (शंकु) की ऊँचाई के पदों में व्यक्त छाया के माप में एक जोड़ा जाता है, और इस प्रकार परिणामी योग दुगुना किया जाता है। परिणामी राशि द्वारा पूर्ण दिनमान भाजित किया जाता है। यह समझना चाहिये कि सारसंग्रह नामक गणित शास्त्र के अनुसार, यह प्राप्त फल पूर्वाह्ण और अपराह्ण के शेष भागों (अथवा दोपहर के पहिले दिन के बीते हुए भाग और दोपहर के पश्चात् दिन के शेष रहने वाले भाग) को उत्पन्न करता है ॥ ८½ ॥

गये त्रिज्या की माप में कुछ अधिक लंबाई वाला होना चाहिये। यदि 'क पू' और 'क प' पार्श्व आकृति में क्रमशः पूर्व और पश्चिम दिशा प्ररूपित करते हों, तो आकृति उ ख द ग, क्रमशः पू और प को केन्द्र मान कर और पू ग, तथा प ख त्रिज्याएँ लेकर चाप खींचने से प्राप्त होती हैं, जब कि पू ग और प ख आपस में बराबर हों। भुजा उद जो पूर्वोक्त आकृति के कोण का अर्धन करती है, क्रमशः उत्तर और दक्षिण दिशा का प्ररूपण करती है।
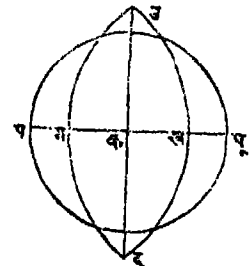
(८½) यदि वस्तु की ऊँचाई उ है, और उसकी छाया की लंबाई छ है, तो दिन का बीता हुआ

अत्रोद्देशकः

पूर्वाह्णे पौरुषी छाया त्रिगुणा वद किं गतम् ।
अपराह्णेऽवशेषं च दिनस्यांशं वद प्रिय ॥ ९½ ॥

दिनांशे जाते सति घटिकानयनसूत्रम्—

अंशहतं दिनमानं छेदविभक्तं दिनांशके जाते ।
पूर्वाह्णे गतनाड्यस्त्वपराह्णे शेषनाड्यस्तु ॥ १०½ ॥

अत्रोद्देशकः

विषुवच्छायाविरहितदेशेऽष्टांशो दिनस्य गतः ।
शेषश्चाष्टांशः का घटिकाः स्युः खाग्निनाड्योऽह्नः ॥ ११½ ॥

मल्लयुद्धकालानयनसूत्रम्—

कालानयनाद्दिनगतशेषसमासोनितः कालः ।
स्तम्भच्छाया स्तम्भप्रमाणभक्तैव पौरुषी छाया ॥ १२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी मनुष्य की छाया उसकी ऊँचाई से ३ गुनी है । हे प्रिय मित्र, बतलाओ कि पूर्वाह्न में बीते हुए दिन का भाग एवं अपराह्न में शेष रहने वाला दिन का भाग क्या है ? ॥ ९½ ॥

दिन का भाग (जो बीत चुका है, या बीतने वाला है) प्राप्त हो चुकने पर घटिकाओं की संवादी संख्या को निकालने के लिये नियम—

दिन मान के ज्ञात माप को, (पहिले ही प्राप्त) दिन के बीते हुए अथवा बीतने वाले भाग का निरूपण करने वाले भिन्न के अंश द्वारा गुणित करने और हर द्वारा भाजित करने से, पूर्वाह्न के संबंध में बीती हुई घटिकाएँ और अपराह्न के संबंध में बीतने वाली घटिकाएँ उत्पन्न होती हैं ॥ १०½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

ऐसे प्रदेश में जहाँ विषुवच्छाया नहीं होती, दिन $\frac{1}{8}$ भाग बीत गया है, अथवा अपराह्न के संबंध में शेष रहने वाला दिन का भाग $\frac{1}{8}$ है । इस $\frac{1}{8}$ भाग की संवादी घटिकाएँ क्या हैं ? दिन में ३० घटिकाएँ मान ली गई हैं ॥ ११½ ॥

मल्लयुद्ध काल निकालने के लिए नियम—

जब दिन के बीते हुए भाग तथा बीतने वाले भाग के योग द्वारा दिन की अवधि ह्रासित कर, उसे घटिकाओं में परिवर्तित किया जाता है, तब इष्ट समय उत्पन्न होता है ।

अथवा बीतनेवाला समय (नियमानुसार) यह है—

$$\frac{१}{२\left(\frac{छ}{उ}+२\right)} \text{ अथवा } \frac{१}{२(\text{कोस्पआ}+१)},$$

जहाँ कोण आ उस समय पर सूर्य का ऊँचाई निरूपक कोण है । यह सूत्र केवल आ = ४५°, छोड़कर आ के शेष मानों के लिये सन्निकट दिन का समय देता है । जब यह कोण ९०° के निकटतर पहुँचता है, तब सन्निकट दिन का समय और भी गलत होता जाता है । यह सूत्र इस तथ्य पर आधारित है कि किसी समकोण त्रिभुज में छोटे मानों के लिए कोण सन्निकटतः सम्मुख भुजाओं के समानुपाती होते हैं ।
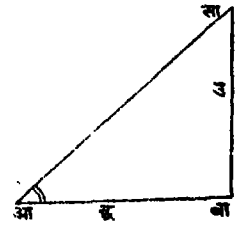
अत्रोद्देशकः

पूर्वाह्णे शङ्कुसमच्छायायां मल्लयुद्धमारब्धम् ।
अपराह्णे द्विगुणायां समाप्तिरासीच्च युद्धकालः कः ॥ १३½ ॥

अपरार्धस्योदाहरणम्

द्वादशहस्तस्तम्भच्छाया चतुरुत्तरैव विंशतिका ।
तत्काले पौरुषिकच्छाया कियती भवेद्गणक ॥ १४½ ॥

विषुवच्छायायुक्ते देशे इष्टच्छायां ज्ञात्वा कालानयनस्य सूत्रम्[1]—

शङ्कुयुतेष्टच्छाया मध्यच्छायोनिता द्विगुणा ।
तदवाप्ता शङ्कुमितिः पूर्वापरयोर्दिनांशः स्यात् ॥ १५½ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादशाङ्गुलशङ्कोर्युदलच्छायाङ्गुलद्वयी ।
इष्टच्छायाष्टाङ्गुलिका दिनांशः को गतः स्थितः ।
त्र्यंशो दिनांशो घटिकाः कास्त्रिंशन्नाडिकं दिनम् ॥ १७ ॥

1. किसी भी हस्तलिपि में प्राप्य नहीं है ।

किसी स्तम्भ की छाया के माप को स्तंभ की ऊँचाई द्वारा भाजित करने पर पौरुषी छाया माप (उस मनुष्य की छाया का माप उसकी निज की ऊँचाई के पदों में) प्राप्त होता है ॥ १२½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई मल्लयुद्ध पूर्वाह्ण में आरम्भ हुआ, जब कि किसी शंकु की छाया उसी शंकु के माप के तुल्य थी। उस युद्ध का निर्णय अपराह्ण में हुआ, जबकि उसी शंकु की छाया का माप शंकु के माप से दुगुना था। बतलाओ कि यह युद्ध कितने समय तक चला ? ॥ १३½ ॥

श्लोक के उत्तरार्ध नियम के लिये उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी १२ हस्त ऊँचाई वाले स्तंभ की छाया माप में २४ हस्त है। उस समय, हे अंकगणितज्ञ, मनुष्य की छाया का माप क्या होगा ? ॥ १४½ ॥

जब किसी भी समय पर छाया का माप ज्ञात हो, तब विषुवच्छाया वाले स्थानों में बीते हुए अथवा बीतने वाले दिन के भाग को प्राप्त करने के लिये नियम—

शंकु की ज्ञात छाया के माप में शंकु का माप जोड़ा जाता है। यह योग विषुवच्छाया के माप द्वारा ह्रासित किया जाता है, और परिणामी अंतर को दुगुना कर दिया जाता है। जब शंकु का माप इस परिणामी राशि द्वारा भाजित किया जाता है, तब दशानुसार पूर्वाह्ण में दिन में बीते हुए अथवा अपराह्ण में दिन में बीतने वाले दिनांश का मान उत्पन्न होता है ॥ १५½ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

१२ अंगुल के शंकु के संबंध में विषुवच्छाया दोपहर के समय (दिन के मध्याह्न में) २ अंगुल है, और अवलोकन के समय इष्ट (ज्ञात) छाया ८ अंगुल है। दिन का कौनसा भाग बीत गया है, और कौनसा भाग शेष रहा है ? यदि दिन का बीता हुआ भाग अथवा बीतने वाला भाग $\frac{1}{3}$ है, तो उसकी संवादी घटिकाएँ क्या हैं, जबकि दिन ३० घटियों का होता है ॥ १६½–१७ ॥

(१५½) यहाँ दिन के समय के माप के लिये दिया गया सूत्र बीजीय रूप से, $\frac{उ}{२(छ+उ-व)}$

इष्टनाडिकानां छायानयनसूत्रम्—
द्विगुणितदिनभागहृता शङ्कुमितिः शङ्कुमानोना ।
घुदलच्छायायुक्ता छाया तत्स्वेष्टकालिका भवति ॥ १८ ॥

अत्रोद्देशकः

द्वादशाङ्गुलशङ्कोर्यु दलच्छायाङ्गुलद्वयी ।
दशानां घटिकानां भा का त्रिंशन्नाडिकं दिनम् ॥ १९ ॥

पादच्छायालक्षणे पुरुषस्य पादप्रमाणस्य परिभाषासूत्रम्—
पुरुषोऽभविसप्तांशस्तत्पुरुषाङ्घ्रेस्तु दैर्घ्यं स्यात् ।
यद्येवं चेत्पुरुषः स भाग्यवानङ्घ्रिभा स्पष्टा ॥ २० ॥

आरूढच्छायायाः संख्यानयनसूत्रम्—

घटियों में दिए गये दिन के समय की संवादी छाया का माप निकालने के नियम—

शंकु (style) का माप दिन के दिये गये भाग के माप की दुगुनी राशि द्वारा भाजित किया जाता है। परिणामी भजनफल में से शंकु का माप घटाया जाता है, और इसमें विषुवच्छाया (दोपहर के समय की ऐसे स्थान की छाया, जहाँ दिन रात तुल्य होते हैं) का माप जोड़ दिया जाता है। यह दिन के इष्ट समय पर छाया का माप उत्पन्न करता है ॥ १८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

यदि, किसी १२ अंगुल वाले शंकु के संबंध में, द्युदलच्छाया (विषुवच्छाया) २ अंगुल हो, तो जब १० घटी दिन बीत चुका हो अथवा बीतने वाला हो उस समय शंकु की छाया का माप क्या है ? दिन का मान ३० घटियाँ होता है ॥ १९ ॥

छाया के पाद प्रमाण माप के द्वारा लिए गये मापों संबंधी मनुष्य के पाद माप की परिभाषा—

किसी मनुष्य की ऊँचाई के १/७ भाग के तुल्य उसके पाद की लंबाई होती है। यदि ऐसा हो, तो वह मनुष्य भाग्यशाली होगा। इस प्रकार पाद प्रमाण से नापी गई छाया का माप स्पष्ट है ॥ २० ॥

ऊर्ध्वाधर दीवाल पर आरूढ़ छाया का संख्यात्मक माप निकालने के लिये नियम—

है, जहाँ 'व' शंकु की विषुवच्छाया की लंबाई है। यह सूत्र ऊपर की गाथा ८½ में दिये गये सूत्र की पाद टिप्पणी पर आधारित है।

(१८) बीजीय रूप से,

छ = $\frac{\text{उ}}{२\,\text{घ}}$ − उ + व, जहाँ घ, दिन के समय का माप घटी में दिया गया है। यह सूत्र श्लोक १५½ में की पाद टिप्पणी में दिये गये सूत्र से प्राप्त होता है।

नृच्छायाहतशङ्कुर्भित्तिस्तम्भान्तरोनितो भक्तः।
नृच्छाययैव लब्धं शङ्कोर्भित्त्याश्रितच्छाया ॥ २१ ॥

अत्रोद्देशकः

विंशतिहस्तः स्तम्भो भित्तिस्तम्भान्तरं करा अष्टौ।
पुरुषच्छाया द्विघ्ना भित्तिगता स्तम्भभा किं स्यात् ॥ २२ ॥

स्तम्भप्रमाणं च भित्त्यारूढस्तम्भच्छायासंख्यां च ज्ञात्वा भित्तिस्तम्भान्तरसंख्यानयनसूत्रम्—

पुरुषच्छायानिघ्नं स्तम्भारूढान्तरं तयोर्मध्यम्।
स्तम्भारूढान्तरहृततदन्तरं पौरुषी छाया ॥ २३ ॥

शंकु की ऊँचाई (मनुष्य की ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मनुष्य की छाया द्वारा गुणित की जाती है। परिणामी गुणनफल दीवाल और शंकु के बीच की दूरी के माप द्वारा ह्रासित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त अंतर मनुष्य की उपर्युक्त छाया के माप द्वारा भाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भजनफल शंकु की छाया के उस भाग का माप होता है जो दीवाल पर आरूढ़ है ॥ २१ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई स्तंभ २० हस्त ऊँचा है; इस स्तंभ और दीवाल के बीच की दूरी (जो छाया रेखानुसार नापी जाती है) ८ हस्त है। उस समय मनुष्य की छाया मनुष्य की ऊँचाई से दुगुनी है। स्तंभ की छाया का वह कौन-सा भाग है जो दीवाल पर आरूढ़ है? ॥ २२ ॥

जब दीवाल पर आरूढ़ (पड़ी हुई) छाया का संख्यात्मक मान तथा स्तंभ की ऊँचाई, दोनों ज्ञात हों, तब दीवाल और स्तंभ के अंतर (बीच की दूरी) के माप के संख्यात्मक मान को निकालने के लिये नियम—

स्तंभ की ऊँचाई और दीवाल पर आरूढ़ (पड़ी हुई) छाया के माप का अंतर (मनुष्य की ऊँचाई के पदों में व्यक्त) पुरुष की छाया के माप द्वारा गुणित होकर, उक्त स्तंभ और दीवाल के अंतर की माप को उत्पन्न करता है। इस अंतर का मान, स्तंभ की ऊँचाई और दीवाल पर आरूढ़ (पड़ी हुई) छायांश माप के अंतर द्वारा भाजित किया जाने पर, (मनुष्य की ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया का माप उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥

---

(२१) बीजीय रूप से,
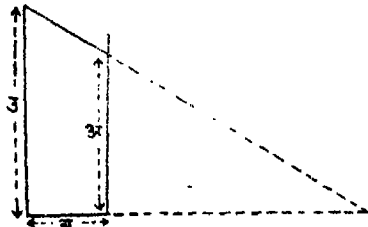
$$अ = \frac{उ \times ब - स}{ब}$$, जहाँ उ शंकु की ऊँचाई है, अ दीवाल पर आरूढ़ छाया की ऊँचाई के पदों में व्यक्त मनुष्य की छाया का माप है, और स स्तंभ (शंकु) और दीवाल के बीच की दूरी है। नियम का स्पष्टीकरण पार्श्व में दिये गये चित्र द्वारा हो जाता है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि यहाँ स्तंभ और दीवाल के बीच की दूरी छाया रेखा पर ही नापी जाना चाहिए।

(२३ और २६) इस नियम तथा २६ वीं गाथा के नियम में २१ वीं गाथा में दिये गये उदाहरणों की विलोम दशा का उल्लेख है।

अत्रोद्देशकः

विंशतिहस्तः स्तम्भः षोडश भित्त्याश्रितच्छाया ।
द्विगुणा पुरुषच्छाया भित्तिस्तम्भान्तरं किं स्यात् ॥ २४ ॥

अपरार्धस्योदाहरणम्

विंशतिहस्तः स्तम्भः षोडश भित्त्याश्रितच्छाया ।
कियती पुरुषच्छाया भित्तिस्तम्भान्तरं चाष्टौ ॥ २५ ॥

आरूढच्छायायाः संख्यां च भित्तिस्तम्भान्तरभूमिसंख्यां च पुरुषच्छायायाः संख्यां च ज्ञात्वा स्तम्भप्रमाणसंख्यानयनसूत्रम्—

नृच्छायाघ्नारूढा भित्तिस्तम्भान्तरेण संयुक्ता ।
पौरुषभाहृतलब्धं विदुः प्रमाणं बुधाः स्तम्भे ॥ २६ ॥

अत्रोद्देशकः

षोडश भित्त्यारूढच्छाया द्विगुणैव पौरुषी छाया ।
स्तम्भोत्सेधः कः स्याद्भित्तिस्तम्भान्तरं चाष्टौ ॥ २७ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

एक स्तंभ २० हस्त ऊँचा है, और दीवाल पर पड़ने वाली छाया के अंश का माप (ऊँचाई) १६ हस्त है। उस समय पुरुष की छाया पौरुषी ऊँचाई से दुगुनी है। स्तंभ और दीवाल के अंतर का माप क्या हो सकता है ? ॥ २४ ॥

नियम के उत्तरार्द्ध भाग के लिए उदाहरणार्थ प्रश्न

कोई स्तंभ ऊँचाई में २० हस्त है, और दीवाल पर पड़ने वाली उसकी छाया की ऊँचाई १६ है। दीवाल और स्तंभ का अंतर ८ हस्त है। पौरुषी ऊँचाई के प्रमाण द्वारा व्यक्त मानवी छाया का माप क्या है ? ॥ २५ ॥

जब दीवाल पर पड़ने वाली छाया के भाग की ऊँचाई का संख्यात्मक मान, उस स्तंभ तथा दीवाल का अंतर, और मानुषी ऊँचाई के पदों में व्यक्त मानुषी छाया का माप भी ज्ञात हो, तब स्तंभ की ऊँचाई का संख्यात्मक मान निकालने के लिये नियम—

दीवाल पर पड़ने वाली छाया के भाग का माप, मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त मानवी छाया के माप द्वारा गुणित किया जाता है। इस गुणनफल में स्तंभ और दीवाल के अंतर (बीच की दूरी) का माप जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त योग को मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त मानवी छाया के माप द्वारा भाजित करने से जो भजनफल प्राप्त होता है वह बुद्धिमानों के द्वारा स्तंभ की ऊँचाई का माप कहा जाता है ॥ २६ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

दीवाल पर स्तंभ की छाया पड़ने वाला भाग १६ हस्त है। उस समय मानवी छाया का मान मानवी ऊँचाई से दुगुना है। दीवाल और स्तंभ का अंतर ८ हस्त है। स्तंभ की ऊँचाई क्या है ? ॥ २७ ॥

शङ्कुप्रमाणशङ्कुच्छायामिश्रविभक्तसूत्रम्—
शङ्कुप्रमाणशङ्कुच्छायामिश्रं तु सैकपौरुष्या।
भक्तं शङ्कुमितिः स्याच्छङ्कुच्छाया तदूनमिश्रं हि ॥ २८ ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कुप्रमाणशङ्कुच्छायामिश्रं तु पञ्चाशत्।
शङ्कूत्सेधः कः स्याच्चतुर्गुणा पौरुषी छाया ॥ २९ ॥

शङ्कुच्छायापुरुषच्छायामिश्रविभक्तसूत्रम्—
शङ्कुनरच्छाययुतिर्विभाजिता शङ्कुसैकमानेन।
लब्धं पुरुषच्छाया शङ्कुच्छाया तदूनमिश्रं स्यात् ॥ ३० ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कोरुत्सेधो दश नृच्छायाशङ्कुभामिश्रम्।
पञ्चोत्तरपञ्चाशन्नृच्छाया भवति कियती च ॥ ३१ ॥

शंकु की ऊँचाई तथा शंकु की छाया की लंबाई के मापों के दत्त मिश्रित योग में से उन्हें अलग-अलग निकालने के लिए नियम—

शंकु के माप और उसकी छाया के माप के मिश्रित योग को जब १ द्वारा बढ़ाये गये (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया के माप द्वारा भाजित करते हैं, तब शंकु की ऊँचाई का माप प्राप्त होता है। दिये गये योग को शंकु के इस माप द्वारा ह्रासित करने पर शंकु की छाया का माप प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंकु के ऊँचाई माप और उसकी छाया के लंबाई माप का योग ५० है। शंकु की ऊँचाई क्या होगी, जबकि मानवी छाया उस समय मानवी ऊँचाई की चौगुनी है ? ॥ २९ ॥

शंकु की छाया की लम्बाई के माप और (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया के मापके मिश्रित योग में से उन्हें अलग-अलग प्राप्त करने के लिए नियम—

शंकु की छाया तथा मनुष्य की छाया के मापों के मिश्रित योग को एक द्वारा बढ़ाई गई शंकु की ज्ञात ऊँचाई द्वारा भाजित करते हैं। इस प्रकार प्राप्त भजनफल (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया का माप होता है। उपर्युक्त मिश्रित योग जब मानवी छाया के इस माप द्वारा ह्रासित किया जाता है, तब शंकु की छाया की लंबाई का माप उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी शंकु की ऊँचाई १० है। (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया और शंकु की छाया के मापों का योग ५५ है। मानवी छाया तथा शंकु की छाया की लंबाई क्या-क्या हैं ? ॥ ३१ ॥

(२८ और ३०) यहाँ दिये गये नियम गाथा १२½ के उत्तरार्द्ध में कथित नियम पर आधारित हैं।

स्तम्भस्य अवनतिसंख्यानयनसूत्रम्—
छायावर्गाच्छोध्या नरभाकृतिगुणितशङ्कुकृतिः ।
सैकनरच्छायाकृतिगुणिता छायाकृतेः शोध्या ॥ ३२ ॥
तन्मूलं छायायां शोध्यं नरभानवर्गरूपेण[1] ।
भागं हृत्वा लब्धं स्तम्भस्यावनतिरेव स्यात् ॥ ३३ ॥

अत्रोद्देशकः

द्विगुणा पुरुषच्छाया त्र्युत्तरदशहस्तशङ्कोर्भा ।
एकोनत्रिंशत्सा स्तम्भावनतिश्च का तत्र ॥ ३४ ॥

1. हस्तलिपि में नरभान के लिए नृभावर्ग पाठ है; परन्तु वह छंद की दृष्टि से अशुद्ध है ।

किसी स्तंभ अथवा ऊर्ध्वाधर शंकु की अवनति (झुकाव) के माप को निकालने के लिए नियम—

मानवी छाया के वर्ग और शंकु की ऊँचाई के वर्ग के गुणनफल को दी गई छाया के वर्ग में घटाया जाता है । यह शेष, मानवी छाया की वर्ग राशि में एक जोड़ने से प्राप्त योगफल द्वारा गुणित किया जाता है । इस प्रकार प्राप्त राशि दी गई छाया के वर्ग में से घटायी जाती है । परिणामी शेष के वर्गमूल को छाया के दिये गये माप में से घटाया जाता है । इस प्रकार प्राप्त राशि को जब मानवी छाया की वर्ग राशि में एक जोड़ने से प्राप्त योगफल द्वारा भाजित किया जाता है, तब स्तंभ की शुद्ध अवनति (झुकाव) का माप प्राप्त होता है ॥ ३२–३३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

इस समय मानवी छाया मानवी ऊँचाई से दुगुनी है । स्तंभ की छाया २९ हस्त है, और स्तंभ की ऊँचाई १३ हस्त है । यहाँ स्तंभ की अवनति का माप क्या है ? ॥ ३४ ॥ प्रासाद के भीतर

(३२–३३) मानलो अवनत (झुके हुए) स्तंभ की स्थिति अ ब द्वारा निरूपित है । मानलो वही स्तंभ ऊर्ध्वाधर (लंबरूप) स्थिति में अ द द्वारा निरूपित है । क्रमशः अ स तथा अ इ उनकी छाया हैं । तब उस समय मानव की छाया और उसकी ऊँचाई का अनुपात $\frac{अइ}{अद}$ होगी । मानलो यह अनुपात र के बराबर है । ब से अद पर गिराया गया लंब ब ग अवनत स्तंभ अ ब की अवनति निरूपित करता है । यह सरलता पूर्वक दिखाया जा सकता है कि
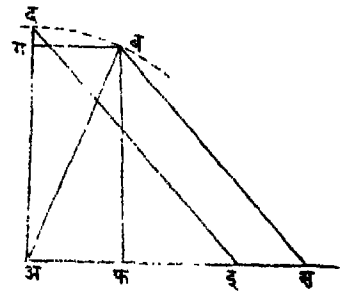
$$\frac{\sqrt{(अब)^2-(बग)^2}}{अस-बग}=\frac{अद}{अइ}=\frac{१}{र}$$ । इससे यह देखा जा सकता है कि

$$बग=\frac{अस-\sqrt{(अस)^2-\{(अस)^2-(अब)^2\times र^2\}(र^2+\ )}}{र^2+१}$$ ।

यहाँ दिया गया नियम इसी सूत्र के रूप में प्ररूपित होता है।

कश्चिद्राजकुमारः प्रासादाभ्यन्तरस्थःसन् ।
पूर्वाह्णे जिज्ञासुर्दिनगतकालं नरच्छायाम् ॥ ३५ ॥
द्वात्रिंशद्धस्तोर्ध्वे जाले प्राग्भित्तिमध्य आयाता ।
रविभा पश्चाद्भित्तौ व्येकत्रिंशत्करोर्ध्वदेशस्था ॥ ३६ ॥
तद्भित्तिद्वयमध्यं चतुरुत्तरविंशतिः करास्तस्मिन् ।
काले दिनगतकालं नृच्छायां गणक विगणय्य ।
कथयच्छायागणिते यद्यस्ति परिश्रमस्तव चेत् ॥ ३७½ ॥
समचतुरश्रायां दशहस्तघनायां नरच्छाया ।
पुरुषोत्सेधद्विगुणा पूर्वाह्णे प्राक्कटच्छाया ॥ ३८½ ॥
तस्मिन् काले पश्चात्तदाश्रिता का भवेद्गणक ।
आरूढच्छायाया आनयनं वेत्सि चेत्कथय ॥ ३९½ ॥

शङ्कोर्दीपच्छायानयनसूत्रम्—
शङ्कूनितदीपोन्नतिराप्ता शङ्कुप्रमाणेन ।
तल्लब्धहृतं शङ्कोः प्रदीपशङ्क्वन्तरं छाया ॥ ४०½ ॥

ठहरा हुआ कोई राजकुमार पूर्वाह्न दिन में बीते हुए समय को ज्ञात करने का, तथा (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया के माप को ज्ञात करने का इच्छुक था। तब सूर्य की रश्मि पूर्व की ओर की दीवाल के मध्य में ३२ हस्त ऊँचाई पर स्थित खिड़की में से आकर, पश्चिम ओर की दीवाल पर २९ हस्त की ऊँचाई तक पड़ी। इन दो दीवालों का अंतर २४ हस्त है। हे छाया प्रश्नों से भिज्ञ गणितज्ञ, यदि तुमने छाया-प्रश्नों (से परिचित होने) में परिश्रम किया हो, तो (उस दिन) बीते हुए दिन के समय का माप और उस समय (मानवी ऊँचाई के पदों में व्यक्त) मानवी छाया का माप बतलाओ ॥ ३५–३७½ ॥

पूर्वाह्न समय मानवी छाया मानवी ऊँचाई से दुगुनी है। प्रत्येक विमिति में (dimension) १० हस्त वाले वर्गाकार छेद के ऊर्ध्वाधर खात के संबंध में पूर्वी दीवाल से उत्पन्न, पश्चिमी दीवाल पर पड़ने वाली की ऊँचाई क्या होगी ? हे गणितज्ञ, यदि जानते हो, तो बतलाओ की लंबरूप दीवाल पर आरूढ़ छाया छाया का माप कितना होगा ? ॥ ३८½–३९½ ॥

किसी दीवाल के प्रकाश के कारण उत्पन्न होनेवाली शंकु की छाया को निकालने के लिये नियम:–

शंकु की ऊँचाई द्वारा ह्रासित दीपक की ऊँचाई को शंकु की ऊँचाई द्वारा भाजित करना चाहिये। यदि इस प्रकार प्राप्त भजनफल के द्वारा दीपक और शंकु के बीच की क्षैतिज दूरी को भाजित किया जाय तो शंकु की छाया का माप उत्पन्न होता है ॥ ४०½ ॥

(३५–३७½) यह प्रश्न श्लोकों ८½ और १३ में दिये गये नियमों के विषय में है।

(३८½–३९½) यह प्रश्न श्लोक २१ में दिये गये नियमानुसार हल किया जाता है।

(४०½) बीजीय रूप से कथित नियम यह है:—$छ = स \div \frac{ब - अ}{अ}$, जहाँ 'छ' शंकु की छाया का

अत्रोद्देशकः

शङ्कुप्रदीपयोर्मध्यं षण्णवत्यङ्गुलानि हि ।
द्वादशाङ्गुलशङ्कोस्तु दीपच्छायां वदाशु मे षष्टिर्दीपशिखोत्सेधो गणितार्णवपारग ॥ ४२ ॥

दीपशङ्क्वन्तरानयनसूत्रम्—

शङ्कूनितदीपोन्नतिराप्ता शङ्कुप्रमाणेन ।
तल्लब्धहता शङ्कुच्छाया शङ्कुप्रदीपमध्यं स्यात् ॥ ४३ ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कुच्छायाङ्गुलान्यष्टौ षष्टिर्दीपशिखोदयः ।
शङ्कुदीपान्तरं ब्रूहि गणितार्णवपारग ॥ ४४ ॥

दीपोन्नतिसंख्यानयनसूत्रम्—

उदाहरणार्थ प्रश्न

किसी शंकु और दीपक की क्षैतिज दूरी वास्तव में ९६ अंगुल है। दीपक की लौ की ऊँचाई जमीन से ६० अंगुल है। हे गणितार्णव (गणित समुद्र) के पारगामी, मुझे शीघ्र ही १२ अंगुल ऊँचे शंकु के संबंध में दीपक की लौ के कारण उत्पन्न होने वाली छाया का माप बतलाओ ॥ ४१$\frac{1}{2}$–४२ ॥

दीपक और शंकु के क्षैतिज अंतर को प्राप्त करने के लिए नियम—

(जमीन से) दीपक की ऊँचाई को शंकु की ऊँचाई द्वारा ह्रासित किया जाता है। परिणामी राशि को शंकु की ऊँचाई द्वारा भाजित करते हैं। शंकु की छाया के माप को, इस प्रकार प्राप्त भजनफल द्वारा गुणित करने पर, दीपक और शंकु का क्षैतिज अंतर प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंकु की छाया की लंबाई ८ अंगुल है। दीप शिखा (दीपक की लौ) की (जमीन से) ऊँचाई ६० अंगुल है। हे गणितार्णव के पारगामी, दीपक और शंकु के क्षैतिज अंतर के माप को बतलाओ ॥ ४४ ॥

दीपक की (जमीन से ऊपर की) ऊँचाई के संख्यात्मक माप को प्राप्त करने के लिये नियम—

माप है, 'अ' शंकु की ऊँचाई का माप है, 'ब' दीपक की ऊँचाई का माप है, और 'स' दीपक तथा शंकु के बीच का क्षैतिज अंतर है।

यह सूत्र पार्श्व में दी गई आकृति से स्पष्ट रूप से सिद्ध किया जा सकता है।

(४३) पिछली टिप्पणी में उपयोग में लाये गये प्रतीकों को ही उपयोग में लाकर, इस नियमानुसार $स = छ \times \frac{ब - अ}{अ}$ होता है।

(४४) अगले ४६–४७ वें श्लोकों के अनुसार शंकु की ऊँचाई का दिया गया माप १२ अंगुल है।
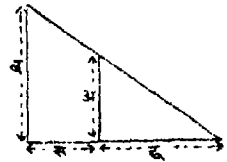
शङ्कुच्छायाभक्तं प्रदीपशङ्क्वन्तरं सैकम् ।
शङ्कुप्रमाणगुणितं लब्धं दीपोन्नतिर्भवति ॥ ४५ ॥

अत्रोद्देशकः

शङ्कुच्छाया द्विनिघ्नैव द्विशतं शङ्कुदीपयोः ।
अन्तरं ह्यङ्गुलान्यत्र का दीपस्य समुन्नतिः ॥ ४६ ॥
शंकुप्रमाणमत्रापि द्वादशाङ्गुलकं गते ।
ज्ञात्वोदाहरणे सम्यग्विद्यात्सूत्रार्थपद्धतिम् ॥ ४७ ॥

पुरुषस्य पादच्छायां च तत्पादप्रमाणेन वृक्षच्छायां च ज्ञात्वा वृक्षोन्नतेः संख्यानयनस्य च, वृक्षोन्नतिसंख्यां च पुरुषस्य पादच्छायायाः सङ्ख्यानयनस्य च सूत्रम्—
स्वच्छायया भक्तनिजेष्टवृक्षच्छाया पुनस्सप्तभिराहृता सा ।
वृक्षोन्नतिः साद्रिहृता स्वपादच्छायाहृता स्याद्द्रुमभैव नूनम् ॥ ४८ ॥

दीपक और शंकु के क्षैतिज अंतर के माप को, शंकु की छाया द्वारा भाजित किया जाता है। तब इस परिणामी भजनफल में एक जोड़ा जाता है। इस प्रकार प्राप्त राशि जब शंकु की ऊँचाई के माप द्वारा गुणित की जाती है, तब दीपक की (जमीन से ऊपर की) ऊँचाई का माप उत्पन्न होता है ॥ ४५ ॥

उदाहरणार्थ प्रश्न

शंकु की छाया की लंबाई उसकी ऊँचाई से दुगुनी है। दीपक और शंकु की क्षैतिज दूरी का माप २०० अंगुल है। इस दशा में दीपक की जमीन से ऊँचाई कितनी है? इसी तथा गत प्रश्न में शंकु की ऊँचाई १२ अंगुल लेकर नियम के साधन का अर्थ भलीभाँति सीख लेना चाहिये ॥ ४६–४७ ॥

जब मनुष्य की (पाद प्रमाण में दी गई) छाया की लंबाई का माप तथा (उसी पाद प्रमाण में दी गई) वृक्ष की छाया की लंबाई का माप ज्ञात हों, तब उस वृक्ष की ऊँचाई का संख्यात्मक माप निकालने के लिए नियम; साथ ही जब (उसी पाद प्रमाण में) वृक्ष की ऊँचाई का संख्यात्मक माप तथा मनुष्य की छाया की लंबाई का संख्यात्मक माप ज्ञात हो, तब (उसी पाद प्रमाण में) वृक्ष की छाया की लंबाई का संख्यात्मक माप निकालने के लिये नियम—

किसी व्यक्ति द्वारा चुने गये वृक्ष की छाया की लंबाई के माप को निज पाद प्रमाण में नापी गई उसकी निज की छाया के माप द्वारा भाजित किया जाता है। इससे वृक्ष की ऊँचाई प्राप्त होती है। यह वृक्ष की ऊँचाई ७ द्वारा भाजित होकर और निज पाद प्रमाण में नापी गई निज की छाया द्वारा गुणित होकर, निःसन्देह, वृक्ष की छाया की शुद्ध लंबाई के माप को उत्पन्न करती है ॥ ४८ ॥

---

(४५) इसी प्रकार, $ब = \left(\frac{स}{छ} + १\right) अ$

(४८) यह नियम उपर्युक्त १२½ वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में दिये गये नियम की विलोम दशा है। यहाँ दिये गये नियम में मनुष्य की ऊँचाई और उसके पाद माप के बीच का संबंध उपयोग में लाया गया है।

अत्रोद्देशकः

आत्मच्छाया चतुःपादा वृक्षच्छाया शतं पदाम् ।
वृक्षोच्छ्रायः को भवेत्स्वपादमानेन तं वद ॥ ४९ ॥

वृक्षच्छायायाः संख्यानयनोदाहरणम्—

आत्मच्छाया चतुःपादा पञ्चसप्ततिभिर्युतम् ।
शतं वृक्षोन्नतिर्वृक्षच्छाया स्यात्कियती तदा ॥ ५० ॥
पुरतो योजनान्यष्टौ गत्वा शैलो दशोदयः ।
स्थितः पुरे च गत्वान्यो योजनाशीतितस्ततः ॥ ५१ ॥
तदग्रस्थाः प्रदृश्यन्ते दीपा रात्रौ पुरे स्थितैः ।
पुरमध्यस्थशैलस्यच्छाया पूर्वागमूलयुक् ।
अस्य शैलस्य वेधः को गणकाशु प्रकथ्यताम् ॥ ५२½ ॥

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ छायाव्यवहारो नाम अष्टमः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयं सारसंग्रहः ॥

उदाहरणार्थ एक प्रश्न

पाद माप में निज की छाया की लम्बाई ४ है। (उसी पाद माप में) वृक्ष की छाया की लम्बाई १०० है। बतलाओ कि (उसी पाद माप में) वृक्ष की ऊँचाई क्या है ? ॥ ४९ ॥

किसी वृक्ष की छाया के संख्यात्मक माप को निकालने के संबंध में उदाहरण—

किसी समय निज की छाया की लम्बाई का माप निज के पाद से चौगुना है। किसी वृक्ष की ऊँचाई (ऐसे पाद-माप में) १७५ है। उस वृक्ष की छाया का माप क्या है ? ॥५०॥ किसी नगर के पूर्व की ओर ८ योजन (दूरी) चल चुकने के पश्चात्, १० योजन ऊँचा शैल (पर्वत) मिलता है। नगर में भी १० योजन ऊँचाई का पर्वत है। पूर्वी पर्वत से पश्चिम की ओर ८० योजन चल चुकने के पश्चात्, एक और दूसरा पर्वत मिलता है। इस अंतिम पर्वत के शिखर पर रखे हुए दीप नगर निवासियों को दिखाई देते हैं। नगर के मध्य में स्थित पर्वत की छाया पूर्वी पर्वत के मूल को स्पर्श करती है। हे गणक, इस (पश्चिमी) पर्वत की ऊँचाई क्या है ? शीघ्र बतलाओ ॥ ५१—५२½ ॥

इस प्रकार, महावीराचार्य की कृति सार संग्रहनामक गणित शास्त्र में छाया नामक अष्टम व्यवहार समाप्त हुआ।

इस प्रकार यह सारसंग्रह समाप्त हुआ।

(५१—५२½) यह उदाहरण उपर्युक्त ४५ वें श्लोक में दिये गये नियम को निदर्शित करने के लिये है।

परिशिष्ट १

संख्याओं का अभिधान करनेवाले सामान्य और संख्यात्मक अर्थबोधक संस्कृत शब्द

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
अक्षि	आँख The eye	२	मनुष्य की दो आँखें होती हैं।
अग्नि	आग Fire	३	होमाग्नियों की संख्या ३ है, अर्थात्, गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण।
अङ्क	संख्या Number	९	शून्य को छोड़कर केवल ९ अङ्क होते हैं।
अङ्ग	विज्ञान का एक विभाग An auxiliary division or department of science	६	वेदों के अध्ययन के संबंध में ६ विभाग होते हैं, अर्थात्, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस्, ज्योतिष।
अचल	पर्वत A mountain	७	पौराणिक भूगोल में माने गये ७ मुख्य पर्वत जो कुलाचल कहलाते हैं; अर्थात्, महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमत्, ऋक्ष, विंध्य, पारियात्र।
अद्रि	पर्वत A mountain	७	अचल देखिए।
अनन्त	आकाश The sky	०	आकाश को शून्य समझा जाता है।
अनल	आग Fire	३	अग्नि देखिए।
अनीक	सेना An army	८	संस्कृत में ८ प्रकार की सेनाओं का उल्लेख है, अर्थात् पत्ति, सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकिनी। (जिनागम में गण की जगह अक्षौहिणी का उल्लेख है।)
अन्तरिक्ष	आकाश The sky	०	अनन्त देखिए।
अब्धि	महासागर The ocean	४	चार महासागर माने जाते हैं, अर्थात्, पूर्वी, दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी।
अम्बक	आंख The eye	२	अक्षि देखिए।
अम्बर	आकाश The sky	०	अनन्त देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
अम्बुधि	महासागर The ocean	४	अब्धि देखिए।
अम्भोधि	महासागर The ocean	४	अब्धि देखिए।
अश्व	घोड़ा A horse	७	सूर्य के रथ में ७ घोड़े माने जाते हैं।
अश्विन्	घोड़े सहित Consiting of horse	७	अश्व देखिए।
आकाश	आकाश The sky	०	अनन्त देखिए।
इन	सूर्य The sun	१२	वर्ष के बारह माहों के संवादी सूर्यों की संख्या १२ होती है; अर्थात्, धातृ, मित्र, अर्यमन्, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वत, पूषन्, सवितृ, त्वष्टृ और विष्णु। ये बारह आदित्य कहलाते हैं।
इन्दु	चन्द्रमा The moon	१	पृथ्वी के लिये केवल एक चन्द्रमा है।
इन्द्र	इन्द्र देवता The god Indra	१४	चौदह मन्वन्तरों में से प्रत्येक के लिये १ इन्द्र की दर से चौदह इन्द्र होते हैं।
इन्द्रिय	इन्द्रिय An organ of sense	५	इन्द्रियां पांच प्रकार की होती हैं, आँख, नाक, जीभ, कान और शरीर (स्पर्शन्)।
इभ	हाथी An elephant	८	संसार की आठ दिशा विदिशाओं की रक्षा आठ हाथी करते हुए कहे जाते हैं। वे ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक हैं।
इषु	धनुष An arrow	५	मन्मथ के पाँच बाण माने जाते हैं, अर्थात्, अरविन्द, अशोक, चूत, नवमल्लिका और नीलोत्पल।
ईक्षण	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
उदधि	महासागर The ocean	४	अब्धि देखिए।
उपेन्द्र	भगवान् विष्णु God Viṣṇu	९	विष्णु के ९ अवतार माने जाते हैं।
ऋतु	ऋतु A season	६	संस्कृत साहित्य के अनुसार वर्षा में ६ ऋतुएँ होती हैं, अर्थात्, वसन्त, ग्रीष्म, वर्ष, शरद्, हेमन्त, शिशिर।
कर	हाथ The hand	२	मानव के दो हाथ होते हैं।
करणीय	जो किये जाते हैं, व्रत That which has to be done: an act of devotion or austerity	५	जैन धर्म के अनुसार पाँच प्रकार के व्रत होते हैं, अर्थात्, अहिंसा, अनृत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
करिन्	हाथी An elephant	८	इभ देखिए।
कर्मन्	कर्म अथवा कार्य करने का प्रभाव Action: the effect of action as its karma	८	जैन धर्म के अनुसार आठ प्रकार के कर्म (प्रकृतिबंध) होते हैं, अर्थात्, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, नामिक, गोत्रिक और आयुष्क।
कलाधर	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
कषाय	संसारी वस्तुओं में आसक्ति Attachment to worldly objects	४	जैन धर्म के अनुसार कर्मों के आस्रव का एक भेद कषाय है, जिसके चार प्रकार हैं, अर्थात्, क्रोध, मान, माया और लोभ।
कुमारवदन	कुमार अथवा हिंदू युद्ध-देव के मुख The faces or Kumāra of the Hindu war-god	६	यह युद्धदेव छः मुखोंवाला माना जाता है। षण्मुख देखिये।
केशव	विष्णु का एक नाम A name of Viṣṇu	९	उपेन्द्र देखिए।
क्षपाकर	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
ख	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
खर		६	
गगन	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
गज	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
गति	पुनर्जन्म का मार्ग Passage into rebirth	४	जैन धर्म के अनुसार संसारी जीव चार गतियों में जन्म लेते हैं, अर्थात्, देव, तिर्यञ्च, मनुष्य, नरक। पिथेगोरस का Tetractys इससे तुल्नीय है।
गिरि	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
गुण	गुण Quality	३	आदि पदार्थ में तीन गुण माने जाते हैं, अर्थात्, सत्त्व, रजस्, तमस्।
ग्रह	ग्रह A planet	९	हिन्दू ज्योतिष में ९ प्रकार के ग्रह माने जाते हैं, अर्थात्, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, सूर्य और चन्द्रमा।
चक्षुस्	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
चन्द्र	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
चन्द्रमस्	चन्द्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
जलधर पथ	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
जलधि	महासागर Ocean	४	अब्धि देखिए।
जलनिधि	महासागर Ocean	४	अब्धि देखिए।
जिन	वह नाम जिसमें अरिहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं का नाम गर्भित रहता है। The name which implies Arhat, Siddhas, Achryas, Upadhyayas & all Saints.	२४	जिन आगम के अनुसार भरत कर्मक्षेत्र में अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं; प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर माने जाते हैं।
ज्वलन	आग Fire	३	अग्नि देखिए।
तत्व	तत्व Elementary Principles.	७	जैन धर्म में सात तत्वों की मान्यता इस प्रकार है : जीव (चेतन), अजीव (अचेतन), आस्रव (कर्मों के आने के द्वार), बंध (कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध), संवर (आस्रव का निरोध), निर्जरा (कर्मों का एक देश नाश) और मोक्ष (आत्मा का पूर्ण रूप से कर्मों से छूटना)।
तनु	काय Body	८	शिव का तनु आठ वस्तुओं से बना हुआ माना जाता है : पृथ्वी, अप् , तेजस् , वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, यजमान।
तर्क	Evidence	६	तर्क के छः प्रकार हैं : प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि।
तार्क्ष्यध्वज	विष्णु Viṣṇu	९	उपेन्द्र देखिए।
तीर्थंक	Tīrthankar or Jina.	२४	जिन देखिए।
दन्तिन्	हाथी An elephant	८	इभ देखिए।
दुरित	सांसारिक कर्म Worldly action	८	कर्मन् देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या	अभिप्राय उद्गम
दुर्गा	पार्वती का अवतार Name of Manifestation of Parvati or Durga.	९	दुर्गा के ९ अवतार माने जाते हैं।
दिक्	दिशा बिन्दु Quarter or a cardinal point of the universe.	८	लोक में आठ दिशाबिन्दु माने जाते हैं।
दिक्	दिशाएँ Directions	१०	दस दिशाओं की मान्यता इस प्रकार है कि चार दिशाएँ, चार विदिशाएँ तथा अधो और ऊर्ध्व दिशाएँ मिलकर दस दिशाएँ होती हैं।
दिक्	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए।
दृक्	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
दृष्टि	" " "	"	" "
द्रव्य	द्रव्य का लक्षण सत् है और जो उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्यता सहित है वह सत् है। Elementary substance whose characteristic is existence implying manifestation, disappearance & permanence.	६	जिनागम के अनुसार ६ द्रव्य हैं: जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, काल और आकाश।
द्विप	हाथी An Elephant	८	इभ देखिए।
द्विरद	"	"	"
द्वीप	पृथ्वी में स्थित पौराणिक द्वीप विभाग A puranic insular division of the terrestrial world.	७	इनके सात विभाग हैं: जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक, पौष्कर।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
धातु	शरीर के संरचक अवयव Constituent principles of the body.	७	सप्त धातुएँ ये हैं—रस (Chyle), रक्त, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा, वीर्य।
धृति	छंद के एक विभेद का नाम Name of a kind of metre.	१८	इस छंद में श्लोक के प्रत्येक पद में १८ अक्षर रहते हैं।
नग	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
नन्द	राजाओं के वंश का नाम Name of a dynasty of kings	९	कहा जाता है कि मगध में ९ नन्द राजाओं ने राज्य किया।
नभस्	आकाश Sky	०	अनन्त देखिये।
नय	वस्तु के एक अंश ग्रहण करने वाला ज्ञान Method of Comprehending things from particular standpoints	२	जिनागम में मुख्यतः दो नयों का निरूपण है : द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय।
नयन	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
नाग	हाथी An elephant	८	इभ देखिए।
निधि	खजाना Treasure	९	कुबेर के पास नव प्रसिद्ध निधियाँ मानी जाती हैं : पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व। जिनागम में चक्रवर्ती के भी इनसे भिन्न नव-निधियों का उल्लेख है।
नेत्र	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
पदार्थ	वस्तुओं के विभेद Category of things	९	जिनागम में सात तत्व तथा पुण्य और पाप ये दो मिलकर नव पदार्थ होते हैं। तत्व देखिए।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
पन्नग	सर्प The serpent	७	हिन्दू पुराणों में कभी कभी आठ और कभी कभी सात प्रकार के सर्पों का वर्णन मिलता है।
पयोधि	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए।
पयोनिधि	" "	"	" "
पावक	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
पुर	नगर City	३	हिन्दू पुराणों के अनुसार तीन असुरों के प्ररूपक तीन पुरों ने देवों के प्रति अत्याचार किया और शिव ने उन्हें विनष्ट किया। त्रिपुरान्तक से तुलना करिए।
पुष्करिन्	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
प्रालेयांशु	चंद्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
बन्ध	कर्म बंध Karmic bondage	४	जिनागम में बंध के मुख्यतः चार भेद बतलाए गये हैं: प्रकृति बंध, स्थिति बंध, अनुभाग बंध और प्रदेश बंध।
बाण	बाण Arrow	५	इषु देखिए।
भ	नक्षत्र A constellation	२७	हिन्दू ज्योतिष में सूर्य पथ पर मुख्यतः २७ नक्षत्रों की गणना की गई है।
भय	डर Fear	७	
भाव	तत्व Elements	५	पांच तत्व या पंच भूत ये हैं: पृथवी, अप्, तेजस्, वायु, आकाश।
भास्कर	सूर्य The Sun	१२	इन देखिए।
भुवन	लोक The World	३	ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, और अधोलोक, की मान्यता है।
भूत	तत्व Element	५	भाव देखिए।
भूभ्र	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
मद	घमण्ड Pride	८	अष्ट मद के भेद इस प्रकार है: ज्ञान, रूप, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, शरीर का मद।
महीध्र	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए।
मातृका	देवी A goddess	७	साधारणतः सात प्रकार की देवियाँ मानी जाती हैं।
मुनि	साधु Sage	७	मुख्यतः सात प्रकार के ऋषियों का उल्लेख मिलता है: कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वसिष्ठ।
मृगाङ्क	चंद्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
मृड	शिव या रुद्र का नाम A name of Śiva or Rudra	११	रुद्रों की संख्या ११ मानी गई है।

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
यति	मुनि Sage	७	मुनि देखिए।
रजनीकर	चंद्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
रत्न	त्रयनिधि Trinity	३	जिनागम में मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चारित्र का एक होना बतलाया गया है, जिन्हें तीन रत्न भी निरूपित किया गया है।
रत्न	मूल्यवान पत्थर A precious gem	९	नव प्रकार के रत्न माने गये हैं: वज्र, वैडूर्य, गोमेद, पुष्पराग, पद्मराग, मरकत, नील, मुक्ता, प्रवाल।
रन्ध्र	छिद्र Opening	९	मानव शरीर में नव मुख्य रन्ध्र होते हैं।
रस	स्वाद Taste	६	मुख्य रस छः हैं: मधुर, अम्ल, लवण, कटुक, तिक्त, कषाय।
रुद्र	शिव का नाम Name of a Deity	११	मृड देखिए।
रूप	आकार Form or shape	१	प्रत्येक वस्तु का केवल एक रूप होता है।
लब्ध	नव शक्तियों की प्राप्ति Attainment of nine powers	९	नव लब्धियाँ निम्नलिखित हैं: अनन्त दर्शन, अनन्त-ज्ञान, क्षायिक सम्यक्तव, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य। ये कर्मों के क्षय से क्षायिक भाव के रूप प्राप्त होते हैं।
लब्धि	Attainment	९	लब्ध देखिए।
लेश्य		६	
लोक	World	३	भुवन देखिए।
लोचन	आँख The eye	२	अक्षि देखिए।
वर्ण		६	जिनागम में वर्ण के पांच प्रकार हैं: कृष्ण, नील, पीत, रक्त और श्वेत।
वसु	वैदिक देवताओं की एक जाति A class of Vedic deities	८	ये देवता संख्या में आठ होते हैं।
वह्नि	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
वारण	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
वार्धि	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए।
विधु	चंद्रमा The moon	१	इन्दु देखिए।
विषधि	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए।
विषनिधि	”	”	”

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
विषय	इंद्रियों के विषय Object of sense	५	पंचेन्द्रियों के विषय पांच हैं : गन्ध, रस, रूप; स्पर्श, शब्द ।
वियत्	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए ।
विश्व	वैदिक देवताओं का एक समूह A group of Vedic deities	१३	इस समूह में १३ सदस्य होते हैं ।
विष्णुपाद	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए ।
वेद	The Vedas	४	चार वेद ये हैं : ऋक्, यजुस्, साम, अथर्व ।
वैश्वानर	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए ।
व्यसन	बुरी आदत An unwholesome addiction	७	जिनागम में जीव का अहित करने वाले सप्त व्यसन निम्नलिखित रूप में उल्लिखित हैं : द्यूत, मांस भक्षण, मदिरापान, वेश्यागमन, परस्त्री सेवन, अस्तेय, आखेट ।
व्योम	आकाश Sky	०	अनन्त देखिए ।
व्रत	अणु व्रत या महाव्रत Partial or whole act of devotion or austerity	५	जिनागम में अणु व्रत और महाव्रत ५ हैं । हिंसा, झूठ, कुशील, परिग्रह और स्तेय (चोरी) नामक पंच पापों से एक देश विरक्त होना अणुव्रत है । हिंसादि पांच पापों का सर्वथा त्याग करना महाव्रत है । करणीय भी देखिए ।
शङ्कर	रुद्र का नाम Name of Rudra	११	मृड देखिए ।
शर	बाण Arrow	५	इषु देखिए ।
शशधर	चंद्र The Moon	१	इन्दु देखिए ।
शशलाञ्छन	” ”	”	” ”
शशाङ्क	” ”	”	” ”
शशिन्	” ”	”	” ”
शस्त्र	बाण Arrow	५	इषु देखिए ।
शिखिन्	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए ।
शिलीमुखपद	षट्पद The legs of a bee	६	मधुमक्खी या भौंरे के छः पैर माने जाते हैं ।
शैल	पर्वत Mountain	७	अचल देखिए ।
श्वेत		१	
सलिलाकर	समुद्र Ocean	४	अब्धि देखिए ।
सागर	” ”	”	” ”

शब्द	सामान्य अर्थ	संख्या अभिधान	उद्गम
सायक	बाण Arrow	५	इषु देखिए।
सिन्धुर	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
सूर्य	The Sun	१२	इन देखिए।
सोम	चंद्र The moon	१	इन्दु देखिए।
स्तम्बेरम	हाथी Elephant	८	इभ देखिए।
स्वर	संगीत का स्वर A note of the musical scale	७	सात शब्द स्वर हैं : षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, विषाद। संगीत के प्रारम्भ में इन्हीं सप्त स्वरों के आदि अक्षरों को ग्रहण कर स, रि, ग, म, प, ध, नि का ज्ञान कराया जाता है।
हय	घोड़ा Horse	७	अश्व देखिए।
हर	रुद्र का नाम Name of Rudra	११	मृड देखिए।
हर नेत्र	Siva's eyes	३	शिव की दो आँखों के सिवाय एक और आंख मस्तक के मध्य में रहती है।
हुतवह	अग्नि Fire	३	अग्नि देखिए।
हुताशन	" "	"	" "
हिमकर	चंद्रमा The Moon	१	इन्दु देखिए।
हिमगु	" "	"	" "
हिमांशु	" "	"	" "

परिशिष्ट २

अनुवाद में अवतरित संस्कृत शब्दों का स्पष्टीकरण

आबाधा Ābādhā	Segment of a straight line forming the base of a triangle or a quadrilateral.
आढक Āḍhak	A measure of grain. परिशिष्ट–४ की सारिणी ३ देखिए।
अध्वान Adhvān	The vertical space required for presenting the long and short syllables of all the possible varieties of metre with any given number of syllables, the space required for the symbol of a short or a long syllable being one *agunla* and the intervening space between each variety being also an aṅgula. अध्याय ६—३३३½ से ३३६½ का टिप्पण देखिए।
आदिधन Ādidhana	Each term of a series in arithmetical progression is conceived to consist of the sum of the first term and a multiple of the common difference. The sum of all the first terms is called the *Ādidhan*. अध्याय २—६३ और ६४ का टिप्पण देखिए।
आदिमिश्रधन Ādimiśradhana	The sum of a series in arithmetical progression combined with the first term thereof. अध्याय २—८० से ८२ का टिप्पण देखिए।
अगरु Agaru	A kind of fragrant wood; *Amyris agallocha.*
अम्ल वेतस Amla-vētasa	A kind of sorrel; *Rumex vesicarius.*
अमोघवर्ष Amōghvarṣa	Name of a king; *lit:* one who showers down truly useful rain.
अंश Aṁśa	A measure of weight in relation to metals. परिशिष्ट ४ की सारिणी ६ देखिए।
अंशमूल Aṁśamūla	Square root of a fractional part. अध्याय ४–३ का टिप्पण देखिए।

अंगुल Aṅgula	A measure of length; finger measure. अध्याय १–२५ से २९ तथा परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।
अंतरावलम्बक Antarāvalambaka	Inner perpendicular; the measure of a string suspended from the point of intersection of two strings streched from the top of two pillars to a point in the line passing through the bottom of both the pillars.
अंत्यधन Antyadhana	The last term of a series in arithmetical or geometrical progression.
अणु Aṇu	Atom or particle. अध्याय १—२५ से २७ तथा परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।
अरिष्टनेमि Ariṣṭanēmi	The twenty second *Tirthṅkar*.
अर्बुद Arbud	Name of the eleventh place in notation.
अर्जुन Arjuna	Name of a tree; *Terminalia, Arjuna*, W. & A.
असित Asita	Name of a tree; *Grislea Tomentosa.*
अशोक Aśōka	Name of a tree: *Jonesia Asoka Roxb.*
औंड्र-औंड्र फल Auṇḍra–Auṇḍraphala	A kind of approximate measure of the cubical contents of an excavation or of a solid. This kind of approximate measure is called Auttra by Brahmagupta. अध्याय ८—२ का टिप्पण देखिए।
आवलि Āvali	A measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
अयन Ayana	" " "
बीज Bīja	Literally seed; here it is used to denote a set of two positive integers with the aid of the product and the squares whereof, as forming the measure of the sides, a right angled triangle may be constructed. अध्याय ७—२०½ का टिप्पण देखिए।

भाग **Bhāga**	A measure of baser metals. परिशिष्ट ४, सारिणी ६ देखिए। A measure fraction. A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए।
भागभाग **Bhāgabhāga**	A complex fraction.
भागाभ्यास **Bhāgābhyāsa**	A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए।
भागहार **Bhāgahāra**	Division.
भागमातृ **Bhāgamātṛ**	Fractions consisting of two or more of the varieties of *Bhāga, Prabhāga, Bhāgabhāga, Bhāgānubandha* and *Bhāgāpavāha* fractions. अध्याय ३—१३८ का टिप्पण देखिए।
भागानुबंध **Bhāgānubandha**	Fractions in association. अध्याय ३—११३ का टिप्पण देखिए।
भागापवाह Bhāgāpāvāha	Dissociated fractions. अध्याय ३–१२३ का टिप्पण देखिये।
भागसम्वर्ग **Bhāgasaṃvarga**	A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए।
भाज्य **Bhājya**	The middle one of the three places forming the cube root group ; that which has to be divided. अध्याय २—५३ और ५४ का टिप्पण देखिए।
भार **Bhāra**	A measure of baser metals. परिशिष्ट ४, सारिणी ६ देखिए।
भिन्नदृश्य **Bhinnadṛśya**	A variety of miscellaneous problems on fraction. अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए।
भिन्नकुट्टीकार **Bhinnakuṭṭi-kāra**	Proportionate distribution involving fractional quantities. पृष्ठ १२३ की पाद-टिप्पणी देखिए।
चक्रिकाभञ्जन **Cakrikābhan-jana**	The destroyer of the cyle of recurring rebirths ; also the name of a king of the Rāṣṭrakūṭa dynasty.
चम्पक **Campaka**	Name of a tree bearing a yellow fragrant flower ; *Michelia Champaka.*
छन्द **Chandas**	A syllabic metre.
चिति **Citi**	Summation of series.

चित्र-कुट्टीकार Citra-kuṭṭikāra	Curious and interesting problems involving proportionate division.
चित्र-कुट्टीकार मिश्र Citra-kuṭṭikāra miśra	Mixed problems of a curious and interesting nature involving the application of the operation of proportionate division.
दंड Daṇḍa	A measure of distance. परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।
दश Daśa	Tenth place.
दशकोटि Daśa-kōṭi	Ten Crore.
दशलक्ष Daśa-Lakṣa	Ten Lakhs or one million.
दश सहस्र Daśa-sahasra	Ten thousand.
धरण Dharaṇa	A weight measure of gold or silver ; परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ ४ और ५ देखिए।
दीनार Dīnāra	A weight measure of baser metals. Also used as the name of a coin. परिशिष्ट ४ की सारिणी ६ देखिए।
द्रक्षूण Drakṣūṇa	A weight measure of baser metals. परिशिष्ट ४ की सारिणी ६ देखिए।
द्रोण Drōṇa	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४ की सारिणी ३ देखिए।
डुण्डुक Ḍuṇḍuka	Name of a tree.
द्विरग्रशेषमूल Dviragraśēṣamūla	A Variety of miscellaneous problems on fractions.
एक Eka	Unit place.
गण्डक Gaṇḍaka	A weight measure of gold. परिशिष्ट ४ की सारिणी ४ देखिए।
घन Ghana	Cubing; the first figure on the right, among the three digits forming a group of figures into which a numerical quantity whose cube root is to be found out has to be divided. अध्याय २–५३, ५४ का टिप्पण देखिए।

घनमूल **Ghanamūla**	**Cube root.**
घटी **Ghaṭī**	**A measure of time.** परिशिष्ट ४ की सारिणी २ देखिए।
गुणकार **Guṇakāra**	**Multiplication.**
गुणधन **Guṇadhana**	**The product of the common ratio taken as many times as the number of terms in a geometrically progressive series multiplied by the first term.** अध्याय २–९३ का टिप्पण देखिए।
गुञ्जा **Guñjā**	**A weight measure of gold or silver.** परिशिष्ट ४ की सारिणियां ४ और ५ देखिए।
हस्त **Hasta**	**A measure of length.** परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।
हिंताल **Hintāla**	**Name of a tree ;** *Phaenix* **or** *Elate Paludosa.*
इच्छा **Icchā**	**That quantity in a problem on Rule-of-Three in relation to which something is required to be found out according to the given rate.**
इन्द्रनील **Indranīla**	**Sapphire.**
जम्बू **Jambū**	**Name of a tree;** *Eugenia Jambalona.*
जन्य **Janya**	**Trilateral and quadrilateral figures that may by derived out of certain given data called** *bījas.*
जिन **Jinas**	**Those who have attained partial or whole success in getting themselves absorbed in the unification of their souls' right faith, right knowledge and right character may be called Jinas.**
जिनपति **Jinapati**	**The chief of the Jinas, generally,** *Tīrthankara.*
जिन-शान्ति **Jina-Śānti**	**The sixteenth** *Tīrthankara.*
जिन-वर्द्धमान **Jina-Vardhamāna**	**The last or twenty-fourth** *Tīrthankara.*

कदम्ब **Kadamba**	**Name of a tree;** *Nauclea Cadamba.*
कला **Kalā**	**A weight measure of baser metals.** परिशिष्ट ४, सारिणी ६ देखिए।
कलासवर्ण **Kalāsavarṇa**	**Fraction.** अध्याय ३ के प्रथम श्लोक में पृष्ठ ३६ पर कलासवर्ण की पाद टिप्पणी देखिए।
कर्म **Karmas**	**The mundane soul has got vibrations through mind, body or speech. The molecules and atoms, which assume the form of mind, body or speech, engender vibrations in the soul, whereby an infinite number of subtle atoms and ultimate particles are attracted and assimilated by the soul. This assimilated group of atoms is termed as Karma. Its effect is visible in the multifarious conditions of the soul. There are eight main classifications of the nature of Karmas.** परिशिष्ट १ में कर्म देखिए।
कर्मान्तिक **Karmāntika**	**A kind of approximate measure of the cubical contents of an excavation or of a solid.** अध्याय ८—९ का टिप्पण देखिए।
कर्ष **Karṣa**	**A weight measure of gold or silver.** परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ ४ और ५ देखिए।
कार्षापण **Kārṣāpaṇa**	**A Karṣa.**
केतकी **Kētakī**	**Name of a tree;** *Pandanus Odoratissimus.*
खारी **Khārī**	**A measure of capacity in relation to grain.**
खर्व **Kharva**	**The thirteenth place in notation.**
किष्कु **Kiṣku**	**A measure of length in relation to the sawing of wood.**
कोटी **Kōṭī**	**Crore, the 8th place in notation.**
कोटिका **Kōtikā**	**A numerical measure of cloths, jewels and canes.** परिशिष्ट ४ की सारिणी ७ देखिए।
क्रोश **Krōśa**	**A measure of length.** परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।

कृष्णागरु Krasnāgaru	A kind of fragrant wood ; a black variety of *Agallochum.*
कृति Krti	Squaring.
क्षेपपद Ksēpapada	Half of the difference between twice the first term and the common difference in a series in arithmetical progression.
क्षित्या Ksityā	The 21st place in notation.
क्षोभ Ksōbha	The 23rd place in notation.
क्षोणी Ksōni	The 17th place in notation.
कुडह या कुडब Kudaha or Kudaba	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४ की सारिणी ३ देखिए।
कुम्भ Kumbha	" " "
कुङ्कुम Kunkuma	The pollen and filaments of the flowers of saffron, *Croeus sativus.*
कुर्वक Kurvaka	Name of a tree ; the *Amaranth* or the *Barleria.*
कुटज Kutaja	Name of a tree ; *Wrightia Antidysenterica.*
कुट्टीकार Kuttikāra	Proportionate division, अध्याय ६–७९½ देखिए।
लाभ Lābha	Quotient or share.
लक्ष Laks	Lakh, the 6th place in notation.
लङ्का Lankā	The place where the meridian passing through Ujjain meets the equator.
लव Lava	A measure of time. परिशिष्ट ४ की सारिणी २ देखिए।
मधुक Madhuka	Name of a tree, *Bassia Latifolia.*

मध्यधन Madhya dhana	The middle term of a series in arithmetical progression. अध्याय २–६३ का टिप्पण देखिए।
महाखर्व Mahākharva	The 14th place in notation.
महाक्षित्या Mahākṣityā	The 22nd place in notation.
महाक्षोभ Mahākṣōbha	The 24th place in notation.
महाक्षोणी Mahākṣoṇi	The 18th place in notation.
महापद्म Mahāpadma	The 16th place in notation.
महाशङ्ख Mahāśaṅkha	The 20th place in notation.
महावीर Mahāvīra	A name of Vardhamāna.
मानी Māni	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४, सारिणी ३ देखिए।
मर्दल Mardala	A kind of drum ; for a longitudinal section, see note to chapter 7th, 32nd stanza.
मार्ग Mārga	Section ; the line along which a piece of wood is cut by a saw.
माष Māṣa	A weight measure of silver. परिशिष्ट ४, सारिणी ५ देखिए।
मेरु Mēru	Name of a tapering mountain forming the centre of *Jambu dvīpa,* all planets revolving around it.
मिश्रधन Miśradhana	Mixed sum. अध्याय २–८० से ८२ का टिप्पण देखिए।
मृदङ्ग Mṛdaṅga	A kind of drum ; for a longitudinal section see note to chapter 8th, 32nd stanza.
मुहूर्त Muhūrta	A measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
मुख Mukha	The topside of a qudrilateral.
मूल Mūla	Square root; a variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४—३ का टिप्पण देखिए।

मूलमिश्र Mūlamiśra	Involving square root; a variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४–३ का टिप्पण देखिए।
मुरज Muraja	A kind of drum; same as Mṛadaṅga.
नन्द्यावर्त Nandyāvarta	Name of a palace built in a particular form. अध्याय ६–३३२½ का टिप्पण देखिए।
नरपाल Narapāla	King; probably name of a king.
नीलोत्पल Nīlōtpala	Blue water-lily.
निरुद्ध Niruddha	Least common multiple.
निष्क Niṣka	A golden coin.
न्यर्बुद Nyarbuda	The 12th place in notation.
पाद Pāda	A measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।
पद्म Padma	The 15th place in notation.
पद्मराग Padmarāga	A kind of gem or precious stone.
पैशाचिक Paiśācika	Relating to the devil; hence very difficult or complex.
पक्ष Pakṣa	A measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
पल Pala	A weight measure of gold, silver and other metals. परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ ४, ५, ६ देखिए।
पण Paṇa	A weight measure of gold; also a golden coin. परिशिष्ट ४ की सारिणी ४ देखिए।
पणव Paṇava	A kind of drum; for longitudinal section see note to Chapter 7th, 32nd stanza.
परमाणु	Ultimate particle. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।
परिकर्मन् Parikarman	Arithmetical operation.
पार्श्व Pārśva	The 23rd Tīrthaṅkara.

पाटली Pāṭali	A tree with sweet-scented blossoms; *Bignonia Suaveolens.*
पट्टिका Paṭṭikā	A measure of saw-work. परिशिष्ट ४, सारिणी १० तथा अध्याय ८—६३ से ६७½ का टिप्पण देखिए।
फल Phala	A given quantity corresponding to what has to be found out in a problem on the Rule-of-Three. अध्याय ५—२ का टिप्पण देखिए।
प्लक्ष Plakṣa	Name of a tree; the waved-leaf fig-tree, *Ficus Infectoria* or *Religiosa.*
प्रभाग Prabhāga	Fraction of a fraction.
प्रकीर्णक Prakīrṇaka	Miscellaneous problems.
प्रक्षेपक Prakṣēpaka	Proportionate distribution.
प्रक्षेपक-करण Prakṣēpaka-karaṇa	An operation of proportionate distribution.
प्रमाण Pramāṇa	A measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए। The given quantity corresponding to *Icchā*, in a problem on Rule-of-Three. अध्याय ५—२ का टिप्पण देखिए।
प्रपूर्णिका Prapūraṇikā	Literally, that which completes or fills; here, baser metals mixed with gold; dross.
प्रस्थ Prastha	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४ की सारिणियाँ ३ और ६ देखिए।
प्रत्युत्पन्न Pratyutpanna	Multiplication.
प्रवर्तिका Pravartikā	A measure of capacity in relation to grain.
पुन्नाग Punnāga	Name of a tree; *Rottleria Tinctoria.*
पुराण Purāṇa	A weight measure of silver; probably also a coin. परिशिष्ट ४, सारिणी ५ देखिए।
पुष्यराग Puṣyarāga	A kind of gem or precious stone.

रथरेणु Ratharēṇu	A particle. परिशिष्ट ४ सारिणी १ देखिए।
रोमकापुरी Rōmkāpurī	A place 90° to the west of Laṅkā.
ऋतु Ṛtu	Season, here used as a measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
सहस्र Sahasra	Thousand.
शाक Śaka	The teak tree.
सकल कुट्टीकार Sakala Kuṭṭī-kāra	Proportionate distribution, in which fractions are not involved.
साल Sāla	The *Sāla* tree; *Shorea Robusta* or *Valeria Robusta.*
सल्लकी Sallakī	Name of a tree; *Boswellia Thurifera.*
समय Samaya	The ultimate part of time measure. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
सङ्कलित Saṅkalita	Summation of series.
शङ्ख Śaṅkha	The 19th place in notation.
सङ्क्रमण Saṅkramaṇa	An operation involving the halves of the sum and the difference of any two quantities. अध्याय ६—२ का टिप्पण देखिए।
सङ्क्रान्ति Saṅkrānti	The passage of the sun from one zodiacal sign to another.
शान्ति Śānti	See Jina-Śānti
सरल Sarala	Name of a tree; *Pinus Longifolia.*
सारस Sārasa	A kind of bird; the Indian crane.

सारसंग्रह Sārasaṅgraha	Literally, a brief exposition of the essentials or principles of a subject; here, the name of this work on arithmetic.
सर्ज Sarja	Name of a tree; Same as the *Sāla* tree.
सर्वधन Sarvadhana	The sum of a series in arithmetical progression. अध्याय २–६३ और ६४ का टिप्पण देखिए।
शत Śata	A hundred.
शतकोटि Śatakōṭi	A hundred crores.
सतेर Satēra	A weight measure of baser metals. परिशिष्ट ४ की सारिणी ६ देखिये।
शेष Śēṣa	The terms that remain in a series after a portion of it from the beginning is taken away. अध्याय २ के पृष्ठ ३२ पर व्युत्कलित का टिप्पण देखिए। A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४–३ का टिप्पण देखिए।
शेषमूल Śēṣamūla	A variety of miscellaneous problems on fractions. अध्याय ४–३ का टिप्पण देखिए।
सिद्धपुरी Siddhapurı	The antipodes of Laṅkā.
सिद्ध Siddhas	The emancipated souls. These souls, due to complete freedom from karmic bondage attain all attributes of soul, viz , infinite perception, power, knowledge, bliss etc. कर्ममल से रहित, सर्वज्ञ, परमपद में स्थित सिद्ध भगवान् आठ गुणों से सम्पन्न हैं – ज्ञानगुण, दर्शनगुण, सम्यक्त्वगुण, शक्तिगुण, अव्याबाधगुण, अवगाहनागुण, सूक्ष्मत्वगुण, अगुरुलघुगुण।
शोडशिका Śōḍaśikā	A measure of capacity in relation to grain. परिशिष्ट ४, सारिणी ३ देखिए।
शोध्य Śōdhya	One of the three figures of a cubic root group. अध्याय २–५३ और ५४ का टिप्पण देखिए।

श्रावक
Śrāvaka — A lay follower of Jainism, having the following eight chief vows :
abstenance from wine, flesh, honey; partial non-violence, truth and chastity; partial non-thievery and partial setting of limits to possession.

श्रीपर्णी
Śrīparṇī — Name of a tree ; *Premna Spinosa.*

स्तोक
Stōka — A measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।

सूक्ष्मफल
Sūkṣmaphala — Accurate measure of the area or of the cubical contents.

सुवर्ण कुट्टीकार
Suvarṇa-kuṭṭīkāra — Proportionate distribution as applied to problems relating to gold.

सुव्रत
Suvrata — The 20th Tīrthaṅkara, Munisurata.

स्वर्ण
Svarṇa — A gold coin.

स्याद्वाद
Syādavāda — The doctrine of Syādvāda, known as saptabhaṅgīnaya, is represented as being based on the Naya (that which reveals only partial truth) method. This is set forth as follows : May be, it is ; may be, it is not ; may be, it is and it is not ; may be, it is indescribable ; may be, it is and yet indescribable; may be, it is not and it is also indescribable ; may be it is and it is not and it is also indescribable. अध्याय १—८ में पृष्ठ २ पर पादटिप्पणी देखिए।

तमाल
Tamāla — Name of a tree ; *Xanthochymus Pictorius.*

तिलक
Tilaka — Name of a tree with beautiful flowers.

तीर्थ Tīrtha	*Tīrtha* is interpreted to mean a ford intended to cross the river of mundane existence which is subject to *karma* and cycle of births and rebirths. The Jina, Tīrthaṅkara, may be conceived to be a cause of enabling the souls of the living beings to get out of the stream of *saṁsāra* or the recurring cycle of embodied existence. अध्याय ६–१ मेंपृष्ठ ९१ पर टिप्पणी देखिये।
तीर्थंकर Tīrthaṅkara	Patriarchs endowed with superhuman qualities; those who have attained infinite perception, knowledge power and bliss through supreme concentration and promulgate the truth matchlessly. According to Jainism *Tīrthaṅkaras* are always present in *Vidēha Kṣetra,* but in the *Bharata* and *Airāvata Kṣētras* they are present in the fourth era of the two aeons (i) causing increase and (ii) causing decrease. Twenty-four *Tīrthankaras* have been in the past fourth era of the aeon, causing decrease. Out of them Lord Ṛśabha was the first and Lord *Vardhamāna* was the last *Tīrthaṅkara*.
त्रसरेणु Trasarēṇu	A particle. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।
त्रिप्रश्न Tripraśna	Name of a chapter in Sanskrit astronomical works. अध्याय १—१२ में पृष्ठ २ पर पादटिप्पण देखिए।
तुला Tulā	A weight measure of baser metals.
उभयनिषेध Ubhayaniṣēdha	A di-deficient quadrilateral. अध्याय ७–३७ का टिप्पण देखिए।
उच्छ्वास Ucchvāsa	A measure of time. परिशिष्ट ४, सारिणी २ देखिए।
उत्पल Utpala	The water-lily flower.
उत्तरधन Uttaradhana	The sum of all the multiples of the common difference found in a series in arithmetical progression. अध्याय २—६३ और ६४ का टिप्पण देखिए।

उत्तरमिश्रधन Uttaramiśra-dhana	A mixed sum obtained by adding together the common difference of a series in arithmetical progression and the sum thereof. अध्याय २—८० से ८२ का टिप्पण देखिए।
वाह Vāha	A measure of capacity in relation to grain.
वज्र Vajra	A weapon of Indra; for longitudinal section *see* note to Chapter 7th, stanza 32.
वज्रापवर्तन Vajrāpavartana	Cross reduction in multiplication of fractions. अध्याम ३—२ का टिप्पण देखिए।
वकुल Vakula	Name of a tree; *Mimusops Elengi.*
वल्लिका Vallikā	Proportionate distribution based on a creeper-like chain of figures. अध्याय ६—११५½ का टिप्पण देखिए।
वर्द्धमान Vardhamāna	See Jina-Vardhamāna.
वर्गमूल Vargamūla	Square root.
वर्ण Varṇa	Literally colour; here denotes the proportion of pure gold in any given piece of gold, pure gold being taken to be of 16 Varṇas.
विचित्र-कुट्टीकार Vicitra-kuṭṭikāra	Curious and interesting problems involving proportionate division. अध्याय ६ में पृष्ठ १४५ पर टिप्पण देखिये।
विद्याधर-नगर Vidyādhara-nagara	A rectangular town is what seems to be intended here.
विषम कुट्टीकार Viṣama-kuṭṭīkāra	Proportionate distribution involving fractional quantities. अध्याय ६ में पृष्ठ १२३ पर विषम कुट्टीकार की पाद टिप्पणी देखिए।
विषम सङ्क्रमण Viṣama-saṅkramaṇa	An operation involving the halves of the sum and the difference of the two quantities represented by the divisor and the quotient of any two given quantities. अध्याय ६—२ का टिप्पण देखिए।
वितस्ति	A measure of length. परिशिष्ट ४ की सारिणी १ देखिए।
वृषभ Vṛṣabha	The first *Tīrthaṅkara.* See *Tīrthaṅkara.*

व्यवहाराङ्गुल Vyavahārāṅgula	A measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।
व्युत्कलित Vyutkalita	Subtraction of part of a series from the whole series in arithmetical progression. अध्याय २ में व्युत्कलित की पाद टिप्पणी पृष्ठ ३२ पर देखिए।
यव Yava	A kind of grain; a measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए। Longitudinal section of a grain. आकृति के लिये अध्याय ७—३२ का टिप्पण देखिए।
यवकोटि Yavakōṭi	A place 90° to the East of Laṅkā.
योग Yōga	Penance; practice of meditation and mental concentration.
योजन Yōjana	A measure of length. परिशिष्ट ४, सारिणी १ देखिए।

परिशिष्ट–३

उत्तरमाला

अध्याय–२

(२) ११५२ कमल (३) २५९२ पद्मराग (४) १५१५१ पुष्पराग (५) ५३९४६ कमल (६) १२५५३२७९४८ कमल (७) १२३४५६५४३२१ (८) ४३०४६७२१ (९) १४१९१४७ (१०) ११११११११११ (११) ११०००११०००११ (१२) १०००१०००१ (१३) १००००००००१ (१४) १११११११११; २२२२२२२२२; ३३३३३३३३३; ४४४४४४४४४; ५५५५५५५५५; ६६६६६६६६६; ७७७७७७७७७; ८८८८८८८८८; ९९९९९९९९९ (१५) ११११११११ (१६) १६७७७२१६ (१७) १००२००२००१ (२०) १२८ दीनार (२१) ७३ सुवर्ण खंड (२२) १३१ दीनार (२३) १७९ सुवर्ण खंड (२४) ८०३ जम्बू फल (२५) १७२ जम्बू फल (२६) ४०२९ रत्न (२७) २७९९४६८१ सुवर्ण खंड (२८) २१११ रत्न (३२) १; ४; ९; १६; २५; ३६; ४९; ६४; ८१; २२५; २५६; ६२५; १२९६; ५६२५ (३३) ११४२४४; २१७२४९२१; ६५५३६ (३४) ४२९४९६७२९६; १५२३९९०२५; १११०८८८९ (३५) ४०७९३७६९; ५०९०८२२५; १०४४४८४ (३७) १; २; ३; ४; ५; ६; ७; ८; ९; १६; २४ (३८) ८१; २५६ (३९) ६५५३६; ७८९ (४०) ७९७९; १३३१ (४१) ३६; २५ (४२) ३३३; १११; ९१९ (४८) १; ८; २७; ६४; १२५; २१६; ३४३; ५१२; ७२९; ३३७५; १५६२५; ४६६५६; ४५६५३३; ८८४७३६ (४९) १०३०३०१; ५०८८४४८; १३७३८८०९६; ३६८८६०४१८३; २८२७७११५८४ (५०) १६६३५९७; ७७३०८७७६; २६०९१७२१९; ६१८४७०२०८; १२०७९४९६२५ (५१) ४७४१६३२; ३७९३३०५६; १२८०२४०६४; ३०३४६४४४८; ५९२७०४०००; १०२४१९२५१२; १६२६३७९७७६; २४२७७१५५८४ (५२) ८५९०११३६९९४५९४८८६४ (५५) १; २; ३; ४; ५; ६; ७; ८; ९; १७; १२३ (५६) २४; ३३३; ८५२ (५७) ६४६४; ४२४२ (५८) ४२६; ६३९ (५९) १३४४; ११७६ (६०) ९५०६०८ (६५) ५५; ११०; १६५; २२० २७५; ३३०; ३८५; ४४०; ४९५; ५५० (६६) ४० (६७) ५६४; ७५८; ९८०; १२४५; १५५२; १९०४; २३०४ (६८) ४०००००० (७१) ५; ८; १५ (७२) ९; १०; (७७) २; २ (७९) २; ५२०; १०; जब कि चुनी हुई संख्याएँ २ और १० रहती हैं। (८३) २; ३; ५; २; ३; ५।

(८५) १२०; २४; जब कि इष्ट श्रेढि का योग ज्ञातयोग से द्विगुणित होता है। तथा; ३०; ६० जब कि इष्ट श्रेढि का योग ज्ञातयोग से आधा होता है।

(८७) ४६; ४; जब कि योग समान होते हैं। तथा; ३६; २४; जब कि एकयोग दूसरे से द्विगुणित होता है। तथा; ४४; २६; जब कि एकयोग दूसरे से त्रिगुणित होता है।

(८८) १००; २१६; जब कि योग समान हों। तथा; २३२; १९२; जब कि एक योग अन्य से द्विगुणित होता है। तथा; ३४; २२८; जब कि एक योग अन्य से आधा है।

(९०) २१; १७; १३; ९; ५; १; २५; १७; ९; १ (९२) ६; ५; ४, ३; २; १ (९६) ४३७४ स्वर्ण सिक्के (९९) १२७५ दीनार (१००) ६८८८७; २२८८८१८३५९३ (१०२) ४; २

(१०४) ४ (१०५) ८; ९; १५ (१११) २२४; २०१; १७५; २४४; २६१ (११२) ४८३६; ४६५६; ४२००; ७५२५० (११३) १८२९३८; ५८४६ (११४) १८०; ११२; ६०; ४० (११५) ४०९२; २०४४; १०२०; ५०८; २५२; १२४; ६० ।

अध्याय-३

(३) १/६ पण (४) १ १/२० पण (५) २ ७/६० पण (६) २ १/४ पल (७) ८/१५; १६/२५; १२०/१४३; २२४/२५५; १२०/१३३
(९) ३/५ पण (१०) १७ १/२ पण (११) १४ १/२४ पल (१२) ८/९; २४/२५; ४८/४९; ८०/८१ ।
(१४) २५/४; ४९/४; ८१/४; २५६/९; ४००/९; १००००/९; ४००००/९
(१५) ९/४; २५/९; ४९/१६; ८१/२५; १२१/३६; १६९/४९; २२५/६४; २८९/८१; ३६१/१००; ४४१/१२१; ५२९/१४४; ६२५/१६९
(१६) १/२; १/३; १/४; १/५; १/६
(१७) इस अध्याय के प्रश्न १४ और १५ देखिए; २/५१
(१८) १/८; १/२७; १/६४; १/१२५; १/२१६; १/३४३; १/५१२; १/७२९
(१९) २७/८; ३४३/६४; १३३१/२१६; ३३७५/५१२; ६८५९/१०००; १२१६७/१७२८; १९६८३/२७४४; २९७९१/४०९६; ४२८७५/५८३२; ५९३१९/८०००
(२०) ७/८; १/२; (२१) १/२; १/३; १/४; १/५; १/६; १/७; १/८; १/९; ३/२; ७/४; ११/६; १५/८; १९/१०; २३/१२; २७/१४; ३१/१६; ३५/१८; ३९/२०; १३/३ (२३) ३१/६४; १/६० (२४) ६१/१६०; २०/४९; ३५/८८; १०७/२३६६; ३३७७/८७०४; १३११/३६५०; ८५३५/२२२६४
(२६) प्रत्येक श्रेढि में प्रथम पद १ है और प्रचय २ है। योगों के वर्ग ४/९, ९/१६, १६/२५, २५/३६, ३६/४९, ४९/६४, ६४/८१, ८१/१००, १००/१२१, १२१/१४४ । योगों के घन ८/२७, २७/६४, ६४/१२५, १२५/२१६, २१६/३४३, ३४३/५१२, ५१२/७२९, ७२९/१०००, १०००/१३३१, १३३१/१७२८ ।
(२८) घन योग ८/२७, २७/६४, ६४/१२५, १२५/२१६, २१६/३४३ हैं। प्रथम पद १/६, ३/१६, १/५, ५/२४, ३/१४ हैं। प्रचय १/३, ३/८, २/५, ५/१२, ३/७ हैं। पदों की संख्या ४/३, ३/२, ८/५, ५/३, १२/७ हैं।
(३०) ८/७; १६/२१ (३१) ६/१३; २/१३ (३२) ३/४; १/२ (३५) ५/९; २/५ (३७) १/२; ३/४
(३९) जब योग समान हो तो ३५१२/४९, ४१८८/७७ परस्पर में बदलने योग्य प्रथम पद और प्रचय होते हैं तथा १५५१४८८/१२२५ समान योग होता है। जब योग १ : २ के अनुपात में हों तो ८६१४२/४९ और २५५८८/७५ प्रथम पद और प्रचय होते हैं; तथा द्विगुणित योग ३१०३२१०७८/१२२५ होता है। जब योग १ : ५/२ के अनुपात में हों तो प्रथम पद और प्रचय १३४२/४९ और ४८८३/७५ होते हैं; और आर्द्धित योग ७५७१४८८/१२२५ होता है।
(४२) ३४१/२०४८; १/२०४८ (४४) १२५/४७, १२५/८२; ८३/५२ (४८) ५/४ (४९) १२०/५७६७
(५०) ११/१०० (५१) ४१९७/१२०००; ७५३/१४४०; १३६७/२३५२० (५२) ११/४; २१; ३५/२; १७/२
(५३) प्रथम पद १७९/८१; ३५३/२४३; ७०४/७२९ हैं। योग ३७१३६/६५६१; २२८८०/६५६१; १३३७९/६५६१ हैं। पदों की संख्या ५; ४; ४
(५७ और ५८) १ (५९) १ (६०) १; १; १
(६१ और ६२) १; १; १; १ (६३) ० (६४) २/५ (६५ और ६६) १/५; १/८
(६७ से ७१) ४ (७४) २; ३; ४ (७६) (अ) २; ३; ९; २७; ५४
(ब) २; ३; ९; २७; ८१; १६२ (स) २; ३ ; ९ ; २७; ८१ ; २४३; ४८६ (७८) (अ) ८; १३६; ३४०; २६० (ब) ४४; २२०; ४६०; २९९ (स) ७८; २८६; ५५०; ३८५ (८१) (अ) ५; २१; ४२०; जब कि मन से चुनी हुई राशि सर्वत्र १ हो; (ब) ३; ११; २३२; ५३५९.२ जब कि मन से चुनी हुई राशियाँ २, १, १ हों।

(८३) २; $\frac{३}{२}$; $\frac{४}{३}$; जब कि चुनी हुई राशियाँ ६, ८, ९ हों।
(८४) ८; १२; १६; जब कि चुनी हुई राशियाँ ६, ४, ३ हों।
(८६) (अ) १८; ९; जब कि चुनी हुई संख्या ३ हो।
(ब) ३०; १५; जब चुनी हुई संख्या पुनः ३ हो।
(८८) (अ) ६; १२ जहाँ २ चुनी हुई संख्या है।
(ब) ३; १५ " ५ " " " ।
(स) ४६; ९२ " २ " " " ।
(द) २२; ११० " ५ " " " ।
(९०) (अ) ४; २८ (ब) २५; १७५
(९१) १६; २४० (९२) १५१; ३०२०।

(९४) (अ) २२, ४४, ३३, ६६, ५८, ११६; जब कि योग $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{२}$ और $\frac{१}{४}$ में विपाटित किया जाता है और चुनी हुई संख्या २ रहती है। (ब) ११; २२; ५९; २३६; १९१; ३८; २०; जब कि योग $\frac{१}{२}$; $\frac{१}{४}$; $\frac{१}{२०}$ में विपाटित किया जाता है। (९६) ५२ (९७) २१ (९८) $\frac{१}{१८}$ (१०० से १०२) १ (१०३ और १०४) १ (१०५ और १०६) १ (१०८) $\frac{३}{२}$ (११०) $\frac{१}{३}$; $\frac{१}{४०}$; $\frac{१}{३}$; यदि $\frac{१}{६}$; $\frac{१}{१२}$ और $\frac{१}{४}$ मन से चुनी हुई राशियाँ हैं। (१११) ७$\frac{१}{१२}$ (११२) $\frac{२}{३}$ (११४) ० (११५) १४$\frac{१}{२}$ निष्क (११६) ० (११७) २ द्रोण और ३ माशा (११८) १$\frac{३}{८}$ (११९) २$\frac{४}{२१}$ निष्क (१२०) १ (१२१) १$\frac{३}{४}$ (१२३) $\frac{१}{१८}$; $\frac{१}{१०}$; $\frac{१}{३}$; यदि $\frac{१}{२}$; $\frac{१}{६}$; $\frac{१}{२}$ मन से विपाटित किये गये भाग हैं। (१२६) $\frac{१}{१०}$ (१२७) २४ कर्ष (१२८) $\frac{१}{२}$ (१२९) १ (१३०) १ (१३१) १ (१३३) $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}$; जब कि $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{१२}$ और $\frac{१}{४}$ मन से विपाटित किये गये भाग हैं। (१३४) $\frac{२}{३}$ (१३७) $\frac{१}{४}$ जब कि $\frac{१}{१८}$, $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}$ आदि के स्थान को छोड़कर अन्य स्थानों में मन से चुने हुए भिन्न हैं। $\frac{१}{३}$ जब कि $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{१८}$, $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{२}$ ऐसे ही सजातीय भिन्न हैं। (१३९ और १४०) ८$\frac{१}{१८}$।

अध्याय—४

(५) २४ हस्त (६) २० मधुमक्खियाँ (भृंग) (७) १०८ कमल (८ से ११) २८८ साधु (१२ से १६) २५२० शुक (१७ से २२) ३४५६ मुक्ता (२३ से २७) ७५६० षट्पद (२८) ८१९२ गाएँ (२९ और ३०) १८ आम (३१) ४२ हाथी (३२) १०८ पुराण (३४) ३६ ऊँट (३५) १४४ मयूर (३६) ५७६ पक्षी (३७) ६४ बन्दर (३८) ३६ कोयलें (३९) १०० हंस (४१) २४ हाथी (४२ से ४५) १०० मुनि (४६) १४४ हाथी (४८) १६ मधुकर (४९) १९६ सिंह (५०) ३२४ हिरण (५३) अंगुल ४८ (५४ और ५५) १५० हाथी (५६) २०० वराह (५८) ९६ या ३२ वाह (५९) १४४ या ११२ मयूर (६०) २४० या १२० हस्त (६२) ६४ या १६ महिष (६३) १०० या ४० हाथी (६४) १२० या ४५ मयूर (६६) १६ कपोत (६७) १०० कपोत (६८) २५६ राजहंस (७०) ७२ (७१) ३२४ हाथी (७२) १७२८ साधु।

अध्याय-५

(३) ६३२८$\frac{४}{१७}$ योजन (४) ५$\frac{१}{२}$$\frac{१}{१८}$ योजन (५) १०५६००००० (६) १०$\frac{१}{४०}$ दिन (७) ३११०$\frac{२}{१८}$ वर्ष (८) ९$\frac{२}{४}$$\frac{१}{३}$$\frac{२}{८}$$\frac{०}{८}$$\frac{४}{२}$$\frac{१}{८}$ वाह (९) ३२$\frac{१}{१०}$ पल (१०) ५७$\frac{२}{६}$$\frac{४}{१८}$ पल (११) १९६$\frac{३}{१०}$ भार (१२) ६६५$\frac{२}{३}$$\frac{१}{३}$ दीनार

(१३) २३८०[illegible] पल (१४) १६३ युगल (१५ और १६) ११[illegible] योजन; २७[illegible] वाह (१७) ११२ द्रोण मुद्ग; ५०४ कुडब घी; ३३६ द्रोण तण्डुल; ४४८ युगल वस्त्र; ३३६ गाएँ; १६८ सुवर्ण (१८) १६०; ११२[illegible] चरण (१९) १२० खंड (२०) ५२५ खंड (२१) २४ तीर्थंकर (२२) २१६ शिला (२४ और २५) ५ वर्ष और ११७ दिन (२६) २१३½ दिन (२७) १० वर्ष और २४५[illegible] दिन (२८ से ३०) ३५१[illegible] दिन (३१) ७६[illegible] दिन (३३) १० पुराण; १८ पुराण; २८ पुराण (३४) २९[illegible] सुवर्ण (३५) ३६ गोधूम (३६) ४००० पण (३७) २५० कर्ष (३८) ९६० अनार (३९) ५६०००० सुवर्ण (४०) ७५० सुवर्ण (४१) ५४ (४२) २५२ सुवर्ण (४३) ९४५ वाह।

अध्याय–६

(३) ७; ५ : ४, ५ (५) ९; १८ और २५[illegible] पुराण (६) १७[illegible] कर्षापण (७) ५१ पुराण और १४ पण (८) २०० (९) ३३[illegible] कर्षापण (११) १३३[illegible] पुराण (१२) १४ (१३) ५०; ६०; ७० (१५) १० मास (१६) ६ मास (१७) १० मास (१९ और २०) ३५[illegible] पल (२२) ३०; १८ (२४) ३० (२६) ५ मास (२७) ५ मास; ७५ (२८) ४½ मास; ३१½ (३०) ३१[illegible] (३१) ६०; ६ मास (३२) २४ मास; ३६ (३४) १०; २½ मास (३६) ४८; १० मास; २४ (३८) १०; ६; ३; १५ (४०) ४०; ३०; २०; ५० (४१) ५; १०; १५; २०; ३०; (४३) ५ मास; ४ मास; ३ मास; ६ मास; (४५) ८ (४६) ६; १[illegible] (४८) २०; २८; ३६ (४९ और ५०) २५ (५२) १८ (५३) ३० (५५) ९०० (५६) ८०० (५८) २८ मास (५९) १८ मास (६१) २४००; ८००; १२००; ९६; (६२) १०००; ४२०; ४८०; ९० (६४) ६० (६५) ५० (६७) २४००; २७२०; ३४०० (६८) १०५०; १४००; १८०० (६९) ५१००; ४५९०; ४०५० (७०) १३००; ११९८; ११५०; (७२ और ७३½) [illegible]; ८[illegible]; [illegible] मास (७३½ से ७६) ४४०; ११; ५ मास (७८½) [illegible] मास; [illegible] (८०½) ४८; ३२; २४; १६ (८१½) ३; ९; २७; ८१; २४३ (८२½ से ८५½) १२०; ८०; ४०; १६०; ६०; २०; (८६½) ४८; ७२; ९६; १२०; १४४ (९०½ से ९१½) ७० अनार; २५ आम; [illegible] कपित्थ (९२½ से ९४½)—

	दधि	घी	दुग्ध
प्रथम घट	[illegible]	[illegible]	[illegible]
द्वितीय घट	[illegible]	८	[illegible]
तृतीय घट	[illegible]	[illegible]	[illegible]

(९५½ और ९६½) १५ मनुष्य; ५० मनुष्य (९८½) ४; ९; १८; ३६ (९९½) ८; १३; २१; ३६ (१००½) २; ४; ७; १३; २५[illegible] (१०१½) १६; ३९; ९६; २३४ (१०३½) २२०; ३७ (१०४½) २०; [illegible] (१०५½) ६; ४; ३ (अंतिम दो मन से चुनी हुई राशियाँ हैं।) (१०६½) ८ (१०८½) ८०३१६००; १८६०; २२३१ (११०½) १४८; ३५३२८; १८४ (११२½ और ११३½) [illegible] कुसुम (११४½) [illegible] कुसुम (११७½) ५ (११८½) १७ (११९½) २६ (१२०½) ९ (१२१½) ५५ (१२२½) ६१ (१२३½) ५९ (१२४½) ३९ (१२५½) १६ (१२६½) १५ (१२७½) ५३७ (१२८½) १३८ (१२९½) १९४ (१३१½) ११ (१३२½ और १३३½) २५ (१३५½) [illegible]; [illegible] (१३७½) १०; ५७ (१३८½) धनात्मक संयवित संख्याओं की दशा में—२१; १६; १३; ११; २१; १९; ३७; ७; ३७; ६; [illegible]; १३; ५; १२; १; २५। ऋणात्मक संयवित संख्याओं की दशा में—

११; १८; २३; २७; १९; २३; ७; ३९; ११; ४४; [illegible]; ४१; ५१; ४६; ५९; ३७

(१४०$\frac{१}{२}$ से १४२$\frac{१}{२}$). ८; ५।

(१४४$\frac{१}{२}$ और १४५$\frac{१}{२}$)—

	मातुलुंग	कदली	कपित्थ	दाडिम
प्रथम ढेरी	१४	३	३	१
द्वितीय „	१६	३	२	१
तृतीय „	१८	३	१	१
मूल्य	२	१०	४	३

(१४७$\frac{१}{२}$ से १४९):—

	मयूर	कपोत	हंस	सारस
संख्या	७	१६	४५	४
पणों में मूल्य	$\frac{१४}{३}$	१२	३६	$\frac{१०}{३}$

(१५०)—

	शुण्ठि	पिप्पल	मरिच
परिमाण	२०	४४	४
पणों में मूल्य	१२	१६	३२

(१५२ और १५३) पण ९; २०; ३५; ३६ (१५५ और १५६) जब चुनी हुई संख्या ६ हो तो [illegible]; [illegible]; ३; ७ जब चुनी हुई संख्या ८ हो तो ५; ६; १६; ४ (१५८) क्षेत्र की लम्बाई १० योजन; प्रत्येक अश्वको ४० योजन वहन करना पड़ता है।

(१६० से १६२) १०; ९; ८; ५ (१६४) २०; १५ और १२; (१६५ और १६६) ८; २०; ४० (१६८) २४३ पण; (१७० से १७१$\frac{१}{२}$); १०$\frac{१}{२}$; [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] (१७३$\frac{१}{२}$) ३२; (१७४$\frac{१}{२}$) ८७ [illegible]; (१७७$\frac{१}{२}$ और १७८) १४ (१७९) ३; (१८१) २१; (१८४) $\frac{२००}{३}$; $\frac{१००}{३}$; (१८६) २०; ४; ४; ४; ४; २४; (१८८) [illegible]; [illegible]; अथवा [illegible]; [illegible]; (१९०); [illegible]; १२; (१९१) ८; १३; १०; [illegible]; (१९३ से १९६$\frac{१}{२}$;) (अ) $\frac{१३}{२}$; [illegible]; [illegible]; (ब) $\frac{११}{२}$; [illegible]; [illegible]; (१९८$\frac{१}{२}$); ५६०; ४४८(२००$\frac{१}{२}$से २०१) [illegible]; १००; [illegible]; [illegible]; (२०४ और २०५) ४७; १७; ३४; ६८; १३६ (२०७ और २०८) २४००; (२१३ से २१५) ३, २; [illegible]; [illegible] (२१७) ११ (२१९) ६; १५; २०; १५; ६; १; ६३ (२२०) ५; १०; १०; ५; १; ३१ (२२१) ४; ६; ४; १; १५ (२२३ से २२५) १०; २४; ३२ (२२७) ४ पनस (**Jack fruits**) (२२९) २ योजन (२३१ और २३२) १८; ५७; १५५; ४९० दीनारें (२३६ और २३७) १५; १; ३; ५ (२३९ और २४०) २६१; ९२१; १४१६; १८०१; २१०९; ११०८८० (२४२ और २४३) ११; १३; ३० (२४४ और २४४$\frac{१}{२}$) ३; ४; ५ (२४५$\frac{१}{२}$ और २४७) ५११७७. १०३; १६९; २२३; २६८ (२४८) १४७६०. ३५६; ५८५; ४४५; ६२४ (२४९ से २५०$\frac{१}{२}$) ५५; ७१; ६६; ८७६ (२५३$\frac{१}{२}$ से २५५$\frac{१}{२}$) ७; ८; ९ (२५६$\frac{१}{२}$ से २५८$\frac{१}{२}$) ११; १७. २० (२६०$\frac{१}{२}$ और २६१$\frac{१}{२}$) ७; ३; २ (२६२$\frac{१}{२}$) ८; १२; १४; १५; ३१ (२६३$\frac{१}{२}$) ५४; ७२; ७८; ८०; १२१ (२६४$\frac{१}{२}$) १८७५; २६२५; २९२५; ३०४५; ३०९३; ५१८७ (२६६$\frac{१}{२}$) ४; ७; १३ (२६७$\frac{१}{२}$) १२; १६; २२; ३१ (२७० से २७२$\frac{१}{२}$) ४२; ४० (२७४$\frac{१}{२}$) ५; ८

(२७६$\frac{१}{२}$) १८६ (२७७$\frac{१}{२}$) १५१ (२७८$\frac{१}{२}$) $\frac{५६३७५}{६४}$ (२८०$\frac{१}{२}$) २६ (२८२$\frac{१}{२}$ से २८३) १२९६; १२२५ (२८५) (अ) $\frac{१}{२}$; $\frac{१}{३}$ (ब) $-\frac{१}{६}$; $-\frac{१}{१२}$ (२८७) $\frac{१५}{३}$ (२८९) ३७ (२९१) ४०; १८४ (२९३) २; ३ (२९५) ५ स्त्रियाँ; ४० फूल (२९७) २०४; २१०९; २८७०; ७३८१०; १८०४४१; १६२०६ (३००) १०९५; १६२४ (३०४) २५५५; १२६२२५ (३०६$\frac{१}{२}$) २७६६३ (३०८$\frac{१}{२}$) ५०४; ७३२; १०२०; १३७५; ५३०४; १५०८७५; २७२३०४ (३१०$\frac{१}{२}$) १५६३१००; ५०३८८६९; ९६४६; १२७०५; ११४४०० (३१२$\frac{१}{२}$–३१३) $\frac{१२१}{५१२}$; $\frac{५४६१}{५२४२८८}$ (३१५) ४२६ (३१६) ४१६३४८८७२ (३१८) २; ३; ५; ४० (३२०) $\frac{१}{२}$ (३२१ से ३२१$\frac{१}{२}$) २४ दिन (३२३$\frac{१}{२}$) ३ (३२५$\frac{१}{२}$) ६ (३२७$\frac{१}{२}$) २५ दिन (३२९$\frac{१}{२}$) १३; ९ (३३१$\frac{१}{२}$) ५५ (३३२$\frac{१}{२}$) ६२० (३३७$\frac{१}{२}$) उत्तर के लिए अनुवाद की पादटिप्पणी देखिए।

अध्याय—७

(८) ३२ वर्ग दण्ड (९) ८६६ वर्ग दण्ड और ४ वर्ग हस्त (१०) ९८ वर्ग दण्ड (११) १२०० वर्ग दण्ड (१२) ३६०० वर्ग दण्ड (१३) १९५२ वर्ग दण्ड (१४) २३७८$\frac{१}{२}$ वर्ग दण्ड (१५) ६३०४$\frac{१}{२}$ वर्ग दण्ड (१६) १९२५ वर्ग दण्ड (१७) ७४२५ वर्ग दण्ड (१८) ५० वर्ग हस्त (२०) (अ) ५४; २४३ (ब) २७; १२१$\frac{१}{२}$ (२२) ८४; २५२ (२४) ४८ हस्त; १९१ वर्ग हस्त (२६) ३७८ (२७) १३५ (२९) १८९ वर्ग हस्त; १२५ वर्ग हस्त (३१) १०८; ९७२; ३६; (३३) १६०० (३४) २,४०० वर्ग दण्ड (३५) ४६२ वर्ग दण्ड (३६) ६४० वर्गदण्ड (३८) ३२४ वर्गदण्ड; ४८६ वर्गदण्ड (४०) $\frac{१२५}{२}$; १८० (४१) १८; ३०$\frac{५}{८}$ (४२) २०$\frac{१}{४}$; ३२$\frac{१}{८}$; (४४) २५३$\frac{१}{२}$; ३९ (४६) १३; २६ (४८) $\frac{६७५}{४}$; $\frac{६७५}{२}$ (५१) $\sqrt{७६८}$ वर्गदण्ड; $\sqrt{४८}$; ४; ४ दण्ड (५२) ६० वर्ग दण्ड; १२; ५; ५ दण्ड (५३) ८४; १२; ५; ९ (५५) $\sqrt{५०}$; २५ (५६) १३; ६० (५७) ६५; १५०० (५८) ३१२; २८८; ११९; १२०; ३४५६० (५९) ३१५; २८०; ४८; २५२; १३२; १६८; २२४; १८९; ४४१०० (६१) $\sqrt{३२४०}$; $\sqrt{६५६१०}$; $\sqrt{३६०००}$; $\sqrt{८१०००००}$; $\sqrt{४८४०}$; $\sqrt{१४६४१०}$; (६२) $\sqrt{३६०}$; $\sqrt{३२४०}$; $\sqrt{३२४०}$; $\sqrt{२६२४४०}$ (६४) $\sqrt{६०४८}$; $\sqrt{५४४३२}$; (६६$\frac{१}{२}$) $\sqrt{२५६०}$ दण्ड; $\sqrt{४२२५०}$ वर्ग दण्ड; (६८$\frac{१}{२}$) $\sqrt{३९६९०}$ वर्ग दण्ड; $\sqrt{२०२५०}$ वर्ग दण्ड (६९$\frac{१}{२}$) $\sqrt{३१३६०}$ वर्ग दण्ड (७१$\frac{१}{२}$) $\sqrt{१४४०}$ वर्ग दण्ड (७२$\frac{१}{२}$) $\sqrt{५७६०}$ (७५$\frac{१}{२}$) $\sqrt{३६०}$; १२; ६ (७७$\frac{१}{२}$) १९२ + $\sqrt{२३०४०}$ (७८$\frac{१}{२}$) १९२ − $\sqrt{५७६०}$ (७९$\frac{१}{२}$) १९२ − $\sqrt{२३०४०}$ (८१$\frac{१}{२}$) $\sqrt{\frac{११३६०}{९}}$; $\sqrt{\frac{४८४०}{९}}$; $\sqrt{\frac{४८४०}{९}}$; (८३$\frac{१}{२}$) १६ − $\sqrt{१६०}$ (८५$\frac{१}{२}$) $\sqrt{४८} - \sqrt{४०}$ (८७$\frac{१}{२}$) १६; १२; ४८ (८९$\frac{१}{२}$) २०; ८ (९१$\frac{१}{२}$) ३; ४; ५ (९२$\frac{१}{२}$) ५; १२; १३ (९४$\frac{१}{२}$) १६; ३०; ३४ (९६$\frac{१}{२}$) ५; ३; तीन दशाओं के लिये।

(९८$\frac{१}{२}$) अ. ६०; ६१; ब. ११; ६१; स. ११; ६०;

(१००$\frac{१}{२}$) ८०; १०२; ६१; ६०; १०९; ११; ५४६० (१०२$\frac{१}{२}$) १६९; ४०७; १६९; १२०; ३१२; ११९; ३४५६० (१०४$\frac{१}{२}$) १२५; ३००; २६०; १९५; २२४; १८९; ४८; २५२; १६८; १३२; ४४१०० (१०९$\frac{१}{२}$) ३४; ६०; १६; (१११$\frac{१}{२}$) १३; १५; १४; १२ (११३$\frac{१}{२}$) ४; १ (११४$\frac{१}{२}$) $\sqrt{२}$; २ (११५$\frac{१}{२}$) ६; ३ (११६$\frac{१}{२}$) $\frac{१}{३}$; $\sqrt{\frac{१}{८}}$ (११७$\frac{१}{२}$) ३२; (लम्ब २४) (११८$\frac{१}{२}$) $\frac{३}{५२}$; $\frac{४}{५४}$ (११९$\frac{१}{२}$) $\frac{१}{५२}$; (लम्ब $\frac{१}{५२}$) (१२१$\frac{१}{२}$) ३; ८ (१२३$\frac{१}{२}$ और १२४$\frac{१}{२}$) ३९; ५२; २५; ६०; ३३; ५६, ६३; १६ (१२६$\frac{१}{२}$) ५, १२ (१२८$\frac{१}{२}$) ५; १२ (१३०$\frac{१}{२}$) २५; ६० (१३४) ८; १५; ३; २० (१३५) ८; ७; २; २८

(१३६) ३२; ८७; ६; २३२ (१३८) ३७; २४; २९; ४० (१३९) १७; १६; १३; २४ (१४०) ६२५; ६७२; ९७०; १९०४ (१४१) २८१; ३२०; ४४२; ८८० (१४३ से १४५) वृत्त २५९२० महिलाएँ; ७२० दण्ड। सम चतुरश्र (वर्ग) ३४५६० महिलाएँ; ७२० दण्ड। समबाहु त्रिभुज ३८८८० महिलाएँ; १०८० दण्ड। आयतच्चतुरश्र : ३८८८० महिलाएँ; १०८० दण्ड, ५४० दण्ड। (१४७) (i) भुजा ८ (ii) आधार १२; लम्ब ५ (१४९) $\frac{१९}{३}$; $\frac{१३}{३}$; $\frac{९}{२}$; $\frac{६५}{२}$; ४ (१५१) १३; १३; १३; ३; १२ (१५३ से १५३½) ३; १६; ११; १२ (१५५½) $\sqrt[४]{४८}$ (१५७½) ५; ६; ४ (१५९½) $\frac{४५}{३६}$; $\frac{६१}{३६}$; $\frac{११६}{३६}$ (१६२½) $\frac{११६}{३६}$; $\frac{६१}{३६}$; $\frac{४५}{३६}$ (१६४½) $\sqrt{४०}$ (१६६½) ७; १; $\frac{१३}{४}$ (१६७½) $\frac{३७}{५}$; $\frac{१३}{५}$; $\frac{१२}{५}$ $\frac{१३}{५}$ (१६९½) ६ (१७०½) १० (१७२½) १०; १३; (१७४½) भुजाएँ $\frac{६१}{५}$; मुखभुजा $\frac{३९}{५}$; तलभुजा $\frac{७१}{५}$ (१७६) १७ (१७७½ से १७८½) (अ) ३६००; ७२००; १०८००; १४४००; (ब) ५४; ९०; १२६; १६२; (स) १००; १००; १००; १०० (१७९½) (अ) २७००; ७२००, ४५००; (ब) ५०; ७०; ८०; (स) ६०; १२०; ६० (१८१½) ८ हस्त; ८ हस्त (१८२½) $\frac{५४}{७}$ हस्त; $\frac{३०}{७}$ हस्त; $\frac{६०}{७}$ हस्त (१८३½ और १८४½) ३ हस्त; ६ हस्त. ९ हस्त (१८५½) ७ हस्त; ७ हस्त; $\frac{२८}{३}$ हस्त (१८६½) $\frac{१३}{२}$ हस्त; $\frac{५३}{२}$ हस्त; $\frac{३१}{२}$ हस्त (१८७½) ९ हस्त; १२ हस्त; ९ हस्त (१८८½ और १८९½) ८ हस्त; २ हस्त; ४ हस्त (१९१½) १३ हस्त (१९२½) २९ हस्त (१९३½ से १९५½) २९ हस्त; २१ हस्त (१९७½) १० हस्त (१९९½ से २००½) १२ योजन; ३ योजन (२०४½ से २०५) ९ हस्त; ५ हस्त; $\sqrt{२५०}$ हस्त (२०६ से २०७½) ६ योजन; १४ योजन; $\sqrt{५२०}$ योजन (२०८½ से २०९½) १५ योजन; ७ योजन (२११½ से २१२½) १३ दिन (२१४½) $\sqrt{१८}$; १३ (२१५½) $\frac{६५}{४}$ (२१६½) $\frac{२३५}{३}$ (२१७½) ६५ (२१८½) $\sqrt{४८}$; $\frac{३६१}{२}$ (२१९½) $\frac{६५}{४}$ (२२०½) ४ (२२२½) वर्ग : $\sqrt{\frac{१६९}{२}}$ आयत : ५; १२; दो समान भुजाओं वाला चतुर्भुज भुजाएँ $\frac{६१}{५}$; मुख भुजा $\frac{३९}{५}$; तल $\frac{७१}{५}$ तीन समान भुजाओं वाला चतुर्भुज भुजाएँ $\frac{६१}{५}$; तल $\frac{५२२१}{१२५}$ असमान भुजाओं वाला चतुर्भुज भुजाएँ $\frac{३९}{५}$; $\frac{५२}{५}$; मुखभुजा ५; तल १२ समबाहु त्रिभुज $\sqrt{\frac{५०७}{४}}$ समद्विबाहु त्रिभुजः—भुजाएँ १२; आधार $\frac{१२०}{१३}$ विषम त्रिभुज : भुजाएँ; १२; $\frac{५२}{५}$, तल $\frac{५६}{५}$ (२२४½) वर्ग, ३ दो समान भुजाओं वाला चतुर्भुज : $\frac{१०८}{२५}$ तीन समान भुजाओं वाला चतुर्भुज : $\frac{५१२}{१२५}$ विषम चतुर्भुज : $\frac{४४१}{१२५}$, समबाहु त्रिभुज : $\sqrt{१२}$, समद्विबाहु त्रिभुज : $\frac{२०}{३}$, विषम त्रिभुज : ८ षट्कोण : $\sqrt{\frac{१६}{३}}$, यदि क्षेत्रफल इस अध्याय के ८६½ वें श्लोक में दत नियम के अनुसार $\sqrt{४८}$ किया जाता है। (२२६½) ८ (२२८½) २ (२३०½) १० (२३२½) ६; २।

अध्याय–८

(५) ५१२ घन हस्त (६) १८५६० घन हस्त (७) १४४३२० घन हस्त (८) १६२००० घन हस्त (१२½) २९२८ घन हस्त (१३½) १४५८ घन हस्त; १४७६ घन हस्त; १४६४ घन हस्त (१४½) २९१६ घन हस्त; २९५२ घन हस्त; २९२८ घन हस्त (१५½) ३३६० घन हस्त (१६½) $\frac{३८३८०}{३}$ घन हस्त (१७½) १६१०० घन हस्त (१८½) १८२८३½ घन हस्त (२१½) (i) ३०२४ घन दण्ड; ३०२४ घन दण्ड; ४०३२ घन दण्ड (ii) केन्द्रीय पुञ्ज एक ओर घटता हुआ है १४८८; १४८८; १९८४ घन दण्ड (२२½) ४०३२; १९८४ घनदण्ड (२४½) ४० घन हस्त (२५½) १६ हस्त (२७½) १२; ३० (२९½) २३०४; २०७३$\frac{३}{५}$ (३१½) $\sqrt{७२०}$; $\sqrt{६४८}$ (३४) $\frac{१}{२६}$ दिनांश, $\frac{१}{२६}$, $\frac{१}{२६}$, $\frac{१}{२६}$, $\frac{१}{२६}$ कुएँ का भाग (३५ और ३६) १३ योजन और ९७६ दण्ड; ३९$\frac{३६}{१२६३}$ वाह (३७ से ३८½) १७ योजन, १ क्रोश

और १९६८ दण्ड (३९½ और ४०½) २६ योजन और १९५२ दण्ड (४१½ और ४२½) ६ योजन, २ कोश और ४८८ दण्ड (४५½) ६९१२ इकाई ईंटें (४६½) ३४५६ इकाई ईंटें (४७½) ५१८४ इकाई ईंटें (४८½) १०८००० इकाई ईंटें (४९½) ४०३२० इकाई ईंटें (५०½) ४०३२० इकाई ईंटें (५१½) २०७३६ इकाई ईंटें (५३½) १४४० इकाई ईंटें और २८८० इकाई ईंटें (५५½) २६४० इकाई ईंटें; १६८० इकाई ईंटें (५६½) २८८० इकाई ईंटें और १४४० इकाई ईंटें (५८½) २०; १/६ ३ (५९–६०) ८९१ इकाई ईंटें (६२) १८७२० इकाई ईंटें (६८½) ६४ पट्टिका।

अध्याय—९

(९½) १/२ दिनांश (११½) ३ ३/८ घटी (१३½) १/१२ दिनांश (१४½) २ (१६½ से १७) १/३ दिनांश; १० घटी (१९) ८ अङ्गुल (२२) १६ हस्त (२४) ८ हस्त (२५) २ (२७) २० हस्त (२९) १० (३१) ५; ५० (३४) ५ हस्त (३५ से ३७½) १/१८ दिनांश; ८ (३८½ और ३९½) ५ हस्त (४१½ से ४२) २४ अङ्गुल (४४) ३२ अङ्गुल (४६ और ४७) ११२ अङ्गुल (४९) १७५ पाद (५०) १० पाद (५१ से ५२½) १०० योजन।

परिशिष्ट—४

माप-सारिणियाँ

१. रेखा-माप *

अनन्त परमाणु	= १ अणु
८ अणु	= १ त्रसरेणु
८ त्रसरेणु	= १ रथरेणु
८ रथरेणु	= १ उत्तम भोगभूमि बाल-माप
८ उ. भो. बा.	= १ मध्यम भोगभूमि का बाल-माप
८ म. भो. बा.	= १ जघन्य " " "
८ ज. भो. बा.	= १ कर्मभूमि का बाल-माप
८ कर्मभूमि का बाल-माप	= १ लीक्षा-माप
८ लीक्षा माप	= १ तिल माप या सरसों-माप †
८ तिल-माप	= १ यव-माप
८ यव-माप	= १ अङ्गुल या व्यवहाराङ्गुल
५०० व्यवहाराङ्गुल	= १ प्रमाण या प्रमाणाङ्गुल
वर्तमान नराङ्गुल	= १ आत्माङ्गुल
६ आत्माङ्गुल	= १ पाद-माप (तिर्यक्)
२ पाद	= १ वितस्ति
२ वितस्ति	= १ हस्त
४ हस्त	= १ दण्ड ‡
२००० दण्ड	= १ क्रोश
४ क्रोश	= १ योजन

२. काल-माप []

असंख्यात समय	= १ आवलि
संख्यात आवलि	= १ उच्छ्वास
७ उच्छ्वास	= १ स्तोक
७ स्तोक	= १ लव

---

* इस सम्बन्ध में तिलोयपण्णत्ती में दिया गया रेखा-माप द्रष्टव्य है १;९३–१३२ ।

† तिलोयपण्णत्ती में लीक्षा के पश्चात् जूं माप है ।

‡ तिलोयपण्णत्ती में दण्ड को धनुष, मूसल या नाली भी बतलाया है ।

[] इस सम्बन्ध में तिलोयपण्णत्ती में दिया गया काल-माप द्रष्टव्य है । ४; २८५–२८६

३८½ लव = १ घटी
२ घटी = १ मुहूर्त
३० मुहूर्त = १ दिन
१५ दिन = १ पक्ष
२ पक्ष = १ मास
२ मास = १ ऋतु
३ ऋतु = १ अयन
२ अयन = १ वर्ष

३. धारिता-माप (धान्य-माप)

४ षोडशिका = १ कुडह
४ कुडह = १ प्रस्थ
४ प्रस्थ = १ आढक
४ आढक = १ द्रोण
४ द्रोण = १ मानी
४ मानी = १ खारी
५ खारी = १ प्रवर्तिका
४ प्रवर्तिका = १ वाह
५ प्रवर्तिका = १ कुम्भ

४. सुवर्ण भार-माप

४ गण्डक = १ गुञ्जा
५ गुञ्जा = १ पण
८ पण = १ धरण
२ धरण = १ कर्ष
४ कर्ष = १ पल

५. रजत भार-माप

२ धान्य = १ गुञ्जा
२ गुञ्जा = १ माष
१६ माष = १ धरण
२½ धरण = १ कर्ष या पुराण
४ कर्ष या पुराण = १ पल

६. लोहादि भार-माप

४ पाद = १ कला
६½ कला = १ यव

४ यव	= १ अंश
४ अंश	= १ भाग
६ भाग	= १ द्रक्षूण
२ द्रक्षूण	= १ दीनार
२ दीनार	= १ सतेर
१२$\frac{1}{2}$ पल	= १ प्रस्थ
२०० पल	= १ तुला
१० तुला	= १ भार

७. वस्त्र, आभरण और वेत्रमाप

२० युगल	= १ कोटिका

८. भूमि-प्रमाण

१ घन हस्त घनीभूत भूमि	= ३६०० पल
१ घन हस्त ढीली (loose) "	= ३२०० पल

९. ईंट-प्रमाण

१ हस्त × $\frac{1}{2}$ हस्त × ४ अङ्गुल ईंट	= इकाई ईंट

१०. काष्ठ-प्रमाण

१ हस्त और १८ अङ्गुल	= १ किष्कु
९६ अङ्गुल लम्बे और १ किष्कु चौड़े काष्ठखंड को आरे से काटने में किया गया कार्य	= १ पट्टिका

११. छाया-प्रमाण

मनुष्य की $\frac{1}{6}$ ऊँचाई	= उसका पाद माप

परिशिष्ट–५

ग्रंथ में प्रयुक्त संस्कृत पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण

[हिन्दी-वर्णमाला क्रम में]

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
अगरु	...	...	...	सुगंधित काष्ठ।	Amyris agallocha
अग्र	१२१–१२२	३	...	आगे अथवा आरम्भ का।	
अङ्ग	...	...	...	श्रुतज्ञान के भेदों में से एक भेद का नाम अंग है। ये बारह होते हैं।	
अङ्गुल	२५–२९	१	...	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ भी देखिये।
अणु	२५–२७	१	...	परमाणु या अंत्यमहत्ता को प्राप्त पुद्गल कण।	
अध्वान	३३३½–३३६½	६	...	किसी दत्त संख्या के अक्षरोंवाले छन्द के समस्त सम्भव प्रकारों के दीर्घ और लघु अक्षरों को उपस्थित करने के लिए उदग्र (vertical) अन्तराल। लघु अथवा दीर्घ अक्षर के प्रतीक का अन्तराल एक अंगुल तथा प्रत्येक प्रकार के बीच का अन्तराल भी एक अंगुल होता है।	
अन्त्यधन	...	...	...	समान्तर या गुणोत्तर श्रेढि में अंतिम पद।	
अन्तरावलम्बक	...	...	...	भीतरी लम्ब; दो स्तम्भों के शिखर से दोनों स्तम्भों के तल से जाने वाली रेखा में स्थित बिन्दु तक तत (stretched) दो धागों के मिथश्छेदन बिन्दु से लटकने वाले धागे का माप।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
अन्तश्चक्रवाल वृत्त	...	...	...	कङ्कण की भीतरी परिधि।	
अपर	११$\frac{1}{2}$	९	...	उत्तर, बाद की।	
अमोघ वर्ष	...	...	...	राजा का नाम; (साहित्यक): वह जो वास्तव में उपयोगी वर्षा करते हैं।	
अम्लवेतस	...	...	...	खट्टी पत्तियों वाली एक प्रकार की जड़ी।	Rumex Vesicarius.
अयन	...	...	...	काल का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
अरिष्टनेमि	...	...	...	बाईस वें तीर्थंकर।	
अर्जुन	...	...	...	वृक्ष का नाम।	Ferminalia Arjuna W. & A.
अर्बुद	...	...	...	ग्यारहवें स्थान की संकेतना का नाम।	
अवनति	३२	९	...	झुकाव।	
अवलम्ब	४९	७	...	शीर्ष से गिराया हुआ लम्ब।	
अव्यक्त	१२१	३	...	अज्ञात।	
अशोक	...	...	...	वृक्ष का नाम।	Jonesia Asoka Roxb.
असित	...	...	...	"	Grislea Tomentosa.
आढक	...	...	...	धान्य-माप	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
आदि	...	...	...	श्रेढि का प्रथम पद।	
आदिधन	६३–६४	२	...	समान्तर श्रेढि के प्रत्येक पद को प्रथम पद एवं प्रचय के अपवर्त्य के योग से संग्रथित मान लेते हैं। समस्त प्रथम पदों के योग को आदिधन कहते हैं।	
आदि मिश्रधन	८०–८२	२	...	प्रथम पद से संयुक्त। समान्तर श्रेढि का योग।	
आबाधा	...	...	...	किसी त्रिभुज या चतुर्भुज के आधार को संचरित करनेवाली सरल रेखा का खण्ड।	
आयत वृत्त	६	७	...	ऊनेन्द्र (Ellipse)	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
आयाम	...	...	...	लम्बाई।	
आवलि	...	...	...	काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
इच्छा	...	...	...	त्रैराशिक प्रश्न सम्बन्धी वह राशि जिसके सम्बन्ध में दत्त अर्थ (Rate) पर कुछ निकालना इष्ट होता है।	
इन्द्रनील	...	...	...	शनिप्रिय, नीलमणि	Sapphire
इभदन्ताकार	७९½	७	...	हाथी के दांत (खीस) का आकार।	
उच्छवास	...	...	...	काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
उत्तर धन	६३–६४	२	...	समान्तर श्रेढि में पाये जाने वाले प्रचय के समस्त अपवर्त्यों का योग।	
उत्तर मिश्रधन	८०–८२	२	...	समान्तर श्रेढि के प्रचयों तथा श्रेढि के योग को जोड़ने से प्राप्त मिश्र योगफल।	
उत्पल	...	...	...	जल में ऊगने वाला नलिनी पुष्प।	
उत्सेध	...	...	...	उच्छ्राय या ऊँचाई।	
उन्नत वृत्त	६	७	...	उठे हुए सम्मितीय तल वाली आकृति।	
उभय निषेध	३७	७	...	एक प्रकार का चतुर्भुज।	
ऋतु	...	...	...	काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
एक	...	...	...	इकाई का स्थान।	
औण्ड्र-औण्ड्रफल	२	८	...	किसी सांद्र अथवा खात की घनात्मक समाई का व्यावहारिक माप जिसे ब्रह्मगुप्त ने औत्र कहा है।	
अंश	...	...	...	धातुओं सम्बन्धी भार का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
अंशमूल	...	...	...	भिन्नांश का वर्गमूल।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
अंशवर्ग	...	...	...	भिन्नांश का वर्ग।	” ”
कदम्ब	...	...	...	वृक्ष का नाम।	Nauclea Cadamba.
कम्बुका वृत्त	६	७	...	शंख के आकार की आकृति।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
कर्ण	५४	७		सम्मुख कोण बिन्दुओं को जोड़ने वाली सरल रेखा।	
कर्म	...	...	...	जीव के रागद्वेषादिक परिणामों के निमित्त से कार्माण वर्गणारूप जो पुद्गल स्कंध जीव के साथ बंधको प्राप्त होते हैं, उनको कर्म कहते हैं।	परिशिष्ट १ में भी 'कर्म' देखिए।
कर्मान्तिका	९	८		किसी सान्द्र अथवा खात की घनात्मक समाई का व्यावहारिक माप।	
कर्ष				स्वर्ण या रजत का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ४ और ५ देखिये।
कला				कुप्य (base) धातुओं का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
कला सवर्ण				भिन्न।	अध्याय तीन के प्रारम्भ में पाद-टिप्पणी देखिये।
कार्षापण	...	...	...	कर्ष।	
किष्कु	...	...	...	काष्ठ चीरने के सम्बन्ध में लम्बाई का माप।	
कुङ्कुम				कुंकुम फूलों के पराग एवं अंशु।	Crocus sativus
कुट्टीकार	७९½	६		अनुपाती विभाजन।	
कुडब– कुडहा	...			धान्य का आयतन सम्बन्धी माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
कुरजा				वृक्ष का नाम।	Wrightia Antidysenterica.
कुम्भ	...	...	...	धान्य का आयतन सम्बन्धी माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
कुर्वक	...	...		वृक्ष का नाम।	the Amaranath or the Barleria.
केतकी	...	...		"	Pandanus Odoratissimus.

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
कोटि				करोड़, संकेतना का आठवाँ स्थान।	
कोटिका	...	...	...	वस्त्र, आभूषण तथा बेत का संख्यात्मक माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ७ देखिये।
क्रोश	...	...	...	लम्बाई (दूरी) का माप।	परिशिष्ट ३ की सूची १ देखिये।
कृति	...	...	...	वर्ग करण क्रिया।	
कृष्णागरु	...	...	...	सुगन्धित काष्ठ की काली विभिन्नता।	
खर्व				संकेतना का तेरहवाँ स्थान।	
खारी				धान्य का आयतन सम्बन्धी माप।	
गच्छ				श्रेढि के पदों की संख्या।	
गण्डक				स्वर्ण का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ४ देखिये।
गतनाड्य	१०½	९		पूर्वाह्न में बीता हुआ दिनांश।	
गुञ्जा			...	स्वर्ण या रजत का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ४ एवं ५ देखिये।
गुण	५	७	...	जीवा।	
गुणकार	...	...	...	गुणा।	
गुणधन	९३	२	...	गुणोत्तर श्रेढि के पदों की संख्या के तुल्य साधारण निष्पत्तियों को लेकर, उनके परस्पर गुणनफल में प्रथम पद का गुणा करने से गुणधन प्राप्त होता है।	
गुण सङ्कलित			...	गुणोत्तर श्रेढि (Geometrical progression).	
घटी				काल माप	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
घन	५३–५४	२	...	किसी राशि का घन करना; जिस राशि का घनमूल निकालना इष्ट होता है, उसे इकाई के स्थान से प्रारम्भ कर तीन-तीन के समूह में विभाजित कर लेते हैं। इन समूहों में से प्रत्येक का दाहिनी ओर का अंतिक अंक घन कहलाता है।	
घन मूल				घनमूल निकालने की क्रिया।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
चक्रिकाभञ्जन	६	१	१	जन्ममरण के चक्र का संहार करनेवाले; राष्ट्रकूट राजवंश के राजा का नाम।	
चतुर्मण्डल क्षेत्र	८२$\frac{१}{२}$	७	२०१	मध्य स्थिति	
चम्पक	६	४	६९	पीले सुगन्धित पुष्प वाला वृक्ष	Michelia Champaka
चय	६८	२	२२	प्रचय। वह राशि जो समान्तर श्रेढि के उत्तरोत्तर पदों में समान अन्तर स्थापित करती है।	
चरमार्घ	१०३$\frac{१}{२}$	६	११२	शेष मूल्य	
चिति	३०३	६	१६९ २६२	श्रेढि संकलन। ढेर।	
चित्र कुट्टीकार	२१६	६	१४५	अनुपाती विभाजन समन्वित विचित्र एवं मनोरञ्जक प्रश्न।	
चित्र कुट्टीकार मिश्र	२७३$\frac{१}{२}$	६	१६०	अनुपाती विभाजन क्रिया के प्रयोग्र गर्भित विचित्र एवं मनोरञ्जक निश्चित प्रश्न।	
छन्द	३३२$\frac{१}{२}$	६	१७७	... ...	A syllabic metre
जन्य	९०$\frac{१}{२}$	७	२०४	'बीज' नामक दत्त न्यास से व्युत्पादित त्रिभुज और चतुर्भुज आकृतियाँ।	
जम्बू	६४	४	८०	वृक्ष का नाम।	Eujenia Jambalona.
जिन	९	६	९१	जिन्होंने घातिया कर्मों का नाश किया है वे सकल जिन हैं इनमें अरहंत और सिद्धगर्भित हैं। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु एक देश जिन कहे जाते हैं क्योंकि वे रत्नत्रय सहित होते हैं। असंयत सम्यक् दृष्टि से लेकर अयोगी पर्यन्त सभी जिन होते हैं।	जिन्होंने अनेक विषम भवों के गहन दुःख प्रदान करनेवाले कर्म शत्रुओं को जीता है—निर्जरा की है, वे जिन कहलाते हैं।
जिनपति	८३$\frac{१}{२}$	६	१०८	तीर्थंकर।	
ज्येष्ठ धन	१०२$\frac{१}{२}$	६	११२	सबसे बड़ा धन।	
डुण्डुक	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
तमाल	३९	४	७४	वृक्ष का नाम।	Xanthochymus Pictorius
ताली	११६½	६	११९	वृक्ष का नाम	
तिलक	२६	४	७२	सुन्दर पुष्पों वाला वृक्ष।	
तीर्थ	१	६	९१	उथला स्थान जहाँ से नदी आदि को पार कर सकते हैं।	
तीर्थंकर	१	६	९१	तीर्थों को उत्पन्न करनेवाली, चार-घातिया कर्मों का नाशकर अर्हंत पद से विभूषित आत्मा।	
तुला	४४	१	६	कुप्य (Baser) धातुओं का भार माप।	
त्रसरेणु	२६	१	४	कण। क्षेत्रमाप।	
त्रिप्रश्न	१२	१	२	संस्कृत ज्योतिष ग्रंथों के किसी अध्याय का नाम।	
त्रिसमचतुरश्र	५	७	१८१	तीन समान भुजाओं वाला चतुर्भुज क्षेत्र।	
दण्ड	३०	१	४	दूरी की माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
दश	६३	१	८	संकेतना का दसवाँ स्थान।	
दश कोटि	६५	१	८	दस करोड़।	
दश लक्ष	६४	१	८	दस लाख (One million)।	
दश सहस्र	६४	१	८	दस हजार।	
द्विरग्र शेषमूल	३	४	६८	भिन्नों के विविध प्रश्नों की एक जाति।	
द्विसम त्रिभुज	५	७	१८०	दो समान भुजाओं वाला (समद्विबाहु) त्रिभुज क्षेत्र।	
द्विसम चतुरश्र	”	”	१८०	दो समान भुजाओं वाला चतुर्भुज क्षेत्र।	
द्वि द्विसम चतुरश्र	”	”	१८०	आयत क्षेत्र।	
दीनार	४३	१	६	कुप्य धातुओं का भार माप। टंक-(सिक्के) का नाम भी दीनार है।	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
दृष्ट धन	८४	२	२६	ज्ञात धन	
द्रक्षूण	४३	१	६	कुप्य धातुओं (Baser metals) का भार माप।	” ”
द्रोण	३७	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
धनुषाकार क्षेत्र	४३	७	१९०	वृत्त के चाप एवं चापकर्ण से सीमित क्षेत्र।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
धरण	३९	१	५	स्वर्ण या रजत का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियों ४ और ५ देखिये।
नन्द्यावर्त	३३२½	६	१७७	विशेष प्रकार के बने हुए राजमहल का नाम।	
नरपाल	१०	२	११	राजा; सम्भवतः किसी राजा का नाम।	
निरुद्ध	५६	३	४९	लघुत्तम समापवर्त्य।	
निष्क	११४	३	६१	स्वर्ण टंक (सिक्का)।	
नीलोत्पल	२२१	६	१४७	नील कमल (जल में उगने वाली नीली नलिनी)।	
नेमिक्षेत्र	१७ ८०½	७ "	१८४ २००	दो संकेन्द्र परिधियों का मध्यवर्ती क्षेत्र (Annulus)।	
न्यर्बुद	६५	१	८	संकेतना का बारहवाँ स्थान।	
पट्टिका	६३–६७½	८	२६७	क्रकच कर्म (Saw-work) का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १० देखिये।
पण	३९	१	५	स्वर्ण का भार माप; स्वर्ण टंक (सिक्का)।	परिशिष्ट ४ की सूची ४ देखिये।
पणव (अन्वायाम छेद)	३२	७	१८८	डिंडम या भेरी;	
पद्म	६६	१	८	संकेतना का पंद्रहवाँ स्थान।	
पद्मराग	३	२	१०	एक प्रकार का रत्न।	
परमाणु	२५	१	४	पुद्गल का अविभागी कण।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
परिकर्म	४७ ४८	१	६	गणितीय क्रियाएँ। इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार (श्लोक १६०-१६१) के अनुसार कुन्दकुन्दपुर के पद्मनन्दि (अर्थात् कुन्दकुन्द) ने अपने गुरुओं से सिद्धान्त का अध्ययन किया और षट्खंडागम के तीन खंडों पर परिकर्म नाम की टीका लिखी। यह अनुपलब्ध है। (त्रिलोक प्रज्ञप्ति, भाग २, १९५१ की प्रस्तावना से उद्धृत)।	
पल	३९ ४१ ४४	१	५ ५ ६	स्वर्ण, रजत एवं अन्य धातुओं का भार माप।	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ४, ५, ६ देखिये।
पक्ष	३४	१	५	काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
पाटली	६ २४	४ ४	६९ ७२	मधुर गंध वाले पुष्पों वाला वृक्ष।	Bignonia Suaveolens.
पाद	२९	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
पार्श्व	८३½	६	१०८	पार्श्वनाथ, २३वें तीर्थंकर। बाजू में।	
पुन्नाग	३५	४	७३	वृक्ष का नाम।	Rottleria Tinctoria
पुराण	४१	१	६	रजत का भार माप, सम्भवतः टंक भी।	परिशिष्ट ४ की सूची ५ देखिये।
पुष्यराग	४	२	१०	एक प्रकार का रत्न।	
पैशाचिक	११२½	७	२१३	पिशाच सम्बन्धी; इसलिये अत्यन्त कठिन अथवा जटिल।	
प्रकीर्णक	३	४	६८	विविध प्रश्नावलि।	
प्रतिबाहु	·७	७	१८२	पार्श्व या बाजू की भुजा।	
प्रत्युत्पन्न	१	२	९	गुणन।	
प्रपूरणिका	१९२	६	१४०	(साहित्यिक) वह जो पूर्ण रूप से भर अथवा तुष्ट कर देती है; यहाँ स्वर्ण मिश्रित कुप्य धातुएँ; तलछट (dross)।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
प्रभाग	९९	३	५९	भिन्न का भिन्न (भाग का भाग)।	
प्रमाण	२८	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिए।
	२	५	८३	इच्छा की संवादी दत्त राशि जो त्रैराशिक प्रश्नों से सम्बन्धित है।	
प्रवर्तिका	३७	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	
प्रस्थ	३६	१	५	" "	परिशिष्ट ४ की सूचियाँ ३ और ६ देखिये।
प्रक्षेपक	७९$\frac{1}{2}$	६	१०८	अनुपाती वितरण।	
प्रक्षेपक करण	७९$\frac{1}{2}$	६	१०८	अनुपाती वितरण सम्बन्धी क्रिया।	
प्लक्ष	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम; प्रोदुम्बर।	Ficus Infectoria, or Religiosa.
फल	२	५	८३	त्रैराशिक प्रश्न में निकाली जाने वाली राशि की संवादी दत्त राशि।	
बहिश्चक्रवाल वृत्त	२८ ६७$\frac{1}{2}$	७ ७	१८७ १९७	कङ्कण की बाहिरी परिधि।	
बाण	४३	७	१९०	धनुषाकार क्षेत्र में चाप और चापकर्ण की महत्तम उदग्र दूरी। (height of a segment)	
बालेन्दु क्षेत्र	७९$\frac{1}{2}$	७	२००	चंद्रमा की कला सदृश क्षेत्र।	
बीज				(साहित्यिक), बोया जाने वाला धान्य आदि।	
	९०$\frac{1}{2}$	७	२०४	(यहाँ) इसका उपयोग धनात्मक दो पूर्णाङ्कों के अभिधान हेतु होता है जिनके गुणनफल एवं वर्गों की सहायता से भुजाओं के माप को निकालने पर समकोण त्रिभुज संरचित होता है।	
भाग	४२	१	६	कुप्य (baser) धातुओं का माप	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
भागानुबंध	११३	३	६१	संयव भिन्न (Fractions in association)	
भागापवाह	१२६	३	६३	वियुत भिन्न (Dissociated fractions)	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
भागाभ्यास	३	४	६८	प्रकीर्णक भिन्नों का एक प्रकार।	
भागभाग	१११	३	६०	जटिल भिन्न (Complex fraction)।	
भागमातृ	१३८	३	६६	भाग, प्रभाग, भागभाग, भागानुबन्ध, और भागापवाह भिन्न जातियों के दो या दो से अधिक प्रकारों के संयोग से संरचित।	
भाग सम्वर्ग	३	४	६८	प्रकीर्णक भिन्नों की एक जाति।	
भागहार	१८	२	१२	विभाजन क्रिया।	
भाज्य	५३–५४	२	१८	घनमूल समूह की रचना करने वाले तीन स्थानों में से बीच का स्थान। जिसमें भाग देते हैं।	
भार	४४	१	६	कुप्य (baser) धातुओं का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
भिन्न कुट्टीकार	११४	६	१२३	भिन्नीय राशियों का अन्तर्धारक अनुपाती वितरण।	
भिन्न दृश्य	३	४	६८	प्रकीर्णक भिन्नों की एक जाति।	
मधुक	२५	४	७२	वृक्ष का नाम।	Bassia Latifolia
मध्यधन	६३	२	२१	समानान्तर श्रेढि का मध्य पद।	
मर्दल (अन्वायाम छेद)	३२	७	१८८	डिंडिम या भेरी।	
महाखर्व	६६	१	८	संकेतना का चौदहवाँ स्थान।	
महापद्म	६६	१	८	संकेतना का सोलहवाँ स्थान।	
महावीर	१	१	१	२४वें तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी।	
महाशंख	६७	१	८	संकेतना का बीसवाँ स्थान।	
महाक्षित्या	६८	१	८	संकेतना का बाईसवाँ स्थान।	
महाक्षोभ	६८	१	८	संकेतना का चौबीसवाँ स्थान।	
महाक्षोणी	६७	१	८	संकेतना का अठारहवाँ स्थान।	
मार्ग	६३	८	१६७	छेद (section); वह अनुरेखा जिस पर से काष्ठ का टुकड़ा आरे से चीरा जाता है।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
मानी	३७	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
माष	४०	१	५	रजत का भार माप टंक (सिक्का)।	परिशिष्ट ४ की सूची ५ देखिये।
मिश्रधन	८०–८२	२	२४	संयुक्त या मिला हुआ योग।	
मुख	५०	७	१३३	चतुर्भुज की ऊपरी भुजा (top-side)	शङ्खाकार और मृदङ्ग आकार वाले क्षेत्रों में भी मुख का उपयोग हुआ है।
मुरज	३२	७	१८८	मृदंग के समान डिंडिम या भेरी।	
मुहूर्त	३४	१	५	काल माप	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
मूल	३६	२	१५	वर्गमूल; प्रकीर्णक भिन्नों की एक जाति	
	३	४	६८		
मूलमिश्र	३	४	६८	जिसमें वर्गमूल अंतर्भूत हो; प्रकीर्णक भिन्नों की एक जाति।	
मेरु	५	५	८३	जम्बूद्वीप के मध्यमाग में स्थित सुमेरु पर्वत। विशेष विवरण के लिये त्रिलोक प्रज्ञप्ति भाग २ में (४/१८०२–१८११; ४/२८१३, २८२३) देखिये।	
मृदंग (अन्वायाम छेद)	३२	७	१८८	एक प्रकार की डिंडिम या भेरी।	
यव	२७	१	४	एक प्रकार का धान्य; लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
	४२	१	६	एक प्रकार का धातु माप।	
यव कोटि	५$\frac{१}{२}$	९	२७०	लंका के पूर्व से ९०° की ओर एक स्थान।	
योग	४२	४	७५	मन वचन काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के चंचल होने की क्रिया।	(जैन परिभाषा)
				तपस्या; ध्यान का अभ्यास	(अन्य मत से)
योजन	३१	१	४	लम्बाई का माप	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
रथरेणु	२६	१	४	पुद्गल कण	” ”
रूप	१७$\frac{१}{२}$	६	१११	पूर्णांक।	
रोमकापुरी	५$\frac{१}{२}$	९	२७०	लंका के पश्चिम से ९०° की ओर एक स्थान।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
लङ्का	५१½	१	२७०	वह स्थान जहाँ उज्जैन से निकलने वाला ध्रुववृत्त (meridian) विषुवत् रेखा से मिलता है।	
लव	३३	१	५	काल माप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
लक्ष	६४	१	८	लाख, संकेतना का छठवाँ स्थान।	
लाभ	५	६	९२	भजनफल या हिस्सा (अंश)।	
वकुल	२५	४	७२	वृक्ष का नाम।	Mimusops Elengi.
वज्र (अन्वायाम छेद)	३२	७	१८८	इंद्र का आयुध।	
वज्रापवर्तन	२	३	३६	भिन्नों के गुणन में तिर्यक् प्रहासन।	
वर्गमूल	३६	२	१५	वह इष्ट राशि जिसका वर्ग करने से वह दत्त राशि उत्पन्न होती है जिसका वर्गमूल निकालना इष्ट होता है।	
वर्ण	१६९	६	१३५	(साहित्यिक) रंग; शुद्ध स्वर्ण १६ वर्ण का मानकर दत्त स्वर्ण की शुद्धता के अंश का अभिधान वर्ण द्वारा होता है।	
वर्धमान	१	५	८३	चौबीसवें तीर्थंकर।	
वल्लिका वल्लिका कुट्टीकार	१५१½	६	११५	लता सदृश अंकशृंखला पर आधारित अनुपाती वितरण।	
वाह	३८	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	
विचित्र कुट्टीकार	२१६	६	१४५	अनुपाती विभाजन समन्वित विचित्र एवं मनोरञ्जक प्रश्नावलि।	
वितस्ति	३०	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
विद्याधर नगर	६२	८	२६७	यहाँ आयताकार नगर का प्रयोजन मालूम पड़ता है।	
विषम कुट्टीकार	१३४	६	१२३	भिन्नीय राशियों का अंतर्धारक अनुपाती (भिन्न कुट्टीकार)।	
विषम चतुरश्र	५	७	१८१	सामान्य चतुर्भुज।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
विषम संक्रमण	२	६	९१	कोई भी दत्त दो राशियों के भाजक और भजनफल द्वारा प्ररूपित दो राशियों के योग एवं अंतर की अर्द्ध राशियों सम्बन्धी क्रिया।	
वृषभ	८३½	६	१०८	प्रथम तीर्थंकर का नाम।	
व्यवहारांगुल	२७	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
व्युत्कलित	१०६	२	३२	समानान्तर श्रेढि की समस्त श्रेढि में से श्रेढि का अंश घटाने की क्रिया।	
शङ्ख	६७	१	८	संकेतना का उन्नीसवां स्थान।	
शत	६३	१	८	सौ; सैकड़ा।	
शत कोटि	६५	१	८	सौ करोड़।	
शाक	६४	८	२६७	वृक्ष का नाम (Teak tree)।	
शान्ति	८४½	६	१०८	शान्तिनाथ तीर्थङ्कर।	
शेष	३	४	६८	आरम्भ से श्रेढि के अंश को निकाल देने पर शेष बचनेवाले पद।	
शेषनाख्य	१०½	९	२७१	अपराह्न में बीतनेवाला दिनांश।	
शेषमूल	३	४	६८	प्रकीर्णक भिन्नों की एक जाति।	
शोध्य	५३–५४	२	१८–१९	घनमूल समूह के तीन अंकों में से एक।	
श्रावक	६६	२	२२	जैनधर्म का पालन करने वाला गृहस्थ।	
श्रीपर्णी	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम।	Premna Spinosa.
श्रृङ्गाटक	३०½	८	७५	त्रिभुजाकार स्तूप।	
षोडशिका	३६	१	५	धान्य सम्बन्धी आयतन माप।	परिशिष्ट ४ की सूची ३ देखिये।
सकल कुट्टीकार	१३६½	६	१२४	अनुपाती वितरण जिसमें भिन्न अंतर्भूत नहीं होते।	
सङ्क्रमण	२	६	९१	दो राशियों के योग एवं अन्तर की अर्द्ध राशियों सम्बन्धी क्रिया।	
सङ्कलित	६१	२	२०	श्रेढि का योग निकालने की क्रिया।	
सङ्क्रान्ति	१७	५	८५	सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने का मार्ग।	

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
सतेर	४३	१	६	कुप्य (baser) धातुओं का भारमाप।	परिशिष्ट ४ की सूची ६ देखिये।
समचतुरश्र	११२½	७	२१३	वर्गाकार आकृति।	
सम त्रिभुज	५	७	१८१	वह त्रिभुज जिसकी सब भुजाएँ समान हों।	
समय	३२	१	४	कालमाप। एक परमाणु का दूसरे परमाणु के व्यतिक्रम करने में जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।
समवृत्त	६	७	१८१	वृत्त (Circle)।	
सरल	२६	४	७२	वृक्ष का नाम	Pinus Longifolia
सर्ज	६७	८	२६८	वृक्ष का नाम (साल वृक्ष के समान)।	
सर्वधन	६३–६४	२	२१	समान्तर श्रेढि का योग।	
सल्लकी	६३	४	८०	वृक्ष का नाम।	Boswellias Thurifera
सहस्र	६३	१	८	हजार।	
सारस	३६	४	७४	एक प्रकार का पक्षी।	
सार संग्रह	२३	१	३	(साहित्यक) किसी विषय के सिद्धान्तों का संक्षिप्त प्रतिपादन। (यहाँ) गणित ग्रंथ का नाम।	
साल	२४	४	७२	वृक्ष का नाम।	Shorea Robusta, or Valeria Robusta.
सिद्ध	१	६	९१	घातिया और अघातिया कर्मों का नाश कर अष्टगुणों आदि को प्राप्त मुक्त आत्मा।	
सिद्धपुरी	५½	९	२७०	लङ्का के प्रतिभूवस्थ।	
सुमति	७	४	७०	पांचवें तीर्थङ्कर का नाम।	
सुवर्णकुट्टीकार	१६९	६	१३५	स्वर्ण सम्बन्धी प्रश्नों में प्रयुक्त अनुपाती वितरण।	
सुव्रत	८३½	६	१०८	बीसवें तीर्थङ्कर का नाम।	
सूक्ष्मफल	२	७	१८१	क्षेत्रफल अथवा घनफल का शुद्ध माप।	
स्तोक	३३	१	५	कालमाप।	परिशिष्ट ४ की सूची २ देखिये।

शब्द	सूत्र	अध्याय	पृष्ठ	स्पष्टीकरण	अभ्युक्ति
स्याद्वाद	८	१	२	"कथंचित्" का पर्यायवाची शब्द। (पाद टिप्पणी भी देखिये)।	
स्वर्ण	९६	२	३०	सोने का टंक (सिक्का)।	सुवर्ण भी।
हस्त	३०	१	४	लम्बाई का माप।	परिशिष्ट ४ की सूची १ देखिये।
हिन्ताल	११६$\frac{1}{2}$	६	११९	वृक्ष का नाम।	Phaenix or Elate Paludosa.
क्षित्या	६८	१	८	संकेतना का इक्कीसवां स्थान।	
क्षेपपद	७०	२	२२	समान्तर श्रेढि के दुगुने प्रथम पद एवं प्रचय के अंतर की अर्द्धराशि।	
क्षोणी	६७	१	८	संकेतना का सत्रहवां स्थान।	
क्षोभ	६८	१	८	संकेतना का तेईसवां स्थान।	

नोट—उपर्युक्त सारणी में सूत्र अध्याय एवं पृष्ठ के प्रारम्भ के कुछ स्तम्भ भूल से रिक्त रह गये हैं। उन्हें क्रमानुसार नीचे दिया जा रहा है—

अगरु—९।३।३७। अग्र—६२।
अङ्क—४५।४।७५। अङ्गुल—२७।१।४।
अणु—४। अध्वान—१७७। अन्त्यधन—६३।२।२१।
अन्तरावलम्बक—१८०$\frac{1}{2}$।७।२३६।
अन्तश्चक्रवाल वृत्त—६७$\frac{1}{2}$।७।१९७।
अपर—२७२। अमोघवर्ष—३।१।१।
अम्लवेतस—६७।८।२६८। अयन—३५।१।५।
अरिष्टनेमि—८४$\frac{1}{2}$।६।१०८। अर्जुन—६७।८।२६८।
अर्बुद—६५।१।८। अवनति—२७७।
अवलम्ब—१९२। अव्यक्त—१२२।३।६२।
अशोक—२४।४।७२। असित—६७।८।२६८।
आढक—३६।१।५ आदि—६४।२।२१।
आदिधन—२१। आदि मिश्रधन—२४।
आबाधा—४९।७।१९२। आयतवृत्त—१८१।
आयाम—९।७।१८४। आवलि—३२।१।४।
इच्छा—२।५।८३। इन्द्रनील—२२०।६।१४७।
इभदन्ताकार—८०$\frac{1}{2}$।७।२००। उच्छ्वास—३३।१।५।

परिशिष्ट—५

डॉ० हीरालाल जैन ने जब सन् १९२३–२४ में कारंजा के जैन भण्डारों की ग्रन्थसूची तैयार की थी तभी से उन्हें वहाँ की गणितसार संग्रह की प्राचीन प्रतियों की जानकारी थी। प्रस्तुत ग्रन्थ के पुनः सम्पादन का विचार उत्पन्न होते ही उन्होंने उन प्रतियों को प्राप्त कर उनके पाठान्तर लेने का प्रयत्न किया। इस कार्य में उन्हें उनके प्रिय शिष्य व वर्तमान में पाली प्राकृत के प्राध्यापक श्री जगदीश किल्लेदार से बहुत सहायता मिली। उक्त प्रतियों का जो परिचय तथा उनमें से उपलब्ध टिप्पण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं वे उक्त प्रयास का ही फल है। अतः सम्पादक उक्त सज्जनों के बहुत अनुगृहीत हैं।

कारंजा जैन भण्डार की प्रतियों का परिचय

क्रमांक–अ० नं० ६३

(१) (मुख पृष्ठ पर) छत्तीसी गणितग्रंथ (?)—(पुष्पिका में) सारसंग्रह गणितशास्त्र।

(२) पत्र ४९—प्रति पत्र ११ पंक्तियाँ—आकार ११."७५ × ५"

(३) प्रथम व्यवहार पत्र १५, द्वितीय २२ (?), द्वितीय ३२, तृतीय ३७, चतुर्थ ४२

(४) प्रारंभ—॥ ८० ॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ अलंघ्यं त्रिजगत्सारं ३०

(५) अन्तिम—(पत्र ४२) इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ त्रिराशिको नाम चतुर्थो व्यवहारः समाप्तः ॥

श्रीवीतरागाय नमः ॥ छ ॥ छत्तीसमेतेन सकल ८ भिन्न ८ भिन्नजाति ६ प्रकीर्णक १० त्रैराशिक ४ इंता ३६ नू छत्तीसमे बुदु वीराचार्यरु पेल्दगणितवनु माधवचंद्रत्रैविद्याचार्यरु शोधिसिदरागि शोध्य सारसंग्रहमेनिसिकोंबुदु ॥ वर्गसंकलितानयनसूत्रं ॥

(६) अन्तिम—(पत्र ४९) घनं ३५ अंकसंदृष्टिः छः ॥ इति छत्तीसीगणितग्रंथसमाप्तः ॥ छ ॥ छ ॥ श्रीः ॥ शुभं भूयात् सर्वेषां ॥ ॥ : संवत् १७०२ वर्षे माग्र शिर वदी ४ बुधे संवत् १७०२ वर्षे माह शुदि ३ शुक्रे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगछे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्रीसकलकीर्तिदेवास्तदन्वये भ० श्रीवादिभूषण तत्पट्टे भ० श्रीरामकीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्रीपद्मनंदीविराजमाने आचार्यश्रीनरेंद्रकीर्त्तिस्तच्छिष्य ब्र० श्रीलाड्यका तच्छिष्य ब्र० कामराजस्तच्छिष्य ब्र० लालजि ताभ्यां श्रीरायदेशे श्रीमीलोडानगरे श्रीचंद्रप्रभचैत्यालये दोसी कुंहा भार्या पदमा तयोः सुतौ दोसी केशर भार्या लाछा द्वितीय सुत दोसी वीरभाण भार्या जितादे ताभ्यां स्वज्ञानावर्णिकर्मक्षयार्थे निजद्रव्येण लिखाप्य छत्तीसीगणितशास्त्रं दत्तं श्रीरस्तु ॥

(७) प्राप्तिस्थान—बलात्कारगणमंदिर, कारंजा, अ० नं० ६३

(८) स्थिति उत्कृष्ट, अक्षर स्पष्ट,

(९) विशेषता—पृष्ठमात्रा, टिप्पण—(समास मे)

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६४

(१) सारसंग्रह गणितशास्त्र ।
(२) पत्रसंख्या १४२ प्रतिपत्र १० पंक्तियाँ—प्रतिपंक्ति २५ अक्षर आकार ५"·४×११" ।
(३) प्रथमव्यवहार ३७ द्वितीय ७८ तृतीय ९५ चतुर्थ १०४ पञ्चम १११ षष्ठ १३१ सप्तम १४० अंतिम १४२ ।
(४) प्रारंभ— ८० ॥ श्री जिनाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ प्रणिपत्य वर्द्धमानं विद्यानंदं विशुद्धगुणनिलयं । सूरिं च महावीरं कुर्वे तद्गणितशास्त्रसद्वृत्तिं ॥ १ ॥ अलंध्यं इत्यादि ।
(५) अंतिम—छत्तीसी टीका ग्रंथसंख्या ३०००५ शुभं भवतु ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभं ॥ स्वस्ति श्री संवत् १६१६ वर्षे कार्तिक सुदि ३ गुरौ श्रीगंधारशुभस्थाने श्रीमदादिजिनचैत्यालये श्रीमूलसंघे श्रीसरस्वतीगच्छे श्रीबलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ० पद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीदेवेंद्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीविद्यानंदिदेवास्ततपट्टे भ० श्री मल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीलक्ष्मीचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीवीरचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीज्ञानभूषणदेवास्तदन्वये आचार्य-सुमतिकीर्तेरुपदेशात् श्रीहुंब ज्ञातीय सोनी सांतू भार्या बाई हरषाई तयोः पुत्र सोनी देधर भार्या मरघाई तयोः सुतौ सोनी देवजी श्रीमजी एतेषां मध्ये सोनी देधरकेन इदं शास्त्रं लिखाप्य प्रदत्तं किंचत् श्रावकैः लिखापितं ॥ छ ॥

आ० वीरत्तभूषणानामिदं ॥

छत्तीसि गणितनि टिका

संवत् १८४२ मिति वैशाख सुदि ११ भट्टारक श्रीवीद्याभूषणइदं गणत छत्तिसी भट्टारक श्री देवेन्द्र-कीर्तिजीभ्यां प्रदत्तं सुभं भूयात् ।

(६) बलात्कार मंदिर कारंजा क्र० ६४ ।

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६५

(१) सारसंग्रह गणितशास्त्र—प्रशस्ति मे-षट्त्रिंशतिकागणितशास्त्र ।
(२) पत्र ५३; प्रति पत्र १० पंक्तियाँ; आकार ११"×४"·७५ ।
(३) प्रथम व्यवहार १६; द्वितीय ३४; तृतीय ४०; चतुर्थ ४६; पंचम ५३ ।
(४) प्रारंभ—८०॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥ अलंध्यं त्रिजगत्सारं इत्यादि ।
(५) अन्तिम—(पत्र ५३) घनं ॥ इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ वर्गसंकलितादिव्यवहारः पंचमः समाप्तः ॥

संवत् १७२५ वर्षे कार्तिक शुदि १० भौमे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगछे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्रीसकलकीर्त्यन्वये भ० श्रीवादिभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीरामकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ० श्रीपद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीदेवेंद्रकीर्तिगुरूपदेशात् मुनि श्रीश्रुतकीर्ति-स्तच्छिष्य मुनि श्रीदेवकीर्तिस्तच्छिष्य आचार्य श्रीकल्याणकीर्तिस्तच्छिष्य मुनि श्रीत्रिभुवन-चंद्रेणेदं षट्त्रिंशतिका गणितशास्त्रं कर्मक्षयार्थं लिखितं ।

(७) प्राप्तिस्थान—बलात्कारगणमंदिर, कारंजा, अ० नं० ६५ ।
(८) स्थिति मध्यम, अक्षर स्पष्ट ।
(९) विशेषता—समास मे टिप्पण; क्वचित् पृष्ठमात्रा ।

नोट—ऐसा प्रतीत होता है मानो यह माधवचंद्र त्रैविद्यदेव का विभिन्न ग्रंथ हो—

१. वर्ग संकलितानयनसूत्रं । २९६–९७ ।
२. घनसंकलितानयनसूत्रं । ३०१–८२ ।
३. एकवारादिसंकलितधनानयनसूत्रं ।
४. सर्वधनानयने सूत्रद्वयं ।
५. उत्तरोत्तरच्चयभवसंकलितधनानयनसूत्रं ।
६. उभयान्तादागत पुरुषद्वयसंयोगानयनसूत्रं ।
७. वणिक्करस्थितधनानयनसूत्रं ।
८. समुद्रमध्ये—१–२–३ ।
९. छेदोद्यशेषजातौ करणसूत्रं ।
१०. करणसूत्रत्रयम् ।
११. गुणगुण्यमिश्रे सति गुणगुण्यानयनसूत्रं ।
१२. बाहुकरणानयनसूत्रं ।
१३. व्यासाद्यानयनसूत्रं ।

इति सारसंग्रहे गणितशास्त्रे महावीराचार्यस्य कृतौ वर्गसंकलितादिव्यवहारः पंचमः समाप्तः ।

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६२

(१) उत्तरछत्तीसी टीका ।
(२) पत्र १९; प्रति पत्र १३ पंक्तियाँ; आकार ११" × ४"·७५ ।
(३) आरंभ—ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥ सिद्धेभ्यो निष्ठितार्थेभ्यो इ० ।
(४) अन्तिम — घनः २९२७७१५५८४ ॥ छ ॥

इति श्रीउत्तरछत्तीसी टीका समाप्ता ॥

* आचार्य श्रीकल्याणकीर्तिस्तच्छिष्य मुनि श्रीत्रिभुवनचंद्रेणेदं गणितशास्त्रं लिखितं ॥ उजलो पाषाण सुतारी गज १ समचोरस मण ४८ पालेवो पाषाण गज १ मण ६० धारो पाषाण गज १ मण ४० ।

(५) प्राप्तिस्थान —अ० नं० ६२ ।
(६) स्थिति उत्तम, अक्षर स्पष्ट ।
(७) क्वचित् टिप्पण ।

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६६

(२) पत्र १५; प्रतिपत्र १४ पंक्तियाँ; आकार ११"·५ × ५"
(३) * ब्रह्म जसवंताख्येन स्वपरपठनार्थं स्वहस्तेन लिखितं ।
(५) अ० नं० ६६ ।

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६०

(२) पत्र २०; प्रतिपत्र ११ पंक्तियाँ; आकार १२" × ५"·५ ।
(५) अ० नं० ६० ।

प्रति क्रमांक—अ० नं० ६१

(२) पत्र १८; प्रतिपत्र १४ पंक्तियाँ; आकार १०"·५ × ६" ।
(५) अ० नं० ६१ ।

गणितसारसंग्रह

प्रतिक्रमांक ६३ = अ, प्र० क्र० ६५ = ब, प्र० क्र० ६४ = स

अर्थबोधक टिप्पण

श्लोक १–१ अलङ्घ्यम्—अ मिथ्यादृष्टिभिः । ब मिथ्यादृष्टिभिः लङ्घयितुम् अशक्यमित्यर्थः । स आप्ताभासागम्यम् अतस्तल्लम्यमस्ति । स त्रिजगत्सारम्—निरावरणत्वादनन्यसाधारणत्वाच्च लोकत्रयसारम्, त्रिजगद्भव्याराध्यमित्यर्थः । अ अनन्तचतुष्टयम् अनन्तज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यचतुष्टयम् । स तस्मै महावीराय वर्धमानस्वामिने । स जिनेन्द्राय—एकदेशेन कर्मारातीन् जयन्तीति जिना असंयतसम्यग्दृष्ट्यादयस्तेषामिन्द्रः स्वामी, तस्मै नमः । अ तायिने–धर्मोपदेशकत्वेन भव्यत्राणाय ।

श्लोक १–२ अ जि [जै]नेन्द्रेण—जिनो देवता येषां ते जैनाः, तेषामिन्द्रः, तेन । पक्षे—जिनेन्द्रस्यायं सम्बन्धी जैनेन्द्रः तेन वा । जिन एव जैनः, स एव इन्द्रः प्रधानो यत्र संख्याज्ञानप्रदीपे सः, तेन । स जैनेन्द्रेण—जिनप्रणीतेन । स संख्याज्ञानप्रदीपेन—गणितशास्त्रज्योतिषा । स महात्विषा—बहुप्रकाशेन । स सर्वम् षड्द्रव्यसमुदायरूपम् । अ तम्—महावीरम्, पक्षे संख्याज्ञानप्रदीपम् ।

श्लोक १–३ स प्रीणितः—तर्पितः । स प्राणिसस्यौघः विनेयजनस्य संघातः । अ निरीतिः—निर्गता ईतयः अतिवृष्ट्यनावृष्टिमूषक-शलभ-शुक-स्वचक्र-परचक्रलक्षणाः यस्मात् असौ निरीतिः । अ निरवग्रहः—निर्गतोऽवग्रहः शत्रुः यस्मात् यत्र वा सः, व्यथा—वर्षाविघातरहितः । स श्रीमता—लक्ष्मीमता । अ अमोघवर्षेण—सफलवृष्ट्या, पक्षे सत्यस्वरूपोपदेशवृष्ट्या । स सफलसद्धर्मोपदेशामृतवृष्ट्या । अ स्वेष्टहितैषिणा—स्वस्य इष्टं स्वेष्टम्, तच्च तद्धितं च स्वेष्टहितम्, तदिच्छतीति स्वेष्टहितैषी तेन । वा स्वस्य इष्टाः स्वेष्टाः, तान् प्रति हितम् इच्छतीति स्वेष्टहितैषी, तेन । स स्वेष्टहितमिच्छता ।

श्लोक १–४ अ चित्तवृत्तिहविर्भुजी [जि]—शुक्लध्यानाग्नौ । स भस्मसात् भावम्—भस्मस्वरूपम् । अ ईयुः—गच्छन्ति स्म । अ ते—आगमप्रसिद्धाः काम-क्रोधादिशत्रवः । अ अवन्ध्यकोपाः [पः]—सफलकोपाः इत्यर्थः ।

श्लोक १–५ स वशीकुर्वन्—स्वाधीनं विदधत् । स नानुवशः—अन्याधीनो न भवति । स परैः—एकान्तवादिभिः । अभिभूतः—अ पराभूतः । स तिरस्कृतः । स प्रभुः—जगदाराध्यः । स अपूर्वमकरध्वजः—अभिनवमीनकेतनः ।

श्लोक १–६ अ विक्रम-क्रमाक्रान्त-चक्रीचक्र-कृतक्रियः—विक्रमक्रमेण पराक्रमसंतत्या आक्रान्ताः ते च ते चक्रिणश्च, तेषां चक्रं समूहः, तेन कृतक्रिया सेवा यस्यासौ तथोक्तः । पक्षे चक्रं सेनास्ति येषां ते चक्रिणः, शेषं पूर्ववत् । अ चक्रिकाभञ्जनः—संसारचक्रभञ्जनः, पक्षे—परचक्रभञ्जनः । अ अञ्जसा—परमार्थेन ।

श्लोक १–७ अ विद्यानद्यधिष्ठानः—विद्या द्वादशाङ्गलक्षणाः पक्षे—द्वासप्ततिकलालक्षणास्ता एव नद्यः तासाम् अधिष्ठानम् आश्रयः यः सः । स मर्यादावज्रवेदिकः—मर्यादैव वज्रवेदिका यस्य सः । अ रत्नगर्भः—रत्नानि सम्यग्दर्शनादीनि, पक्षे—रत्नादीनि, गर्भे ते यस्य सो [यस्यासौ] । ब रत्नानि सम्यग्दर्शनादीनि, पक्षे—हस्त्यश्वादीनि गर्भे ते यस्यासौ तथोक्तः । अ यथाख्यातचारित्र्य [त्र] जलधिः—क्षायिकचारित्र्य [त्र] जलधिः, पक्षे—यथाख्यातं प्रवृद्धैर्यथोक्तम्, तच्चतच्चारित्र्यं [त्रं] आचरणं च ।

श्लोक १–८ स देवस्य—स जिनस्य । स शासनम् अनेकान्तरूपं वर्धताम् ।

श्लोक १–९ स लौकिके—वृद्धिव्यवहारादौ । अ वैदिके—आगमे । स सामायिके—प्रतिक्रमणादौ । अ यः—यः कश्चित् व्यापारः प्रवृत्तिः तत्र सर्वत्र संख्यानं गणितम् उपयुज्यते उपयोगी भवति ।

श्लोक १–१० अ अर्थशास्त्रे—जीवादिकपदार्थे ।

श्लोक १—११ अ प्रस्तुतम्—कथितम् । अ पुरा— पूर्वम् ।

श्लोक १—१२ अ ग्रहचारेषु—संक्रमणेषु । ब सूर्यादिसंक्रमणेषु । स ग्रहणे—चन्द्र-सूर्योपरागे । अ ग्रहसंयुतौ—ग्रहयुद्धे । अ त्रिप्रश्ने—त्रयः प्रश्नाः नष्ट-मुष्टि-चिन्तारूपाः यत्र तत् त्रिप्रश्नम्, होराशास्त्रमित्यर्थः, तस्मिन् । स अथवा त्रयो धातु[1]-मूल[2]-जीव[3]विषयाः प्रश्नाः यत्र तत् त्रिप्रश्नम् । प्रश्नव्याकरणाय सद्भावकेवलज्ञानहोरादिशास्त्रम् । स चन्द्रवृत्तौ—चन्द्रचारे । ब omits बुध्यन्ते (श्लोक १४) । ब omits—यात्राद्याः (श्लोक १५) ।

श्लोक १—१३ अ परिक्षिपः—परिधियः ।

श्लोक १–१४ अ उत्कराः—समूहाः । अ बुध्यन्ते—ज्ञायन्ते ।

श्लोक १—१५ अ तत्र—श्रेणीबद्धादिषु जीवानाम् । अ संस्थानम्—समचतुरस्रादि । अ अष्टगुणादयः—अणिमादयः । अ यात्राद्याः—गति । अ संहिताद्याश्च—संधिप्रतिष्ठाग्रन्थो वा ।

श्लोक १–१७ अ गुरुपर्वतः—गुरुपरिपाटीभ्यः ।

श्लोक १–२०—अ कलासवर्णसंरूढलुठत्पाठीनसंकुले—कीदृग्विधे सारसंग्रहवारिधौ । कलासवर्णाः भिन्नप्रत्युपन्नादयः ते एव लुठत्पाठीनास्तेषां संकटे संकोचस्थाने ।

श्लोक १–२१ अ प्रकीर्णक—अ तृतीयव्यवहारः । अ महाग्राहे—मत्स्यविशेषः । अ मिश्रक— अ वृद्धिव्यवहारादि ।

श्लोक १–२२ अ क्षेत्रविस्तीर्णपाताले—त्रिभुज-चतुर्भुजादिक्षेत्राणि एव विस्तीर्णपातालानि यत्र स तस्मिन् । अ खाताख्यसिकताकुले—खाताख्यम् एव सिकताः ताभिः आकुले । अ करणस्कन्धसंबन्धच्छायावेलाविराजिते—करणस्कन्धेन करणसूत्रसमूहेन संबन्धो यस्याः सा करणस्कन्धसंबन्धा, सा चासौ छाया-गणितं (?) करणस्कन्धसंबन्धच्छाया, सा एव वेला, तया विराजिता तस्मिन् ।

श्लोक १–२३ अ गुणसंपूर्णैः—लघुकरणाद्यष्टगुणसंपूर्णैः । करणोपायैः—अ करणानुपयोगोपायैः सूत्रैः ।

श्लोक १–२४ अ यत्—यस्मात् सर्वशास्त्रे । संज्ञया—अ परिभाषया ।

श्लोक १–२५—अ परमाणुः । परमाणुस्वरूपम्—अणवः कार्यलिङ्गाः स्युर्द्विस्पर्शाः परिमण्डलाः । एकवर्ण-रसाः नित्याः स्युरनित्याश्च पर्ययैः ॥ ३४ (?) अप्रदेशिनः इति गोमटसारे । परमाणुपिण्डरहितमिति भावार्थः । कार्यानुमेयाः घट-पटादिपर्यायास्तेषाम् अणूनाम् अस्तित्वे चिह्नम् । सूक्ष्माः वर्तुलाकाराः । कौ द्वौ स्निग्ध-रूक्षयोरन्यतरः शीतोष्णयोरन्यतरः । तथा हि—शीत-रूक्ष, शीत-स्निग्ध, उष्ण-स्निग्ध, उष्ण-रूक्ष एकाएवापेक्षया एकयुग्मं भवति । गुरु-लघु-मृदु-कठिनानां परमाणुष्वभावात्, तेषां स्कन्धाश्रितत्वात् ।

अ तैः—परमाणुभिः । सः—अणुः स्यात् । अत्र सोऽणुः क्षेत्रपरिभाषायाम् । ब परमाणुः—यस्तु तीक्ष्णेनापि शस्त्रेण छेत्तुं भेत्तुं मोचयितुं न शक्यते, जलानलादिभिर्नाशं नैति एकैकरस-वर्ण-गन्ध-द्विस्पर्शम् । स्निग्ध-रूक्षस्पर्शद्वयमित्युक्तमादिपुराणे । शब्दकारणमशब्दं स्कन्धान्तरितमादि-मध्यावसानरहितमप्रदेशमिन्द्रियैरग्राह्यमविभागि तत् द्रव्यं परमाणुः ।

श्लोक १—२६ अ अतः—अणुतः। तस्मात्—त्रसरेणुतः। शिरोरुहः—(भवन्ति)।

श्लोक १—२७ अ लिक्षा—लिक्षाप्रमाणस्कन्धः। सः—स तिलः। अष्टगुणानि—अष्टगुणानि भवन्ति त्रसरेण्वाद्यङ्गुलान्तानि।

श्लोक १—२८ अ प्रमाणम्—प्रमाणाङ्गुलम्।

श्लोक १—२९ अ तिर्यक्पादः—पादस्य अङ्गुष्ठकनिष्ठापर्यन्त भाग तिर्यक्पादः। तिर्यक्पादद्वयं वितस्तिः। ब तिर्यग्पादः—omits.

श्लोक १—३१ अ परिभाषा—अनियमेन नियमकारिणी परिभाषा।

श्लोक १—३२ अ अणुरण्वन्तरम्—मन्दगतिमाश्रितः सन्, शीघ्रगतिमाश्रितश्चेत् चतुर्दशरज्जुम् अतिक्रामति। समयः—प्रोक्तः। असंख्यैः—जघन्ययुक्तासंख्यैः। ब असंख्यैः—omits. लोके—omits (?)

श्लोक १—३३ अ स्तोक इति मानम्। तेषाम्—लवानाम्। सार्धाष्टात्रिंशता—३८½।

श्लोक १—३४ अ पक्षः—भवेत्।

श्लोक १—३५ अ तैः—ऋतुभिः। वत्सरो संवत्सरः।

श्लोक १—३६ अ तत्र—धान्यमाने। चतस्रः—षोडशिकः। कुडवः—सहस्रैश्च त्रिभिः षड्भिः शतैश्च व्रीहिभिः समैः। यः संपूर्णो भवेत् सोऽयं कुडवः परिभाष्यते॥ लोके पवालु ८। प्रस्थः—लोके पाली ८। ब प्रस्थः—omits.

श्लोक १—३८ अ सेयं प्रवर्तिका। ताः खार्याः [यैः]। तस्याः प्रवर्तिकायाः।

श्लोक १—३९ अ गण्डकैः—कस्तुंबुरूभिः, लोके धाना, धरणे-धरणद्वयम्।

श्लोक १—४० अ धान्यद्वयेन—लोके धानाद्वयेन ब कुस्तुंबरद्वयेन। अत्र—रजतपरिकर्मणि।

श्लोक १—४१ अ पुराणान्—कर्षान्। रूप्ये—रजत—परिभाषायां मागधदेशव्यवहारमाश्रित्य।

श्लोक १—४२ अ कल—कलेति नाम भवेत्।

श्लोक १—४३ अ अस्मात्—द्रक्षुणात्। सतेरं—सतेराख्यं मानं भवति। ब लोहे—लोह-परिभाषायाम्।

श्लोक १—४४ अ 'प्रचक्षते' अन्तस्य 'अत्' आदेशो भवति।

श्लोक १—४५ अ ब वस्त्राभरण-कटादीनाम्।

श्लोक १—४६ ब अत्र—परिकर्मणि।

श्लोक १—४८ अ भिन्नानि—यथा गुणाकारभिन्नः भागहारभिन्नः कृतिभिन्नः प्रत्येकभिन्नः इति परं योज्यम्।

ब तच्च—'विद्या कलासवर्णस्य' इति वा पाठः।

श्लोक १—४९ ब हृतः शून्येन भक्तः सन्। खवधादिः—शून्यस्य भजन-गुणन-वर्गमूलादिः। योज्यरूपकम्—योज्यराशिसमानम्।

स शून्येन ताडितो गुणितो राशिः खं शून्यं स्यात्। स राशिः शून्येन हतः [हृतः] भक्तः। शून्येन युतः सहितः। शून्येन हीनो रहितोऽपि अविकारी विकारवान् न भवति तदवस्थ एव—खवधादिः स शून्यस्य वधो गुणनं खं शून्यं स्यात्। आदिशब्देन भजन-वर्ग-घन-तन्मूलानि ग्राह्यं।

श्लोक १—५० ब घाते गुणने। विवरं—महाराशौ स्वल्पराशिमपनीयावशिष्टशेषो विवरमित्युच्यते।

स ऋणयोः—ऋणरूपराश्योः। धनयोः—धनरूपराश्योः। भजने—भागहारे। फलम्—गुणित-फलम्। तु—पुनः।—adds चेयमंकसंदृष्टिः।—adds illustrations to explain rules on 50 (stanza).

श्लोक १—५१ स योगः—संयोजनम्। शोध्यम्—अपनेयम्।

श्लोक १—५२— ब मूले—वर्गमूले। स्वर्णे—धनऋणे स्याताम्। Adds two stanzas after 52. Printed in text at No. 69–70.

लघुकरणोहापोहानालस्यग्रहणधारणोपायैः ।
व्यक्तिकराङ्कविशिष्टैः गणकोष्टाभिर्गुणैर्ज्ञेयः ॥ १ ॥
इति संज्ञा समासेन भाषिता मुनिपुंगवैः ।
विस्तरेणागमाद् वेद्यं वक्तव्यं यदितः परम् ॥ २ ॥

तत्पदम्—ऋणरूपवर्गराशेर्मूलं कथं भवेत् इत्याशङ्कायाम् इदमाह—ऋणराशिः निजऋणवर्गो न भवेत्, किंतु धनरूपेण वर्गो भवेत्। तस्मात् ऋणराशेः सकाशात् मूलं न भवेत्, किंतु धनराशेः सकाशात् ऋणराशेर्मूलं स्यात्।

स धनराशेः ऋणराशेश्च वर्गो धनं भवति। Adds illustrations to explain rules on 52 (stanza).

श्लोक १—५८ अ ऋतुर्जीवो—षड् जीवाः। कुमारवदनम्—कार्तिक [केय] वदनम्। ब कुमारवदनम्—कार्तिकेयवदनम्।

श्लोक १—६९ ब शीघ्रगुणन-भजनादिलक्षणं लघुकरणम्। अनेन प्रकारेण गुणनादौ कृते सतीप्सितं लब्धं स्यादिति पूर्वमेव परिज्ञानलक्षणः ऊहः। इत्थं गुणनादौ कृते सतीप्सितं लब्धं न स्यादिति पूर्वमेव परिज्ञानलक्षणः अपोहः। गुणनादिक्रियायां मन्दभावराहित्यलक्षणमनालस्यम्। कथितार्थलक्षणं ग्रहणम्। कथितार्थस्य कालान्तरेऽप्यविस्मरणलक्षणा धारणा। सूत्रोक्तगुणनादिकमाधारं कृत्वा स्वबुद्ध्या प्रकारान्तरगुणनादिविचारलक्षणः उपायः। अंकं व्यक्तं स्थापयित्वा गुणनादिकरणलक्षणो व्यक्तिकरांकः। इत्यष्टभिर्गुणै गणितज्ञो भवेदिति ज्ञेयः। इति।

श्लोक २–१ अ (१) येन राशिना गुण्यस्य भागो भवेत् तेन गुण्यं भक्त्वा गुणकारं गुणयित्वा स्थापनालक्षणो राशिखण्डः। येन राशिना गुणगुणकारस्य भागो भवेत् तेन गुणकारं भक्त्वा गुण्यं गुणयित्वा स्थापनालक्षणोऽर्धखण्डः। गुण्य-गुणकारो [रौ] अभेदयित्वा स्थापनालक्षणः तत्स्थः। इति त्रिप्रकारैः स्थितगुण्य-गुणकारराशियुगलं कवाटसंधानक्रमेण विन्यस्य। (२) राशेरादितः आरभ्यान्तपर्यन्तं गुणनलक्षणेन अनुलोममार्गेण। (३) राशेरन्ततः आरभ्यादिपर्यन्तं गुणनलक्षणेन विलोममार्गेण च गुण्यराशिं गुणकार-राशिना गुणयेत्। (४) 'गुणयेत् गुणेन गुण्यं कवाटसंधिक्रमेण संस्थाप्य' इति पाठान्तर—पादद्वयम्। (५) गुण्यगुणकारं यथा व १४४ गुण्यं = प्रत्येक पद्मानि गुणकार इति = ८; २।४

$\frac{४८}{११५२}$ राशिखण्ड

(६) गुणकारं ८ अस्य भाग ४, अनेन गुण्यं गुणित चेत्

४	५	७	६
२	१/१	१/४	१/२

(७) व = वश [स] ति । (८) ता = तामरसं । (९) प = पदमानि । (१०) विनष्टो एकः येभ्यस्तेष्विकाम् । (११) मणयः । (१२) स्वर इति षड् जीव । (१३) राशिना गुण्यलब्धम् उपरितन-भागे स्थाप्यमधः तेनैव गुणकारं गुणयित्वा स्थापना* ।

श्लोक २–७ अ विषनिधिः = जलनिधिः ।

श्लोक २...अ पुरुषः—जीवो इत्यर्थः ।

श्लोक २–९ अ [स्वरः—] "सत्वसंघः स्वरो ज्ञेयः स्वरोऽपि पुरुषो मतः" इत्यभिधानात् ।

श्लोक २–१० अ तत्-राशिम् ।

श्लोक २–११ अ पञ्चषट्कं च—आदौ ७ पञ्चषट्कं ६६६६६ षट्त्रिकं ३३३३३३ तत् भिन्नं लिखितम्— ३३३३३३६६६६६७ ।

श्लोक २–१५ अ त्रयः—सान्तः त्रयःशब्दोऽयम् ।

श्लोक २–१७ अ हिमांशग्र—हिमांशु अग्रे [रश्मे] येषां तानि, हिमांशग्रानि च तानि रत्नाणि च तत्तयोक्तानि, तैः । कण्ठिका—कण्ठभूषणम् । स एकरूपम्—एकस्याभिधानं ग्रन्थान्तरे ।

श्लोक २–१८ की उत्थानिका—स परमागमप्रतिपादितकरणानुयोगे ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारादि-गमनाभिधानं करणमित्युच्यते, तस्य सूत्रम्, सूचयति संक्षेपेणार्थं सूचयति इति सूत्रं तत्तयोक्तम् ।

श्लोक २–१९ अ प्रतिलोमपथेन—विलोममार्गेण भाज्यम्—अंकानां वामतो गतिः, तेन अन्ततः आरम्य भाज्यम् । विधाय—अपवर्तनविधिं विधाय । तयोः—भाज्य-भागहारराश्योः । स उपरिस्थितं भाज्यराशिं अधःस्थितेन भागहारेणानन्तां† आरम्यादिपर्यन्त भजनलक्षणेन प्रतिलोमपथेन भजेत् । यदि तयोर्भाज्य-भागहारयोः सदृशापवर्तनविधिः समानराशिना भाज्य-भागहाराद्यपवर्तनलक्षणविधानं संभवति तर्हितं कृत्वा भजेत् ।

श्लोक २–२० अ अंशो भागः । नुः नरस्य ।—भागहारस्य भाग (?) द्वौ वा चत्वारो वा तेषु एकभागेन भाज्यं भाजयेत्, द्वितीयभागेन भाज्यं भाजयेत्, तृतीयभागेन भाज्यं भाजयेत्, चतुर्थभागेन भाज्यं भाजयेत् । अपवर्तनविधिः । एकशतयुतम्—एकेनाधिकं शतम् एकशतम् ।

श्लोक २–२६ अ त्रिदशसहस्री—त्रिभिः गुणिता दश त्रिदश, त्रिदशानां सहस्राणां समाहारः त्रिदशसहस्री । हाटकानि—कनकानि ।

श्लोक २–२९ अ घातो वर्गं ६४ स्यात् । स्वेष्टोनयुतद्वयस्य—समानौ द्वौ राशी विन्यस्य ८।८ स्वेष्टोन-युत ६।१० तयोर्घातः ६० स्वेष्ट २ कृती ४ युक्तः ६४ वर्गः स्यात् । सेष्टकृतिः—इष्टकृतिसहितः । एकादि—एकादि द्विचयेष्टगच्छानां युतिः संकलनं रूपेणोणो [नो] गच्छः दलितः प्रचयताडितो मिश्रः प्रभवेण पदाभ्यस्तः इति सूत्रेण वर्गो भवेत् ६४। इति घनं ८।

८
२
१

श्लोक २–३० अ द्विस्थानप्रभृतीनाम्—षट्पंचाशत् द्विशत (२५६) इति त्रिस्थानान्तं वर्गं ।

---

* यह ज्ञात नहीं होता कि इनका सम्बन्ध किस-किस श्लोक से है ।

† (मान्ततः ?)

षड्वर्गः ३६। पंचाशत्वर्गः २५०० । द्विशतवर्गः ४०००० । सर्ववर्गसंयोगः ४२५३६ । द्विशत-षट्पंचाषड् [०शद्] घातः ११२०० । पंचाशत्-षड्घातः ३०० । तद्द्विगुणः २२४००।६०० । तेन विमिश्रितः सर्व-वर्गसंयोगः ६५५३६ । तेषाम्—द्विप्रभृतिकल्पितस्थानानाम् । क्रमघातेन—द्विस्थानप्रभृतिराशीनाम् अन्त्यस्थानं शेषस्थानैर्गुणयित्वा, पुनः शेषान्त्यस्थानं शेषस्थानैर्गुणयित्वा, तेन क्रमेण प्रथमस्थानपर्यन्त गुणनलक्षण क्रमघातः । तेन पुनः द्विस्थानप्रभृतीनां राशीनाम्, इत्यभिप्रायेण वर्गरचनां स्फुटयति ।

४
३
२

द्विवर्ग ४ त्रिवर्ग ९ चतुर्वर्ग १६ तत्संयोगः २९ तेषां क्रमघातः द्विकत्रिकमिश्रेण चतुष्कं गुणयेत् २० । द्विकेन त्रिकं गुणयित्वा मिश्रितः सन् २६ । द्विगुणो ५२ । अनेन मिश्रितेन वर्गः ८१ ।

श्लोक २—३१ अ कृत्वान्त्यकृतिम्—कृत्वा ७५ अन्त्यकृतिं ४९७५ अन्त्यं द्विगुणमुत्सार्य | ४९७५ / १४ | शेष ५ पदैर्हन्यात् | ४९७५ / ७० | शेषानुत्सार्य | ४९×५ / ७० | कृत्वा तस्यकृतिं | ४९२५ / ७० | लब्धः ५६२५ इति सर्वत्र कर्तव्यः द्व्यंकानां वर्गकोष्ठः । पंचांकानां वर्गकोष्ठरचना

	७	×	५
४	९	०	५
	७	२	

६	×	५	×	५	×	३	×	६
६	६	४	३	२	०	०	६	६
६	२	५	३	६	६	९	३	
		५	२	५	०	३		
				३				

लब्धवर्गः
४२९४९६७२९६।। उ० १०

स अयमर्थः—अन्त्यराशिं वर्गं कृत्वा पुनरन्त्यराशिं द्विगुणं कृत्वा पुरो गमयित्वा शेषस्थानैर्गुणयेत् । शेषस्थानानि पुरो गमयित्वा पूर्वकथितक्रिया कर्तव्या ।

परिशिष्ट–६

[Reprinted from the First Edition.]

PREFACE

Soon after I was appointed Professor of Sanskrit and Comparative Philology in the Presidency College at Madras, and in that capacity took charge of the office of the Curator of the Goverment Oriental Manuscripts Library, the late Mr. G. H. Stuart, who was then the Director of Public Instruction, asked me to find out if in the Manuscripts Library in my charge there was any work of value capable of throwing new light on the history of Hindu mathematics, and to publish it, if found, with an English translation and with such notes as were necessary for the elucidation of its contents. Accordingly the mathematical manuscripts in the Library were examined with this object in view; and the examination revealed the existence of three incomplete manuscripts of Mahāvīrācārya's *Gaṇita-sāra-saṅgraha*. A cursory persual of these manuscripts made the value of this work evident in relation to the history of Hindu Mathematics. The late Mr. G. H. Stuart's interest in working out this history was so great that, when the existence of the manuscripts and the historical value of the work were brought to his notice, he at once urged me to try to procure other manuscripts and to do all else that was necessary for its proper publication. He gave me much advice and encouragement in the early stages of my endeavour to publish it; and I can well guess how it would have gladdened his heart to see the work published in the form he desired. It has been to me a source of very keen regret that it did not please Providence to allow him to live long enough to enable me to enhance the value of the publication by means of his continued guidance and advice; and my consolation now is that it is something to have been able to carry out what he with scholarly delight imposed upon me as a duty.

Of the three manuscripts found in the library one is written on paper in Grantha characters, and contains the first five chapters of the work with a running commentary in Sanskrit; it has been denoted here by the letter P. The remaining two are palm-leaf

manuscripts in Kanarese characters, one of them containing, like P, the first five chapters, and the other the seventh chapter dealing with the geometrical measurement of areas. In both these manuscripts there is to be found, in addition to the Sanskrit text of the original work, a brief statement in the Kanarese language of the figures relating to the various illustrative problems as also of the answers to those same problems. Owing to the common characteristics of these manuscripts and also owing to their not overlapping one another in respect of their contents, it has been thought advisable to look upon them as one manuscript and denote them by K. Another manuscript, denoted by M, belongs to the Government Oriental Library at Mysore, and was received on loan from Mr. A Mahadeva Sastri, B. A., the Curator of that institution. This manuscript is a transcription on paper in Kanarese characters of an original palm-leaf manuscript belonging to a Jaina Pandit, and contains the whole of the work with a short commentary in the Kanarese language by one Vallabha, who claims to be the author of also a Telugu commentary on the same work. Althought incorrect in many places, it proved to be of great value on account of its being complete and containing the Kanarese commentary; and my thanks are specially due to Mr. A. Mahadeva Sastri for his leaving it sufficiently long at my disposal. A fifth manuscript, denoted by B, is a transcription on paper in Kanarese characters of a palm-leaf manuscript found in a Jaina monastery at Mudbidri in South Canara, and was obtained through the kind effort of Mr. R. Krishnamacharyar, M. A., he Sub-assistant Inspector of Sanskrit Schools in Madras, and Mr. U. B. Venkataramanaiya of Mudbidri. This manuscript also contains the whole work, and gives, like K, in Kanarese a brief statement of the problems and their answers. The endeavour to secure more manuscripts having proved fruitless, the work has had to be brought out with the aid of these five manucripts; and owing to the technical character of the work and its elliptical and often riddle-like language and the inaccuracy of the manuscripts, the labour involved in bringing it out with the translation and the requisite notes has been heavy and trying. There is, however, the satisfaction that all this labour has been bestowed on a worthy work of considerable historical value.

It is a fortunate circumstance about the *Ganita-sāra-sangraha* that the time when its author Mahāvīrācārya lived may be made out with fair accuracy. In the very first chapter of the work, we have, immediately after the two introductory stanzas of salutation to Jina Mahāvīra, six stanzas describing the greatness of a king, whose name is said to have been Cakrikā-bhañjana, and who appears to have been commonly known by the title of Amōghavarṣa Nṛpatuṅga; and in the last of these six stanzas there is a benediction wishing progressive prosperity to the rule of this king. The results of modern Indian epigraphical research show that this king Amōghavarṣa Nṛpatuṅga reigned from A. D. 814 or 815 to A. D. 877 or 878.* Since it appears probable that the author of the *Ganita-sāra-sangraha* was in some way attached to the court of this Rāṣṭrakūṭa king Amōghavarṣa Nṛpatuṅga, we may consider the work to belong to the middle of the ninth century of the Christian era. It is now generally accepted that, among well-known early Indian mathematicians Āryabhaṭa lived in the fifth, Varāhamihira in the sixth, Brahmagupta in the seventh and Bhāskarācārya in the twelfth century of the Christian era; and chronologically, therefore, Mahāvīrācārya comes between Brahmagupta and Bhāskarācārya. This in itself is a point of historical noteworthiness; and the further fact that the author of the *Ganita-sāra-sangraha* belonged to the Kanarese speaking portion of South India in his days and was a Jaina in religion is calculated to give an additional importance to the historical value of his work. Like the other mathematicians mentioned above, Mahāvīrācārya was not primarily an astronomer, although he knew well and has himself remarked about the usefulness of mathematics for the study of astronomy. The study of mathematics seems to have been popular among Jaina scholars; it forms, in fact, one of their four *Anuyōgas* or auxiliary sciences indirectly serviceable for the attainment of the salvation of soul-liberation known as mōkṣa.

A comparison of the *Ganita-sāra-sangraha* with the corresponding portions in the *Brahmasphuṭa-siddhānta* of Brahmagupta is

* Vide *Nilgund Inscription of the time of Amoghavarṣa* I, A. D. 866 ; edited by J. F. Fleet, PH. D., C. I. E., in *Epigraphia Indica*, Vol. VI, pp. 98–108.

calculated to lead to the conclusion that, in all probability, Mahāvīrācārya was familiar with the work of Brahmagupta and endeavoured to improve upon it to the extent to which the scope of his *Gaṇita-sāra-saṅgraha* permitted such improvement. Mahāvīrāchārya's classification of arithmetical operations is simpler, his rules are fuller and he gives a large number of examples for illustration and exercise. Pṛthūdaksvāmin, the well-known commentator on the *Brahmasphuṭa-siddhānta*, could not have been chronologically far removed form Mahāvīrācārya, and the similarity of some of the examples given by the former with some of those of the latter naturally arrests attention. In any case it cannot be wrong to believe, that, at the time, when Mahāvīrācārya wrote his *Gaṇita-sāra-saṅgraha*, Brahmagupta must have been widely recognized as a writer of authority in the field of Hindu astronomy and mathematics. Whether Bhāskarācārya was at all acquainted with the *Gaṇita-sāra-saṅgraha* of Mahāvīrācārya, it is not quite easy to say. Since neither Bhāskarācārya nor any of his known commentators seem to quote from him or mention him by name, the natural conclusion appears to be that Bhāskarācārya's *Siddhānta-śirōmaṇi*, including his Lilāvatī and Bījagaṇita, was intended to be an improvement in the main upon the *Brahmasphuṭa-siddhānta* of Brahmagupta. The fact that Mahāvīrācārya was a Jaina might have prevented Bhāskarācārya from taking note of him; or it may be that the Jaina mathematician's fame had not spread far to the north in the twelfth century of the Christian era. His work, however, seems to have been widely known and appreciated in Southern India. So early as in the course of the eleventh century and perhaps under the stimulating influence of the enlightened rule of Rājarājanarēndra of Rajahmundry, it was translated into Telugu in verse by Pāvulūri Mallana; and some manuscripts of this Telugu translation are now to be found in the Government Oriental Manuscripts Library here at Madras. It appeared to me that to draw suitable attention to the historical value of Mahāvīrācārya's *Gaṇita-sāra-saṅgraha*, I could not do better than seek the help of Dr. David Eugene Smith of the Columbia University of New York, whose knowledge of the history of mathematics in the West and in the East is known to be wide

and comprehensive, and who on the occasion when he met me in person at Madras showed great interest in the contemplated publication of the *Gaṇita-sāra-saṅgraha* and thereafter read a paper on that work at the Fourth International Congress of Mathematicians held at Rome in April 1908. Accordingly I requested him to write an introduction to this edition of the *Gaṇita-sāra-saṅgraha*, given in brief outline what he considers to be its value in building up the history of Hindu mathematics. My thanks as well as the thanks of all those who may as scholars become interested in this publication are therefore due to him for his kindness in having readily complied with my request; and I feel no doubt that his introduction will be read with great appreciation.

Since the origin of the decimal system of notation and of the conception and symbolic representation of zero are considered to be important questions connected with the history of Hindu mathematics, it is well to point out here that in the *Gaṇita-sārasaṅgraha* twenty four rotational places are mentioned, commencing with the units place and ending with the place called *mahākṣōbha*, and that the value of each succeeding place is taken to be ten times the value of the immediately preceding place. Although certain words forming the names of certain things are utilized in this work to represent various numerical figures, still in the numeration of of numbers with the aid of such words the decimal system of notation is almost invariably followed If we took the words *moon, eye, fire* and *sky* to represent respectively 1, 2, 3 and 0, as their Sanskrit equivalents are understood in this work, then, for instance, *fire-sky-moon-eye* would denote the number 2103, and *moon-eye-sky-fire* would denote 3021, since these nominal numerals denoting numbers are generally repeated in order from the units place upwards. This combination of nominal numerals and the decimal system of notation has been adopted obviously for the sake of securing metrical convenience and avoiding at the same time cumbrous ways of mentioning numerical expressions; and it may well be taken for granted that for the use of such nominal numerals as well as the decimal system of notation Mahāvīrācārya was indebted to his predecessors. The decimal system of notation is

distinctly described by Āryabhaṭa, and there is evidence in his writings to show that he was familiar with nominal numerals. Even in his brief mnemonic method of representing numbers by certain combinations of the consonants and vowels found in the Sanskrit language, the decimal system of notation is taken for granted; and ordinarily 19 notational places are provided for therein. Similarly in Brahmagupta's writings also there is evidence to show that he was acquainted with the use of nominal numerals and the decimal system of notation. Both Āryabhaṭa and Brahmagupta claim that their astronomical works are related to the *Brahma-siddhānta*; and in a work of this name, which is said to form a part of what is called Śākalya-saṁhitā and of which a manuscript copy is to be found in the Government Oriental Manuscripts Library here, numbers are expressed mainly by nominal numerals used in accordance with the decimal system of notation. It is not of course meant to convey that this work is necessarily the same as what was known to Ārayabhaṭa and Brahmagupta; and the fact of its using nominal numerals and the decimal system of notation is mentioned here for nothing more than what it may be worth.

It is generally recognized that the origin of the conception of zero is primarily due to the invention and practical utilization of a system of notation wherein the several numerical figures used have place-values apart from what is called their intrinsic value. In writing out a number according to such a sytem of notation, any notational place may be left empty when no figure with an intrinsic value is wanted there. It is probable that owing to this very reason the Sanskrit word *śūnya*, meaning 'empty', came to denote the zero; and when it is borne in mind that the English word 'cipher' is derived from an Arabic word having the same meaning as the Sanskrit *śūnya*, we may safely arrive at the conclusion that in this country the conception of the zero came naturally in the wake of the decimal system of notation: and so early as in the fifth century of the Christian era, Āryabhaṭa is known to have been fully aware of this valuable mathematical conception. And in regard to the question of a symbol to represent this conception, it is well worth bearing in mind that operations with the zero cannot be

carried on–not to say cannot be even thought of easily–without a symbol of some sort to represent it. Mahāvīrācārya gives, in the very first chapter of his *Gaṇita-sāra-saṅgraha,* the results of the operations of addition, subtraction, multiplication and division carried on in relation to the zero quantity; and although he is wrong in saying that a quantity, when divided by zero, remains unaltered, and should have said, like Bhāskarācārya, that the quotient in such a case is infinity, still the very mention of operations in relation to zero is enough to show that Mahāvīrācārya must have been aware of some symbolic representation of the zero quantity. Since Brahmagupta, who must have lived at least 150 years before Mahāvīrācārya, mentions in his work the results of operations in relation to the zero quantity, it is not unreasonable to suppose that before his time the zero must have had a symbol to represent it in written calculations. That even Āryabhaṭa knew such a symbol is not at all improbable. It is worthy of note in this connection that in enumerating the nominal numerals in the first chapter of his work, Mahāvīrācārya mentions the names denoting the nine figures from 1 to 9, and then gives in the end the names denoting zero, calling all the ten by the name of *saṅkhyā* : and from this fact also, the inference may well be drawn that the zero had a symbol, and that it was well known that with the aid of the ten digits and the decimal system of notation numerical quantites of all values may be definitely and accurately expressed. What this known zero-symbol was, is, however, a different question.

The labour and attention bestowed upon the study and translation and annotation of the *Gaṇita-sāra-saṅgraha* have made it clear to me that I was justified in thinking that its publication might prove useful in elucidating the condition of mathematical studies as they flourished in South India among the Jainas in the ninth century of the Christian era; and it has been to me a source of no small satisfaction to feel that in bringing out this work in this form, I have not wasted my time and thought on an, unprofitable undertaking. The value of the work is undoubtedly more historical than mathematical. But it cannot be denied that the step by step construction of the history of Hindu culture is a worthy endeavour,

and that even the most insignificant labourer in the field of such an endeavour deserves to be looked upon as a useful worker. Although the editing of the *Gaṇita-sāra-saṅgraha* has been to me a labour of love and duty, it has often been felt to be heavy and taxing; and I, therefore, consider that I am specially bound to acknowledge with gratitude the help which I have received in relation to it. In the early stage, when conning and collating and interpreting the manuscripts was the chief work to be done, Mr. M. B. Varadaraja Aiyangar, B. A., B. L., who is an Advocate of the Chief Court at Bangalore, co-operated with me and gave me an amount of aid for which I now offer him my thanks. Mr. K. Krishnaswami Aiyangar, B. A.; of the Madras Christian College, has also rendered considerable assistance in this manner; and to him also I offer my thanks. Latterly I have had to consult on a few occasions Mr. P. V. Seshu Aiyar, B. A., L. T., Professor of Mathematical Physics in the Presidency College here, in trying to explain the rationale of some of the rules given in the work; and I am much obliged to him for his ready willingness in allowing me thus to take advantage of his expert knowledge of mathematics. My thanks are, I have to say in conclusion, very particularly due to Mr. P. Varadacharya, B. A., Librarian of the Government Oriental Manuscripts Library at Madras, but for whose zealous and steady co-operation with me throughout and careful and continued attention to details, it would indeed have been much harder for me to bring out this edition of the *Gaṇit-sāra-saṅgraha.*

February 1912,
Madras.

M. RANGACHARYA.

INTRODUCTION

BY

DAVID EUGENE SMITH

PROFESSOR OF MATHEMATICS IN TEACHERS' COLLEGE,
COLUMBIA UNIVERSITY, NEW YORK.

We have so long been accustomed to think of Pāṭalīputra on the Ganges and of Ujjain over towards the Western Coast of India as the ancient habitats of Hindu mathematics, that we experience a kind of surprise at the idea that other centres equally important existed among the multitude of cities of that great empire. In the same way we have known for a century, chiefly through the labours of such scholars as Colebrooke and Taylor, the works of Āryabhaṭa, Brahmagupta, and Bhāskara, and have come to feel that to these men alone are due the noteworthy contributions to be found in native Hindu mathematics. Of course a little reflection shows this conclusion to be an incorrect one. Other great schools, particularly of astronomy, did exist, and other scholars taught and wrote and added their quota, small or large, to make up the sum total. It has, however, been a little discouraging that native scholars under the English supremacy have done so little to bring to light the ancient mathematical material known to exist and to make it known to the Western world. This neglect has not certainly been owing to the absence of material, for Sanskrit mathematical manuscripts are known, as are also Persian, Arabic, Chinese, and Japanese; and many of these are well worth translating from the historical standpoint. It has rather been owing to the fact that it is hard to find a man with the requisite scholarship, who can afford to give his time to what is necessarily a labour of love.

It is a pleasure to know that such a man has at last appeared and that, thanks to his profound scholarship and great pereseverance,

we are now receiving new light upon the subject of Oriental mathematics, as known in another part of India and at a time about midway between that of Āryabhaṭa and Bhāskara, and two centuries later than Brahmagupta. The learned scholar, Professor M. Raṅgācārya of Madras, some years ago became interested in the work of Mahāvīrācārya, and has now completed its translation, thus making the mathematical world his perpetual debtor; and I esteem it a high honour to be requested to write an introduction to so noteworthy a work.

Mahāvīrācārya appears to have lived in the court of an old Rāṣṭrakūṭa monarch, who ruled probably over much of what is now the kingdom of Mysore and other Kanarese tracts, and whose name is given as Amōghavarṣa Nṛpatuṅga. He is known to have ascended the throne in the first half of the ninth century A. D., so that we may roughly fix the date of the treatise in question as about 850.

The work itself consists, as will be seen, of nine chapters like the *Bīja-gaṇita* of Bhāskara; it has one more chapter than the *Kuṭṭaka* of Brahmagupta. There is, however, no significance in this number, for the chapters are not at all parallel, although certain of the otpics of Brahmagupta's *Gaṇita* and Bhāskara's *Līlāvatī* are included in the *Gaṇita-Sāra-Saṅgraha.*

In considering the work, the reader naturally repeats to himself the great questions that are so often raised:—How much of this Hindu treatment is original ? What evidences are there here of Greek influence ? What relation was there between the great mathematical centres of India ? What is the distinctive feature, if any, of the Hindu algebraic theory ?

Such questions are not new. Davis and Strachey, Colebrooke and Taylor, all raised similar ones a century ago, and they are by no means satisfactorily answered even yet. Nevertheless, we are making good progress towards their satisfactory solution in the not too distant future. The past century has seen several Chinese and Japanese mathematical works made more or less familiar to the West; and the more important Arab treatises are now quite satisfactorily known. Various editions of Bhāskara have appeared in India ; and in general the great treatises of the Orient

have begun to be subjected to critical study. It would be strange, therefore, if we were not in a position to weigh up, with more certainty than before, the claims of the Hindu algebra. Certainly the persevering work of Professor Raṅgācārya has made this more possible than ever before.

As to the relation between the East and the West, we should now be in a position to say rather definitely that there is no evidence of any considerable influence of Greek algebra upon that of India. The two subjects were radically different. It is true that Diophantus lived about two centuries before the first Āryabhaṭa, that the paths of trade were open from the West to the East, and that the itinerant scholar undoubtedly carried learning from place to place. But the spirit of Diophantus, showing itself in a dawning symbolism and in a peculiar type of equation, is not seen at all in the works of the East. None of his problems, not a trace of his symbolism, and not a bit of his phraseology appear in the works of any Indian writer on algebra. On the contrary, the Hindu works have a style and a range of topics peculiarly their own. Their problems lack the cold, clear, geometric precision of the West; they are clothed in that poetic language which distinguishes the East, and they relate to subjects that find no place in the scientific books of the Greeks. With perhaps the single exception of Metrodorus, it is only when we come to the puzzle problems doubtfully attributed to Alcuin that we find anything in the West which resembles, even in a slight degree, the work of Alcuin's Indian contemporary, the author of this treatise.

It therefore seems only fair to say that, although some knowledge of the scientific work of any one nation would, even in those remote times, naturally have been carried to other peoples by some wandering savant, we have nothing in the writings of the Hindu algebraists to show any direct influence of the West upon their problems or their theories.

When we come to the question of the relation between the different sections of the East, however, we meet with more difficulty. What were the relations, for example, between the school of Pāṭaliputra, where Āryabhaṭa wrote, and that of Ujjain, where both Brahmagupta and Bhāskara lived and taught? And what was the relation of each

of these to the school down in South India, which produced this notable treatise of Mahāvīrācārya ? And, a still more interesting question is, what can we say of the influence exerted on China by Hindu scholars, or *vice versa ?* When we find one set of early inscriptions, those at Nānā Ghāt, using the first three Chinese numerals, and another of about the same period using the later forms of Mesopotamia, we feel that both China and the West may have influenced Hindu science. When, on the other hand, we consider the problems of the great trio of Chinese algebraists of the thirteenth century, Ch'in Chiushang, Li Yeh, and Chu Shih-chieh, we feel that Hindu algebra must have had no small influence upon the North of Asia, although it must be said that in point of theory the Chinese of that period naturally surpassed the earlier writers of India.

The answer to the questions as to the relation between the schools of India cannot yet be easily given. At first it would seem a simple matter to compare the treatises of the three or four great algebraists and to note the similarities and differences. When this is done, however, the result seems to be that the works of Brahmagupta, Mahāvīrācārya, and Bhāskara may be described as similar in spirit but entirely different in detail. For example, all of these writers treat of the areas of polygones, but Mahāvīrācārya is the only one to make any point of those that are re-entrant. All of them touch upon the area of a segment of a circle, but all give different rules. The so-called *janya* operation (page 209) is akin to work found in Brahmagupta, and yet none of the problems is the same. The shadow problems, primitive cases of trigonometry and gnomonics, suggest a similarity among these three great writers, and yet those of Mahāvīrācārya are much better than the one to be found in either Brahmagupta or Bhāskara, and no questions are duplicated.

In the way of similarity, both Brahmagupta and Mahāvīrācārya give the formula for the area of a quadrilateral,

$$\sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$$

—but neither one observes that it holds only for a cyclic figure. A few problems also show some similarity such as that of the broken tree, the one about the anchorites, and the

common one relating to the lotus in the pond, but these prove only that all writers recognized certain stock problems in the East, as we generally do to-day in the West. But as already stated, the similarity is in general that of spirit rather than of detail, and there is no evidence of any close following of one writer by another.

When it comes to geometry there is naturally more evidence of Western influence. India seems never to have independently developed anything that was specially worthy in this science. Brahmagupta and Mahāvīrācārya both use the same incorrect rules for the area of a triangle and quadrilateralt hat is found in the Egyptian treatise of Ahmes. So while they seem to have been influenced by Western learning, this learning as it reached India could have been only the simplest. These rules had long since been shown by Greek scholars to be incorrect, and it seems not unlikely that a primitive geometry of Mesopotamia reached out both to Egypt and to India with the result of perpetuating these errors. It has to be borne in mind, however, that Mahāvīrācārya gives correct rules also for the area of a triangle as well as of a quadrilateral without indicating that the quadrilateral has to be cyclic. As to the ratio of the circumference to the diameter, both Brahmagupta and Mahāvīrācārya used the old Semitic value 3, both giving also $\sqrt{10}$ as a closer approximation, and neither one was aware of the works of Archimedes or of Heron. That Āryabhaṭa gave 3·1416 as the value of this ratio is well known, although it seems doubtful how far he used it himself. On the whole the geometry of India seems rather Babylonian than Greek. This, at any rate, is the inference that one would draw from the works of the writers thus far known.

As to the relations between the Indian and the Chinese algebra, it is too early to speak with much certainty. In the matter of problems there is a similarity in spirit, but we have not yet enough translations from the Chinese to trace any close resemblance. In each case the questions proposed are radically different from those found commonly in the West, and we must conclude that the algebraic taste, the purpose, and the method were all distinct in the

two great divisions of the world as then known. Rather than assert that the Oriental algebra was influenced by the Occidental we should say that the reverse was the case. Bagdad, subjected to the influence of both the East and the West, transmitted more to Europe than it did to India. Leonardo Fibonacci, for example, shows much more of the Oriental influence than Bhāskara, who was practically his contemporary, shows of the Occidental.

Professor Raṅgācārya has, therefore, by his great contribution to the history of mathematics confirmed the view already taking rather concrete form, that India developed an algebra of her own; that this algebra was set forth by several writers all imbued with the same spirit, but all reasonably independent of one another; that India influenced Europe in the matter of algebra, more than it was influenced in return; that there was no native geometry really worthy of the name; that trigonometry was practically non-existent save as imported from the Greek astronomers; and that whatever of geometry was developed came probably from Mesopotamia rather than from Greece. His labours have revealed to the world a writer almost unknown to European scholars, and a work that is in many respects the most scholarly of any to be found in Indian mathematical literature. They have given us further evidence of the fact that Oriental mathematics lacks the cold logic, the consecutive arrangement, and the abstract character of Greek mathematics, but that it possesses a richness of imagination, an interest in problem-setting, and poetry, all of which are lacking in the treatises of the West, although abounding in the works of China and Japan. If, now, his labours shall lead others to bring to light and set forth mor and more of the classics of the East, and in particular those of early and mediaeval China, the world will be to a still larger extent his debtor.

प्रस्तावना की अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
प्रस्तावना	1	९	बेबीलोनिया	बेबिलन
	2	११	बेबीलोन	"
	2	१७	"	"
	3	४	"	"
	3	८	"	"
	3	१५	पेपीरियों	पेपायरियों
	3	२१	पेपिरस	पेपायरस
	4	३	"	"
	4	११	आर्किमिडीज़	आर्किमीडीज़
	4	१६	पैथेगोरस	पिथेगोरस
	4	१७	"	"
	4	२२	"	"
	4	२३	"	"
	5	१	"	"
	5	३	आर्किमिडीज़	आर्किमीडीज़
	5	८	अतिपरवलज	अतिपरवलयज
	5	१५	आर्किमिडीज़	आर्किमीडीज़
	5	१६	हिपरकस	हिपारकस
	5	२५	डायोफेंटस	डाओफेंटस
	5	२८	मैरथान	मैराथान
	5	३०	बेबीलोन	बेबिलन
	8	१६	Peleian	Pellian
	9	२३	सम्	सन्
	11	१	बस्खाली	बखाली
	15	१३	Health	Heath
	22	१२	Pythagorus	Pythagoras
	24	८	"	"
	24	२९	"	"
	25	५	"	"
	२5	१३	"	"
	25	२०	"	"
	26	११	"	"
	26	१५	"	"

	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	31	१४	Civilization	Civilisation
ग्रंथ	३	गाथा १४	बन्धेन्द्र°	बन्धेन्द्र°
	३	गाथा २३	गुणकै°	गणकै°
	४	गाथा २७	लीक्षा	लिक्षा
	५	गाथा ३३	संख्या तावलि°	संख्यातावलि°
	५	गाथा ३३	दल	पल
	६	गाथा ४४	फलशतद्वयम्	पलशतद्वयम्
	७	गाथा ५४	युगलयुग्मं	युगलंयुग्मं
	८	गाथा ७०	संज्ञा	संज्ञाः
	३७	२२	निम्नलित	निम्नलिखित
	११८	६	भूलभूत	मूलभूत
	१८१	१४	विषय की छः प्रकार	छठवें विषय
	१९२	९	आवाधा	आबाधा
	२००	१	अत्रोद्देशकः	—
	२०५	१	मिश्रक	क्षेत्रगणित
	२२१	८	आदि से	आदि लेकर गणनानीत
	२६८	१६	डुण्डुको	डुण्डुक
परिशिष्ट	११	४	Ādhak	Ādhaka
	११	६	Adhvān	Adhvāna
	११	१५	Ādidhan	Ādidhana
	११	२७	Amōghvarsa	Amōghavarṣa
	१२	१२	Tīrthnkar	Tīrthaṅkara
	१३	१८	Bhāgāpāvāha	Bhāgāpavāha
	१३	१९	भागसम्वर्ग	भागसंवर्ग
	१४	१०	Crore	crore
	१५	२४	by	be
	१५	३०	Tiirthaṅkara	Tīrthaṅkara
	१५	३४	Tīrthankara	Tīrthaṅkara
	२०	२१	प्रपूर्णिका	प्रपूरणिका
	२८	१	परिशिष्ट—५	परिशिष्ट—२ अ
	३९	११	Ferminalia	Terminalia
	३९	३०	संचरित	संरचित

JĪVARĀJA JAINA GRANTHAMĀLĀ

1. *Tiloyapaṇṇatti* of Yativṛṣabha (Part I, Chapters 1-4): An Ancient Prākrit Text dealing with Jaina Cosmography, Dogmatics etc. Prākrit Text authentically edited for the first time with various Readings, Preface & Hindī Paraphrase of Pt. BALACHANDRA by Drs. A. N. UPADHYE and H. L. JAIN. Published by Jaina Saṁskṛti Saṁrakṣaka Saṁgha, Sholapur (India). Double Crown pp. 6-38-532. Sholapur, 1943. Price Rs. 12·00. Second Edition, Sholapur, 1956. Price Rs. 16·00.

1. *Tiloyapaṇṇatti* of Yativṛṣabha (Part II, Chapters 5-9). As above, with Introductions in English and Hindī, with an alphabetical Index of Gāthās, with other Indices (of Names of works mentioned, of Geographical Terms, of proper Names, of Technical Terms, of Differences in Tradition, of Karaṇasūtras and of Technical Terms compared) and Tables (of Nāraka-jīva, Bhavana-vāsī Deva, Kulakaras, Bhāvana Indras, Six Kulaparvatas, Seven Kṣetras, Twentyfour Tīrthankaras, Age of the Śalākāpurṣas, Twelve Cakravartins, Nine Nārayaṇas, Nine Pratiśatrus, Nine Baladevas, Eleven Rudras, Twentyeight Nakṣatras, Eleven Kalpātīta, Twelve Indras, Twelve Kalpas and Twenty Prarūpaṇās). Double Crown pp. 6-14-108-529 to 1032, Sholapur, 1951. Price Rs. 16·00.

2. *Yaśastilaka and Indian Culture,* or Somadeva's Yaśastilaka and Aspects of Jainism and Indian Thought and Culture in the Tenth Century, by Professor K. K. HANDIQUI, Vice-Chancellor, Gauhati University, Assam, with Four Appendices, Index of Geographical Names and General Index. Published by J. S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. 8-540. Sholapur, 1949. Price Rs. 16·00.

3. *Pāṇḍavapurāṇam* of Śubhacandra: A Sanskrit Text dealing with the Pāṇḍava Tale. Authentically edited with various Readings, Hindī Paraphrase, Introduction in Hindī etc. by Pt. JINADAS. Published by J. S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. 4-40-8-520. Sholapur, 1954. Price Rs. 12·00.

4. *Prākṛta-śabdānuśāsanam* of Trivikrama with his own commentary: Critically Edited with Various Readings, an Introduction and Seven Appendices (1. Trivikrama's Sūtras; 2. Alphabetical Index of the Sūtras; 3. Metrical Version of the Sūtrapāṭha; 4. Index of Apabhraṁśa Stanzas; 5. Index of Deśya words; 6. Index of Dhātvādeśas, Sanskrit to Prākrit and vice versa; 7. Bharata's Verses on Prākrit) by Dr. P. L. VAIDYA, Director, Mithilā Institute, Darbhanga. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Demy pp. 44–478. Sholapur, 1954. Price Rs. 10·00.
5. *Siddhānta-sārasaṁgraha* of Narendrasena: A Sanskrit Text dealing with Seven Tattvas of Jainism. Authentically Edited for the first time with various Readings and Hindī Translation by Pt. JINADAS P. PHADKULE. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. about 300. Sholapur 1957. Price Rs. 10 00.
6. *Jainism in South India and Some Jain Epigraphs* : A learned and well documented Dissertation on the career of Jainism in the South, especially in the areas in which Kannada, Tamil and Telugu Languages are spoken, by P. B. DESAI, M. A., Assistant Superintendent for Epigraphy, Ootacamund. Some Kannaḍa Inscriptions from the areas of the former Hyderabad State and round about are edited here for the first time both in Roman and Devanāgarī characters, along with their critical study in English and Sārānuvāda in Hindī. Equipped with a List of Inscriptions edited, a General Index and a number of illustrations. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Sholapur 1957. Double Crown pp. 16–456. Price Rs. 16·00.
7. *Jambūdīvapaṇṇatti-Saṁgaho* of Padmanandi : A Prākrit Text dealing with Jaina Geography. Authentically edited for the first time by Drs. A. N. UPADHYE and H. L. JAINA, with the Hindī Anuvāda of Pt. BALACHANDRA. The Introduction institutes a careful study of the Text and its allied works. There is an Essay in Hindi on the Mathematics of the Tiloyapaṇṇatti by Prof. L. C. JAIN, M. Sc., Jabalpur. Equipped with an Index of Gāthās, of Geographical Terms and of Technical Terms, and with additional Variants of Amera Ms. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur. Double Crown pp. about 500. Sholapur, 1957.

8. *Bhaṭṭāraka-saṁpradāya* : A History of the Bhaṭṭāraka ·Pīṭhas especially of Western India, Gujarat, Rajasthan and Madhya Pradesh, based on Epigraphical, Literary and Traditional sources, extensively reproduced and suitably interpreted, by Prof. V. JORHAPURKAR, M. A., Nagpur. Demy pp. 14 + 24 + 326, Sholapur, 1958. Price Rs. 8/-.

9. *Prābhṛtādisaṁgraha* : This is a presentation of topic-wise discussions compiled from the works of Kundakunda, the Samayasāra being fully given. Edited with Introduction and Translation in Hindi by: Pt. Kailashchandra Shastri, Varanasi. Published by the J. S. S. Sangha, Sholapur, Demy pp. 10-106-10-288. Sholapur 1960. Price Rs. 6·0.

10. *Pancaviṁśati* of Padmanandi : (c. 1136 A. D.). This is a collection of 26 prakaraṇas (24 in Sanskrit and 2 in Prākrit), small and big, dealing with various religious topics : religious, spiritual, ethical, didactic, hymnal and ritualistic. The text, along with an anonymous commentary, critically edited by Dr. A. N. Upadhye and Dr. H. L. Jain with the Hindi Anuvāda of Pt. Balachandra Shastri. The edition is equipped with a detailed Introduction shedding light on the various aspects of the work and personality of the author both in English snd Hindi. There are useful Indices. Printed in the N. S. Press, Bombay. Double crown pp. 8-64-284. Sholapur, 1962. Price Rs. 10/-.

11. *Ātamānuśāsana* of Guṇabhadra (middle of the 9th century A. D.). This is a religio-didactic anthology in elegant Sanskrit verses composed by Guṇabhadra, the pupil of Jinasena, the teacher of Rāṣṭrakūta Amoghavarṣa. The Text critically edited along with the Sanskrit commentary of Prabhācandra and a new Hindi Anuvāda by Dr. A. N. Upadhye, Dr. H. L. Jain and Pt. Balachandra Shastri. The edition is equipped with Introductions in English and Hindi and some useful Indices. Demy pp. 8-112-260, Sholapur, 1962. Price Rs. 5/-.

12. *Gaṇitasāra Saṁgraha* of Mahāvīrācārya (c.9th century A. D.) : This is an important treatise in Sanskrit on early Indian mathematics composed in an elegant style with a practical

approach. Edited with Hindi Translation by Prof. L. C. Jain, M. Sc., Jabalpur. Double Crown pp. 17 + 34 + 282 + 82, Sholapur, 1963. Price Rs. 12/-.

13. *Lokavibhāga* of Simhasūri : A Sanskrit digest of a missing ancient Prakrit text dealing with Jaina Cosmography. Edited for the first time with Hindi Translation by Pt. Balachandra Shastri. Double Crown pp. 8–52–256, Sholapur 1962. Price Rs. 10/-.

14. *Puṇyāsrava-kathākośa* of Rāmachandra : It is a collection of religious stories in simple and popular Sanskrit. The text authentically edited by Dr. A. N. Upadhye and Dr. H. L. Jain with the Hindi Anuvāda of Pt. Balachandra Shastri. (To be out soon).

15. *Jainism in Rājasthān* : This is a dissertation on Jainas and Jainism in Rajasthan and round about area from early times to the present day, based on epigraphical, literary and traditional sources by Dr. Kailashchandra Jain, Ajmer. (To be out soon).

16. *Viśvatattva-prakāśa* of Bhāvasena (14th century A. D.) : It is a treatise on Nyāya. Edited with Hindi Summary and Introduction in which is given an authentic Review of Jaina Nyāya literature by Dr. V. P. Johrapurkar, Nagpur. (To be out soon).

Works in preparation

Subhāṣita-saṁdoha, Dharma-parīkṣā, Jñānārṇava, Kathākośa of Srīcandra, Dharmaratnākara, etc.

For copies write to :

Jaina Samskrti Samrakshaka Sangha,
Santosh Bhavan, Phaltan Galli,
Sholapur (C. Rly) : India